धर्म समझकर यज्ञ करते थे। यज्ञों में सभी का अटूट विश्वास था। यज्ञों की महत्ता सर्वमान्य थी। यज्ञ में शास्त्रीय विधि के पालन का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। यज्ञों में वैदिक धर्म के अनुयायी सन्त, महात्मा और विद्वान् विशेषरूप से आमन्त्रित किये जाते थे, जिनके द्वारा यज्ञों के महत्त्व का विशेष प्रख्यापन और प्रसार-प्रचार होता था। आज भी भारतवर्ष में जो कुछ यज्ञों की परम्परा चल रही है, वह सन्त-महात्माओं की ही देन है।

इधर कुछ वर्षों से यज्ञों की परम्परा उच्छिन्नप्राय हो चली थी, तो सौभाग्यवश **त्याग-तपोमूर्ति श्री १००८ स्वामी करपात्रीजी महाराज** जैसी दिव्य विभूति यज्ञ-रक्षार्थ पुनः प्रादुर्भूत हो गयी, जिन्हेंने देहली, कानपुर, काशी और बंबई जैसे नगरों में अनेक बार विशाल वैदिक शाखा-सम्मेलन और कोटिहोमात्मक शतमुख महायज्ञ कराकर 'वैदिकधर्म' को विशेष जागृत किया, जिससे आज समस्त भारत के कोने-कोने में यज्ञों का प्रसार-प्रचार हो गया।

अन्त में यज्ञ भगवान् से प्रार्थना है कि हमारा पवित्र भारतवर्ष पुनः यज्ञों के बाहुल्य से 'यज्ञिय-देश' कहला सके और यज्ञिय-देश (भारतवर्ष) में रहने वाले सभी प्राणी सर्वदा सर्वप्रकार से सुखी और समृद्ध हो जायें।

यज्ञ-मीमांसा के सम्बन्ध में निवेदन

यज्ञ-मीमांसा का प्रथम संस्करण सन् १९४४ में प्रकाशित हुआ था, जिसमें पृष्ठ संख्या ७८ थी। यज्ञ-मीमांसा का द्वितीय संस्करण सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ था, जिसमें पृष्ठ संख्या परिशिष्ट भाग के सहित २०५ थी। यज्ञ-मीमांसा का द्वितीय संस्करण सन् १९६२ में ही समाप्त हो गया था। यज्ञ-मीमांसा के अप्राप्य होने पर इसकी माँग विद्वानों के द्वारा अत्यधिक थी, किन्तु मैं उनकी माँग को शीघ्र पूर्ण न कर सका, इसका मुझे अत्यन्त खेद है।

यज्ञ-मीमांसा के तृतीय संस्करण का प्रकाशन सन् १९६५ में प्रारम्भ होकर सन् १९७० में अनेक कठिनताओं को पार करते हुए

परिपूर्ण हुआ। अतः यज्ञ-मीमांसा के विद्वान् ग्राहकवर्ग मेरी विवशता के लिये क्षमा करें।

यज्ञ-मीमांसा के प्रथम और द्वितीय संस्करण की अपेक्षा यज्ञ-मीमांसा के तृतीय संस्करण में सैकड़ों उपयोगी और महत्त्वपूर्ण विषय बढ़ाये गये हैं, जिनसे यज्ञप्रेमी विद्वानों को विशेष लाभ होगा।

यज्ञ-मीमांसा के तृतीय संस्करण में यज्ञ-सम्बन्धी बहुत से आवश्यक गूढ़ विषयों का समावेश किया गया है, जिनके विषय में यज्ञप्रेमी विद्वान् प्रश्न किया करते थे। हिन्दी भाषा में यज्ञ-विषयप्रतिपादक कोई ग्रन्थ नहीं था, अतः इस अभाव की पूर्ति के लिये मैने 'यज्ञ-मीमांसा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस बार यज्ञ-मीमांसा के तृतीय संस्करण में प्रथम भाग और द्वितीय भाग रक्खा गया है। प्रथम भाग में यज्ञ सम्बन्धी ४८३ विषय दिये गये हैं, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से लिखे गये यज्ञ विषय के २३ महत्त्वपूर्ण निबन्ध भी हैं और द्वितीय भाग में यज्ञ-सम्बन्धी १५४ विषय दिये गये हैं, जिनमें अनेक यज्ञों के हवन मन्त्र, अनेक यज्ञों के न्यास एवं विनियोग, अनेक देवी-देवताओं की गायत्री, अनेक यज्ञों के सङ्कल्प, अनेक धार्मिक अनुष्ठानों के सङ्कल्प और अनेक शुभ कार्यों के सङ्कल्प, अनेक यज्ञों की और अनेक पूजा-पाठ, दान आदि धार्मिक कर्मों की सामग्री दी गई है, जिससे यह पुस्तक वैदिकों और याज्ञिकों के लिये अत्यन्त उपयोगी और संग्राह्य हो गई है।

यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। अनेक प्रकार के यज्ञों में अनेक प्रकार के वेद-मन्त्रों से हवन होता है। बहुत से यज्ञों के हवन-मन्त्र यज्ञ-पद्धतियों में छपे नहीं हैं, जिससे सम्पूर्ण शुक्लयजुर्वेद और अन्य वेदों के अध्ययन न करने वाले ब्राह्मण यज्ञ के समय हवन के मन्त्रों को उच्चारण करने में असमर्थ रहते हैं। अतः उनके लिये मैंने यज्ञ-मीमांसा के द्वितीय भाग में विष्णुयज्ञ और रुद्रयज्ञ के अतिरिक्त लक्ष्मीयज्ञ, सूर्ययज्ञ, गणेशयज्ञ, प्रजापतियज्ञ, **नवग्रह-यज्ञ, विश्वशान्तियज्ञ, पर्जन्यसूक्त, सन्तानयज्ञ तथा गोयज्ञ (गोरक्षा-महायज्ञ) के हवन-मन्त्र दे दिये हैं, जो कि यज्ञ-पद्धतियों में छपे नहीं हैं।**

यज्ञ-मीमांसा के प्रस्तुत संस्करण के प्रथम भाग में पृष्ठ संख्या ५५८ और द्वितीय भाग में पृष्ठ संख्या २७२ है। दोनों भागों की कुल पृष्ठ संख्या ८३० है।

मेरा विश्वास है कि विद्वानों के द्वारा समय-समय पर यज्ञ के सम्बन्ध में विविध प्रकार के जो प्रश्न उत्थापित होते हैं, उन सभी प्रश्नों का उचित समाधान यज्ञ-मीमांसा में किया गया है। अतः प्रत्येक विद्वान् के लिये, विशेषतः वैदिक और याज्ञिक के लिये यज्ञ-मीमांसा अवश्य ही संग्राह्य है।

यज्ञ-मीमांसा की विशेषता से प्रभावित होकर भारत के उच्च कोटि के अनेक धर्माचार्यों, नेताओं और विद्वानों ने यज्ञ-मीमांसा के सम्बन्ध में अपनी बहुमूल्य महत्त्वपूर्ण सम्मतियाँ प्रदान की हैं, जिनमें से कुछ सम्मतियाँ प्रकाशित की जा रही हैं।

मैं उन विद्वानों का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने यज्ञ-मीमांसा को सप्रेम अपनाकर मेरे परिश्रम को विशेष सफल किया है।

**निर्जला एकादशी
संवत् २०२६** } **वेणीराम गौड**

विद्वानों की सम्मतियाँ

ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री १००८ स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज

याज्ञिकसम्राट्, वेदाचार्य पण्डित श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड द्वारा निर्मित 'यज्ञ-मीमांसा' नामक विशाल ग्रन्थ देखा। इस ग्रन्थ में यज्ञ-सम्बन्ध के अनेक उपयोगी विषय दिये गये हैं, जो कि अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण हैं। यह ग्रन्थ प्रत्येक विद्वान् के लिये उपयोगी और संग्राह्य है। महामहोपाध्याय पण्डित श्रीप्रभुदत्तजी शास्त्री के पौत्र और महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधरजी शास्त्री के सुपुत्र द्वारा इस ग्रन्थ का निर्माण होना विशेष महत्त्व रखता है। ऐसे ग्रन्थों को लिखने का इनको स्वाभाविक अधिकार है। इस ग्रन्थ के द्वारा धार्मिकवर्ग का विशेष लाभ हो, यह शुभकामना है।

सनातनधर्म के सर्वोच्च नेता अनन्तश्रीविभूषित पूज्य श्री १००८ स्वामी करपात्रीजी महाराज

काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालय के वेदाध्यापक वेदाचार्य पण्डित श्रीवेणीरामशर्मा गौड काशी के अत्यन्त प्रतिष्ठित वैदिक कुल के यशस्वी विद्वान् हैं। इनका निर्माण किया हुआ 'यज्ञ-मीमांसा' नामक विशाल ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और पाण्डित्यपूर्ण है। यज्ञ-मीमांसा में यज्ञ-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्धों का और यज्ञविषयक विविध ज्ञातव्य गूढ़ विषयों का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ यज्ञ-सम्बन्धी जिज्ञासुओं और वैदिकों के लिये विशेष उपादेय है। हिन्दी भाषा में यज्ञविषय-प्रतिपादक इस प्रकार का और कोई ग्रन्थ नहीं है। ऐसे ग्रन्थ की विशेष आवश्यकता थी।

त्यागतपोमूर्ति अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी रामदेवजी महाराज

प्राचीन समय में श्रौत-स्मार्त यज्ञ विधिपूर्वक होते थे, जिससे अनेक प्रकार के शुभ फल होते थे। बीच में यज्ञों के प्रति शैथिल्य हो गया था, किन्तु वर्तमान समय में पुनः यज्ञों की ओर विशेष प्रवृत्ति देखी जा रही है। वेदों के स्वाध्याय के अभाव में विधि के यथार्थ परिज्ञान न होने से प्रायः विधिहीन यज्ञ होते हैं। अतएव यज्ञ-विधि के ज्ञान की परमावश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति याज्ञिकसम्राट् पं. श्रीवेणीराम शर्मा गौड वेदाचार्य द्वारा लिखित 'यज्ञ-मीमांसा' पुस्तक के द्वारा हो जाती है। केवल हिन्दी भाषा के ज्ञाता भी इस पुस्तक के द्वारा यज्ञ-विधि को जान सकते हैं। अतएव यह पुस्तक सबको पढ़नी चाहिये।

माध्वसम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री

यज्ञ–विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण दुर्लभ विषयों के प्रतिपादन करने वाले 'यज्ञ-मीमांसा' नामक ग्रन्थ को आद्यन्त देखा। इस ग्रन्थ में यज्ञ-सम्बन्धी सभी विषय उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं।

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी

यज्ञ-मीमांसा में यज्ञ-विषय का बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इसका प्रत्येक विषय विद्वत्तापूर्ण है। हिन्दी भाषा में यज्ञ-विषय की ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं है। मैं इस प्रयास की प्रशंसा करता हूँ।

महामहोपाध्याय पं. श्रीचिन्नस्वामीजी शास्त्री

हिन्दी-भाषा में 'यज्ञ-मीमांसा' लिखकर यज्ञप्रेमियों का बहुत ही उपकार किया है। याज्ञिकों के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

महामहोपाध्याय पं. श्रीनारायणशास्त्रीजी खिस्ते

'यज्ञ-मीमांसा' पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। इसका प्रत्येक विषय पठनीय और मननीय है।

सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा (पंजाब) के प्रधानमन्त्री त्यागमूर्ति श्रीयुत् गोस्वामी गणेशदत्तजी महाराज

काशीनिवासी वेदाचार्य पं. वेणीरामजी गौड ने 'यज्ञ-मीमांसा' नाम की विशाल पुस्तक लिखकर सनातनधर्म का विशेष उपकार किया है। यज्ञ-मीमांसा में यज्ञ-सम्बन्धी अनेकों उपयोगी विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचन किया गया है। हिन्दी भाषा में यज्ञ-विषय की यह पुस्तक प्रथम प्रकाशित हुई है। मुझे आशा है, इस पुस्तक से यज्ञ प्रेमियों का अत्यधिक लाभ होगा।

पण्डित श्रीजगदानन्दजी झा वेदाचार्य वेद-विभागाध्यक्ष- गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, पटना

'यज्ञ-मीमांसा' में यज्ञ-सम्बन्धी बहुत से महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ विषयों को देखकर प्रसन्नता हुई। याज्ञिकसम्राट् पण्डित श्रीवेणीरामजी गौड़ के द्वारा यज्ञ-विषय की पुस्तक का निर्माण होना विशेष महत्त्व रखता है। यज्ञमीमांसा के निर्माण से वैदिकवर्ग का महान् उपकार हुआ है।

माननीय श्रीयुत् बाबू हनुमानप्रसाद जी पोद्दार सम्पादक-कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर

विश्वकल्याणकारिणी वैदिक संस्कृति के मूल आधार वेद हैं और वेद यज्ञमय हैं। किसी समय पुण्यभूमि भारत में तपःपूत अरण्य से लेकर समृद्धिपूर्ण राजप्रासाद तक सब यज्ञ-धूम से सौरभित रहते थे। सर्वथा सात्त्विक वातावरण का प्रसार था। आज का युग उससे विपरीत है। आज न तो स्वयं विधिवत् यज्ञ करनेवाले प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, न करानेवाले ही। ऐसे विकट समय में हमारे परम सम्मान्य याज्ञिकसम्राट् पण्डित श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड वेदाचार्य, काव्यतीर्थ महोदय ने सर्वाङ्गपूर्ण 'यज्ञ-मीमांसा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण कर वेद तथा वैदिक संस्कृति की जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है, वह बड़ी ही सराहनीय है और सदा स्मरणीय रहेगी। आपने इस ग्रन्थ में विविध यज्ञों के स्वरूपों का

शास्त्रसम्मत विवरण दिया है तथा यज्ञसम्बन्धी छोटे-बड़े प्रायः सभी विषयों पर प्रकाश डाला है। आपके इस ग्रन्थ से यज्ञ सम्बन्धी जिज्ञासा की तो पूर्ति होगी ही, साथ ही यज्ञ के अधिकारियों का भी निर्माण होगा। यज्ञ के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी तथा यज्ञों का प्रचार-प्रसार अधिक होगा एवं यज्ञों के पुण्य अनुष्ठान से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध तापों का नाश होकर विश्व में सुख-शान्ति का उदय होगा।

वर्तमान जड़वाद के युग में, जब कि भारतीय धर्मप्राण जनता अपने प्राचीन गौरव को भूलती जा रही है, इस प्रकार के ग्रन्थों की विशेष आवश्यकता है। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक के द्वारा धार्मिक साहित्य के एक अत्यावश्यक अङ्ग की पूर्ति की है। अतः यह पुस्तक सभी धर्मप्रेमियों के लिये विशेष संग्रहणीय और उपयोगी है।

पं. श्री ब्रह्मानन्दजी शुक्ल, एम. ए. साहित्याचार्य
प्रधानाचार्य-राधाकृष्ण संस्कृत कालेज, खुरजा

आपकी प्रेषित 'यज्ञ-मीमांसा' पुस्तक मिली। चित्त प्रसन्न हुआ। मुझे आपकी अनेक कृतियाँ पढ़ने का सुयोग प्राप्त हो चुका है। वास्तव में ऐसे युग में आप सरीखे कर्मठ विद्वान् देश को छिपे-छिपे रत्न प्रदान कर महान् कीर्तिभाजन बना रहे हैं। आपकी लेखन-शैली सहज मनोग्राहिणी एवं कलापूर्ण है। आपकी यह पुस्तक बड़े महत्त्व की वस्तु है। आपका परिश्रम स्तुत्य है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। भगवान् आपको दिनोदिन ऐसे-ऐसे शुभ कार्यों में सफल करें, यह मेरी सच्ची शुभकामना है।

रायबहादुर पं. श्रीदत्तशर्मा वैद्यराज, भिवानी (हिसार)

'यज्ञ-मीमांसा' में यज्ञ-सम्बन्धी सभी आवश्यक और गूढ़ विषयों को देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। वैदिक समाज के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपकारक सिद्ध होगी। मैं इस पुस्तक के प्रचुर प्रचारार्थ भगवान् से प्रार्थना करता हूँ।

पं. श्रीकालीप्रसादजी शास्त्री, सम्पादक-'संस्कृतम्' (अयोध्या)

स्व.म.म.पं. श्रीप्रभुदत्तजी शास्त्री के पौत्र तथा स्व.म.म.पं. श्रीविद्याधर जी शास्त्री के पुत्र वेदाचार्य पं. श्रीवेणीरामशर्मा गौड महोदय ने हिन्दी भाषा में यज्ञ-मीमांसा' का प्रणयन कर बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अद्यावधि यज्ञ-सम्बन्ध में इतना प्रामाणिक ग्रन्थ दूसरा कोई भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यह पुस्तक प्रत्येक संस्कृतज्ञ के घर में होनी चाहिए।

साकेत (संस्कृत साप्ताहिक पत्र), अयोध्या

काशीस्थ गोयनकासंस्कृतमहाविद्यालयस्य वेदाध्यापकमहोदयलिखित-यज्ञमीमांसायां यज्ञसम्बन्धिनः ज्ञातव्याः बहवो विषयाः मीमांसिताः सन्ति। यज्ञ-मीमांसायाः लेखकः काश्यां सुप्रसिद्ध-वैदिकयाज्ञिककर्मकाण्डकुले प्रसूतः वैदिकप्रकाण्डानां याज्ञिकमूर्धन्यानां महामहोपाध्यायपण्डितश्रीविद्याधरशास्त्रिणां पुत्रः स्वयं वेदाचार्यः याज्ञिकः यज्ञानुष्ठाने निपुणो वर्तते। अत एव यज्ञमीमांसायाः प्रामाणिकत्वं श्रेद्धेयमस्ति। साम्प्रतिके युगे यज्ञ-मीमांसाया महती आवश्यकता आसीत्। यज्ञतत्त्वान्वेषिभिः यज्ञमीमांसा अवश्यं द्रष्टव्या।

●

वेदाचार्य पण्डित वेणीराम गौड

पण्डित वेणीराम गौड का जन्म काशीनिवासी भारत-प्रसिद्ध वेदज्ञ परिवार में हुआ। श्रीवेणीराम गौड महामहोपाध्याय पण्डित श्रीप्रभुदत्तजी गौड अग्निहोत्री (अध्यक्ष-धर्मविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के पौत्र और महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधरजी गौड अग्निहोत्री (अध्यक्ष-धर्मविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के पुत्र हैं। इन्होंने अपने पितामह म.म. पण्डित प्रभुदत्तजी से विद्यारम्भ किया और उनसे काशीस्थ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की 'प्रथमा परीक्षा' के समस्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। श्रद्धास्पद पितामह की मृत्यु के अनन्तर अपने पूज्य पिताजी से वेद, व्याकरण, साहित्य और धर्मशास्त्रादि के ग्रन्थों का नियमित अध्ययन किया।

परीक्षाएँ

पण्डित वेणीराम गौड ने काशीस्थ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की प्रथमा परीक्षा में प्रविष्ट होकर वहाँ से सन् १९३२ में प्रथमा-परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। प्रथमा परीक्षा केवल प्रथम श्रेणी में ही नहीं, वरन् गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के अन्य प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों की अपेक्षा अधिक अंक भी प्राप्त किए, जिससे इन्हें वहाँ से विशेष पारितोषिक प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से ही सन् १९३६ में सम्पूर्ण 'दर्शन मध्यमा' परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर सन् १९३७ में काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालय से काशीस्थ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की सम्पूर्ण 'शुक्लयजुर्वेद मध्यमा' परीक्षा और सन् १९४० में 'शुक्लयजुर्वेद शास्त्री' परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् इन्होंने अपने पिताजी के दिवङ्गत हो जाने पर कई वर्षों तक परीक्षा देना स्थगित कर दिया। किन्तु जब इनके हितैषियों ने इनको 'वेदाचार्य' परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये विशेष प्रेरित किया, तो इन्होंने सन् १९४९ में काशीस्थ

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से 'वेदाचार्य' और 'शिक्षणाचार्य' परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् १९४० में बंगाल संस्कृत एसोसियेशन, कलकत्ता की 'काव्यतीर्थ' परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 'पौरोहित्यरत्न' परीक्षा प्रथम श्रेणी में और सन् १९३९ में 'शुक्लयजुर्वेद शास्त्री' (धर्मशास्त्री) परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

वेदाध्यापक पद पर नियुक्ति

सन् १९३९ में काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य भारतविख्यात विद्वान् पण्डितसम्राट् महामहोपाध्याय श्रीहरिहरकृपालुजी द्विवेदी और गोयनका संस्कृत महाविद्यालय के विशेष पदाधिकारी विद्वन्मूर्धन्य पण्डित चण्डीप्रसाद जी शुक्ल महोदय ने आपको काशी के सुप्रसिद्ध गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में वेदाध्यापक पद पर नियुक्त कर दिया। जिस समय आपकी नियुक्ति गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी, उस समय आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'वेदशास्त्री' और काशीस्थ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की वेदशास्त्री के दो खण्ड उत्तीर्ण थे।

अनेक ग्रन्थों के लेखक, टीकाकार और सम्पादक

प्रारम्भ से ही आप कुशल लेखक रहे हैं। आपने सर्वप्रथम पारस्कर गृह्यसूत्र की 'विवृति' नाम की टीका संस्कृत में की। तत्पश्चात् 'वेदविज्ञान मीमांसा' का संस्कृत में और 'यज्ञ-मीमांसा' का हिन्दी में निर्माण किया। इसके बाद यज्ञ-प्रवचन, यज्ञ-माहात्म्य, यज्ञ-परिचय, यज्ञ-प्रसाद, दीक्षातत्त्व मीमांसा, कुम्भपर्व-माहात्म्य, प्रयाग-माहात्म्य, प्रयाग-कल्पवास, गुरुपूजनपद्धति, आशौचनिर्णय, नारी-दिनचर्या, नारी-धर्मशिक्षा, नारी-सन्ध्या, नित्यहोम और बलिवैश्वदेवविधि आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। वैदिकसूक्तसंग्रह, श्रीसूक्त, पुरुषसूक्त, पिङ्गलछन्दसूत्र, विवाहपद्धति, पार्वणश्राद्धपद्धति, एकोद्दिष्टश्राद्ध-पद्धति, नान्दीश्राद्धपद्धति, कार्तिकमाहात्म्य, एकादशीमाहात्म्य, सत्यनारायण-व्रतकथा और दुर्गासप्तशती आदि ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया तथा मन्त्रसंहिता, दण्डकसंहिता, रुद्राष्टाध्यायी, शिवार्चनपद्धति, रुद्रस्वाहाकार-

पद्धति, यज्ञमन्त्रसंग्रह, यज्ञहवनमन्त्रसंग्रह, लक्ष्मीनारायणहृदय और दुर्गासप्तशती आदि ग्रन्थों का सम्पादन किया।

विविध पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन

आपने सन् १९३६ से ही पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपके लेख हिन्दी के निम्नलिखित मासिक पत्रों, त्रैमासिक पत्रों, साप्ताहिक पत्रों और दैनिक पत्रों में, विशेषतः उनके विशेषाङ्कों में प्रकाशित होते रहे हैं—

कल्याण (गोरखपुर), लोकालोक (दिल्ली), मानवधर्म (दिल्ली), ब्राह्मणसमाज (दिल्ली), संजय (दिल्ली), अमरभारत (दिल्ली), सनातनज्योति (दिल्ली), गीताधर्म (अहमदाबाद), गीताधर्म (काशी), मानव (काशी), आर्यमहिला (काशी), कमला (काशी), विश्वनाथ (काशी), महाविद्या (काशी), सनातनधर्म (काशी), सन्मार्ग (काशी), सिद्धान्त (काशी), सूर्य (काशी), गीतासन्देश (बंबई), गीतासन्देश (ऋषिकेश), साधु (ऋषिकेश), प्रेमसन्देश (वृन्दावन), नाम-माहात्म्य (वृन्दावन), ऋषिजीवन (वृन्दावन), भक्तभारत (वृन्दावन), सुदर्शन (वृन्दावन), अखण्डज्योति (मथुरा), संकीर्तन (मेरठ), मानसहंस (हाथरस), उदय (उदयपुर), आलोक (नागपुर), मारवाड़ीब्राह्मण-समाचार (कलकत्ता) और अञ्जलि (प्रयाग)।

गुजराती मासिक पत्रों के विशेषाङ्कों में भी आपके लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनके नाम ये हैं—

जनकल्याण (अहमदाबाद), सत्सन्देश (अहमदाबाद), मङ्गलमन्दिर (अहमदाबाद), विश्वमंगल (अहमदाबाद)।

आपके संस्कृत के लेख निम्नलिखित मासिक पत्रों और साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुए हैं—

सुप्रभातम् (वाराणसी), सूर्योदयः (वाराणसी), ज्योतिष्मती (वाराणसी), गाण्डीवम् (वाराणसी) और संस्कृतम् (अयोध्या)।

The Universal Mother (विश्व की माता) नामक त्रैमासिक पत्र (कलकत्ता) में भी आपके लेख प्रकाशित हुए हैं।

आपकी लेखनशैली सहज, मनोहारिणी एवं कलापूर्ण है। आपके लिखे हुए धार्मिक निबन्ध अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण, रुचिकर और पठनीय होते हैं। आपके लिखे हुए सभी लेखों का सञ्चयन कर पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया जाय तो धार्मिक-समाज का विशेष उपकार होगा।

यज्ञादि कार्यों के कराने का प्रारम्भ

आप अपने पूज्य पिताजी के जीवनकाल में सन् १९४० से ही भारत के विभिन्न प्रान्तों, नगरों, कस्बों और ग्रामों में ससम्मान निमन्त्रित होकर यज्ञों और देवमन्दिरों की प्रतिष्ठा कराने जाने लग गये थे।

प्रवचन-पटुता

आप प्रवचन-कला में पूर्ण निष्णात हैं। आपकी प्रवचन-पटुता अत्यन्त आकर्षक और प्रभावोत्पादक है। आप यज्ञाचार्य होकर जहाँ भी जाते हैं, वहाँ आपको जनता के विशेष आग्रह से प्रवचन करना पड़ता है। आपके धार्मिक प्रवचन सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती है। आप जिस विषय पर प्रवचन करते हैं, उसका प्रतिपादन ऐसे सरल और सरस ढंग से करते हैं कि उसका श्रोताओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता दशसहस्रेषु त्यागी भवति वा न वा ।।

प्रायः वेदज्ञों में प्रवचनशक्ति का सर्वथा अभाव देखा जाता हैं, किन्तु आप वेदज्ञ होते हुए प्रवचनकला में पूर्ण निष्णात हैं, यह आपकी खास विशेषता है।

लेखक और उपदेशक बनने की प्रेरणा

बाल्यावस्था से ही इनके पूज्य पितांजी इनको धार्मिक विषयों पर लेख लिखने के लिये विशेष प्रेरित किया करते थे। अतः ये अपने पूज्य पिताजी की प्रेरणा से प्रेरित होकर बाल्यावस्था में ही धार्मिक लेख लिखने लगे थे। भाषाण की प्रवृति भी आपको अपने पूज्य पिताजी के द्वारा ही

प्राप्त हुई। आपके पूज्य पिताजी प्रत्येक अष्टमी और प्रत्येक प्रतिपदा को रात्रि में इन्हें अपने पास बैठाकर पूर्व निश्चित धार्मिक विषय पर बुलवाते थे। इस प्रकार बोलते-बोलते इनकी भाषण-शक्ति शनैः-शनैः इतनी वृद्धिङ्गत हुई कि कुछ समय के बाद ये अपने पिताजी के समक्ष निर्भीक और निःशङ्क होकर धाराप्रवाह रोचक व्याख्यान देने लग गये। उसी का परिणाम है कि आज भारत के विभिन्न प्रान्तों में यज्ञों और मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराने एवं श्रीमद्भागवत सप्ताह की कथा करने जहाँ भी जाते हैं, वहाँ के हजारों नर-नारी आपके सुमधुर और आकर्षक भाषण सुनने के लिये विशेष उत्सुक रहते हैं।

श्रीमद्भागवत सप्ताह-कथावाचक

पण्डित वेणीराम गौड श्रीमद्भागवत सप्ताह-कथा कहने में पूर्ण कुशल हैं। आपकी श्रीमद्भागवत सप्ताह-कथा अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक होती है। आपकी श्लोकों को कहने की शैली निराली और सुमधुर है। अतः श्रोतागण आपके श्लोक सुनने के लिये विशेष उत्कण्ठित रहते हैं।

गौडजी के आचार्यत्व में होने वाले यज्ञों की विशेषता

आप जहाँ भी यज्ञ कराने जाते हैं, वहाँ के यज्ञ करने वाले यजमान, यज्ञ में सम्मिलित होने वाले समस्त विद्वान्, यज्ञ के प्रबन्धकगण और यज्ञ के दर्शकगण एवं वहाँ की सर्वसाधारण जनता आपके सद्व्यवहार, निर्लोभवृत्ति, त्यागवृत्ति और विद्वत्ता से विशेष प्रभावित होते हैं और वे सर्वदा के लिये आपके परम भक्त बन जाते हैं।

आप जिस यज्ञ में जाते हैं, उस यज्ञ में सम्मिलित सभी ब्राह्मणों के साथ निरभिमान होकर सद्व्यवहार करते हैं और सभी को सब प्रकार से सन्तुष्ट रखने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। किसी भी ब्राह्मण पर किसी प्रकार का अनुचित अनुशासन नहीं रखते, जिससे यज्ञ के सभी ब्राह्मण आप से विशेष सन्तुष्ट रहते हैं और आपको 'यज्ञाचार्य' रूप में प्राप्त कर अपने-आप को कृतकृत्य मानते हैं।

आप जहाँ भी यज्ञ कराने जाते हैं, वहाँ प्रतिदिन प्रवचन करते हैं। आपके वैज्ञानिक ढंग से होने वाले प्रवचन को सुनकर धार्मिक जनता विशेष प्रभावित होती है।

आप यज्ञ का कार्य शास्त्रविधि के अनुसार ठीक समय से प्रतिदिन प्रारम्भ करते हैं और ठीक समय विश्राम करते हैं। आप प्रतिदिन प्रातः-काल ८ बजे यज्ञारम्भ और १२ बजे दिन में विश्राम करते हैं। पश्चात् मध्याह्न में २ बजे यज्ञारम्भ करके सायङ्काल ६ बजे हवन और आरती आदि की समाप्ति करते हैं। सूर्यास्त के बाद हवन करने का शास्त्रों में स्पष्ट निषेध भी किया गया है।

आप यज्ञ में आवश्यकता से अधिक समय लगाकर व्यर्थ में यज्ञ के यजमान और ब्राह्मणों को कष्ट देना उचित नहीं समझते।

यज्ञकर्ताओं पर प्रभाव

आप जिन यज्ञकर्ताओं (यजमानों) के यहाँ यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान कराने जाते हैं, वे आपके मधुर स्वभाव, वेष-भूषा, सदाचार, सद्व्यवहार, त्यागवृत्ति और विद्वत्ता आदि सद्गुणों से प्रभावित होकर सर्वदा के लिये आपके यजमान बन जाते हैं और सदैव अपने धार्मिक कार्यों को आपसे ही कराकर सन्तुष्टी प्राप्त करते हैं।

विविध उपाधियाँ

आपको समय-समय पर अनेक संस्थाओं ने याज्ञिकसम्राट्, वेद-वाचस्पति, वेदालङ्कार, वेदरत्न, याज्ञिकभूषण और याज्ञिकमार्तण्ड आदि अनेक सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया है।

आपको संवत् १९९८ में भारतधर्ममहामण्डल (काशी) ने 'वेदालङ्कार' की उपाधि, सन् १९५५ में अध्यात्ममहाविद्यालय (कानपुर) ने अपने तृतीय वार्षिकोत्सव के निमित्त होने वाले 'सात्त्विक महारुद्रयाग' की पूर्णाहुति के शुभावसर पर 'याज्ञिकसम्राट्' की उपाधि और सन् १९६७ में अखिल भारतीय संस्कृत प्रचारकमण्डल (दिल्ली) ने अपने २०वें अधिवेशन के उपलक्ष्य में 'वेदवाचस्पति' की उपाधि प्रदान की।

अभिनन्दन-पत्र तथा सम्मान-पत्र

आपको अनेक स्थानों में यज्ञादि कराने के लिये जाना पड़ता है। आप जहाँ भी यज्ञादि कराने जाते हैं, प्रायः सर्वत्र ही यज्ञसमिति और नागरिक आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर आपको 'अभिनन्दन-पत्र' अथवा 'सम्मान-पत्र' समर्पित करते हैं। इस प्रकार आपको अगणित अभिनन्दन-पत्र तथा सम्मान-पत्र प्राप्त हुए हैं।

विविध संस्थाओं के सभापति

ऋषिकुल विश्वविद्यालय (ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम), हरिद्वार ने आचार्य महामहोपाध्याय पण्डित श्रीपरमेश्वरानन्दजी शास्त्री के विशेष आग्रह पर आपको १५ जून सन् १९४८ को होने वाले ऋषिकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार के वार्षिकोत्सव में 'वाग्वर्धिनी सभा' का सभापतित्व प्रदान किया है।

अखिल भारतीय संस्कृत प्रचारकमण्डल, दिल्ली के २०वें अधिवेशन (२० और २१ जुलाई सन् १९६७) के अवसर पर दिल्ली के 'दीवानहाल' में २० जुलाई सन् १९६७ को होने वाले 'वेद-सम्मेलन' के सभापति का आसन आपने ही ग्रहण किया था।

व्यक्तित्व और सौम्य स्वभाव का प्रभाव

'विद्यया वपुषा वाचा' की आप प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। अतः आपके व्यक्तित्व का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर तत्काल पड़ता है। आपका स्वभाव इतना सौम्य, सरल और मिलनसार है कि आपसे जो एक बार भी मिलता है, वह सौम्य तथा मधुर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सर्वदा के लिये आपका भक्त और प्रेमी बन जाता है।

उपकारशीलता और उदारशीलता

आपका सहज एवं प्राकृतिक गुण उपकारशीलता है। दूसरों के दुःख को देखकर आप आवश्यकता से अधिक द्रवित होकर उसकी तन, मन एवं धन से सहायता करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। आपने अनेकों मनुष्यों की समय-समय पर अनेक प्रकार से सहायता की है और करते रहते हैं।

विद्यार्थियों के सहायक

विद्याध्ययन करने वाले दीन-हीन छात्रों की सब प्रकार से सहायता करने में आपको विशेष प्रसन्नता होती है। कई बार आपको ऐसा भी अवसर प्राप्त हुआ है कि आप काशी से बाहर हजारों मील की दूरी पर यज्ञ कराने जाते हैं, तो वहाँ के किसी निर्धन परिवारवाले ने यदि आप से अपने पुत्र को विद्याध्ययनार्थ काशी भेजने के लिये प्रार्थना की, तो आप तत्काल प्रार्थी की प्रार्थना स्वीकार कर अपने साथ पठनशील विद्यार्थी को काशी लाकर अपने घर में वर्षों रखकर उसके अध्ययन की एवं भोजनादि की सारी व्यवस्था का भार स्वयं वहन करते हैं।

पिताजी की स्मृति में दो ग्रन्थों का प्रकाशन

पण्डित श्रीवेणीरामजी गौड ने सनातनधर्म के प्रसिद्ध नेता भारत-भूषण महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराज की प्रेरणा से प्रेरित होकर अपने पूज्य पिताजी (म.म. पण्डित श्रीविद्याधरजी गौड) की स्मृति में 'महामहोपाध्याय स्मारकग्रन्थ' प्रकाशित किया है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्मारक ग्रन्थ तीन खण्डों में एक विशाल आकार में प्रकाशित हुआ है। इस महाग्रन्थ की प्रशंसा सम्मान्य शङ्कराचार्यों, साधु-महात्माओं, महामण्डलेश्वरों, नेताओं, विद्वानों और महामहोपदेशकों ने की है।

आपने अपने पिताजी के द्वारा संस्कृत में लिखे हुए 'श्रौतयज्ञ-परिचय' नामक ग्रन्थ को हिन्दी-भाषासहित प्रकाशित किया। 'श्रौतयज्ञ-परिचय' नामक ग्रन्थ समस्त श्रौतयज्ञों का परिचायक होने के कारण संस्कृत के विद्वानों के लिये पठनीय और संग्राह्य है।

विविध प्रकार के यज्ञों के आचार्य

रुद्रयाग और विष्णुयाग—ये दो यज्ञ विशेष प्रसिद्ध हैं। अत: ये दो यज्ञ विशेषरूप में होते हैं। किन्तु श्रीवेणीरामजी गौड ने रुद्रयज्ञ और विष्णुयज्ञ के अतिरिक्त हरिहरमहायज्ञ, शिवशक्तिमहायज्ञ, लक्ष्मीनारायण महायज्ञ, मृत्युञ्जययज्ञ, रामयज्ञ, सूर्ययज्ञ, गणेशयज्ञ, दुर्गायज्ञ, लक्ष्मीयज्ञ,

शक्तियज्ञ, गायत्रीयज्ञ, कृष्णयज्ञ, गोपालयज्ञ, वासुदेवयज्ञ, मारुतियज्ञ, (हनुमद्‌यज्ञ), नवग्रहयज्ञ, गोयज्ञ, विश्वशान्तियज्ञ, महाशान्तियज्ञ, पर्जन्ययज्ञ (वर्षायज्ञ), इन्द्रयज्ञ, सन्तानयज्ञ (पुत्रेष्टियज्ञ), चतुर्वेदयज्ञ, प्रजापतियज्ञ (ब्रह्मयज्ञ), परब्रह्मयज्ञ, गीतायज्ञ, श्रीमद्भागवतयज्ञ, श्रीमद्वाल्मीकिरामायणयज्ञ और कोटिहोमयज्ञ आदि अनेक यज्ञों को सम्पन्न किया है।

अनेक शतकुण्डी यज्ञों के आचार्य

पण्डित श्रीवेणीराम गौड ने १ कुण्ड, ४ कुण्ड, ५ कुण्ड, ७ कुण्ड, ९ कुण्ड, ११ कुण्ड और २४ कुण्ड के अनेक यज्ञ कराये हैं। इनके अतिरिक्त १०८ और १०४ कुण्डों के यज्ञ भी कई बार इन्हें कराने का अवसर प्राप्त हुआ है।

सन् १९४४ में हैदराबाद (दक्षिण) में १०४ कुण्डों का 'महाविष्णुयाग' कराया। सन् १९६७ में नैमिषारण्य तीर्थ में १०८ कुण्डों का 'हरिहरमहायज्ञ' कराया तथा सन् १९६८ में नागपुर में १०८ कुण्डों का 'विष्णुमहायज्ञ' कराया।

यज्ञस्थान

पण्डित वेणीरामजी गौड ने भारत के विभिन्न प्रान्तों, नगरों, कस्बों और ग्रामों में सैकड़ों यज्ञ कराये हैं; उन प्रान्तों, नगरों, कस्बों और ग्रामों के कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं—

उत्तर प्रदेश—बद्रीनाथधाम, रामनगर ऋषिकेश (जि. देहरादून), हरिद्वार (जि. सहारनपुर), नैमिषारण्य (जि. सीतापुर), वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मेरठ, बरेली, शाहजहाँपुर, पीलीभीत, सीतापुर, फैजाबाद, उन्नाव, नैनीताल, इटावा, भरथना (जि. इटावा), बांगरमऊ (जि. उन्नाव), राघवपुर (जि. हरदोई), फर्रूखाबाद, कन्नौज (जि. फर्रूखाबाद), किलाघाट (फतेहगढ़), कीर्तिखेड़ा (जि. फतेहपुर), सुलतानापुर रिहार (जि. सीतापुर), कुँवरपुर (जि. सीतापुर), रिहार (जि. सीतापुर), बहराइच, भिनगा (जि. बहराइच), बलरामपुर (जि. गोण्डा), मसकनवाँ (जि. गोण्डा),

गोला गोकर्णनाथ (जि. खीरी), विसलपुर (जि. पीलीभीत), नरहरिपुर (नेवरा) (जि. बाराबंकी), अमेठी (जि. सुल्तानपुर), बहिंगा (जि. हमीरपुर)।

मध्यप्रदेश—विलासपुर, कोरबा (जि. विलासपुर), पण्डरिया (जि. विलासपुर), रूसे (जि. विलासपुर), पेण्ड्रा (जि. विलासपुर), अमरकण्टक (जि. विलासपुर), सागर, राहतगढ़ (जि. सागर), झारई (जि. सागर), सुमेर त्रिवेणीघाट (जि. रायसेन), मनेन्द्रगढ़ (जि. सरगुजा), दर्राभाठा (जि. रायपुर), बेलौदी (जि. दुर्ग), बारासिवनी (जि. बालाघाट), कुरावरमण्डी (जि. राजगढ़), कैलवास (जि. जबलपुर), हरदा (जि. होशंगाबाद), जिजगाँवखुर्द (जि. होशंगाबाद), छिदगाँव (जि. होशंगाबाद), देवभीलट मालापुर (जि. होशंगाबाद), सिंगाजी (जि. नीमाड़), हरसूद (जि. नीमाड़), ओङ्कारेश्वर (जि. नीमाड़), पाण्डोली (श्योपुर) (जि. मुरैना), बरुवासागर (जि. झाँसी)।

राजस्थान—गोकर्णेश्वर विसलपुर (जि. टोंक), बड़ा लांबाहरिसिंह (जि. टोंक), देवली छाउनी (जि. टोंक), टोरडीसागर (जि. टोंक), घाड़ (जि. टोंक), भासू (जि. टोंक), राजमहल (जि. टोंक), पीपलू (जि. टोंक), बूढ़ा देवल (जि. टोंक), रामपुरा अलीगढ़ (जि. टोंक), दतवास (जि. जयपुर), सीघड़ा (जि. जयपुर), घाटा बालाजी मेंहदीपुर (जि. जयपुर), सरवाड़ (जि. अजमेर), मेहरूंकलाँ (जि. अजमेर), किशनगढ़, कटसूरा (जि. किशनगढ़), दादिया (जि. किशनगढ़), रलावता राजाजीका (जि. किशनगढ़), सान्दौलिया (जि. किशनगढ़), विजयनगर (जि. भीलवाड़ा), भीलवाड़ा (जि. भीलवाड़ा), श्रीमाधोपुर (जि. जयपुर), मेड़तारोड (जि. जोधपुर), श्रीगङ्गानगर (जि. बीकानेर), उमावाला चक (जि. बीकानेर)।

दिल्ली (भारत की राजधानी)

पंजाब—अमृतसर, होशियारपुर, अंबाला छावनी, चण्डीगढ़, बरियामखेड़ा (जि. फिरोजपुर)।

हिमाचल प्रदेश—देवरीघाट ठियोग (शिमला) (जि. महासू), कोटखाई (शिमला) (जि. महासू), डेरा बाबा रुद्रु (जि. कांगड़ा)।

हरियाणा—कुरुक्षेत्र, जीन्द, पिण्डारा, (जि. जीन्द), फल्गु (फरल) (जि. करणाल), भिवानी (जि. हिंसार), किरमारा (जि. हिंसार), बेरी (जि. रोहतक), मुरथल (जि. रोहतक), सुनपेड़ा (जि. रोहतक), नरवाणा (जि. जीन्द)।

बिहार—मुजफ्फरपुर, छपरा, हरिनगर (जि. चम्पारन), असरगंज (जि. मुंगेर), कहलगाँव (जि. भागलपुर), बटेश्वरस्थान (पत्थरघट्टा) (जि. भागलपुर), नवनेर (जि. गया), कुशडेहरा (ज़ि. गया), बखरी वाया काढ़ा गोला (जि. पुर्णिया)।

महाराष्ट्र—नागपुर, धामनगाँव रेल्वे (जि. अमरावती), अंजनगाँव सुरजी (जि. अमरावती), खामगाँव (जि. बुलडाना), सेगाँव (जि. बुलडाना), तपोना तपोनेश्वरमन्दिर (जि. यवतमाल), कोटेश्वर थाटेश्वर महादेव (जि. यवतमाल), आकोला (जि. बरार), तुमसर (जि. भण्डारा), शिरपुर (जि. धुलिया), हिंगोली (जि. परभणी)।

आन्ध्र—हैदराबाद दक्षिण, नान्देड़।

बंगाल—कलकत्ता, पुरुलिया, सिल्लीगोड़ी (जि. दार्जीलिंग)।

उड़ीसा—गुंठपड़ा (जि. गंजाम)।

आसाम—तिनसुकिया।

गुजरात—अहमदाबाद, सेमड़ा तालाब (जि. बड़ौदा)।

नेपाल—विराटनगर (नेपाल), भद्रपुर (नेपाल)।

प्रतिष्ठा

पण्डित श्रीवेणीराम गौड ने जिन स्थानों में देवी-देवताओं के मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराई है, उन मन्दिरों और स्थानों के नाम इस प्रकार हैं—

भगवान् श्रीकृष्ण का मन्दिर गीताभवन हिसार, भगवान् श्रीकृष्ण का मन्दिर गीताभवन भिवानी (जि.हिसार), राधाकृष्ण का मन्दिर गीताभवन श्रीगङ्गानगर (जि.बीकानेर), सरस्वती मन्दिर ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, भिवानी

(जि. हिंसार), पञ्चदेवमन्दिर अंबाला छावनी (पंजाब), राधाकृष्ण मन्दिर चण्डीगढ़ (पंजाब), लक्ष्मीनारायणमन्दिर रामनगर (नई दिल्ली), रामपञ्चायतन-मन्दिर मनेन्द्रगढ़ (जि. सरगुजा), सीताराममन्दिर कुरावरमण्डी (जि.राजगढ़), दुर्गामन्दिर वारासिवनी (जि. बालाघाट), लक्ष्मीनारायणमन्दिर भीलवाड़ा, मीराबाई का मन्दिर मेड़तारोड (जि. जोधपुर), भुवनेश्वरी मन्दिर बांगरमऊ (जि. उन्नाव), हनुमानमन्दिर गंगाघाट (जि. फर्रूखाबाद), हनुमानमन्दिर सिल्लीगोड़ी (जि. दार्जीलिंग), शिवपञ्चायतनमन्दिर भद्रपुर (नेपाल), शिव-पञ्चायतनमन्दिर शिवधाम तिनसुकिया (आसाम), गीतेश्वर भगवान् का मन्दिर गीता मन्दिर वाराणसी।

पण्डित वेणीराम गौड बड़े प्रतिभाशील निरभिमान विद्वान् हैं, जो निरन्तर विद्या-प्रचार, वेदाध्ययन और धार्मिक कर्मकाण्ड में निरत रहते हैं। विद्या और विनय से सम्पन्न होकर पण्डितों के कुल में जन्म लेकर और विद्या-केन्द्र काशी में अपनी कर्मभूमि बनाकर इन्होंने जहाँ अपना जीवन धन्य किया, वहीं सहस्रों छात्रों और धर्मिष्ठ गृहस्थों का भी कल्याण किया है। ईश्वर से मङ्गल कामना है कि इन्हें चिरायु करें, जिससे ये इसी प्रकार देश, धर्म और भारतीय विद्याओं का प्रसार करते रहें।

सीताराम चतुर्वेदी
एम्.ए.,बी.टी.,एल्.एल्.बी.
साहित्याचार्य

विषय-सूची : प्रथम भाग

विषय	पृष्ठांक
यज्ञ का महत्त्व	१
(क) यज्ञ-शब्दार्थ	१
(ख) यज्ञ-शब्द के कतिपय व्युत्पत्तिजन्य अर्थ	४
(ग) यज्ञ-शब्द के कतिपय वेद-प्रतिपाद्य अर्थ	४
(घ) यज्ञ का लक्षण	५
(ङ) यज्ञ और महायज्ञ	५
(च) यज्ञ के भेद	६
(छ) यज्ञ की प्रचीनता	९
यज्ञ की आवश्यकता	२०
यज्ञ से देवताओं की तृप्ति	२६
गृहस्थ के पञ्चमहायज्ञ का विवरण	२९
सर्वं यज्ञमयं जगत्	३८
मानवता और यज्ञ	४८
गीता और यज्ञ	५५
वेद और यज्ञ	५९
यज्ञ और ब्राह्मण	६३
यज्ञ और अग्नि	६८
यज्ञ और विष्णु	८२
यज्ञ और प्रजापति	८८
यज्ञ और गौ	९२
वेदों में यज्ञ का महत्त्व	९७
यज्ञ से कामनासिद्धि	१०९
निष्काम यज्ञ	११०
आज का यज्ञ	११३

यज्ञ से सभी को लाभ होता है	११५
यज्ञ में सभी को सहयोग देना चाहिए	११८
यज्ञादि में विघ्न करने से हानि	११९
यज्ञ में श्रद्धा की आवश्यकता	१२१
श्रौतयज्ञ : एक संक्षिप्त परिचय	१२४
यज्ञाद् भवति पर्जन्य:	१३१
यज्ञ के सम्बन्ध में विविध प्रश्नोत्तर	१३५
वेदों में यज्ञसम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें	१३९
ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बातें	१४४
उपनिषदों में यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बातें	१४५
पुराणों में यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बातें	१४७
यज्ञसम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें	१५०
यज्ञ से लाभ	१५६
कामनापरक यज्ञों का फल	१६०
शुक्लयजुर्वेद में यज्ञ सम्बन्धी सूक्तियाँ	१६२
यज्ञिय देश	१६५
अयज्ञिय देश	१६६
यज्ञ की उत्पत्ति (एक हजार आठ यज्ञों का प्रादुर्भाव)	१६७
यज्ञ के आयुध	१७१
यज्ञ के संरक्षक देवता	१७१
शुभाशुभ कर्म के साक्षी देवता	१७१
कलियुग में विहित यज्ञ	१७२
पाँच प्रकार के यज्ञों का निषेध	१७२
यज्ञ में पशु-हिंसा का विचार	१७३
अखण्ड अनुष्ठान का विचार	१७५
यज्ञ में आचार्य के कुण्ड का विचार	१७६
यज्ञ करने के अधिकारी	१८०
शूद्र को मन्त्ररहित यज्ञ करने का अधिकार है	१८३
स्त्री को ब्राह्मण द्वारा यज्ञ करने का अधिकार है	१८४
स्त्री को पति की आज्ञा के बिना यज्ञादि करने का निषेध	१८५

अनधिकारी को यज्ञ कराने से हानि	१८५
पतित को यज्ञ कराने से हानि	१८७
शूद्र को यज्ञ कराने से हानि	१८६
आचार्य	१८६
ब्रह्मा	१८८
सदस्य	१८८
उपद्रष्टा	१८८
गाणपत्य	१८९
द्वारपाल	१८९
जापक	१८९
होता	१८९
ऋत्विक्	१९०
यज्ञादि में होता का विचार	१९१
यज्ञादि में सर्वप्रथम वरण किसका हो?	१९२
यज्ञादि में ब्राह्मण ही ऋत्विक् हो सकता है	१९३
यज्ञादि में ऋत्विजों के नियम	१९३
ऋत्विजों के विशेष नियम	१९७
यजमान के नियम	२००
यजमान को सत्य-पालन का व्रत ग्रहण करना चाहिए	२०३
यज्ञादि में द्वारपालों का पूजन आवश्यक है	२०४
यज्ञ के ऋत्विजों का पादप्रक्षालन आवश्यक है	२०४
यज्ञादि में विद्वानों का प्रतिदिन पूजन करना चाहिए	२०४
ब्राह्मणों के पूजन से ही कर्म की पूर्णता होती है	२०४
यज्ञ में ब्राह्मणों के पूजन का महत्त्व	२०५
यज्ञशाला आदि में ब्राह्मणों को अलग-अलग नमस्कार करना अनावश्यक है	२०५
नित्यकर्म करके ही यज्ञमण्डप में प्रवेश करना चाहिये	२०६
द्वारपालों की आज्ञा से ही यज्ञमण्डप में प्रवेश उचित है	२०६
यज्ञ-मण्डप में द्विजेतर का प्रवेश निषिद्ध है	२०६
यज्ञादि में प्रतिनिधि का विचार	२०७

यज्ञादि में यजमान के प्रतिनिधि का विचार २०७
प्रतिनिधि का विचार २०७
देवपूजन में प्रतिनिधि का विचार २०८
असमर्थ व्यक्ति ब्राह्मण द्वारा यज्ञ करा सकता है २०८
यज्ञादि में वेदशून्य हवनकर्ता त्याज्य है २०९
वेदज्ञ ब्राह्मणों से ही हवन कराना चाहिये २०९
वेदशून्य विद्वान् के आचार्यत्व में होने वाले यज्ञ में भोजन का निषेध २१०
स्त्री और नपुंसक के द्वारा हवन करने वाले यज्ञ का निषेध २१०
यज्ञादि में निमन्त्रित ब्राह्मण का त्याग निषिद्ध है २१०
यज्ञादि में धर्मपत्नी की आवश्यकता २१०
यज्ञादि में सङ्कल्प की आवश्यकता २१३
सङ्कल्प में प्रतिदिन मास, पक्ष, तिथि आदि का उच्चारण आवश्यक है २१३
यज्ञादि में चुतुर्वेद पारायण की आवश्यकता २१४
यज्ञादि में प्रायश्चित्त की आवश्यकता २१५
सर्वप्रायश्चित्त में द्रव्य का निर्णय २१६
पादकृच्छ्रादि प्रायश्चित्त में तत्तद् वस्तुओं के दान का क्रम २१६
सर्वप्रायश्चित्त में राजा आदि के वपन का विचार २१६
यज्ञादि में ब्राह्मण और राजा की आज्ञा से यजमान बाल कटा सकता है २१७
यज्ञादि में न्यास की आवश्यकता २१७
मण्डप में घड़ी की आवश्यकता २१८
तिलक (चन्दन) धारण की आवश्यकता २१८
तिलक से रहित ब्राह्मण को नमस्कार करने का निषेध २१९
यज्ञादि में ग्राह्य ब्राह्मण २१९
यज्ञादि में त्याज्य ब्राह्मण २२०
यज्ञादि में ग्राह्य वस्त्र २२७
यज्ञादि में त्याज्य वस्त्र २२९
यज्ञादि में आर्द्र वस्त्र-धारण का निषेध २३१
यज्ञादि में नील रंग के विहित वस्त्र २३१
यज्ञादि में नील रंग के वस्त्र-धारण का निषेध २३२
नील रंग के वस्त्र-धारण करने का प्रायश्चित्त २३२

यज्ञादि मे एक वस्त्र-धारण का निषेध ... २३३
यज्ञादि में काषाय वस्त्र-धारण का निषेध ... २३५
यज्ञादि में आसुरी ढंग से वस्त्र-धारण का निषेध ... २३५
यज्ञादि में धौतवस्त्र पहनना चाहिये ... २३६
यज्ञादि में स्त्री को एक वस्त्र धारण करने का निषेध ... २३६
धोबी से धुलाया हुआ वस्त्र अपवित्र है ... २३७
यज्ञादि में नूतन वस्त्र धारण की आवश्यकता ... २३७
यज्ञादि में ग्राह्य वृक्ष ... २३७
यज्ञ के योग्य वृक्ष न मिलने पर विचार ... २३८
यज्ञादि में त्याज्य वृक्ष ... २३८
यज्ञादि में विहित समिधा ... २३९
शूद्र के द्वारा लाई हुई समिधा आदि से हवन करने का निषेध ... २४१
शूद्र के द्वारा स्पर्श की गई आहुति से यजमान की हानि ... २४२
शूद्र द्वारा लाई हुई समिधा आदि वस्तुओं का शुद्धिप्रकार ... २४२
नवग्रहों की समिधा ... २४२
नवग्रह की समिधा और हवन-विधि ... २४२
यज्ञार्थ पीपल के वृक्ष को काटने से लाभ ... २४३
पीपल के वृक्ष के नीचे हवनादि करने से लाभ ... २४३
यज्ञादि में प्रशस्त आसन ... २४४
यज्ञादि में त्याज्य आसन ... २४४
विभिन्न आसन के विभिन्न फल ... २४४
आसन का परिमाण ... २४५
यज्ञादि में त्याज्य पदार्थ ... २४६
पञ्चामृत और उसका परिणाम ... २४८
षडङ्ग ... २५०
पञ्चगव्य और उसका परिमाण ... २५०
पञ्चगव्य के निर्माण की विधि ... २५२
पञ्चगव्य के देवता ... २५२
दक्षिणा का महत्त्व ... २५३
दक्षिणा ही यज्ञ का शुभ कर्म है ... २५३

यज्ञादि की दक्षिणा	२५३
यज्ञादि में दक्षिणा का विचार	२५४
यज्ञादि में आचार्यादि की दक्षिणा देने का विचार	२५६
यज्ञादि में दक्षिणा की आवश्यकता	२५७
दक्षिणारहित यज्ञ का निषेध	२५८
यज्ञादि में तत्काल दक्षिणा न देने से हानि	२६१
अल्प दक्षिणावाले यज्ञ का निषेध	२६४
अल्प दक्षिणा से यज्ञ करने वाले के भोजन करने का निषेध	२६५
कार्यानुसार धनिक और निर्धन के दक्षिणा देने का विचार	२६५
यज्ञादि में आचार्य की दक्षिणा	२६६
ब्रह्मा को दक्षिणा देने का विचार	२६६
आचार्यादि को दक्षिणा कब देनी चाहिये	२६७
आचार्यादि को दक्षिणा कहाँ देनी चाहिए	२६७
यज्ञादि में आचार्यादि को दैनिक दक्षिणा देनी चाहिये	२६८
देवकार्यों में रजत-दक्षिणा का निषेध	२६८
सुवर्ण की दक्षिणा का महत्त्व	२६९
यज्ञ में अन्नदान को भी दक्षिणा कहते हैं	२६९
हवनीय द्रव्य और उसका परिमाण	२७०
हवनीय द्रव्य का एकादश विभाग आवश्यक है	२७२
नित्य हवन में विहित द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य	२७२
आज्य शब्द का अर्थ	२७४
घृत के उत्तम, मध्यम और अधम का निर्देश	२७५
घृतादि के अभाव में तिल ग्राह्य है	२७५
तिल का महत्त्व	२७५
हवन में घृताक्त तिल का उपयोग उचित है	२७६
हवनीय द्रव्य	२७६
हवन में विहित धान्य	२७६
कामना-भेद से हवनीय पदार्थ का विचार	२७७
हवनीय पदार्थ के अभाव में विचार	२७९
कृमि-कीटादि से युक्त हवनीय पदार्थ का त्याग उचित है	२७९

हवनीय पदार्थ को गड़बड़ी से यजमान की हानि २७९
चरु २८०
हविष्य पदार्थ २८०
कर्म-विशेष में अग्नि के भिन्न-भिन्न नाम २८२
कोटिहोमादि में अग्नि के नाम २८९
नवग्रहों की अग्नि के नाम २८९
अग्निहोत्र की अग्नि के नाम २९०
कर्म-विशेष की अज्ञात अग्नि में विचार २९०
यज्ञादि में उत्तम अग्नि २९०
यज्ञादि में त्याज्य अग्नि २९१
विभिन्न अग्नियों के धूएँ का फल २९१
अग्नि का स्वरूप जानकर ही हवन करना चाहिये २९१
अग्नि का ध्यान २९२
अग्नि के मुख आदि का विचार २९४
अग्नि की जिह्वा के नाम २९४
कर्म-भेद से अग्नि की जिह्वाओं के नाम २९५
अग्नि को प्रज्वलित करने का विचार २९५
विभिन्न वस्तुओं से अग्नि के जलाने का विभिन्न फल २९८
आहुति शब्द का अर्थ २९८
होम शब्द का अर्थ २९९
हवन के मन्त्र का निर्णय ३००
हवन करने की विधि ३००
आहुति के प्रक्षेप का समय ३०१
आहुति देने का विचार ३०३
विधिहीन अग्नि में हवन करने से हानि ३०३
प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए ३०५
अग्नि में हवनार्थ स्थान का विचार ३०६
मन्त्र के वर्ण का उच्चारण प्रकार ३०८
हवनादि में मन्त्रों के उच्चारण का प्रकार ३०८
हवन के समय मन्त्रान्त में स्वाहा कहना आवश्यक है ३०९

स्वाहा के साथ आहुति न देने पर कर्त्तव्य ३०९
हवन के समय मन्त्रों के ऋषि और छन्दादि का स्मरण अनावश्यक है ३१०
हवनादि में विनियोग का विचार ३११
हवन के समय प्रत्येक मन्त्र में ओङ्कारोच्चारण अनावश्यक है ३११
हवनादि में हस्तस्वर का निषेध ३११
होमादि में कण्ठस्वर ही आवश्यक है ३१२
हवन के समय वार्तालाप करने का निषेध ३१२
हवनादि के समय मध्य में जाने का प्रायश्चित्त ३१३
हवन करते समय अग्नि में जीव के गिरने का प्रायश्चित्त ३१३
आहुति की अनुक्त संख्या में निर्णय ३१३
हवन के लिए समय का विचार ३१४
होम के समय देवताभिध्यान की आवश्यकता ३१५
हवन-मुद्रा के भेद ३१५
कामना-भेद से मुद्रा का विधान ३१६
होम-मुद्रा का लक्षण ३१७
कुण्ड के ऊपर की मेखला में गिरे हुए हवनीय पदार्थ को अग्नि
में डालना चाहिए ३१७
कुण्ड के बाहर गिरे हुए हवनीय द्रव्य का गङ्गा आदि नदी में
प्रक्षेप उचित है ३१७
आहुति के हिसाब से हविर्द्रव्य का परिमाण ३१८
नित्य हवन में अग्न्याधानादि कर्म नहीं होता ३१९
हवन में स्रुवा के धारण का प्रकार ३१९
स्रुव में रहने वाले देवताओं का और स्रुव धारण का विचार ३२१
स्रुव में रहने वाले देवताओं के नाम ३२२
स्रुव के धारण का विभिन्न फल ३२२
स्रुव के भेद और उनका विभिन्न फल ३२३
स्रुव की उपयोगिता का विचार ३२३
गङ्गा आदि नदी के किनारे कुण्ड-मण्डप निर्माणार्थ दिक्साधन
अनावश्यक है ३२४
कुण्ड का स्वरूप ३२५

कुण्डादि के विधिहीन निर्माण से हानि	३२६
शान्तिक-पौष्टिक हवन में अनेक कुण्ड हो सकते हैं	३२८
यज्ञ-मण्डप के मध्य में कुण्ड न होने से हानि	३२८
कुण्ड की अग्नि के नष्ट होने पर कर्तव्य	३२८
वैश्वदेव कुण्ड के निर्माण की विधि	३२९
कुण्ड के खोदने के स्थान का विचार	३३०
यज्ञ-मण्डप के लिए योग्य भूमि	३३०
यज्ञ-मण्डप के लिये अयोग्य भूमि	३३०
मण्डप की आवश्यकता	३३१
कर्म-विशेष में मण्डप के नाम	३३१
यज्ञ-मण्डप के नाम	३३२
देवता के अनुसार मण्डप के नाम	३३२
स्तम्भ-भेद से यज्ञ-मण्डप के नाम	३३३
यज्ञ-मण्डप के सोलह स्तम्भों के नाम	३३५
यज्ञ-मण्डप के सोलह स्तम्भों के देवताओं के नाम	३३५
यज्ञ-मण्डप के विधिहीन निर्माण से यजमान की हानि	३३६
यज्ञ-मण्डप के निर्माणकर्ता का विचार	३३६
यज्ञ-मण्डप में विघ्न होने पर विचार	३३७
यज्ञ-मण्डप में ध्वजा की आवश्यकता	३३७
ध्वजाओं के देवता	३३८
ध्वज की प्रदक्षिणा का फल	३३८
यज्ञ-मण्डप में तोरणद्वार से लाभ	३३९
प्रत्येक तोरण के पास कलशस्थापन की आवश्यकता	३३९
तोरण में शंख, चक्र, आयुधादि के निर्माण का विचार	३४०
तोरण और मण्डपस्तम्भ आदि के मध्य में आने-जाने का निषेध	३४०
यज्ञादि में सर्वतोभद्र की प्रधानता	३४१
वास्तु-क्षेत्रपालादि वेदियों के स्थापन का क्रम	३४३
नवग्रह के स्थापन का क्रम	३४४
यज्ञ के कलशों पर नारिकेल के स्थापन का क्रम	३४६
ब्रह्मा का आसन दक्षिण दिशा में क्यों होता है	३४६

ब्रह्मा, आचार्य और प्रणीता के लिये तीन कुश का आसन उचित है ३४७
वेदोक्त मन्त्रों से ही देवपूजन आवश्यक है ३४७
नाम-मन्त्र से भी देवस्थापन और पूजा हो सकती है ३४८
देवपूंजन में वेद-मन्त्र और नाममन्त्र दोनों ही ग्राह्य हैं ३४८
नाममन्त्र से भी हवन हो सकता है ३४८
यज्ञादि में सुवर्ण की मूर्ति की आवश्यकता ३४८
सुवर्ण की मूर्ति के अभाव में पूजा का विचार ३४८
यज्ञादि में सुवर्ण की रुद्र, दुर्गा और वृषभ की प्रतिमा का विचार ३४९
सहस्त्रचण्डी में दुर्गा की प्रतिंमा का विचार ३५०
देव-प्रतिमा के भेद ३५१
सुवर्ण की पवित्री का परिमाण ३५२
यज्ञादि में प्रमाणहीन देवप्रतिमा एवं कुण्ड-मण्डपादि के निमार्ण कराने का निषेध ३५२
नवग्रह की प्रतिमा ३५३
यज्ञादि में नवग्रहों के आकार का प्रमाण ३५४
मन्दिर के लिए नवग्रह की मूर्तियों की लम्बाई का विचार ३५४
प्रतिमा के सर्वोत्तम, अधम और उत्तम का निर्देश ३५५
मिट्टी आदि की प्रतिमाओं का उत्तरोत्तर महत्त्व ३५५
विभिन्न प्रतिमा के विभिन्न फल ३५५
मृण्मयादि मूर्तियों के आवाहन और विसर्जन का विचार ३५६
प्रतिमा को नित्य स्नान कराने का विचार ३५७
यन्त्र-पूजन की आवश्यकता ३५७
एक-पीठ में यन्त्र के बिना विभिन्न देवताओं की पूजा का निषेध ३५८
एक देवता का आवाहन कर दूसरे देवता के पूजन का निषेध ३५८
एक-पीठ में बहुत मूर्तियों का पूजन तन्त्रता से करना चाहिए ३५९
स्थापित यन्त्र के नष्ट होने पर कर्तव्य ३५९
विविध प्रकार के यन्त्रों का विभिन्न फल ३६०
यज्ञादि में वरण सामग्री ३६०
यज्ञादि में पात्र, वस्त्र आदि के बिना हानि ३६२
वस्त्र के बिना यज्ञादि कर्म पूर्ण नहीं हो सकते ३६३

यज्ञादि में नूतन वस्तु का ही उपयोग श्रेष्ठ है ३६३
यज्ञादि में वाद्य आवश्यक है ३६३
यज्ञादि में तांबूल आदि के भक्षण में दोष नहीं है ३६४
यज्ञ-मण्डप में यजमान और हवनीय पदार्थादि के प्रवेशार्थ द्वार-विशेष का विचार ३६५
यज्ञादि में यजमान के द्वारा ऋत्विजों को कर्तव्य-निर्देश ३६६
यज्ञादि में मधुपर्क द्वारा ऋत्विजों का पूजन आवश्यक है ३६७
मधुपर्क के निमार्ण की विधि ३६७
नान्दीश्राद्ध करने के लिये समय का निर्णय ३६८
कर्म-विशेष में नान्दीश्राद्ध करने के लिये समय का निर्देश ३६९
नान्दीश्राद्ध किस-किस कार्य में करना चाहिये ३६९
नान्दीश्राद्ध की दक्षिणा ३७०
यज्ञादि में कुशकण्डिका आवश्यक है ३७०
यज्ञादि में कुश-धारण की आवश्यकता ३७१
कुशादि के बिना कोई भी कर्म पूर्ण नहीं होता ३७१
कुश में त्रिदेव का निवास ३७२
कुश के अभाव में दूर्वा ग्राह्य है ३७२
कुशा के भेद ३७२
सुवर्ण के पवित्र की श्रेष्ठता ३७२
कुश के पवित्र की श्रेष्ठता ३७३
पवित्र में दर्भ की संख्या का विचार ३७३
पवित्र धारण का स्थान ३७४
हाथ से पवित्र और जपमाला के गिरने पर कर्तव्य ३७४
जपादि करते समय हाथ से माला गिरने पर अथवा टूट जाने पर प्रायश्चित्त ३७४
जप-गणनार्थ विहित वस्तु ३७५
रुद्राक्ष के एक-मुख आदि के नाम और उनका फल ३७६
रुद्राक्ष की माला के दाने की संख्या का विचार ३७७
कामना-भेद से रुद्राक्ष की माला के दाने के धारण का विचार ३७७
यज्ञादि में आशौच की प्राप्ति पर विचार ३७८

यज्ञादि में स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं होता ३८२
आशौचादि में देवता के स्पर्श होने पर विचार ३८३
यज्ञादि कर्म के समय अपवित्र जीव-ज़न्तुओं और मनुष्यों के स्पर्श होने पर विचार ३८३
कर्म-विशेष में पति के समीप पत्नी के बैठने का निर्णय ३८४
यज्ञादि में प्रौढ़पाद बैठने का निषेध ३८७
शुभकर्म में कर्ता के अङ्ग का विचार ३८८
शुभकर्म के समय अधमाङ्गों के स्पर्श का निषेध ३८८
दिशा के अनिर्देश में दिशा का विचार ३८८
शुभकर्म में पाखण्डी आदि के सान्निध्य से हानि ३८९
यज्ञादि में अपूज्य ब्राह्मणों की उपस्थिति में ब्रह्मा आदि ऋत्विजों को प्रायश्चित्त ३८९
यज्ञादि कर्म यथार्थ समय में ही करना चाहिए ३८९
मशीनों की गड़गड़ाहट में और पतित आदि की उपस्थिति में शुभकर्म करने का निषेध ३९०
किसी भी कर्म को विपरीत रूप में करने से हानि ३९०
विपरीत रूप में किये हुए कर्म का ज्ञान होने पर कर्तव्य ३९१
यज्ञ करने वाले के धन की प्रशंसा ३९१
धन का सदुपयोग करना चाहिये ३९१
धर्मोपार्जित धन को यज्ञ में लगाना चाहिये ३९३
यज्ञार्थ माँगे हुए धन को यज्ञ में न लगाने से हानि ३९४
यज्ञार्थ शूद्र से द्रव्य माँगने से हानि ३९४
यज्ञ की पूर्णता के लिए सभी का धन लिया जा सकता है ३९५
शूद्र को वैदिक यज्ञ कराने वाले की हानि ३९६
शूद्र को यज्ञ कराने वाले व्यक्ति का दान लेने से हानि ३९७
दुर्जन व्यक्ति के किये हुए यज्ञादि फलप्रद नहीं होते ३९७
राजा को यज्ञ करने का आदेश ३९७
यज्ञ के दर्शनार्थ अनाहूत को भी जाना चाहिए ३९८
विधिहीन यज्ञ से यजमान आदि की हानि ३९८
यज्ञ के यजमान का कर्तव्य ३९९

यज्ञादि में यज्ञोपवीत धारण की आवश्यकता ४००
यज्ञोपवीत वाले द्विज के किये हुए यज्ञ का महत्त्व ४००
देवपूजन किये बिना भोजन करने से हानि ४०१
स्नान-सन्ध्यादि कर्म उपवासपूर्वक करना उचित है ४०१
यज्ञादि में मण्डप और मण्डप का समस्त सामान आचार्य का होता है ४०१
ब्रह्मा केवल पूर्णपात्र का अधिकारी है ४०२
देवता के द्रव्य में विभाग करने से हानि ४०३
गोदान आदि में विभाग नहीं होता ४०३
यज्ञादि के अन्त में गोदान आवश्यक है ४०४
यज्ञादि में गोदान लेने से प्रायश्चित्त नहीं होता ४०५
यज्ञार्थ गौ के दोहन से पुण्य होता है ४०५
हवन के अयोग्य गोदुग्ध ४०५
यज्ञान्त में पञ्च महर्त्विजों को प्रदेय वस्तु का विचार ४०६
यज्ञान्त में ऋत्विजों को आभूषण आदि देना चाहिए ४०६
कर्म के अन्त में यजमान को आशीर्वाद देना चाहिये ४०६
विधिपूर्वक वस्तु के देने और लेने से लाभ ४०७
पूर्णपात्र देने का महत्त्व ४०७
यज्ञादि में प्राप्त हुई सुवर्ण की प्रतिमा के विक्रयादि का विचार ४०८
पूर्णाहुति की विधि ४०९
पूर्णाहुति के पूजन का श्लोक ४१०
पूर्णाहुति खड़े होकर करनी चाहिये ४११
पूर्णाहुति का महत्त्व ४११
पूर्णाहुति कहाँ-कहाँ नहीं करनी चाहिए ४११
वसोर्धारा के पूजन के श्लोक ४११
यजमान के अभिषेक की विधि ४१२
अवभृथ स्नान का महत्त्व ४१३
यज्ञादि में जलयात्रा की आवश्यकता ४१३
जलयात्रा की विधि ४१४
यज्ञादि में ब्राह्मण-भोजन की संख्या ४१६
लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र यज्ञ में ब्राह्मण-भोजन की संख्या ४१७

पान, पक्वान्न, ऋतुफल, सुपारी आदि से की जाने वाली पूर्णाहुति में ब्राह्मण-भोजन की संख्या का विचार ४१८
यज्ञादि में बलि का विचार ४१८
यज्ञ के कतिपय पात्रों का परिचय ४१९
स्रुव ४१९
प्रणीता ४२०
प्रोक्षणी ४२०
स्फ्य ४२०
स्रुची ४२१
अरणि, मन्था आदि यज्ञपात्रों का परिचय ४२१
यज्ञपात्रों का शुद्धि-प्रकार ४२३
यज्ञपात्र कभी दूषित नहीं होते ४२५
यज्ञपात्र-निर्माणकर्ता का विचार ४२५
यज्ञादि में दश-दान का विवरण ४२६
दशदान की वस्तुओं का परिमाण ४२६
गोदान का महत्त्व ४२९
भूमिदान का महत्त्व ४३०
यज्ञ में दान करने का महत्त्व ४३२
रात्रि में दान करने का महत्त्व ४३२
यज्ञादि में वह्निवास का मुहूर्त ४३३
यज्ञादि में वह्निवास का विचार आवश्यक है ४३४
कतिपय कार्यों में वह्निवास का विचार अनावश्यक है ४३४
निष्काम यज्ञ के लिये मुहूर्त का विचार अनावश्यक है ४३९
यज्ञ में ब्राह्मणों की संख्या का और शुभाशुभ समय का विचार अनावश्यक है ४४०
प्रत्येक शुभावसर पर विष्णुयाग हो सकता है ४४१
विष्णुयाग दो पक्ष में भी हो सकता है ४४२
विष्णुयाग का मुहूर्त ४४२
पुत्र-प्राप्त्यर्थ विष्णुयाग का मुहूर्त ४४५
रुद्रयाग का मुहूर्त ४४६

अम्बायज्ञ का मुहूर्त ४४७
यज्ञादि में विहित नक्षत्र और योग ४४८
यज्ञादि में विहित वार ४४८
गुरु और शुक्र के अस्त में शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म करने का विचार ४४८
प्रत्येक ऋतु में लक्ष्मीनारायण यज्ञ करने का भिन्न-भिन्न फल ४४९
विष्णुयज्ञ का महत्त्व ४४९
रुद्रयज्ञ का महत्त्व ४५७
लक्ष्मीनारायणयज्ञ का महत्त्व ४६०
वासुदेवयज्ञ का महत्त्व ४६१
गणेशयज्ञ का महत्त्व ४६१
सूर्ययाग का महत्त्व ४६१
रामयज्ञ का महत्त्व ४६२
प्रजापतियज्ञ का महत्त्व ४६४
हरिहर महायज्ञ का महत्त्व ४६५
मृत्युञ्जय यज्ञ का महत्त्व ४६६
नवग्रह यज्ञ का महत्त्व ४६६
लक्ष्मीयज्ञ का महत्त्व ४६८
गायत्रीयज्ञ का महत्त्व ४६८
महाशान्ति यज्ञ का महत्त्व ४६९
कोटिहोम महायज्ञ का महत्त्व ४७०
दुर्गायज्ञ का महत्त्व ४७२
शतचण्डी का महत्त्व ४७२
सहस्रचण्डी का महत्त्व ४७५
पुत्रेष्टियज्ञ का महत्त्व ४७६
भागवतसप्ताह का महत्त्व ४७७
अग्निहोत्र का महत्त्व ४७८
अग्निहोत्री का महत्त्व ४८३
अग्निहोत्री के गृह का महत्त्व ४८४
रुद्र के भेद ४८४

रुद्रयाग की आहुति का विचार ४८५
रुद्रयाग की आहुति का चक्र ४८६
विष्णुयाग की आहुति का विचार ४८७
विविध यज्ञों की आहुति का निर्णय ४८८
विविध यज्ञों के स्वाहाकार के मन्त्रों का परिचय ४८९
कुण्डों के भेद ४९०
एक कुण्ड ४९०
पाँच कुण्ड ४९०
नव कुण्ड ४९१
चार कुण्ड ४९१
नव कुण्डों की योनि का विचार ४९१
पाँच कुण्डों की योनि का विचार ४९२
चार कुण्डों की योनि का विचार ४९२
कुण्ड में मेखला और रंग का विचार ४९२
कुण्डों का अलग-अलग फल ४९२
वर्णभेद से कुण्डनिर्माण की व्यवस्था ४९३
विविध यज्ञों के कुण्डादि का विचार ४९३
आहुतियों के हिसाब से कुण्ड का प्रमाण ४९५
यज्ञमण्डप सम्बन्धी विविध विषयों का विचार ४९६
देवताओं की प्रतिष्ठा का मुहूर्त ५०३
सूर्य आदि सातों वारों मे प्रतिष्ठा करने का भिन्न-भिन्न फल ५०८
शिव की प्रतिष्ठा का मुहूर्त ५०८
विष्णु, शिव और देवी की प्रतिष्ठा के लिये विहित मास ५१०
देवी की प्रतिष्ठा का मुहूर्त ५१०
उत्तरायण में ही देवताओं की प्रतिष्ठा उचित है ५१[illegible]
दक्षिणायन में भी उग्र देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा हो सकती है ५१[illegible]
दक्षिणायन में एवं विभिन्न महीनों में विविध देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा का विचार ५१[illegible]
स्थान-विशेष में देवप्रतिष्ठादि के लिये मुहूर्त का विचार आवश्यक है ५१३

देवमूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक है	५१३
अप्रतिष्ठित मूर्ति पूजा के योग्य नहीं है	५१३
शालग्राम, नर्मदेश्वर आदि मूर्तियों की प्रतिष्ठा, आवाहन और विसर्जन नहीं होता	५१४
पुन: प्रतिष्ठा के योग्य मूर्ति	५१५
खण्डित मूर्ति के ग्राह्य और अग्राह्य का विचार	५१६
जीर्णोद्धार का विचार	५१८
देवमूर्ति के जीर्णोद्धार की विधि	५१८
देवमन्दिर के जीर्णोद्धार एवं नूतन मन्दिर-निर्माण करने का महत्त्व	५१९
प्रतिमा के स्थापन में दिशा का निर्णय	५२१
पञ्चायतन के स्थापन का क्रम	५२१
पञ्चायतन के स्थापन का चक्र	५२३
देवालय के लिये प्रतिमा का परिमाण	५२६
घर के लिये प्रतिमा का परिमाण	५२६
घर में प्रतिमा रखने का विचार	५२७
लिङ्गपूजन की संख्या का विचार	५२८
शालग्राम और द्वारिकाचक्र के पूजन का अधिकारी	५२८
शालिग्राम की मूर्ति का दान करने का महत्त्व	५२९
प्रतिष्ठा के अधिकारी	५२९
स्त्री और शूद्र को मन्त्र रहित प्रतिष्ठा करने का अधिकार है	५२९
शिव और विष्णु की प्रतिष्ठा के अनधिकारी	५३०
शूद्र और स्त्री के द्वारा स्थापित मूर्तियों को प्रणाम करने से हानि	५३१
विष्णु और शिव की मूर्ति के स्पर्श करने से शूद्रादि की हानि	५३२
व्यक्ति-विशेष द्वारा स्थापित मूर्तियों का त्याग उचित नहीं है	५३२
श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय	५३२
स्मार्तयज्ञों का संक्षिप्त परिचय	५३९
कोटिहोम	५५२
यज्ञमण्डप का संक्षिप्त स्वरूप	५५५
यज्ञ की संक्षिप्त अनुक्रमणिका	५५८

●

विषय-सूची : द्वितीय भाग

विषय	पृष्ठांक
रुद्रस्वाहाकारविधिः	१
विष्णुयागमन्त्राः	१५
लक्ष्मीयागस्वाहाकारमन्त्राः	१७
सूर्ययागस्वाहाकारमन्त्राः	१८
गणेशयागस्वाहाकारमन्त्राः	२१
प्रजापतियागस्वाहाकारमन्त्राः	२२
नवग्रहयागस्वाहाकारमन्त्राः	२४
विश्वशान्तियज्ञस्वाहाकारमन्त्राः	२६
पर्जन्यसूक्तानि	२९
सन्तानयागमन्त्राः	३९
गोयज्ञमन्त्राः	५०
विष्णुसहस्रनामावल्याः स्वाहाकारविधिः	५१
महारुद्रन्यासः	७३
रुद्रसूक्तन्यासः	८७
बृहत्पुरुषसूक्तन्यासः	८८
संक्षिप्तपुरुषसूक्तन्यासः	९०
श्रीसूक्तन्यासः	९२
सूर्यसूक्तन्यासः	९३
गणपतिसूक्तन्यासः	९५
नवग्रहमन्त्रन्यासः	९७
विश्वशान्तियज्ञस्य मन्त्रन्यासः	१००
विष्णुसहस्रनामावल्याः विनियोगः	१००

गायन्त्रीमन्त्रस्य बृहन्यासः	१०१
गायन्त्रीमन्त्रस्य द्वितीयः संक्षिप्तन्यासः	१०४
गायन्त्रीमन्त्रस्य तृतीयः संक्षिप्तन्यासः	१०५
अनेक देवी-देवताओं की गायत्री	१०६
विष्णुयागस्य बृहत् सङ्कल्पः	११०
विष्णुयागस्य लघुसङ्कल्पः	११२
रुद्रयागसङ्कल्पः	११३
हरिहरयागसङ्कल्पः	११४
सूर्ययागसङ्कल्पः	११५
नवग्रहयागसङ्कल्पः	११६
लक्ष्मीयागसङ्कल्पः	११६
गायत्रीमहायज्ञसङ्कल्पः	११६
दुर्गायागसङ्कल्पः	११९
पर्जन्ययागसङ्कल्पः	११९
देवप्रतिष्ठासङ्कल्पः	११९
पञ्चदेवप्रतिष्ठासङ्कल्पः	१२०
गृहवास्तुशान्तिसङ्कल्पः	१२०
नूतनगृहप्रवेशसङ्कल्पः	१२०
शिलान्याससङ्कल्पः	१२१
राज्याभिषेकसङ्कल्पः	१२१
गायत्रीजपसङ्कल्पः	१२१
गायत्रीपुरश्चरणसङ्कल्पः	१२१
महामृत्युञ्जयमन्त्र-जपसङ्कल्पः	१२२
सन्तानगोपालमन्त्र-जपसङ्कल्पः	१२२
बगलामुखीमन्त्र-जपसङ्कल्पः	१२३
रुद्राभिषेकसङ्कल्पः	१२३
शतचण्डीसम्पुटितपाठसङ्कल्पः	१२४
शतचण्डीपाठसङ्कल्पः	१२४
दुर्गापाठसङ्कल्पः	१२५

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकथाश्रवणसङ्कल्पः	१२६
हरिवंशपुराणकथाश्रवणसङ्कल्पः	१२६
वाल्मीकीयरामायणस्य नवाह-पाठसङ्कल्पः	१२७
देवीभागवतस्य नवाह-पाठसङ्कल्पः	१२७
तुलसीदासकृतरामायणीय सुन्दरकाण्डस्य पाठसङ्कल्पः	१२७
बाल्मीकिकृतरामायणीय सुन्दरकाण्डस्य पाठसङ्कल्पः	१२८
जन्मदिन (वर्धापन) पूजनसङ्कल्पः	१२८
लक्ष्मीपूजनसङ्कल्पः	१२८
पञ्चक्रोशीयात्रा-सङ्कल्पः	१२९
संस्कृतविद्यालयस्थापन-सङ्कल्पः	१२९
पुस्तकालयस्थापन-सङ्कल्पः	१२९
वृक्षारोपण-सङ्कल्पः	१३०
कूपनिर्माण-सङ्कल्पः	१३०
कूपोत्सर्ग-सङ्कल्पः	१३०
वृषोत्सर्ग-सङ्कल्पः	१३०
तडागोत्सर्ग-सङ्कल्पः	१३१
मूलशान्ति-सङ्कल्पः	१३१
गोमुखप्रसवशान्ति-सङ्कल्पः	१३१
महामारीशान्ति-सङ्कल्पः	१३२
दत्तकपुत्रग्रहण-सङ्कल्पः	१३२
एकादशीव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३३
कार्तिकमासव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३३
शिवरात्रिव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३३
प्रदोषव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३३
रविवारव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३४
हरितालिकाव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३४
ऋषिपञ्चमीव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३४
अनन्तव्रतोद्यापन-सङ्कल्पः	१३४
गोदान-सङ्कल्पः	१३५

वैतरणी-गोदान-सङ्कल्पः	१३५
प्रायश्चित्त-धेनुदान-सङ्कल्पः	१३५
वृषदान-सङ्कल्पः	१३६
सुवर्णदान-सङ्कल्पः	१३६
रजतदान-सङ्कल्पः	१३६
भूमिदान-सङ्कल्पः	१३७
गृहदान-सङ्कल्पः	१३७
रजतपात्रदान-सङ्कल्पः	१३७
वस्त्रदान-सङ्कल्पः	१३७
पुस्तकदान-सङ्कल्पः	१३८
शय्यादान-सङ्कल्पः	१३८
नवग्रहदान-सङ्कल्पः	१३८
तुलादान-सङ्कल्पः	१३९
तिलपात्रदान-सङ्कल्पः	१३९
तिल-मोदकदान-सङ्कल्पः	१३९
चणक-मोदकदान-सङ्कल्पः	१४०
अपूपदान-सङ्कल्पः	१४०
कूष्माण्डदान-सङ्कल्पः	१४०
सौभाग्यवायनदान-सङ्कल्पः	१४१
सौभाग्यवतीनां सौभाग्याष्टकदान-सङ्कल्पः	१४१
सौभाग्यवतीनां द्वादशमासस्य दानविशेष-सङ्कल्पः	१४१
वन्ध्यात्वहरसुवर्णधेनुदान-सङ्कल्पः	१४२
सहस्रब्राह्मणभोजन-सङ्कल्पः	१४२
सर्वप्रायश्चित्तसङ्कल्पः	१४३
नारी-प्रायश्चित्तसङ्कल्पः	१४४
गङ्गादिनदीस्नानार्थं हेमाद्रिसङ्कल्पः	१४५
यज्ञ-सामग्री (विविध यज्ञों की सामग्री)	१५०
कोटिहोम की सामग्री	१५९
प्रतिष्ठा-सामग्री	१६४

शतचण्डी-सामग्री १७०
सहस्रचण्डी-सामग्री १७४
गायत्रीपुरश्चरण-सामग्री १७७
वास्तुशान्ति-सामग्री १८२
शिलान्यास-सामग्री १८५
मूलशान्ति-सामग्री १८८
गोदान-सामग्री १९३
तुलादान-सामग्री १९४
नवग्रहदान-सामग्री १९७
विवाह-सामग्री २०१
यज्ञोपवीत-सामग्री २०२
दीपावलीपूजन-सामग्री २०६
जन्मदिन (वर्धापन) पूजन-सामग्री २०७
तडागोत्सर्ग-सामग्री २०९
वृषोत्सर्ग-सामग्री २११
तुलसीविवाह-सामग्री २१३
एकादशीव्रतोद्यापन-सामग्री २१४
कार्तिकव्रतोद्यापन-सामग्री २१७
शिवरात्रिव्रतोद्यापन सामग्री २२०
अनन्तरव्रतोद्यापन-सामग्री २२४
मङ्गलागौरीव्रतोद्यापन-सामग्री २२७
ऋषिपञ्चमीव्रतोद्यापन-सामग्री २३०
हरितालिकाव्रतोद्यापन-सामग्री २३३
सोमवारव्रतोद्यापन-सामग्री २३६
प्रदोषव्रतोद्यापन-सामग्री २३९
सोमवती आमावस्या व्रतोद्यापन-सामग्री २४२
श्रीमद्भागवतसप्ताहकथा-सामग्री २४५
दीक्षाग्रहण-सामग्री २४९
संन्यासग्रहण-सामग्री २५१

पार्वणश्राद्ध-सामग्री	२५१
एकोद्दिष्टश्राद्ध-सामग्री	२५२
तीर्थश्राद्ध-सामग्री	२५३
त्रिपिण्डीश्राद्ध-सामग्री	२५४
गयाश्राद्ध-सामग्री	२५६
नारायणबलि-सामग्री (गृहस्थ के लिये)	२५७
पार्वणश्राद्ध-सामग्री (संन्यासी के लिये)	२५८
नारायणबलि-सामग्री (संन्यासी के लिये)	२५९
जीवच्छ्राद्ध-सामग्री	२६१
विष्णुयज्ञ की आरती	२६४
रुद्रयज्ञ की आरती	२६५
गायत्री की आरती	२६६
दुर्गाजी (अम्बाजी) की आरती	२६७
लक्ष्मीजी की आरती	२६८
शिवजी की आरती	२६९
जगदीश्वर की आरती	२७०

प्रथम भाग
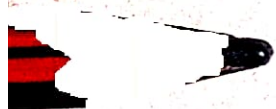
❀ श्रीहरिः ❀

यज्ञ-मीमांसा

विघ्नौघध्वान्तविध्वंस–भास्करायित–विग्रहम् ।
अवलम्बे निरालम्बः साम्बं शिवमहर्निशम् ॥ १ ॥
नामं नामं गुरोरङ्घ्रिं स्मारं स्मारं पितुः पदम् ।
तनोमि यज्ञ-मीमांसां शास्त्रसिद्धान्तसम्मताम् ॥ २ ॥

यज्ञका महत्त्व

यज्ञ-शब्दार्थ

'यज्' धातुसे 'यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ्' (३।३।९०) इस पाणिनीय सूत्रसे 'नङ्' प्रत्यय करनेपर 'यज्ञ' शब्द बनता है। 'नङन्तः' इस पाणिनीय लिङ्गानुशासन से 'यज्ञ' शब्द पुल्लिङ्ग भी होता है। 'नङ्' प्रत्यय भाव अर्थ में होता है, किन्तु 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (३।३।११३) इस सूत्र पर 'बहुलग्रहणं कृन्मात्रस्यार्थ-व्यभिचारार्थम्' इस सिद्धान्त से कृदन्त के सभी प्रत्ययों का अर्थ आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है। यही भाष्य-कारादि सम्मत मार्ग है।

धातु-पाठ में 'यज्' धातु का पाठ किया गया है। 'धातवः अनेकार्थाः' इस वैयाकरणसिद्धान्त के अनुसार कतिपय आचार्यों ने 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार 'यज्' धातुका देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान इन तीन अर्थोंमें प्रयोग किया है। अर्थात् यज्ञमें देवपूजा होती है, देवतुल्य ऋषि-महर्षियों का सङ्गतिकरण होता है और दान भी होता है।

देवपूजा

(१) यजनं इन्द्रादि-देवानां पूजनं सत्कारभावनं यज्ञः।
(२) इज्यन्ते (पूज्यन्ते) देवा अनेनेति यज्ञः।
(३) इज्यन्ते देवा अस्मिन्निति यज्ञः।
(४) इज्यते देवेभ्यः अस्मिन्निति यज्ञः।
(५) इज्यते असौ इति यज्ञः (विष्णुः)।
(६) इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्तिमासाद्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञः।

'इन्द्रादि देवों का पूजन तथा सत्कार यज्ञ कहा जाता है। जिससे देवताओं की पूजा की जाय उसे यज्ञ कहते हैं। जिसमें देवताओं की पूजा हो उसे यज्ञ कहते हैं। जिस कर्म-विशेष में देवताओं के लिये अनुष्ठान किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं। पूजा किये जाने वाले अर्थात् भगवान् विष्णु को यज्ञ कहते हैं। जिस कार्य में देवगण पूजित होकर तृप्त हों उसे यज्ञ कहते हैं।'

सङ्गतिकरण

(१) यजनं धर्म–देश–जाति–मर्यादारक्षायै महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः।

(२) इज्यन्ते सङ्गतीक्रियन्ते विश्वकल्याणाय परिभ्रमणं कृत्वा महान्तो विद्वाँसः वैदिकशिरोमणयः व्याख्यानरत्नाकराः निमन्त्र्यन्ते अस्मिन्निति यज्ञः।

(३) इज्यन्ते स्वकीय बन्धु-बान्धवादयः प्रेमसम्मानभाजः सङ्गतिकरणाय आहूयन्ते प्रार्थ्यन्ते च येन कर्मणेति यज्ञः ।

'धर्म, देश, जाति (वर्णाश्रम) की मर्यादा की रक्षा के लिये महापुरुषों को एकत्रित करना यज्ञ कहलाता है । विश्व-कल्याण के लिये जगद्भ्रमण करके महापुरुषों द्वारा बड़े-बड़े विद्वान्, वैदिक-मूर्धन्य, व्याख्यानरत्नाकर लोग जहाँ निमन्त्रित किये जाते हों उसे यज्ञ कहते हैं । जिस सदनुष्ठान में अपने बन्धु-बान्धव आदि स्नेहियों को परस्पर सम्मिलन के लिये आमन्त्रित किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं ।'

दान

(१) यजनं यथाशक्ति देश-काल-पात्रादिविचारपुरस्सरद्रव्यादि-त्यागः ।

(२) इज्यते देवतोद्देशेन श्रद्धापुरस्सरं द्रव्यादि त्यज्यते अस्मिन्निति यज्ञः ।

(३) इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मणा स यज्ञः ।

(४) इज्यते भगवति सर्वस्वं निधाप्यते येन वा स यज्ञः ।

(५) इज्यन्ते चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः सच्छिष्येभ्यः सम्प्रदीयन्ते (उपदिश्यन्ते) सदाचार्य्यैर्येन वा स यज्ञः ।

'यथाशक्ति देश, काल, पात्रादि विचारपुरस्सर द्रव्योत्सर्ग करने को यज्ञ कहते हैं । जिसमें श्रद्धापूर्वक देवताओं के उद्देश्य से द्रव्य का त्याग किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं । जिस कर्म से याचकों को सन्तुष्ट किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं । जिस कर्म से अपना सर्वस्व भगवदर्पण किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं । जिस कर्म में चारों वेद साङ्गोपाङ्ग उत्तम शिष्यों के लिये योग्य आचार्यों द्वारा उपदिष्ट किये जाते हों उसे यज्ञ कहते हैं ।'

यज्ञ-शब्द के कतिपय व्युत्पत्तिजन्य अर्थ

(१) येन सदनुष्ठानेन इन्द्रप्रभृतयो देवाः सुप्रसन्नाः सुवृष्टिं कुर्युस्तद् यज्ञपदाभिधेयम्।

(२) येन सदनुष्ठानेन स्वर्गादिप्राप्तिः सुलभा स्यात् तद् यज्ञपदाभिधेयम्।

(३) येन सदनुष्ठानेन सम्पूर्णं विश्वं कल्याणं भजेत् तद् यज्ञपदाभिधेयम्।

(४) येन सदनुष्ठानेन आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिकतापत्रयोन्मूलनं सुकरं स्यात् तद् यज्ञपदाभिधेयम्।

(५) यागाङ्गसमूहस्य एकफलसाधनाय अपूर्ववान् कर्मविशेषो यागः।

(६) मन्त्रैर्देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य दानं यागः।

'जिस सदनुष्ठानद्वारा इन्द्रादि देवगण प्रसन्न होकर सुवृष्टि प्रदान करें उसे यज्ञ कहते हैं। जिस सदनुष्ठानद्वारा स्वर्गादिकी प्राप्ति सुलभ हो उसे यज्ञ कहते हैं। जिस सदनुष्ठानद्वारा संसारका कल्याण हो उसे यज्ञ कहते हैं। जिस सदनुष्ठानद्वारा आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक विपत्तियाँ दूर हों उसे यज्ञ कहते हैं। यागाङ्ग-समूहके एकफलसाधनार्थ अपूर्वसे युक्त कर्म-विशेषको यज्ञ कहते हैं। वैदिक मन्त्रोंके द्वारा देवताओंको उद्देश्य करके किये हुए द्रव्यके दानको यज्ञ कहते हैं।' (यह संक्षिप्तार्थ है)।

यज्ञ—शब्दके कतिपय वेद-प्रतिपाद्य अर्थ

(१) यत्र प्रक्षेपाङ्गको देवतोद्देशपूर्वको द्रव्यत्यागोऽनुष्ठीयते स यागपदार्थः।

(भाट्टदीपिका ४।२।१२)

'जहाँ पर देवताको उद्देश्य कर अग्निमें द्रव्यका प्रक्षेप किया जाय, उसे 'यज्ञ' कहते हैं।'

(२) यज्ञः कस्मात् ? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः। याच्ञ्यो भवतीति वा यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा, बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः यजूँष्येनं नयन्तीति वा।

(निरुक्त ३।४।१९)

'यज्ञ क्यों कहलाता है ? यज् धातुका अर्थ देवपूजा आदि लोक और वेदमें प्रसिद्ध ही है, ऐसा निरुक्तके विद्वान् कहते हैं, अथवा जिस कर्ममें लोग यजमानसे अन्नादिककी याचना करते हैं, अथवा यजमान ही देवताओंसे वर्षा आदिकी प्रार्थना करता है, अथवा देवता ही यजमानसे हविकी याचना करते हैं, उस कर्मको 'यज्ञ' कहते हैं। अथवा कृष्ण यजुर्वेदके मन्त्रोंकी जिसमें प्रधानता हो उसे यज्ञ कहते हैं। यज्ञमें यजुर्वेदके मन्त्रोंका अधिक उपयोग होता है।'

(३) दैवतं प्रति स्व-द्रव्यस्योत्सर्जनं यज्ञः।

'देवताके प्रति अपने द्रव्यका उत्सर्जन (त्याग) करना यज्ञ कहलाता है।'

यज्ञका लक्षण

देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते॥

(मत्स्यपुराण १४४।४४)

'जिस कर्म-विशेषमें देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज और दक्षिणा—इन पाँचोंका संयीग हो, उसे यज्ञ कहते हैं।'

यज्ञ और महायज्ञ

यज्ञ के दो भेद होते हैं—एक यज्ञ और दूसरा महायज्ञ। जो अपने ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याणके लिये पुत्रेष्टियाग और विष्णुया-

गादि करते हैं, उन्हें 'यज्ञ' कहते हैं। और जो विश्वकल्याणार्थ 'पञ्चमहायज्ञ' आदि करते हैं, उन्हें 'महायज्ञ' कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञके स्वरूप तथा इसकी विशेषता का वर्णन महर्षि भारद्वाजने इस प्रकार किया है—

'यज्ञः कर्मसु कौशलम्', 'समष्टिसम्बन्धान्महायज्ञः।'

'कुशलतापूर्वक जो अनुष्ठान किया जाता है उसे 'यज्ञ' कहते हैं। पश्चात् समष्टि-सम्बन्ध होनेसे उसीको 'महायज्ञ' कहते हैं।'

इसी वातको महर्षि अङ्गिराने भी कहा है—

'यज्ञमहायज्ञौ व्यष्टिसमष्टिसम्बन्धात्।'

'व्यष्टि-समष्टि सम्बन्धसे यज्ञ-महायज्ञ कहे जाते हैं।'

यज्ञका फल आत्मोन्नति तथा आत्मकल्याण है, उसका व्यष्टिसे सम्बन्ध होनेके कारण उसमें स्वार्थकी प्रधांनता आ जाती है। (यही इसकी न्यूनता हैं)।

महायज्ञका फल जगत्का कल्याण है, उसका समष्टि से सम्बन्ध होनेके कारण उसमें निःस्वार्थताकी प्रधानता आ जाती है। (यही इसकी विशेषता है)।

यज्ञके भेद

प्रधानतया यज्ञ दो प्रकारके होते हैं—श्रौत और स्मार्त्त। श्रुति-प्रतिपादित यज्ञोंको श्रौतयज्ञ और स्मृतिप्रतिपादित यज्ञोंको स्मार्त्त-यज्ञ कहते हैं। श्रौतयज्ञ* में केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग होता है और स्मार्तयज्ञमें वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्रोंका प्रयोग होता है।

---

* श्रौतयज्ञोंका विशदरूपमें परिचय प्राप्त करनेके लिये देखिये—स्व० म० म० पं० श्रीविद्याधरजी गौडकी रचित 'कात्यायन-श्रौतसूत्र-भूमिका' अथवा 'श्रौतयज्ञ-परिचय'।

वेदोंमें अनेक प्रकार के यज्ञोंका वर्णन मिलता है, किन्तु उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकार के यज्ञ प्रधान माने गये हैं—

'स एष यज्ञः पञ्चविधः—अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः,सोमः, इति । (ऐतरेयब्राह्मण)

अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। इन्हीं पाँच प्रकारके यज्ञोंमें श्रुतिप्रतिपादित वैदिक यज्ञोंकी समाप्ति हो जाती है।

'गौतमधर्मसूत्र (८।१८) में यज्ञोंका उल्लेख निम्नलिखित है—

'औपासनहोमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासिकश्राद्धम्, श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, आप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः।'

गौतमधर्मसूत्रकारने पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ भेदसे तीन प्रकारके यज्ञों का भेद दिखला कर प्रत्येकके सात-सात भेद दिखला करके २१ प्रकारके यज्ञोंका उल्लेख किया है। इसमें स्मार्त्त सात पाकयज्ञ संस्थाओंका उल्लेख गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रोंमें मिलता है। अग्निहोत्रसे लेकर सोमसंस्थान्त १४ यज्ञोंका उल्लेख कात्यायनादि श्रौतसूत्र में मिलता है।

वर्तमान समयमें श्रौतयज्ञोंका प्रचार तो नहीं के बराबर है। गृह्यसूत्रोक्त पाकयज्ञोंका प्रचार किसी-न-किसी रूपमें अवश्य प्रचलित है।

उपर्युक्त १४ वैदिक यज्ञ तथा ७ पाकयज्ञके अतिरिक्त गृह्यसूत्रो

और धर्मसूत्रोंमें *पञ्चमहायज्ञोंका भी उल्लेख किया गया है, जो कि नित्यकर्म और आवश्यक अनुष्ठेय माने गये हैं।

उपर्युक्त सभी प्रकारके यज्ञ सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारके कहे गये हैं। जो यज्ञ निष्कामभावसे किया जाता है उसे '[1]सात्त्विक यज्ञ' कहते हैं। जो यज्ञ सकाम अर्थात् किसी फल-विशेषकी इच्छासे किया जाता है उसे '[2]राजसिक यज्ञ' कहते हैं। जो यज्ञ शास्त्रोंके विरुद्ध किया जाता है उसे '[3]तामसिक यज्ञ' कहते हैं। इनमें 'सात्त्विक यज्ञ' का अनुष्ठान सर्वोत्तम कहा गया है। अतः यज्ञका मुख्य उद्देश्य सात्त्विकताको लेकर ही होना चाहिये। शास्त्रोंमें सात्त्विक यज्ञका महान् फल लिखा है।

श्रौत-स्मार्त्तादि सभी प्रकारके यज्ञोंमें कुछ यज्ञ नित्य, कुछ नैमित्तिक और कुछ काम्य होते हैं। उनमें नैमित्तिक और काम्य यज्ञ करनेके लिये तो द्विज स्वतन्त्र है अर्थात् वह अपनी श्रद्धा-भक्ति तथा आर्थिक परिस्थितिके अनुकूल यज्ञ करे अथवा न करे, किन्तु नित्ययज्ञ तो करना ही होगा। उस नित्ययज्ञका नाम 'पञ्चमहायज्ञ'

---

*ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ इन्हें 'पञ्चमहायज्ञ' कहते हैं। (मनु॰ ३।७०)

१ अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥
(गीता १७।११)

२ अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥
(गीता १७।१२)

३ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥
(गीता १७।१३)

है। पञ्चमहायज्ञके न करनेसे मनुष्य *पञ्चसूनाजन्य दोषों से छुटकारा कथमपि नहीं प्राप्त कर सकता। अतः 'पञ्चसूना' दोषों से छुटकारा पानेके लिये 'पञ्चमहायज्ञ' का अनुष्ठान परमावश्यक और नित्य कर्तव्य है। यह पञ्चमहायज्ञ अन्य यागोंकी तरह न तो अधिक द्रव्यसाध्य है और न अधिक समयसाध्य ही है।

यज्ञकी प्राचीनता

हिन्दू-जातिका प्राचीन धर्मग्रन्थ वेद है। वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन तीन विषयों का मुख्यतः वर्णन मिलता है, किन्तु इन तीनों में प्रधान स्थान 'कर्मकाण्ड' को ही प्राप्त है। इसीलिये वेदों में यज्ञ-यागादि विविध क्रिया-कलापका विशेषरूप में **वर्णन मिलता** है। अतः यज्ञ ही वेदों का मुख्य विषय है। वेदोंका **मुख्य विषय** यज्ञ होने के कारण ही यज्ञों में वेद-मन्त्रों का प्रयोग (उच्चारण) किया जाता है। वेद-मन्त्रों के बिना यज्ञ नहीं हो सकते और यज्ञोंके बिना वेद-मन्त्रों का ठीक-ठीक सदुपयोग नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि वेद हैं तो यज्ञ हैं और यज्ञ हैं तो वेद हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।१०४) के **'वेदास्तु यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः'**

---

* पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
(मनु० ३।६८-६९)

'प्रत्येक गृहस्थके यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और जलका पात्र—ये पाँच हिंसाके स्थान हैं। इनको काममें लानेवाला गृहस्थ पापसे बँधता है। इनसे मुक्त होनेके लिये महर्षियोंने पञ्चमहायज्ञ प्रतिदिन करनेके लिये कहे हैं।'

इस वचन से तथा भगवान् मनुके **'दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम्'** (१।२३) इस वाक्य से स्पष्ट सिद्ध है कि वेदों का प्रादुर्भाव यज्ञोंके लिये ही हुआ है*।

जिस प्रकार वेद अत्यन्त दुरूह हैं, उसी प्रकार वेदाङ्गभूत यज्ञ भी अत्यन्त दुरूह हैं। जिस प्रकार वेदमें उपास्य देवता हैं, उसी प्रकार यज्ञमें भी उपास्य देवता हैं। जिस प्रकार वेद अपौरुषेय, नित्य और अनादि हैं, उसी प्रकार यज्ञ भी अपौरुषेय, नित्य और अनादि हैं। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र **'अग्निमीडे पुरोहितम्'** में 'यज्ञ' पद आया है, अतः सिद्ध होता है कि वेद से भी प्राचीन 'यज्ञ' है।

अब हम अनेक ऋषि-महर्षियों के उन वचनों को उद्धृत करते हैं, जिनसे यज्ञके महत्त्व का सुन्दररूप से परिचय हो सकेगा।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

(गीता ३।१४)

'समस्त प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं और अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे होती है और वर्षा यज्ञसे होती है तथा वह यज्ञ कर्मसे होता है।'

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

(मनुस्मृति ३।७६)

'अग्नि में विधि-विधानपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यदेवको प्राप्त होती है, पश्चात् उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है।'

---

* **'ऋचो यजूँषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।'** (ब्रह्मपुराण १।४६)

'यज्ञ सिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण हुआ है।'

अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मन्नादित्यमुपगच्छति ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २६३।११)

'अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यमण्डलको प्राप्त होती है, सूर्यसे जलकी वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से समस्त प्रजा जन्म तथा जीवन धारण करती है ।'

यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ।
गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥

(भागवत ३।३२।२-३)

'जो पुरुष श्रद्धापूर्वक यज्ञादि द्वारा देवताओं और पितरों का पूजन करता है वह यज्ञोंके प्रताप से चन्द्रलोक में जाकर सोमरस (अमृत) का पान करके पुनः इहलोकमें आता है ।'

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः ।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः ।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥
तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ।

(भागवत ४।१४।१८-२०)

'जिसके राज्य अथवा नगर में वर्णाश्रमधर्मियों के द्वारा यज्ञ-पुरुष भगवान् का यजन होता है उस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं । क्योंकि वे ही समस्त विश्व की आत्मा तथा समस्त भूतों के रक्षक हैं । भगवान् ब्रह्मादि जगदीश्वरों के भी ईश्वर हैं, अतः भगवान् के प्रसन्न होने पर संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो कि अप्राप्य हो ।'

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवाः ।
आप्यायन्ते धर्मयज्ञा यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३।१३२)

'यज्ञ से देवताओं का आप्यायन [वर्द्धन] अथवा पोषण होता है। यज्ञ द्वारा वृष्टि होने से मनुष्यों का पालन-पोषण होता है। इस प्रकार जगत् का पालन-पोषण करने के कारण धर्मयज्ञ कल्याण के हेतु कहे जाते हैं।'

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥

(विष्णुपुराण १।६।८)

'हे धर्मज्ञ! यज्ञसे देवताओं का आप्यायन अथवा पोषण होता है, यज्ञद्वारा वृष्टि होने से मनुष्यों का पालन-पोषण होता है। इस प्रकार प्रायः जगत् का पालन-पोषण करने के कारण यज्ञ कल्याण के हेतु कहे जाते हैं।'

यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः ॥
अन्नेन भूता जीवन्ति यज्ञे सव प्रतिष्ठितम् ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात्सर्वं यज्ञमयं ततः ॥

(कालिकापुराण ३२।७–८)

'यज्ञों से देवता सन्तुष्ट होते हैं, यज्ञ ही समस्त चराचर जगत् का प्रतिष्ठापक है। यज्ञ पृथ्वी को धारण किये हुए है। यज्ञ ही प्रजा को पापों से बचाता है। अन्न से प्राणी जीवित रहते हैं, वह अन्न बादलों द्वारा उत्पन्न होता है और बादल की उत्पत्ति यज्ञ से होती है। अतः यह सम्पूर्ण जगत् यज्ञमय है।'

यज्ञाद्देवाः प्रजाश्चैव यज्ञादन्ननियोगिनः।
सर्वं यज्ञात्सदा भावि सर्वं यज्ञमयं जगत् ॥

(कालिकापुराण ३१ । ४०)

'यज्ञ से देवगण, यज्ञ से समस्त प्रजा, यज्ञ से समस्त अन्नोपजीवी प्राणी और यज्ञ पर ही सम्पूर्ण भविष्य सदैव निर्भर रहता है। इस तरह समस्त जगत् ही यज्ञमय है।'

यज्ञैर्यज्ञेश्वरो येषां राष्ट्रे सम्पूज्यते हरिः।
तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूभृताम् ॥

(विष्णुपुराण १।१३।१९)

'हे राजन् ! जिन राजाओं के राज्य में भगवान् हरि का यज्ञों द्वारा पूजन किया जाता है, वे उनकी सभी कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं।'

ये यजन्ति स्पृहा शून्या हरिभक्तान् हरिं तथा।
त एव भुवनं सर्वं पुनन्ति स्वांघ्रिपांशुना ॥

(नारदपुराण ३९।६४)

'जो स्पृहा से रहित (निष्काम-भाव से) होकर भगवान् और भगवद्भक्तों को यज्ञ के द्वारा पूजते हैं, वही अपने चरण-रज से समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र करते हैं।'

'यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्।'

(अग्निपुराण ३८१।४८)

'मनुष्यों के लिये यज्ञ, दान आदि कर्म भुक्ति और मुक्ति को देनेवाले हैं।'

यज्ञेन लोकानाप्नोति पापनाशं हुतेन च।
जप्येन कामानाप्नोति सत्येन च परां गतिम् ॥

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण १३७।३)

'यज्ञ करने से मनुष्य देवलोकों को प्राप्त करता है, हवन करने से पापों का नाश होता है, जप करने से समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है और सत्य-भाषण से परम-पद को प्राप्त करता है।'

यज्ञेन देवा जीवन्ति यज्ञेन पितरस्तथा।
देवाधीनाः प्रजाः सर्वा यज्ञाधीनाश्च देवताः॥
यज्ञो हि भगवान् विष्णुर्यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यज्ञार्थं पशवः स्रष्टा देवास्त्वौषधयस्तथा॥
यज्ञार्थं पुरुषाः स्रष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञपरो भवेत्॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
धनं यद्यज्ञशीलानां देवस्वं तं विदुर्बुधाः॥

यज्ञेन सम्यक् पुरुषस्तु नाके
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा।
प्राप्नोति सौख्यानि महानुभावाः
तस्मात्प्रयत्नेन यजेत यज्ञैः॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण १६२।१–४,७)

'यज्ञ से देवगण और पितृगण जीवित रहते हैं, देवताओं के आधीन समस्त प्रजा रहती हैं और यज्ञ के आधीन समस्त देवता रहते हैं। यज्ञ ही भगवान् विष्णु हैं, विष्णु भगवान् में ही सब प्रतिष्ठित रहतेहैं, यज्ञ के लिये देवताओं तथा औषधियों की सृष्टि की गई है। स्वयम्भू ने यज्ञ के लिये ही मनुष्यों की सृष्टि कर उनसे कहा—यज्ञ सब का कल्याण करनेवाला है, अतः यज्ञ में तत्पर रहो। यज्ञ के अवशिष्ट भाग का भोजन करनेवाले समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं, यज्ञ-शीलों के धन को पण्डितों ने देवस्व (देवधन) कहा है। यज्ञ के द्वारा श्रेष्ठ महात्मा पुरुष स्वर्ग में जाकर देवताओं के द्वारा भलीभाँति

पूजित होते हैं और यज्ञकर्ता पुण्यात्मा पुरुष स्वर्ग में जाकर अनेक प्रकार की सुखप्रद वस्तुओं की प्राप्ति करते हैं। अतः प्रयत्नपूर्वक यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करना चाहिये।'

होमेन पापं पुरुषो जहाति
होमेन नाकं च तथा प्रयाति।
होमस्तु लोके दुरितं समग्रं
विनाशयत्येव न संशयोऽत्र॥

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण २८७।१५)

'यज्ञ के द्वारा मनुष्य अपने पापों को दूर करता है और यज्ञ से वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। यज्ञ ही संसार के समस्त पापों को नष्ट करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।'

मातापित्रोर्हिते युक्तो गो-ब्राह्मणहिते रतः।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥

(कूर्मपुराण, उत्तरार्ध १५।२४)

'माता-पिता के हित में संलग्न, गौ और ब्राह्मण के हित में निरत, देवभक्त और दानशील—ये सभी यज्ञ करने से ब्रह्मलोक में पूजित होते है।'

'यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते।'

(पद्मपुराण, सृष्टि० १३।३६८)

'अनेक यज्ञों के करने से देवत्व को प्राप्त करके इन्द्र के साथ दिव्य भोगों को भोगते हैं।'

प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत्॥

(मत्स्यपुराण २३८।३८)

'विष्णु भगवान् यज्ञ से सन्तुष्ट होते हैं, उनकी सन्तुष्टता से जगत् सन्तुष्ट होता है और उनकी प्रसन्नता से ही जगत् प्रसन्न होता है।'

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा
यज्ञोद्दिष्टः पुरुषो रक्षिता च।
तस्मात्सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं
धनं ततोऽनन्तर एव कामः॥
यज्ञैरिन्द्रो विविधै रत्नवद्भि-
र्देवान् सर्वानत्ययाद् भूरितेजाः।
तेनेन्द्रत्वं प्राप्य विभ्राजतेऽसौ
तस्माद्यज्ञं सर्वमेवोपयोज्यम्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २०।१०–११)

'ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये ही अनेक प्रकार की धन की सृष्टि की है। यज्ञनिष्ठ पुरुष ही सबकी रक्षा करने में समर्थ होता है। इसलिये यज्ञ ही सबका परम उपयोगी धन है। यज्ञ के बाद ही अर्थ, काम आदि का उपयोग लिखा है। इन्द्र ने अनेक प्रकार के रत्नों से परि-पूर्ण यज्ञों के द्वारा दिव्य तेज प्राप्त कर समस्त देवताओं का अति-क्रमण कर 'इन्द्रपद' प्राप्त किया और वह आज भी उसी पद-पर शोभित है। अतः यज्ञ में समस्त उपयोगी साधन सन्निहित हैं।'

'दानशीलो भवेद्राजा यज्ञशीलश्च भारत।'

(महाभारत, शान्तिपर्व ६१।५३)

'हे युधिष्ठिर! दान करनेवाला तथा यज्ञ करनेवाला राजा होता है।'

न हि यज्ञसमं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
तस्माद्यष्टव्यमित्याहुः पुरुषेणानुसूयता॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ६१।५३)

'तीनों लोकों में यज्ञ के बराबर और कोई उत्तम वस्तु नहीं है। इसलिये दोषदृष्टि से रहित होकर मनुष्य को यज्ञ करना चाहिये, ऐसा महर्षियों ने कहा है।'

यानि यज्ञेष्विहेज्यन्ति सदा प्राज्ञा द्विजर्षभाः।
तेन ते देवयानेन पथा यान्ति महामुने॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २६३।२६)

'हे महामुने! जो बुद्धिमान् विप्र सर्वदा श्रेष्ठ यज्ञ करते रहते हैं, वे यज्ञ के प्रभाव से देवयान मार्ग के द्वारा देवलोक को प्राप्त करते हैं।'

स्वाहा-स्वधा-वषट्कारा यत्र सम्यगनुष्ठिताः।
अजस्रं चैव वर्तन्ते वसेत्तत्राविचारयन्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २८७।५१)

'जिस राष्ट्र में स्वाहा, स्वधा और वषट्कार के अनुष्ठान विधिपूर्वक सर्वदा होते रहते हैं, वहीं पर मनुष्य को बिना विचारे निवास करना चाहिये।'

'हुतेन शाम्यते पापम्।'

(महाभारत, शान्तिपर्व १९१।२)

'हवन करने से पापों का शमन हो जाता है।'

'विधिवत्पावकं हुत्वा ब्रह्मलोके महीयते।'

(महाभारत, अनुशासन० ७५।१९)

'विधिपूर्वक अग्नि में हवन करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोक में जाता है।'

स तु द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनुसूयकः॥
लोकान्वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व १०७।९७–९८)

'जो मनुष्य हिंसा से रहित, सत्यवादी होकर और निन्दाशून्य होकर बारह मास तक अग्नि में हवन करता है, वह सूर्य के सदृश अष्ट वसुओं के लोकों को प्राप्त करता है।'

तपोभिः क्रतुभिश्चैव दानेन च युधिष्ठिर।
तरन्ति नित्यं पुरुषा ये स्म पापानि कुर्वते ॥

(महाभारत, आश्वमेधिकपर्व ३।४)

'हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य नित्य पापकर्म करते हैं, वे भी तप, यज्ञ और दान के द्वारा पापों से तर जाते हैं।'

देवाः सन्तोषिता यज्ञैर्लोकान् संवर्धयन्त्युत।
उभयोर्लोकयोर्देवि भूतिर्यज्ञैः प्रदृश्यते ॥
तस्माद्यज्ञाद्दिवं याति पूर्वजैः सह मोदते।
नास्ति यज्ञसमं दानं नास्ति यज्ञसमो विधिः।
सर्वधर्मसमुद्देशो देवि यज्ञे समाहितः ॥

(महाभारत)

'यज्ञों से सन्तुष्ट होने पर देवगण लोकाभ्युदय की कामना करते हैं, साथ ही यज्ञों के द्वारा दोनों लोकों का कल्याण सम्पन्न होता है। यज्ञ से प्राणी के लिये विशेष फल यह होता है कि वह स्वर्गलोक का भागी बनता है और वहाँ पर अपने पूर्वजों के साथ आनन्द करता है। संसार में यज्ञ के समान कोई दान नहीं और यज्ञ के समान कोई विधि-विधान नहीं है। यज्ञ से ही समस्त धर्मों का उद्देश्य सिद्ध होता है, यह बात सुस्पष्ट है।'

यज्ञकर्ता शक्रलोके वसते शाश्वतीः समाः।
दानी चान्द्रमसं लोकं व्रती सौरं व्रजत्यलम् ॥

(गर्गसंहिता वि० ख० ६।१०)

'यज्ञ करनेवाला मनुष्य इन्द्रलोक में सैकड़ों, हजारों वर्ष-पर्यन्त निवास करता है। दान करनेवाला मनुष्य चन्द्रलोक और व्रत करनेवाला सूर्यलोक को प्राप्त करता है।'

यज्ञेन देवा विमला विभान्ति
यज्ञेन देवा अमृतत्वमाप्नुयुः।
यज्ञेन पापैर्बहुभिर्विमुक्तः
प्राप्नोति लोकान् परमस्य विष्णोः॥

(महर्षि हारीत)

'यज्ञ से समस्त लोक निर्मलता एवं सुन्दरता को प्राप्त करते हैं। यज्ञ से देवगण अमरत्व को प्राप्त करते हैं। यज्ञ के द्वारा अनेक तरह के पापों का प्रक्षालन कर प्राणी भगवान् विष्णु के परम वैष्णव-धाम की प्राप्ति करते हैं।'

'यज्ञादिभिर्देवाः शक्तिसुखादीनाम्।'

(महर्षि अङ्गिरा)

'यज्ञादि करने से देवगण सन्तुष्ट होते हैं, उनकी सन्तुष्टता से मनुष्य शक्ति और सुखादि की प्राप्ति करता है।'

तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थों में—

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (ऋग्वेद १।१६४।३५)
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (शु० य० २३।६२)
यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (अथर्ववेद ९।१०।१४)
यज्ञेन देवानाप्नोति। (वायुपुराण ५७।११७)
यज्ञैश्च देवानाप्नोति। (मत्स्यपुराण १४२।३३)
यज्ञैश्च देवानाप्नोति। (अग्निपुराण ३७९।१)
यज्ञभागभुजो देवाः। (मत्स्यपुराण २४५।१४)
यज्ञभागभुजः सर्वे। (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ७।६७)

यज्ञभागभुजः सर्वे। (दुर्गा १२।३४)
यज्ञो वै सर्वकामधुक्। (वायुपुराण ६०।७)
यज्ञो यज्ञपतिः साक्षात्। (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २२४।१७)
यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्। (विष्णुपुराण ३।४।१)
यज्ञोऽयं सर्वकामधुक,। (पद्मपुराण)
यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति। (अथर्ववेद)

उपर्युक्त यज्ञ के महत्त्व को प्रकट करनेवाले अनेक प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि यज्ञ का फल केवल ऐहलौकिक ही नहीं है, अपितु पारलौकिक भी है। अत: जिस यज्ञानुष्ठान के प्रभाव से जीव की क्षुद्रता, अल्पज्ञता आदि विविध उपद्रवों का विनाश होता है और वह परमात्मा के साथ एकता को प्राप्त होता है, उस यज्ञ का महत्त्व सर्वमान्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

—०—

यज्ञकी आवश्यकता

कर्म-मीमांसा के प्रवृत्त होने पर मानव-देह धारण करते ही द्विज ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है।

श्रीमद्भागवत (१०।८४।३९) में आया है—

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत्॥

'द्विजाति देवता, ऋषि और पितर—इन तीनों का ऋण लेकर ही उत्पन्न होते हैं। इनके ऋणों से मुक्त होने के लिये यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्ति करना आवश्यक है। इनसे उऋण हुए बिना जो संसार का त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है।'

तैत्तिरीय संहिता (३।१०।५) में भी आता है—

"जायमानो वै *ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ।"

'द्विज जन्म लेते ही ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि-ऋण से, यज्ञ के द्वारा देवऋण से और सन्तति के द्वारा पितृ-ऋण से मुक्ति होती है।'

भगवान् मनु ने भी **'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य'** (६।३५) इत्यादि वाक्यों द्वारा उपर्युक्त ऋणत्रय के अपाकरण को ही मनुष्य का प्रधान कर्म बतलाया है। ऋणत्रय में 'देवऋण' का भी उल्लेख है। देव-ऋण से मुक्त होने के लिये उपर्युक्त तैत्तिरीय श्रुति ने स्पष्ट बतला दिया है कि यज्ञों के द्वारा ही देव-ऋण से मुक्ति होती है। वह यज्ञादि कर्म अत्यन्त पावन तथा अनुपेक्षणीय है, जैसा कि अनेक मत-मतान्तरों का निरास करते हुए गीता के परमाचार्य स्वयं भगवान् ने सिद्धान्त किया है—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

(गीता १८।५)

इतना ही नहीं, जगत्-कल्याण की मीमांसा तथा कर्तव्य-सत्पथ का निश्चय करते हुए भगवान् ने स्पष्ट कहा है—यज्ञिय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म लोक-बन्धन के लिये ही हैं—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

(गीता ३।९)

---

* 'ब्राह्मण' यह पद द्विजातिमात्र का उपलक्षण है।

इस प्रकार अनेक श्रुति-स्मृति-ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में यज्ञ को मानव का प्रधान धर्म कहा गया है। अतः प्रत्येक द्विज को यज्ञ करते रहना चाहिये। जो लोग यज्ञ के वास्तविक रहस्य और महत्त्व को न समझकर यज्ञ के प्रति श्रद्धा नहीं रखते अथवा यज्ञ नहीं करते, वे नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में शास्त्रों की आज्ञा है—

नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विन्दते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यति छिन्नपर्णवत्॥

'यज्ञ न करनेवाले पुरुष पारलौकिक सुखों से तो वञ्चित रहते ही हैं, वे ऐहिक कल्याणों की भी प्राप्ति नहीं कर सकते। अतः यज्ञहीन प्राणी आत्म-पवित्रता के अभाव से छिन्न-भिन्न पत्तों की तरह नष्ट हो जाते हैं।'

महाभारत में लिखा है—

न ह्ययज्ञा अमुं लोकं प्राप्नुवन्ति कथंचन।

(आपद्धर्मपर्व १५१।८)

'जो यज्ञ नहीं करते, वे उस श्रेष्ठ लोक (परलोक) को प्राप्त नहीं करते।'

गीता (४।३१) में भी कहा है—

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरु सत्तम।

'हे अर्जुन! यज्ञ न करनेवाले को यह मृत्युलोक भी प्राप्त नहीं हो सकता, फिर दिव्यलोक (परलोक) की तो बात ही क्या है।'

अथर्ववेद (१२।२।३७) भी कहता है—

अयज्ञियो हतवर्चा भवति।

'यज्ञहीन (यज्ञ न करनेवाले) पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है।'

महर्षि भारद्वाज के **'यागपरः पुरुषधर्मः'** के अनुसार 'यज्ञ' मानव-जाति का विशेष धर्म है। अतः मनुष्य को अपना जीवन यज्ञमय बनाना चाहिये। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों का जीवन यज्ञमय था। वे यज्ञ-यागादि की उपासना द्वारा ही देवताओं को सन्तुष्ट कर सर्वविध ऋद्धि-सिद्धियों को आत्मसात् कर अपना और विश्व का कल्याण किया करते थे। इसलिये निश्चित है कि यज्ञ के द्वारा ही मनुष्य का जीवन उन्नत और सुखी बन सकता है।

जो लोग यज्ञ के प्रति श्रद्धा-भाव न रखकर यज्ञ नहीं करते, वे देवताओं के कोपभाजन बनते हैं। देवताओं के कुपित होने से प्राणि-मात्र को विविध प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ता है।

शास्त्रों में लिखा है—

'यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति।'

(वायुपुराण ६०।६)

'यज्ञ के न होने से देवताओं का नाश होता है। देवताओं के नाश से समस्त जगत् का नाश होता है।'

यज्ञे विनष्टे सकलाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः।
वृष्ट्यभावान्महद्दुःखं प्राप्य नष्टाश्च काश्चन॥

(कालिकापुराण २१।१६)

'यज्ञ के न होने से समस्त प्रजा भूख से पीड़ित हो जाती है और वर्षा के अभाव से बहुत कष्ट प्राप्त कर वह नष्ट हो जाती है।'

यज्ञाभावात्तु देवानामन्नं सर्वं क्षयं गतम्।
पर्जन्याश्च ततो नष्टास्ततो वृष्टिर्नचाभवत्॥
वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहाराः क्षीणतां गताः।
दुर्भिक्षव्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमाः॥

(कालिकापुराण २०।११२–११३)

'देवताओं के निमित्त यज्ञ न होने से अन्न का क्षय होता है, बादल नष्ट हो जाते हैं, बादलों के नष्ट होने से वर्षा नहीं होती। वर्षा के अभाव से मनुष्यों के लिये भोजन की कमी हो जाती है, जिससे सारा संसार दुर्भिक्ष से पीड़ित हो जाता है।

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यज्ञात् सृष्टिः प्रजायन्ते अन्नानि विविधानि च।
तृणान्यौषधान्यथ च फलानि विविधानि च।
जीवानां जीवनार्थाय यज्ञः संक्रियतां बुधैः॥

'यज्ञ से सृष्टि चलती है, यज्ञ से विविध प्रकार के अन्न, घास, औषधि और फल होते हैं। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि वे प्राणि-मात्र के जीवन के लिये यज्ञ को अवश्य किया करें।'

पूर्वकाल के प्राणी यज्ञ के वास्तविक तत्त्व को भलीभाँति जानते थे और उनके हृदय में यज्ञ के प्रति श्रद्धा-भक्ति का अस्तित्व था। अतएव वे समय-समय पर यज्ञादि धार्मिक कार्य करते रहते थे, जिससे उनका तथा संसार का कल्याण होता रहता था। उस समय हमारा यह पवित्र भारतवर्ष अनेक सुख-समृद्धियों से परिपूर्ण था। समस्त प्राणी सर्वदा सर्वप्रकार से सुखी रहते थे। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, अकाल मृत्यु, महामारी प्रभृति रोग-शोकादि का तो लोग नाम भी नहीं जानते थे। किन्तु आज के प्राणी समय के हेर-फेर से यज्ञ के महत्त्व को भूलकर यज्ञ करना तक त्याग चुके हैं। इसीलिये देवगण भी हमसे असन्तुष्ट हैं। देवताओं की असन्तुष्टता से ही आज सारा संसार अनेकानेक कष्टों से पीड़ित है। सर्वत्र भूकम्प, अकाल, बाढ़, महामारी आदि किसी-न-किसी प्रकार की विपत्ति सर्वदा अपनी स्थिति जमाये रहती है। ऐसी भीषण परिस्थिति में संसार के सर्व-विध कल्याणार्थ यदि कोई सीधा-सादा सरल मार्ग है तो वह है यज्ञ।

यज्ञ ही एक ऐसा अमोघ साधन है, जिसके अनुष्ठान से देवगण की सन्तुष्टि होती है और देवगण की सन्तुष्टि से मानव पुत्र-पौत्रादि एवं धन-धान्यादि सभी प्रकार के ऐहलौकिक सुखों को प्राप्त करता है और मरने के बाद स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है।

इस पवित्र भारत-भूमि में जबतक यज्ञों का उचित सम्मान था, तबतक इसकी मर्यादा तथा सुख सराहनीय था। प्राणी-प्राणी में सद्भावना थी। सर्वत्र कल्याण-ही कल्याण दृष्टिगोचर होता था। जब से नवयुग ने अपनी महिमा के प्रचुर प्रसार का प्रारम्भ किया, तभी से यज्ञादि कर्म में शिथिलता आने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि सुख के बदले दुःख, मर्यादा के बदले अकीर्ति, पारस्परिक प्रेम के बदले ईर्ष्या तथा द्वेष, द्रव्य के बदले दरिद्रता का नग्न नृत्य एवं नाना प्रकार के अकल्याण ही दृष्टिपथ हो रहे हैं। राजा, रङ्क, फकीर—सभी सुख-लेश की आकाङ्क्षामात्र में ही सफल होते दिखायी दे रहे हैं। अतः सुस्पष्ट है कि उपर्युक्त दुःख-राशि एवं संसार के समस्त दुःखसमूह को आमूलचूल नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला केवल **यज्ञ ही** ऐसा अव्यर्थ साधन है जिसके द्वारा मानव सर्वतोभावेन सुखी और सन्तुष्ट हो सकता है।

पहले किसी समय इसी पुण्य भारत-भूमि में सभी त्रैवर्णिक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने श्रौत-स्मार्त यज्ञों का अनुष्ठान किया करते थे। उस समय कोई भी द्विज ऐसा नहीं था, जो वेदों का स्वाध्याय अथवा वेदोक्त कर्म अग्न्याधान (अग्निहोत्र) न करता हो। इस समय सैकड़ों-हजारों में भी ढूँढ़ने से यथाविधि अग्निहोत्र करनेवाला कोई 'अग्निहोत्री' नहीं दिखलायी देता। सैकड़ों-हजारों में भी कोई सोम-पान करनेवाला 'सोमयाजी' नहीं दिखलायी देता।

वर्त्तमान कराल कलिकाल के भयङ्कर प्रभाव से अत्यल्प संख्या में गिने-चुने याज्ञिक दिखलायी देते हैं। आज तो वेद के एक अक्षर

को भी न जाननेवाले अपने को 'महावैदिक' और 'यज्ञ' शब्दार्थ तक को न जाननेवाले अपने को 'महायाज्ञिक' बतलानेवाले अधिक मिलते हैं। दर्श-पूर्णमास की भी प्रक्रिया को न जाननेवाले अपने को 'अश्वमेधयाजी' कहने का दुस्साहस करते हैं।

अस्तु, अन्त में मेरी भूतभावन श्री विश्वनाथजी के चरणों में प्रार्थना है कि यह देश पुनः अपनी प्राचीन उन्नति के लिये अग्रसर हो, घर-घर में त्रेताग्नियाँ प्रज्वलित हों, सब लोग पुनः अपने मुख्य धर्म यज्ञादि पर आरूढ़ हों, देवगण तृप्त हों, तृप्त देवगण मानवमात्र को अभीष्ट फल प्रदान करें। भारतीय आर्यजाति में परस्पर प्रेमाधिक्य हो तथा यह भूमण्डल मूर्द्धन्य पवित्र भारत-भूमि एवं आर्यजाति पुनः **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** के अवलम्ब से विश्वविजयी बने।

—:०:—

यज्ञसे देवताओंकी तृप्ति

कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि यज्ञ केवल वायु-शुद्धिके लिये किया जाता है, इसके अतिरिक्त इसका और कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यज्ञका वायुशुद्धिमात्र प्रयोजन नहीं है, उसे तो नान्तरीयक भी माना जा सकता है। यज्ञका आत्यन्तिक प्रयोजन है यज्ञ-कर्ताका देवताओं के साथ परस्पर-भावन। शास्त्रोंमें स्पष्ट शब्दों में इस बातकी पुष्टि की गयी है। ऋग्वेदमें यजमान अग्निसे प्रार्थना करता है कि वे उसके हविको देवतातक पहुँचा दें—

'आ अग्ने! वह हविरद्याप देवान्'

(ऋग्वेद ७।११।५)

अग्निमें जब उन-उन देवताओं को उद्देश्य करके मन्त्रोच्चारण-पूर्वक द्रव्यका त्याग किया जाता है, तब अग्निके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे उन-उन देवताओं तक उस-उस द्रव्यको पहुँचा दें, जिसमें कि उनकी तृप्ति हो जाय। इसलिये वेदने अग्निके लिये 'देवदूत' और 'देवमुख' जैसे शब्दोंका प्रयोग किया है—**'अग्निर्हि देवानां मुखम्'** (शतपथब्राह्मण ३।७।४।१०) और इसलिये होमके समय यह आवश्यक हो जाता है कि जिस देवताके लिये द्रव्य-त्याग किया जा रहा है, उस देवताका उस समय ध्यान अवश्य कर लिया जाय—

'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा ध्यायेत्'

(निरुक्त ८।२२।११)

यही कारण है कि देवताओंमें हविके लिये पर्याप्त उत्सुकता बनी रहती है। और जो लोग ऐसा नहीं कर पाते, उन पर उनकी कठोर दृष्टि बन जाती है। ऋग्वेदमें मरुत् देवताके लिये 'अभोग्घन' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ होता है कि जो देवताओंको भोजनके लिये हवि नहीं देते, मरुद्देवता उन्हें मार डालते हैं—

'ये देवान् हविर्न भोजयन्ति तेषां हन्तारः।'

(सायण)

यद्यपि देवता समर्थ हैं, पर प्रशास्ताका कुछ प्रशासन ही ऐसा हैं कि इस दीन-वत्तिका आश्रयण उन्हें करना ही पड़ता है, जीवन निर्वाहके लिये यजमानकी बाट देखनी ही पड़ती है—

'तथा च यजमानं देवा ईश्वराः सन्तो जीवनार्थेऽनुगताश्चरुपुरोडाशाद्युपजीवनप्रयोजनेन अन्यथापि जीवितुमुत्सहन्तः कृपणां दीनवृत्तिमाश्रित्य स्थिताः, तच्च प्रशास्तुः प्रशासनात्।'

(बृ० उ० भा० ३।८)

मनुष्योंको तो पग-पग पर दैवी–सहायताकी आवश्यकता पड़ती है, इसलिये इन्हें तो उधर मुड़ना ही पड़ता है, किन्तु देवताओंको भी हविके लिये मनुष्यों की ओर उन्मुख होना पड़ता है और इस तरह दोनोंका परस्पर–भावन बड़ा दृढ़मूल हो गया है। भगवान्‌ने भी कहा है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

(गीता ३।११)

उनकी पुष्टि मनुष्योंके अधीन है और मनुष्यों की भी अभिलषित वस्तुएँ उनसे मिल सकती हैं—

'इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।'

(गीता ३।१२)

वेदों में भी देवताओं के इस परस्पर-भावन, इस अन्योन्याश्रयता का बड़े विस्तार से वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ४९ वें मन्त्र में यजमान और इन्द्र का संवाद है। यजमान कहता है—

'वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं॰ शतक्रतो।'

'हे शतक्रतो! हम दोनों हवि और उसके फल का परस्पर में क्रय-विक्रय करें, मैं हवि देता हूँ, आप मुझे फल दें।'

इन्द्र उत्तर देते हैं—

'देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।'

(शु॰ य॰ ३।५०)

'तुम हमें प्रथम हवि दो, पश्चात् तुम्हें उसका फल देंगे, तुम हमारे समक्ष हवि रखकर देखो तो हम फल देते हैं कि नहीं?'

यजमान प्रत्युत्तर देता है—

'निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा।'

(शु० य० ३।५०)

'आप ही प्रथम क्रेतव्य वस्तुरूप फल दे दीजिये, पश्चात् मैं उसके मूल्यस्वरूप हवि दूँगा।'

इस संवाद से परस्पर-भावन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसी सत्य से प्रेरित होकर महर्षि सायणाचार्य ने भी बड़ी दृढ़ता से कहा है—

'तस्मान्मनुष्याणां क्रयविक्रयाविव यजमानदेवतयोर्याग-तत्फले विश्रम्भेण व्यवहर्तुं शक्येते।'

(तै० सं० का० १, प्रपा० १, अनु० १)

वेदका एक दूसरा मन्त्र बहुत स्पष्ट एवं निर्धारणात्मक शब्दों में बतलाता है कि देवता जब स्वयं प्रथम तृप्त हो चुकते हैं, तब यजमान को तृप्त करते हैं—

'तृप्त एव एनमिन्द्रः प्रजया पशुभिश्च तर्पयति।'

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ का केवल अधिभूत ही प्रयोजन नहीं है, उसका वास्तविक प्रयोजन तो आधि-दैविक है। अतः इस सम्बन्ध में जो भ्रमात्मक धारणाएँ फैल रही हैं, उनका कोई आदर न होना चाहिये।

—:०:—

गृहस्थके पञ्चमहायज्ञका विवरण

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। जिन कर्मों के करने से किसी फल की प्राप्ति न होती हो और न

करने से पाप लगे, उन्हें *नित्य कहते हैं; जैसे त्रिकालसन्ध्या, पञ्च-महायज्ञ इत्यादि।

पञ्चमहायज्ञ करने से आत्मोन्नति आदि अवान्तर फल की प्राप्ति होने पर भी 'पञ्चसूना' दोष से छुटकारा पाने के लिये शास्त्रकारों की आज्ञा है कि—

'सर्वैर्गृहस्थैः पञ्चमहायज्ञा अहरहः कर्तव्याः।'

अर्थात् गृहस्थमात्र को प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करने चाहिएँ। इससे यह स्पष्ट है कि पञ्चमहायज्ञ करने से पुण्य की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु न करने से पाप का प्रादुर्भाव अवश्य होता है।

हम लोगों की जीवनयात्रा में सहज ही हजारों जन्तुओं की प्रतिदिन हिंसा होती है; जैसे—चलने-फिरने में, भोजन के प्रत्येक ग्रास में तथा श्वास-प्रश्वास में जीव की हिंसा अवश्य होती है। प्राणधारी मनुष्य के लिये इन पापों से बचना कदापि सम्भव नहीं है। अतः इन पापों से मुक्त होने के लिये ही महामहिमशाली महर्षियों ने 'पञ्चमहायज्ञ' का विधान बताया है। भगवान् मनु कहते हैं—

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भस्य बाध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

(३।६८, ६९)

---

* पूर्व कर्मानुसार जन्म ग्रहण कर जो मनुष्य जिस कक्षा (श्रेणी) में प्रविष्ट होता है, उसमें अपनी स्थिति बनी रहे, इसके लिये ही उसे अपनी कक्षा के योग्य समस्त कर्म करने पड़ते हैं, जिससे उसका उक्त स्थानसे अधःपतन नहीं हो सकता। इसलिये नित्य कर्मोंके करनेसे पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती, बल्कि इन्हें न करनेसे पाप अवश्य लगता है, क्योंकि उनके किये बिना उस कक्षामें स्थायी स्थिति सर्वथा असम्भव है।

'प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ चूल्हा, चक्की, बुहारी (झाड़ू), ऊखल और जलपान—ये पाँच प्रकार के हिंसा के स्थान हैं। इनसे होनेवाली हिंसाकी निष्कृति के लिये महर्षियों ने गृहस्थों के लिये प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करने का विधान कहा है।'

पञ्चमहायज्ञ

पञ्चमहायज्ञ का वर्णन प्रायः सभी ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों में किया है, जिनमें से कुछ ऋषियों के वचनों को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

'भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।'

(शतपथब्राह्मण ११।५।५।१)

'पञ्च वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते सतति सन्तिष्ठन्ते देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्ययज्ञो भूतयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।'

(तैत्तिरीयारण्यक २।१०)

'अथातः पञ्चमहायज्ञा देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञ इति।'

(आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।१।१)

देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात्।
महासत्राणि जानीयात्त एव हि महामखाः॥

(छन्दोगपरिशिष्ट)

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः।
भूतपित्रमरब्रह्म मनुष्याणां महामखाः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय १०२)

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

(मनुस्मृति ३।७०)

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

(कालिकापुराण ३२।१६)

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ।
नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

जो मनुष्य पूर्वकथित पञ्चमहायज्ञ के द्वारा देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग, पितृलोक और आत्मा—इन पाँचों को अन्नादि नहीं देते, वे जीते हुए भी मरे के समान हैं अर्थात् उनका जीवन निष्फल है ।

भगवान् मनु की आज्ञा है कि—

पञ्चैतान् यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥

(मनु० ३।७१)

'जो गृहस्थ शक्ति के अनुकूल इन पञ्चमहायज्ञों का एक दिन भी परित्याग नहीं करते, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी प्रतिदिन के पञ्चसूनाजनित पापके भागी नहीं होते ।'

महर्षि गर्ग ने भी कहा है—

पञ्चयज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमी ।
तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः ॥

महर्षि हारीत ने कहा है—

यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान् द्विजः ।
सम्यक् पञ्चमहायज्ञे दरिद्रस्तदवाप्नुयात् ॥

'धनवान् द्विज सोमयाग करके जो फल प्राप्त करता है, उसी फलको दरिद्र पञ्चमहायज्ञ के द्वारा प्राप्त कर सकता है ।'

पञ्चमहायज्ञके अनुष्ठानसे समस्त प्राणियोंकी तृप्ति होती है, इस प्रकारका सङ्केत भगवान् मनु ने मनुस्मृति के तृतीय अध्यायके ८०, ८१ और ७५ श्लोकमें किया है।

पञ्चमहायज्ञ करनेसे अन्नादिकी शुद्धि और पापोंका क्षय होता है। पञ्चमहायज्ञ किये बिना भोजन करनेसे पाप लगता है। देखिये, आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णने गीता (३।१३) में क्या कहा है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

'यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष पञ्चहत्याजनित समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, किन्तु जो पापी केवल अपने लिये ही पाक बनाते हैं, वे पापका ही भक्षण करते हैं।'

महाभारतमें भी कहा है—

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः॥

'जो प्रतिदिन इन पञ्चमहायज्ञों को किये बिना भोजन करते हैं, वे केवल मल खाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

अतः पञ्चमहायज्ञ करके ही गृहस्थोंको भोजन करना चाहिये। पञ्चमहायज्ञके महत्त्व एवं इसके यथार्थ स्वरूप को जानकर द्विजमात्र का कर्त्तव्य है कि वे अवश्य *पञ्चमहायज्ञ किया करें—ऐसा करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सुतरां प्राप्ति होगी।

ब्रह्मयज्ञ

वेदोंके पठन—पाठनको ‡'ब्रह्मयज्ञ' कहते हैं। वेदमें कर्मकाण्ड,

---

* पञ्चमहायज्ञको ही 'बलिवैश्वदेव' कहते हैं।

‡ मनु भगवान् ने तो 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' ही लिखा है, परन्तु— 'गुरावध्ययनं कुर्वञ्छुश्रूषादि समाचरेत्।

उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें 'ज्ञान' की ही प्रधानता और परमावश्यकता बतलायी गई है। ज्ञानके ही कारण जीवान्तर की अपेक्षासे मनुष्य-देह उत्तम माना गया है। शास्त्रोक्त सदाचार तथा धर्मानुष्ठानमें तत्पर रहना ही मनुष्यकी मनुष्यता है और वही मनुष्य वास्तविक मनुष्यत्वका अधिकारी समझा जाता है। इसके बाद कर्मकाण्डद्वारा अन्तःकारणकी शुद्धि हो जाने पर मनुष्य उपासनाकाण्डका अधिकारी बनता है, तदनन्तर भगवत्कृपाकटाक्षके लेशसे ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। यह मनुष्योंका सामान्य उन्नतिक्रम है। क्रमिक उन्नति में ज्ञानका प्राधान्य है। अतः सभी अवस्थाओंमें ज्ञानकी आवश्यकता है। इसलिये प्रथमावस्थामें भी ज्ञानके बिना असदाचरणका परित्याग तथा धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्ति कदापि नहीं हो सकती।

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।'

(मनु० २।२१५)

इस उपदेश के अनुसार बलवान् इन्द्रियसमूह उसमें प्रतिबन्धक अवश्य हैं, तथापि इन्द्रियाँ प्रथमावस्थामें मनुष्यको अपनी ओर प्रवृत्त करती हैं न कि धर्मानुष्ठानादिमें। इसी समय माता, पिता तथा गुरुजन भी धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त तथा अधर्मानुष्ठानमें निवृत्त करते हैं। इस प्रकार सभी अवस्थाओंमें ज्ञानकी ही प्रधानता सिद्ध होती है। अतएव ज्ञानयज्ञरूप स्वाध्याय (वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन) करना चाहिये। अशक्तिमें गायत्री-जपमात्र करना चाहिये।

ब्रह्मयज्ञ करनेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है। ब्रह्मयज्ञ करनेवाला मनुष्य ज्ञानप्रद महर्षिगणका अनृणी और कृतज्ञ हो जाता है।

स सर्वो ब्रह्मयज्ञः स्यात्तपः परममुच्यते ॥'

इस कुल्लूक भट्टकृत भाष्यके अनुसार अध्ययनको 'ब्रह्मयज्ञ' कहते हैं।

देवयज्ञ

अपने इष्टदेवकी उपासनाके लिये परब्रह्म परमात्माके निमित्त अग्निमें किये हुए हवनको 'देवयज्ञ' कहते हैं।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

(गीता ९।२७)

भगवान्के इस वचनसे सिद्ध होता है कि परब्रह्म परमात्मा ही समस्त यज्ञोंके आश्रयभूत हैं। इसलिये ब्रह्मयज्ञमें ऋषिगण, पितृयज्ञमें अर्यमादि नित्य पितृगण और परलोकगामी नैमित्तिक पितृगण, भूतयज्ञमें देवरूप अनेक प्राणियोंको जानकर **'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्'** (गी० १०।४१) इस गीतोक्त भगवद् वचनके अनुसार ईश्वर-विभूतिधारी देवताओंकी जो-जो पूजा कीजाती है, वह सर्वव्यापक अन्तर्यामी परमात्माकी अर्चना (पूजा) के अभ्यासके लिये ही की जाती है।

नित्य और नैमित्तिक-भेदसे देवता दो भागों में विभक्त हैं, उनमें रुद्रगण, वसुगण और इन्द्रादि नित्य देवता कहे जाते हैं और ग्रामदेवता, बनदेवता तथा गृहदेवता आदि नैमित्तिक देवता कहे जाते हैं। दोनों तरहके ही देवता इस यज्ञसे तृप्त होते हैं। जिन देवताओं की कृपासे जड़भावको प्राप्त होते हुए भी विनश्वर कर्मफल उत्पन्न हो रहा है, जिनकी कृपासे समस्त सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है, जिनकी कृपासे संसार के समस्त कार्यकलाप की भलीभाँति उत्पत्ति और रक्षा होती है, उन देवताओंसे उऋण होनेके लिये देवयज्ञ करना परमावश्यक है।

देवयज्ञसे नित्य और नैमित्तिक देवता तृप्त होते हैं।

भूतयज्ञ

कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु और पक्षी आदि की सेवाको 'भूतयज्ञ' कहते हैं।

ईश्वररचित सृष्टि के किसी भी अङ्ग की उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती, क्योंकि सृष्टि के सिर्फ एक ही अङ्ग की सहायता से समस्त अङ्गों की सहायता समझी जाती है, अतः 'भूतयज्ञ' भी परम धर्म है।

प्रत्येक प्राणी अपने सुख के लिये अनेक भूतों (जीवों) को प्रतिदिन क्लेश देता है, क्योंकि ऐसा हुए बिना क्षणमात्र भी शरीर-यात्रा नहीं चल सकती।

प्रत्येक मनुष्यके निःश्वास-प्रश्वास, भोजन-प्राशन, विहार-सञ्चार आदि में अगणित जीवों की हिंसा होती है। निरामिष भोजन करनेवाले लोगों के भोजन के समय भी अगणित जीवों का प्राण-वियोग होता है, आमिषभोजियों की तो कथा ही क्या है ? अतः भूतों (जीवों) से उऋण होने के लिये *'भूतयज्ञ' करना आवश्यक है।

भूतयज्ञसे कृमि, कीट, पशु, पक्षी आदिकी तृप्ति होती है।

पितृयज्ञ

अर्यमादि नित्य पितरों की तथा परलोकगामी नैमित्तिक पितरों की पिण्डप्रदानादि से किये जानेवाले सेवारूप यज्ञको 'पितृयज्ञ' कहते हैं।

---

* देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत्।
अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायसेभ्यश्च निःक्षिपेत्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

'देवयज्ञसे बचे हुए अन्नको जीवोंके लिये भूमि पर डाल देना चाहिये और वह अन्न पशु, पक्षी एवं गौ आदिको देना चाहिये।'

सन्मार्गप्रवर्त्तक माता-पिताकी कृपासे असन्मार्ग से निवृत्त होकर मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति करता है, फिर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सकल पदार्थों को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। ऐसे दयालु पितरों की तृप्ति के लिये, उनके सम्मान के लिये, अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शन तथा उनसे उऋण होने के लिये 'पितृयज्ञ' करना नितान्त आवश्यक है।

पितृयज्ञ से समस्त लोकों की तृप्ति और पितरों की तुष्टि की अभिवृद्धि होती है।

मनुष्ययज्ञ

क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित मनुष्य के घर आ जाने पर उसकी भोजनादि से की जानेवाली सेवारूप यज्ञ को 'मनुष्ययज्ञ' कहते हैं।

अतिथि के घर आ जाने पर वह चाहें किसी जाति या किसी भी सम्प्रदाय का हो, उसे पूज्य समझ कर उसकी पाद्य और अर्घ्यादि से समुचित पूजा कर उसे अन्नादि देना चाहिये। इस विषय की पुष्टि भगवान् मनु ने भी अपनी स्मृति के तीसरे अध्याय (३।९९–१०२, १०७, १११) में विशदरूप से की है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी के सभी समाज–वालों को अतिथि–सेवारूप धर्म का परिपालन अवश्य करना चाहिये।

प्रथमावस्था में मनुष्य अपने शरीरमात्र के सुख से अपने को सुखी समझता है, फिर अपने पुत्र, कलत्र, मित्रादि को सुखी देखकर सुखी होता है। तदनन्तर स्वदेशवासियों को सुखी देखकर सुखी होता है। इसके बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर वह समस्त लोकसमूह को सुखी देखकर सुखी होता है। परन्तु वर्त्तमान समय में एक मनुष्य समस्त प्राणियों की सेवा नहीं कर सकता, इसलिये यथाशक्ति अन्न-

दान द्वारा मनुष्यमात्र की सेवा करना ही 'मनुष्ययज्ञ' कहा जाता है।

मनुष्ययज्ञ से धन, आयु, यश और स्वर्गादि की प्राप्ति होती है।

—:०:—

सर्वं यज्ञमयं जगत्

कालिकापुराण (३१।४०) में लिखा है कि **'सर्वं यज्ञमयं जगत्'**—यह सम्पूर्ण जगत् यज्ञमय है। सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देवपूजन, अतिथिसत्कार, व्रत, जप, तप, कथाश्रवण, तीर्थयात्रा, अध्ययनाध्यापन, खान-पान, शयन, जागरण आदि नित्य और उपनयन, विवाह-संस्कार आदि नैमित्तिक एवं पुत्रेष्टि,राज्यप्राप्ति आदि काम्यकर्म—सभी यज्ञस्वरूप ही हैं। इतना ही नहीं, जीवन-मरण तक को भी यज्ञ का स्वरूप दिया गया है। गीता (४।४८) में भगवान् ने भी द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ आदि का उल्लेख करके इन सभी को यज्ञ का ही रूप दिया है।

गीता (२।३१) में भगवान् ने गर्भाधान और युद्ध को भी यज्ञ बतलाते हुए मनुष्य के धर्म-समन्वित सभी कर्मों को यज्ञ का रूप दिया है। उसका (गीता ३।९) कहना है—

'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।'

अर्थात् मनुष्य के समस्त कर्म यज्ञ के लिये ही होने चाहिएँ। इस तरह मनुष्य के धर्म-समन्वित सभी सत्कर्म यज्ञ हो सकते हैं, बशर्ते वे स्वेच्छाचारिता से प्रेरित न होकर वेदादि सद्ग्रन्थों पर आधृत हों। शास्त्रों के अनुकूल होनेवाले यज्ञ ही फलप्रद और महत्त्वप्रद होते हैं।

हिन्दूधर्म में गृहस्थ-जीवन को भी एक यज्ञ का स्वरूप दिया गया है। इस यज्ञ में विवाहिता धर्मपत्नी को जीवनपर्यन्त अपने पति की सदा सेवा, सहायता और आज्ञा का पालन करना पड़ता है। महाकवि कालिदास ने गृहस्थाश्रम में परिनिष्ठित आदर्श पति-पत्नी का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है—

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥

(रघुवंश १।५६)

गृहस्थ-धर्म के महान् आदर्शस्वरूप भगवान् राम ने अपने पिता दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष का जो 'वनवास' स्वीकार किया था, उस यज्ञ को साङ्गोपाङ्ग परिपूर्ण करने के लिये ही 'सीता वनवास' हुआ था। भगवान् राम के सेवार्थ सीता का वनवास भी एक महान् यज्ञ था, जिस यज्ञ को हिन्दू-जाति कभी भी भूल नहीं सकती।

इसी प्रकार भगवान् शङ्करद्वारा माता पार्वती का भगवान् राम की कथा का श्रवण करना और भगवान् कृष्ण का धर्मसंस्थापनार्थ अवतार लेकर गो-सेवा करना, साधु-सन्तों का दुःखों से उद्धार करना और माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की सेवा करना—ये सभी यज्ञ ही कहे जायँगे।

भगवान् राम का पूरा जीवन ही यज्ञमय था और उसीसे आज हम भगवान् राम को आदर्श और पूज्य मानकर उनकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण का भी जीवन यज्ञमय था, जिस कारण आज हम उनकी यज्ञपुरुष भगवान् के रूप में पूजा-अर्चा करते हैं—**'यज्ञो वै विष्णुः'** (शतपथ ब्रा० १।१।२।१३)। इस तरह स्पष्ट है कि जिस प्रकार भगवान् राम और कृष्ण ने अपना

समूचा जीवन यज्ञमय बिताया था, उसी प्रकार हमें भी अपना समग्र जीवन यज्ञमय बिताना चाहिये।

ब्रह्मचर्य को भी यज्ञ कहा गया है। ब्रह्मचर्यरूपी यज्ञकी साधना बड़ी कठिन है। इसकी साधन-सिद्धिमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी असफल हो जाते हैं। जो लोग ब्रह्मचर्यरूपी यज्ञपर विजय प्राप्त कर लेते हैं वे विश्वविजयी बन जाते हैं और उनका जीवन दिव्य और बलिष्ठ बन जाता है। ब्रह्मचर्यरूपी यज्ञ की साधनाद्वारा देवताओंने मृत्युको भी जीत लिया था। भीष्मपितामहकी ब्रह्मचर्य-साधना तो प्रसिद्ध ही है, जिन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रतपालन के प्रभाव से मृत्युको अपने वश में कर लिया था। केवल ब्रह्मचर्य ही ऐसा महान् यज्ञ है जिसके ठीक पालनसे गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम तक सुखद और सुव्यवस्थित बन जाते हैं। अतः हमें भी ब्रह्मचर्यरूप यज्ञका पालन और संरक्षण करते हुए उसकी जड़को सर्वदा सुदृढ़ रखना चाहिये, जिससे हमारी सभी कामनाएँ सिद्ध हों।

भगवत्प्रार्थना भी एक महान् यज्ञ है। भगवत्प्रार्थनारूपी यज्ञसे अनेक लाभ होते हैं। महात्मा गान्धी तो प्रार्थनारूप यज्ञके मूर्तिमान् स्वरूप थे। वे प्रार्थना को अपना परम धर्म और परम कर्त्तव्य समझते थे। प्रार्थनाके बिना वे जीवन व्यर्थ समझते थे। उन्हें प्रार्थना से सुख-शान्ति मिलती थी। इसीलिये वे प्रतिदिन नियत समय पर प्रार्थना-सभामें सम्मिलित होकर भगवच्चिन्तन करते थे। अनेक अत्यावश्यक कार्यों को छोड़कर भी समय पर वे प्रार्थनामें सम्मिलित होते थे। यही कारण था कि उनके प्राणोंका विसर्जन (आहुति) भी भगवत्प्रार्थना करते समय भगवान् का पावन नाम 'राम-राम' उच्चारण करते हुए हुआ था। गान्धीजीका यह देवतुल्य प्राण-विसर्जन यज्ञमय ही था, जो बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वानों को भी दुर्लभ है।

धर्मार्थ बलिदानको भी यज्ञ कहा गया है। हमारा देश सदैवसे धर्मप्रधान रहा है। हमारे देशमें धर्मवीरोंकी कमी नहीं रही है। इस देशके वासी धर्मके रक्षार्थ समय-समय पर हँसी-खुशीसे अपने अपने सिर दे देते थे, जिनकी पवित्र गाथाओंसे हमारे इतिहासके पृष्ठ गौरवान्वित हैं। धर्मप्रेमियोंका स्वधर्मकी रक्षाके लिये, मानवता की रक्षाके लिये, गो-ब्राह्मणकी रक्षाके लिये, देवमन्दिरोंकी रक्षाके लिये और देशको स्वातन्त्र्य दिलानेके लिये अपने शरीरका बलिदान देना भी यज्ञ है। आजके युगमें धर्मरक्षार्थ बलिदान-यज्ञ दुर्लभ हो गये हैं और **अब** इन महान् बलिदान-यज्ञों की कथामात्र शेष रह गई है।

समाज-सेवाको भी यज्ञ कहा गया है। मानव के लिये समाज-सेवारूपी **यज्ञ** बहुत ही आवश्यक और कल्याणकारी है। मानव-शरीर पाकर **केवल** अपना उदर-पोषण करना, अपना स्वार्थ-साधन करना और अपना ही हित-साधन करना मानव-जीवन का उद्देश्य नहीं है। मानव-जीवन व्यक्तिशः अपने लिये ही न होकर समस्त समाज के हित के लिये होना चाहिये। अतः जो मनुष्य समाज-सेवा को यज्ञ का रूप देकर समाज के हित का ध्यान रखता है, समाज की चिन्ता करता है एवं समाज की सेवा और रक्षा में अपने जीवन को होम देता है, वही सच्चा याज्ञिक है और उसीका जीवन यज्ञमय कहा जाता है। समाज-सेवारूपी यज्ञ यदि निष्काम-भाव से किया जाय, तो वह मनुष्य को अनन्त सुख-शान्ति प्रदान करता है।

परोपकार की भी यज्ञ में गणना की गई है। शास्त्रों में परोपकाररूपी यज्ञ की विशेष महिमा लिखी है। मनुष्य-शरीर पाकर जिसने परोपकार जैसा महत्त्वपूर्ण यज्ञ नहीं किया, उसका जीवन ही व्यर्थ है। अतः परोपकार-यज्ञ को अवश्य अपनाना चाहिये। परोपकार-

यज्ञ को अपनाने से मानव-जीवन सार्थक और प्रशंसनीय होता है। यह परोपकार-यज्ञ विभिन्न रूपों में किये जा सकते हैं। जैसे—दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझकर उनके सुख-दुःख में सदा काम आना, दूसरों के हित में सदा तत्पर रहना और दूसरों की सेवा-शुश्रूषार्थ सदा संल्लग्न रहना, ये भी यज्ञ कहे जाते हैं। इसी प्रकार भूमिहीनों को भूमि देना, निर्धनों को धन देना, निर्बलों को विविध रूप में बल प्रदान करना, विद्याहीनों को विद्या देना, साधन-हीनों को साधनसम्पन्न करना और दीन-हीन अनाथों का पालन करना भी परोपकारमय यज्ञ कहे जाते हैं। आज के युग में इन्हीं परोपकारी यज्ञों की विशेष आवश्यकता है।

भूदान (पृथ्वीदान), गृहदान, द्रव्यदान, विद्यादान, अन्नदान, श्रमदान, वाणीदान (धर्मोपदेश) और अभयदान—ये सभी यज्ञ कहे जाते हैं। ये दानात्मक यज्ञ नये नहीं, सनातन, अत्यन्त प्राचीन हैं। जिस प्रकार आज स्वतन्त्र भारत में त्यागी विरक्त शान्ति-सेनानी श्री विनोबा भावे द्वारा 'भूदानयज्ञ' बहुत प्रगति से चल रहा है, उसी प्रकार पूर्वकाल में भी भूदान, गृहदान आदि अनेक प्रकार के लोकोप-कारक यज्ञ विश्वकल्याणार्थ हुआ करते थे। किन्तु आज के स्वार्थ-परायण अब इन लोकोपकारक यज्ञों को सर्वथा भूल गये। पहले जब ये लोकोपकारक यज्ञ हुआ करते थे, उस समय हमारा यह देश सब प्रकार से समृद्ध और सुखी था। यदि हम पुनः भूदान-यज्ञ, गृहदान-यज्ञ, अन्नदान-यज्ञ और द्रव्यदान-यज्ञ जैसे लोकोपकारी यज्ञों को अपना लें, तो हमारा देश पुनः उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो सकता है।

महात्मा गान्धीजी के अहिंसा और सत्यपालनरूपी दो यज्ञ विश्व-विख्यात हैं। महात्मा गान्धी ने इन्हीं दो यज्ञों को अपनाकर हमारे

भारतवर्ष को परतन्त्रता की कठिन बेड़ी से मुक्त कराकर स्वतन्त्र कर दिया था। उनकी कृपा से आज हमारा भारतवर्ष और हम स्वतन्त्र हैं। आज के स्वातन्त्र्य युग में अहिंसा और सत्यपालन जैसे यज्ञों की विशेष आवश्यकता है। किन्तु इन यज्ञों में निःस्वार्थ भाव की प्रधानता के साथ जगत्कल्याण की भावना विशेष रूप से निहित होनी चाहिये। जो यज्ञ जगत्कल्याण की भावना से भूषित होंगे, वे ही यज्ञ देश और समाज का कल्याण कर सकते हैं। अन्यथा यज्ञों से देश और समाज का कल्याण होना तो दूर रहा, प्रत्युत वे देश और समाज के सम्मुख विशेष अश्रद्धा की वस्तु बन जायँगे।

आजकल दरिद्रनारायणों को भोजन कराने की विशेष प्रथा प्रचलित है। दरिद्रनारायणों को भोजन कराना भी एक प्रकार का 'यज्ञ' ही है।

शास्त्रों में 'नारायण' शब्द की विशेष महिमा है। 'नारायण' शब्द जिस शब्द के साथ जोड़ दिया जाता है, उस शब्द की भी महिमा बढ़ जाती है और वह शब्द 'देवमय' अथवा 'यज्ञमय' बन जाता है।

'नारायण' शब्द 'दरिद्र' शब्द के साथ लग जाने से 'दरिद्र-नारायण' बन जाता है, जो कि भगवान् 'नारायण' के नाम को व्यक्त करता है। नारायण शब्द की एक विचित्र बात यह है कि वह 'दरिद्र' शब्द के साथ लगकर जितना सुन्दर और श्रेष्ठ लगता है, उतना 'धनिक' शब्द के साथ लगकर श्रेष्ठ और शोभायमान नहीं लगता। यदि 'नारायण' शब्द को 'धनिक' शब्द के साथ सम्बन्धित कर दिया जाय, तो 'धनिक नारायण' शब्द होगा, किन्तु उसका वह महत्त्व नहीं होता, जो 'दरिद्र-नारायण' शब्द के साथ जुड़कर

होता है। यही कारण है कि जिस प्रकार नारायण शब्द 'दरिद्र' शब्द के साथ जुड़ने से शोभा देता है, उस प्रकार वह 'धनिक' शब्द के साथ जुड़ने से शोभा नहीं देता। वस्तुतः नारायण-शब्द की महत्ता और मान्यता जितनी 'दरिद्र' शब्द के साथ हो सकती है, उतनी 'धनिक' शब्द के साथ नहीं हो सकती। क्योंकि दरिद्र व्यक्ति ही ठीक-ठीक 'नारायण' का स्मरण कर सकता है, धनिक नहीं कर सकता। अतः 'नारायण' भी सर्वदा 'दरिद्र' का ही साथ देते हैं, 'धनिक' का नहीं। अतः भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन दरिद्रों (निर्धनों) में ही हो सकते हैं, धनिकों में नहीं। इसलिये भगवान् के प्रतिनिधि-स्वरूप दरिद्रनारायणों की सहायता और सेवा विशेष रूप से करनी चाहिये। दरिद्रनारायणों की सेवा साक्षात् भगवान् की सेवा है।

वेदों, उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में भी लिखा है कि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञमय है। यदि मनुष्य अपना जीवन शास्त्रोक्त विधि से व्यतीत करे तो उसका जीवन यज्ञमय बन जाता है। देखिये, उपनिषद् क्या कहती है—

'पुरुष का जीवन निश्चित ही एक यज्ञ है। पुरुष की आयु के जो प्रथम चौबीस वर्ष हैं, वे प्रातःसवन हैं। पुरुष की आयु के जो अग्रिम चौवालीस वर्ष हैं, वे माध्यन्दिन सवन हैं और पुरुष की आयु के जो अग्रिम अड़तालीस वर्ष हैं, वे तृतीय-सवन हैं। इस प्रकार पुरुष के जीवन में ११६ वर्ष पर्यन्त चलनेवाला यज्ञ कहा गया है। अतः जो पुरुष अपने जीवन के प्रारम्भिक चौवालीस वर्षों में प्रातः-सवन की, उसके बाद वाले चौवालीस वर्षों में माध्यन्दिन सवन की और अन्तिम अड़तालीस वर्षों में तृतीय सवन की भावना करता हुआ शास्त्रोक्त विधि से जीवन व्यतीत करता है, वह ११६ वर्ष तक

स्वस्थतापूर्वक जीवित रहता है और वह अल्पायु को प्राप्त नहीं होता[1]।' (छान्दोग्योपनिषद् ३।१६)

'हे गौतम ! पुरुष ही अग्नि है, उसकी वाणी ही समिधा है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, चक्षु अङ्गारे हैं, कान चिनगारियाँ हैं, उसी अग्नि में देवगण अन्न का होम करते हैं, उस आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है।

'हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है, उसका उपस्थ (लिङ्गेन्द्रिय) ही समिधा है, पुरुष जो उपमन्त्रण (रहः-संल्लाप) करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है, प्रसङ्ग (मैथुन) अङ्गारे हैं और उससे जो विषयजन्य सुख प्रतीत होता है, वह चिनगारियाँ हैं, उसी अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं। उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है।' (छान्दोग्योपनिषद् ५।७–८)

'हमलोग प्रतिदिन भोजन करते हैं। भोजन के समय यदि हम प्रारम्भमें पाँच ग्रासोंका शास्त्रीय विधिसे भोजन करें तो हमारा भोजन 'अग्निहोत्र-यज्ञ' बन जाता है, जिससे हमें सन्तति, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेजकी प्राप्ति होती है और हमारे समस्त पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं।' (छान्दोग्योपनिषद् ५।१८-२४)

१-श्रौतयज्ञों में प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और तृतीयसवन—ये तीन सवन होते हैं। इनमें प्रातःसवन का सम्बन्ध चौबीस अक्षरवाले गायत्री छन्द और वसु देवताओं से है। माध्यन्दिन सवन का सम्बन्ध चौवालीस अक्षरवाले त्रिष्टुप् छन्द और रुद्र देवताओंसे है और तृतीय सवनका सम्बन्ध अड़तालीस अक्षर वाले जगती छन्द और आदित्य देवताओं से है। इन तीनों सवनों के देवता शास्त्रोक्त विधि से यज्ञमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों के कष्टों को दूर कर नीरोग बनाते हैं, जिनसे मनुष्य ११६ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

'द्युलोक, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और पत्नीमें यज्ञ की भावना प्रदर्शित की गई है। इनमें ठीक-ठीक यज्ञ का अनुसन्धान किया जाय तो अनुसन्धानकर्त्ता को ब्रह्म-लोक की प्राप्ति होती है जिससे वह जनन-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।' (बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।६–१५)

'पुरुष ही यज्ञ है। क्योंकि पुरुष ही यज्ञ को करता है और पुरुष उतना ही सत्कर्म करता है जितना वह स्वयं होता है। अतः पुरुष ही यज्ञ है।' (शतपथ ब्रा० १।३।२)

जिस प्रकार मनुष्योंका यज्ञ नित्य हुआ करता है, उसी प्रकार प्रकृतिका भी यज्ञ नित्य हुआ करता है। जैसे––आकाश में जो सूर्य है, उसे 'यज्ञ-कुण्ड' कहा जाता है। उसमें जो जल है उसे 'हवनीय पदार्थ' कहा गया है। सूर्य अपनी स्वर्णमयी किरणों द्वारा समस्त प्राणियों तथा वनस्पतियोंको प्रकाश और उष्णता देकर जीवन-शक्ति देता है। इसीलिये सूर्यको प्राणिमात्र का जीवन कहा है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।' (शु० यजु० ७।४२)

पृथ्वीको 'यज्ञ-कुण्ड' कहा गया है, उसमें वीजका वपन करना 'आहुति' डालना कहा गया है। जिस प्रकार अग्निमें डाला हुआ 'हवनीय पदार्थ' भस्म होकर देवताओंको प्राप्त होता है और उससे देवगण प्रसन्न होकर समस्त विश्वका कल्याण करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीमें डाला हुआ बीज भी मिट्टीमें मिलकर सूर्य, जल और वायु आदि देवताओंकी सहायतासे वृक्ष, लता आदि रूपोंमें परिणत होकर विविध पुष्पों, फलों और अन्नों-द्वारा प्राणिमात्रका कल्याण करते हैं।

जिस प्रकार प्रकृतिका यज्ञ नित्य-निरन्तर हुआ करता है उसी प्रकार देवताओंका भी यज्ञ नित्य-निरन्तर चलता रहता है।

जैसे—सूर्यदेव हमें प्रकाश देते हैं, चन्द्रमा हमें शीतलता देते हैं, अग्नि हमें उष्णता देते हैं, वायु प्राणशक्ति (जीवनशक्ति) देते हैं, गङ्गा आदि नदियाँ हमें सुमधुर पवित्र जल देती हैं, वृक्ष हमें फल, पुष्प और छाया देते हैं और पृथ्वी हमें चलने-फिरने एवं निवासके लिये स्थान देती है तथा भोजनके लिये अन्न, फल आदि पदार्थोंको देती है। इस प्रकार जगत्कल्याणार्थ देवताओंका विविध रूपमें यज्ञ चलता रहता है।

गीतामें भगवान्‌के—

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'
(९।२७)

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'
(९।३४)

—इत्यादि वचनोंसे सिद्ध होता है कि संसारके समस्त पदार्थ यज्ञ-स्वरूप हैं और उन समस्त यज्ञोंके आश्रयभूत परब्रह्म परमात्मा ही हैं।

'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।'
(गीता ७।७)

'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।'
(गीता १०।८)

इस प्रकार जब सांसारिक सभी चल-अचल वस्तुएँ यज्ञ ही हैं तब उन सभी यज्ञोंका अनुष्ठान सविधि और सनियम करना चाहिये, जिससे वे यज्ञ मानव-मात्रके लिये कल्याणकारी बनें। जो लोग

यज्ञोंके प्रति श्रद्धा नहीं रखते, वे विविध अनर्थों के शिकार बनते हैं और ऐसे लोगों के लिये ही **'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'** कहा गया है।

मानवता और यज्ञ

मनुसे उत्पन्न ❀'मानव' कहलाते हैं—**'मनोर्जातास्तु मानवाः'**। मानव में रहनेवाले दया, दान, शील, सौजन्य, क्षमा आदिके समवायरूप लोकोपकारक धर्मको 'मानवता' कहते हैं। इसके विपरीत धर्म (तत्त्व) को 'पशुता' कहते हैं।

'अयं मानवः' यह व्यवहार किस वस्तुको देखकर किया जाता है, इस विषयपर विभिन्न विचार उपस्थित हो सकते हैं। जैसे उदाहरणतः कुछ लोग **'आकृतिग्रहणा जातिः'** (व्याकरण महाभाष्य) इस सिद्धान्तसे मनुष्यके आकार-प्रकारको देखकर उद्बुद्ध होनेवाली जो मनुष्यत्त्व जाति है, उसीको मनुष्य-शब्दका प्रयोजक धर्म कहते हैं, किन्तु व्यवहारमें जब कोई किसी मनुष्यको देखकर कहता है कि 'यह मनुष्य है' तो यहाँ पर मनुष्यत्व—जाति मनुष्य-शब्दार्थ प्रयोगका हेतु नहीं है, बल्कि मनुष्यमें रहनेवाला वह एक असाधारण धर्म है, जिसे 'मानवता' कहते हैं। जो सत्यवाक्य हो, दृढ़व्रत हो, निर्भीक हो, धर्मज्ञ हो, धर्मतत्पर हो तथा कृतज्ञ हो, ऐसे महापुरुषमें रहनेवाले धर्म—विशेषको 'मानवता' कहते हैं, न कि

❀ मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः।

(अमरकोश, मनुष्यवर्ग १)

समस्त पामरापामरमें रहनेवाले आकृत्या व्यङ्ग्य मनुष्यत्त्व जातिमें रहनेवाले धर्मको। जिस प्रकार '**रविकिरणानुगृहीतानि भवन्ति कमलानि कमलानि**' इत्यादि वाक्योंमें द्वितीय कमलका ही लक्षणया सौरभादि समुचित गुणोंसे विशिष्ट कमलका अर्थ किया जाता है, ठीक उसी प्रकार किसी मनुष्य-विशेषके लिये '**मानवोऽयम्**' यह व्यवहार किया जाता है। यहाँ मनुष्य शब्दका लोक और शास्त्र उभयसम्मत अनन्त उज्ज्वल गुणविशिष्ट मनुष्य, यही अर्थ किया जाता है। मानव-सम्बन्धी इन्हीं उज्ज्वल गुणोंको 'मानवता' शब्दसे पुकारा जाता है।

मानवता—गुण-विशिष्ट मानवमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है, जिससे उसमें त्याग, तप, सत्य, सदाचार, परोपकार और अहिंसादि शम-दम—ये गुण स्वभावतः पाये जाते हैं। मानवता-गुण-विशिष्ट व्यक्ति सर्वदा सिद्धसङ्कल्प, सर्वसुहृद्, समदर्शी और सर्वहितैषी होता है। वह आत्मा और परमात्मामें भेद नहीं समझता। वह धर्मके बल पर सदा निर्भय रहता है और '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के अनुसार प्राणिमात्रको अपना समझकर उनपर दया और प्रेमभाव रखता है। वह अपने प्रत्येक कार्यमें लोकोपकारकी सद्भावनाका ध्यान रखता हुआ प्राणिमात्रके लिये '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' की कामना करता है।

कलियुग तमःप्रधान युग है, इसमें पापका स्रोत प्रवलरूपसे प्रवाहित रहता है। इस पापरूपी प्रवाहमें प्रवाहित होकर मानव अपने वास्तविक धर्म-कर्मसे विमुख हो गया है, जिससे उसकी मानवताका भी ह्रास होता जा रहा है। मानवताके ह्राससे मानव अपने आदर्शोंसे च्युत होकर संसारकी दृष्टिमें भी गिर जाता है।

प्राचीनकाल में मानव अपनी मानवता की सर्वात्मना रक्षा करते

थे। वे मानवताको अपना परम धन और परम धर्म समझते थे। वे मानवताके बलपर अपना और संसार का कल्याण करते थे। आजके मानव मानवताको खोकर दूसरोंका तो क्या, अपना कल्याण करनेमें भी सर्वथा असमर्थ पाये जाते हैं। मानवताके ह्रास-से देश और समाजकी बहुत बड़ी क्षति होती है। अतः मानवताकी रक्षा और उसका परिज्ञान प्रत्येक मानवको होना ही चाहिये, क्योंकि मानवता ही मानव और अमानवका परिचय कराती है। मानवताके अज्ञानसे मनुष्य भूलकर कभी अमानवको 'मानव' मान ले, तो उसका अनिष्ट होना दुर्निवार है, जिससे वह विभिन्न प्रकारकी आपत्ति, धोखे और कष्टका शिकार बन सकता है। अतः मानवमात्रको मानवताका ज्ञान होना परमावश्यक है, क्योंकि मानवता ही मानवको स्वाभिमानकी प्रेरणा देती है, जिससे वह अपने सम्मानपूर्ण जीवनके लिये प्रेरित होकर स्वतन्त्रताकी प्राप्ति और परतन्त्रताकी निवृत्ति के लिये प्रयत्न करता है।

मानव-जीवनमें मानवताकी विशेष आवश्यकता है। संसार में जिन महापुरुषोंने यश-कीर्तिकी प्राप्ति की है और जो आज भी कर रहे हैं, वह केवल मानवताके बल पर। मानवताके बिना हमारा ज्ञान-विज्ञान, धर्माधर्म, विशिष्ट पाण्डित्य और परोपदेश आदि सभी व्यर्थ हैं। अतः मानवताके रक्षण और पालन पर मानव-को विशेष ध्यान देना चाहिये।

आज 'स्वराज्य-प्राप्ति' अर्थात् देशके स्वतन्त्र होनेके बाद भी हमारे देशमें जो अनेक प्रकारके अनर्थ हो रहे हैं, वे एकमात्र मान-वताके ह्राससे। प्राचीन ऋषि-महर्षियों, विद्वानों तथा आधुनिक विज्ञानवादियोंका कथन है कि 'मानवकी सर्वविध उन्नतिका एक-मात्र साधन उसकी मानवता है।'

संसारकी सभी वस्तुएँ आधेय और आधार पर निर्भर रहा करती हैं। अतः आधेयका आधारके विना काम नहीं चल सकता और आधारका आधेयके विना काम नहीं चल सकता। ठीक यही व्यवस्था मानवकी भी है। मानव आधेय है और उसकी मानवता आधार है। मानवतारूप आधारके बिना आधेय अर्थात् मानवकी रक्षा कथमपि नहीं हो सकती। अतः धार्मिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक——सभी दृष्टियोंसे मानवको सर्वात्मना अपनी मानवताकी रक्षा करनी चाहिये।

जिस प्रकार मानवके लिये अपने जीवनमें मानवताका रक्षण और पालन आवश्यक है, उसी प्रकार उसके लिये यज्ञका रक्षण और पालन भी परमावश्यक है। यज्ञके विना मानवकी और मानवमें रहनेवाली मानवताकी रक्षा कथमपि नहीं हो सकती। अतः मानवको अपने जीवनके सर्वविध कल्याणार्थ यज्ञ—धर्मको अपनाना चाहिये। मानवका और यज्ञका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध सृष्टिके प्रारम्भ कालसे ही चला आ रहा है। वस्तुतः देखा जाय तो मानव-जातिके जीवनका प्रारम्भ ही यज्ञसे होता है। इस विषयका स्पष्टीकरण गीतामें भी किया गया है——

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(३।१०-११)

'प्रजापति (ब्रह्मा) ने सृष्टि-रचनाके समय यज्ञके साथ मानव-जातिको उत्पन्न करके उनसे कहा—'इस यज्ञके द्वारा तुम्हारी उन्नति

होगी और यह यज्ञ तुम्हारे लिये मनोभिलषित फलको देनेवाला होगा। तुम इस यज्ञके द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करो और देवता तुमलोगों को यज्ञ-फल-प्रदानके द्वारा सन्तुष्ट करेंगे। इस प्रकार परस्पर तुम दोनों अत्यन्त कल्याण-पदको प्राप्त करो।'

पद्मपुराणमें भी आया है—

यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार ह।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम्॥
(सृष्टिखण्ड ३।१२३)

'हे महाभाग! ब्रह्माजीने यज्ञ-कर्मके लिये ही यज्ञके श्रेष्ठ साधन चातुर्वर्ण्यके रूपमें मानवकी रचना की।'

विष्णुपुराण (१।६।७) में भी लिखा है—

यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम्॥

इस संसारमें प्राणिमात्रकी यह स्वाभाविक अभिवाञ्छा रहती है कि मैं जीवनपर्यन्त सुखी रहूँ और मुझे इस लोकमें धन-धान्य, पत्नी–पुत्र, गृह–उपवन आदि परम ऐश्वर्यप्रद भोग्य-पदार्थ प्राप्त हों और शरीर-त्यागके अनन्तर मुझे परलोकमें सहृदय हृदयके द्वारा परिज्ञात अनिर्वचनीय परम पुरुषार्थस्वरूप स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति हो। किन्तु पूर्व पुण्य-पुञ्जके प्रभावके बिना कोई भी शरीर-धारी मानव ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख-विशेषकी प्राप्ति कथमपि नहींकर सकता, यह शास्त्रोंका अटल और परम सिद्धान्त है। वह पुण्य धर्मका ही दूसरा नाम है, जो कि सत्कर्मानुष्ठानद्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

भगवती श्रुति कहती है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(ईशोपनिषद् २)

'शास्त्रविहित मुक्तिप्रद निष्काम यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मोंको करते हुए ही जीव इस जगत्में सौ वर्ष-पर्यन्त जीनेकी इच्छा करे। इस प्रकार किये जानेवाले कर्म तुझ शरीरधारी मनुष्यमें लिप्त नहीं होंगे। इससे पृथक् और कोई मार्ग नहीं है, जिससे मनुष्य कर्मसे मुक्त हो सके।'

यह श्रुति मानवोंको सत्कर्मकी ओर विशेषरूपसे प्रेरित करती है।

गीता माता भी कहती है—

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

(६।४०)

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

(३।२०)

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥

(५।२)

इन प्रमाणोंद्वारा इस कर्ममय संसारमें समस्त मनुष्योंको कर्मठ बनानेके लिये गीता भी माताकी तरह अपने यज्ञप्रेमी पुत्रोंको कल्याणार्थ उपदेश करती है। अतएव—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

(गीता ३।१४)

इस प्रमाणसे सिद्ध है कि व्यावहारिक और पारमार्थिक सभी कार्य यज्ञादि उत्तम क्रिया-कलापके ऊपर ही निर्भर है।

अत्यन्त प्रबल वेगशाली विषय-जालस्वरूप भयङ्कर सर्पसे ग्रसित इस कराल कलिकालमें यज्ञ ही ऐसा अपूर्व पदार्थ है, जिसको प्राप्तकर अनादिकालसे तीक्ष्ण विषय-विष-वासनाओंसे व्याप्त अन्तःकरणवाले और क्लेशकर्मविपाक—स्वरूप नाना प्रकारकी कष्टप्रद वासनाओंसे दग्ध होनेवाले एवं विविध तापोंसे तप्त होनेवाले मानव स्वदुःखनिवृत्त्यर्थ अभिलाषा करते हैं, किन्तु अविद्यासे ग्रसित होनेके कारण घोर कष्टोंसे मुक्त होनेमें असमर्थ होते हुए भी वे यज्ञद्वारा दुस्तर संसारसागरको भलीभाँति पार कर जाते हैं।

अधिक क्या, जगन्नियन्ता परमेश्वर भी यज्ञस्वरूपसे ही पूर्ण प्रकाशमान होता हुआ यज्ञपरायण पुरुषोंसे पूजित होकर 'यज्ञपुरुष' पदसे व्यवहृत होता है—'**यज्ञो वै पुरुषः।**' (शतपथब्राह्मण)। उस यज्ञ—शब्दकी यौगिक व्युत्पत्ति कल्पवृक्षकी तरह समस्त अभीष्टको परिपूर्ण करनेके लिये पूर्ण समर्थ है, तथा किसी सर्वातिशायी विलक्षण अर्थका प्रतिपादन करनेवाली एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

'**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (३।३। ९०) इस पाणिनीय धातुपाठके अनुसार यज् धातुसे 'नङ' प्रत्यय करनेपर 'यज्ञ' शब्द निष्पन्न होता है। वह यज्ञ विष्णु आदि देवताओंके पूजन, ऋषि-महर्षि एवं सज्जन पुरुषोंके सत्सङ्ग और सुवर्ण—रजत आदि उत्तम द्रव्योंके प्रदानद्वारा सम्पादित होता है, उस महामहिमशाली धार्मिक यज्ञका अनुष्ठान कर्तव्यरूपसे यज्ञाधिकारी मानवको अवश्य करना

चाहिये। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यज्ञोंमें इन्द्रादि देवताओंका पूजन तथा देवसदृश ऋषि-मुनि एवं श्रेष्ठ मानवोंके सत्सङ्गका लाभ और विविध वस्तुओंका दान होता है। अतः यज्ञोंमें होनेवाले उक्त तीन प्रकारके सत्कार्योंसे मानवोंके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—ये तीनों ताप अनायास ही समूल नष्ट हो जाते हैं, यह ध्रुव है।

—:०:—

गीता और यज्ञ

मानव-जातिके जीवनका प्रारम्भ यज्ञ से ही होता है। अतः मानवके लिये यज्ञ बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञको मनुष्यके लिये 'इष्टकामधुक्' कहते हुए बतलाया है कि—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३।१०-११)

'प्रजापतिने यज्ञके साथ प्रजाको उत्पन्नकर कहा कि इस यज्ञके द्वारा ही तुम समृद्धिको प्राप्त हो। यह यज्ञ तुम सभीके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हो। यज्ञद्वारा तुम समस्त देवताओंको आप्यायन करो, जिससे देवगण भी फल प्रदानद्वारा तुम सबको आप्यायित करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरेका आप्यायन-संवर्धन करते हुए परम श्रेयके भागी होंगे।'

यज्ञपुरुष भगवान्ने यज्ञके साथ मनुष्यको उत्पन्नकर जीवन-पर्यन्त यज्ञ से सम्बन्धित रहने की उसे आज्ञा दी है। अतः मनुष्यका जीवन सर्वदा यज्ञमय होना चाहिये।

यज्ञ हिन्दू-जातिका विशेष धर्म है और वह यज्ञ साक्षात् भगवान् का स्वरूप है। भगवान्का ही दूसरा नाम 'यज्ञ' है। यज्ञमें सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी भगवान् का निवास रहता है।

तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।
(गीता ३।१५)

अतः मनुष्यको यज्ञमें रहनेवाले यज्ञस्वरूप भगवान्की सर्वदा उपासना करनी चाहिये।

गीताके कृष्णका जीवन यज्ञमय था। उन्होंने अपना सारा जीवन यज्ञमय बिताया था। इसीलिये आज सारा संसार उन यज्ञ-पुरुष विष्णु भगवान्का पूजन और यजन करता है—'**यज्ञो वै विष्णुः**' (ऐतरेयब्राह्मण ३४।१)। गीतामें यज्ञपुरुषकी पूजाको बहुत ही महत्त्व दिया है। इसीलिये गीतामें यज्ञ करनेवालोंको प्रशंसनीय एवं बुद्धिमान कहा गया है और यज्ञ न करनेवालोंको निन्दनीय और मूर्ख कहा है। गीतामें उन लोगों की भी बहुत निन्दा की है जो यज्ञों के प्रति संकुचित भाव अथवा यज्ञकी निन्दा करते हैं।

गीतामें भगवान्ने यज्ञका महत्त्व अपने सदृश देते हुए उसकी प्रशंसामें कहा है—

'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।'

अर्थात् याज्ञिक कर्मके अतिरिक्त समस्त कर्म लोकबन्धनकारक हैं। और भी भगवान्ने कहा है—

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥
(गीता ४।२३)

अर्थात् आसक्तिरहित होकर यज्ञ करनेसे मनुष्यकृत समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है।

गीतामें भगवान्‌ने यज्ञादि कर्मको अत्यन्त पवित्र बतलाया है—

'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।'
(गीता १८।५)

अर्थात् यज्ञ, दान और तप—ये तीनों मनुष्योंको पावन करते हैं।

भगवान्‌के बतलाये हुए त्रिविध कर्मोंमेंसे यज्ञ-कर्मको लोकैषणा, एवं स्वर्गादिकी प्राप्ति आदि किसी प्रकारकी स्वार्थ-भावनाको लेकर नहीं करना चाहिये, किन्तु निःस्वार्थभावसे विश्वकल्याणार्थ करना चाहिये। विश्वकल्याणकी भावनासे होनेवाला यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ कहलाता है और वही यज्ञ सफल तथा कल्याणकारी होता है।

श्रुति कहती है—

'यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते ।'
(ऐतरेयब्राह्मण २।१)

अर्थात् यज्ञ जनता—जनार्दनके कल्याणार्थ ही होता है।

गीता (५।२०) में **'भोक्तारं यज्ञतपसाम्'** कहकर भगवान्‌को यज्ञ और तपोंका भोक्ता कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्योंके किये हुए यज्ञ, दान, तप आदि सभी शास्त्रविहित शुभ कर्म भगवान्‌में उस प्रकार पर्यवसित होते हैं जिस प्रकार गङ्गा आदि नदियोंका जल समुद्रमें जाकर स्थित होता है।

गीताके सोलहवें अध्यायमें यज्ञको 'दैवी-सम्पत्' कहा है। दैवी-सम्पत्तिसे परिपूर्ण होनेके लिये यज्ञकी आराधना आवश्यक है। यज्ञकी आराधनासे मनुष्य 'देवता' बन जाता है।

गीता (३।१६) के **'एवं प्रवर्तितं चक्रम्'** के अनुसार यह सृष्टि-क्रम यज्ञके द्वारा ही प्रचलित है। सृष्टिमें दिव्य शक्तिका विकास यज्ञों-द्वारा ही हो रहा है। यज्ञसे ही प्राणिमात्र जीवन—शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। यज्ञमे ही धर्म, कर्म, सदाचार, संस्कृति, सभ्यता आदिका परिज्ञान होता है। यज्ञसे वर्णाश्रमधर्मकी और जगत्‌की रक्षा होती है। यज्ञसे ही ऐहलौकिक और पारलौकिक सुखोंकी प्राप्ति होती है। यज्ञसे ही मानव—जीवनके उत्थानमें सहायता मिलती है। यज्ञसे ही मनुष्यमें अद्‌भुत आत्मबल बढ़ता है, जिससे उसका आत्मा सर्वविध दुःखों और शोकोंसे विरत हो जाता है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने भक्त अर्जुनको विविध विषयोंके स्वरूपका दिग्दर्शन कराते हुए 'यज्ञ' पर भी बड़ी उदार भावनासे प्रकाश डाला है। भगवान्‌ने जिन यज्ञोंका वर्णन किया है, उन्हें गीतामें 'महायज्ञ' कहा गया है। वे महायज्ञ गीताके चतुर्थ अध्यायमें श्लोक २५ से ३० तक द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ और योगयज्ञ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इनके अधिकारके विषयमें भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है कि 'यज्ञ अनन्त हैं और वे मानवमात्रकी वस्तु हैं, उनका सभीको अधिकार है।'

गीतामें भगवान्‌के द्वारा कथित यज्ञोंका तत्त्व बहुत ही दुरूह है। उनके वास्तविक तत्त्वको जान लेना कोई खेल-तमाशा नहीं है। पूर्वकालके बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, ज्ञान-विज्ञान-विशारद विद्वानोंने भी बड़ी कठिनतासे यज्ञका तत्त्व जान पाया

था। भगवान्ने कृपाकर हमारे कल्याणार्थ विविध यज्ञोंके रूपमें विविध प्रकारकी अटूट लकड़ी (लाठी) हमारे लिये उपस्थित कर दी हैं, जिनमेंसे हम एक भी यज्ञरूपी लकड़ीका सहारा ले लें, तो हम सदैव अपने जीवनको सुखमय व्यतीत कर सकते हैं। ऐसी स्थितिमें भी जो लोग यज्ञके महत्त्व को न समझकर भगवन्निर्दिष्ट यज्ञोंकी उपासना नहीं करते, वे विविध प्रकारके दुःख भोगते हैं और उनका जीवन कीट, पतंग, मच्छर, मक्खी, खटमल आदिकी तरह व्यर्थ और निन्दनीय होता है। अतः मानव-जीवनको सार्थक करनेके लिये गीतोक्त यज्ञको अपनाना चाहिये। जो लोग गीताका अध्ययन करनेपर भी गीतोक्त यज्ञोंका महत्त्व नहीं समझते अथवा गीतोक्त यज्ञोंसे वञ्चित रहते हैं, उनका गीताका स्वाध्याय व्यर्थ है।

—:०:—

वेद और यज्ञ

महर्षि जैमिनिने '**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**' (जै० सू० १।१।२) इस सूत्रके द्वारा धर्म ही वेदका एकमात्र प्रतिपाद्य अर्थ है, यह स्पष्ट किया है।

वार्तिककारने भी '**धर्मे प्रतीयमाने तु वेदेन करणात्मना**' इससे धर्मका प्रतिपादन ही वेदका मुख्य कर्तव्य माना है। अतः उपर्युक्त प्रमाणोंके द्वारा धर्म ही वेदका अर्थ है, यह निर्विवाद है।

महर्षि सायणाचार्य ने भी—

आध्वर्यवस्य यज्ञेषु प्राधान्याद् व्याकृतः पुरा।
यजुर्वेदोऽथ हौत्रार्थमृग्वेदो व्याकरिष्यते ॥

—इत्यादि वचनोंके द्वारा यज्ञोंका प्रतिपादन ही यज्ञका मुख्य विषय माना है। अतः इस समय चारों वेदोंमें वेदोंकी जितनी शाखाएँ उपलब्ध हैं, उनकी यज्ञ-प्रधानताके रूपमें ही व्याख्या की गई है। यह सन्देह करना भी उचित नहीं है कि—"सभी वेदभाग अर्थान्तरपरक ही थे और बलपूर्वक उन्हें यज्ञपरक बनानेमें सायणाचार्यने बड़ा दुस्साहस किया।"

आज तो कराल कलिकालके प्रभावसे भारतीय, विशेषतः संस्कृतके विद्वान् संस्कृताभिमानीवर्ग अपने पूर्वाचार्योंसे प्रवर्तित मार्गको छोड़कर लोकविरुद्ध तथा लोकगर्हित मार्गपर चलनेमें अपनी शोभा समझते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सायणाचार्यके भाष्यके पूर्व भी बहुतसे भाष्य थे, उन सभी भाष्योंने भी वेदको यज्ञपरक ही माना है। उन्हींके अनुसार सायणाचार्यका भी भाष्य बना। इस प्रकार वे भाष्य भी पूर्व–पूर्व भाष्योंके अनुसार ही बने होंगे, यह स्पष्ट कहा जा सकता है। इस तरह प्रवृत्त-भाष्यपरम्परा वेदोंकी यज्ञपरताके प्रतिपादनमें अविचार्य रही है। अधिक क्या कहा जाय, सायणाचार्यके हजारों वर्ष पूर्व भगवान् शबरस्वामीने वेदव्याख्यानरूप अपने मीमांसा-शास्त्रमें सम्पूर्ण वेदकी व्याख्या का पर्यवसान यज्ञोंमें ही माना है। अतः सायणाचार्यके ऊपर किसी प्रकारका आरोप करना अपनी अज्ञता को प्रकट करना है। इसी तरह एक-एक शाखाके कल्पसूत्र भी आश्वलायन, कात्यायन, वौधायन प्रभृति उपलब्ध हैं, उनमें भी यज्ञ-प्रधाननाका ही वर्णन प्राप्त होता है। जैसे—

"इषे त्वोर्जेत्वा व्वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्प्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे०" इत्यादि। (शु० यजु० १।१)

"इषे त्वोर्ज्जे त्वेति वृष्ट्यै तदाह यदाहेषे त्वेत्यूर्ज्जे त्वेति यो वृष्टादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाह।" (**शतपथब्रा० १।७।१।२**)

इस ब्राह्मण-वाक्यमें बहुपर्णत्वादिगुणयुक्त शाखाके छेदनके अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ किस प्रकार किया जा सकता है ? थोड़ी देरके लिये यदि इसे भी अर्थान्तरपरक मान लिया जाय, तो भी **"पर्णशाखां छिनत्ति शामीलीं वेषेत्वेत्यूर्जेत्वेति वा"** इस कल्पसूत्रका कौनसा अर्थ कल्पित किया जा सकता है। यदि यज्ञादिबोधनतात्पर्यसे ही प्रवृत्त कल्पसूत्रोंका भी अर्थान्तर किया जाय, तो कोई क्या कह सकता है ? क्योंकि ऐसे लोग तो प्रत्यक्षरूपसे जाज्वल्यमान अग्निको 'जल' और हाथीको 'बिल्ली' कह सकते हैं।

भगवान्के श्वास-प्रश्वासरूपसे निकले हुए वेदोंका बहुत बड़ा अर्थ-गाम्भीर्य है, अतः इस सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी शङ्काएँ उठा करती हैं। वेदका अधिकांश भाग यज्ञ-प्रतिपादक है, इस बातको वेदभाष्यकारोंने बार-बार कहा है।

कुछ आधुनिक विचारधाराके लोग वेदकी यज्ञ-परतामें विशेष आलोचना करते हैं तथा मनमाना वेदार्थ करके प्रसन्न होते हैं। ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें क्या कहा जाय ? पता नहीं, ऐसे लोगोंका यज्ञोंने क्या अपराध किया और उनके मनमाने अर्थोंने उनका क्या उपकार किया ?

यदि वेदको यज्ञादिरूप धर्मप्रतिपादक नहीं माना जाय और अपनी बुद्धिके अनुसार मनमाने अर्थोंका आरोप किया जाय, तो "वेद धार्मिक ग्रन्थ हैं" यह परम्परा समाप्त हो जायगी। "और **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** (मनु० २।६) इत्यादि समस्त स्मृति-वचन भी निरर्थक हो

जायँगे। क्योंकि अनादिरूपसे माने हुए वेदोंके सम्बन्धमें जब ऐसी धारणा बनाली जायगी,तो उन्हीं के आधार पर बने हुए स्मृति-ग्रन्थों की क्या दशा होगी ? ऐसी स्थितिमें तो समस्त धार्मिक ग्रन्थोंका विलय हो जायगा।

जिस वेदके सहारे यह भारतवर्ष आजतक विश्वके समस्त देशोंमें सर्वश्रेष्ठ समझा गया, जिसके सहारे सभी भारतीय अन्य लोगोंकी अपेक्षा सर्वोत्तम समझे गये और जिसके सहारे हमारी दैनन्दिन चर्या उत्तम चलती आई, उस धर्ममूल वेदके उच्छिन्न (अप्रामाणिक) होनेसे शेष ही क्या रह जायगा। अतः उपर्युक्त विचारधारा केवल मूर्ख अथवा पागलकी ही हो सकती है, न कि बुद्धिमान व्यक्ति की।

इसी प्रकार वेदोंके अर्थोंको तथा वेदोंके यज्ञ-बोधक अर्थोंको पुष्ट करनेवाले प्रमाणोंको छोड़कर अपनी बुद्धिके अनुसार मनमाने अर्थ करनेवाले लोगोंको क्या कहा जाय ? या तो उन्हें यज्ञोंका ज्ञान नहीं, या यज्ञों के प्रति उनका महान् द्वेष है, यही कहा जा सकता है।

इसी प्रकार आजके कुछ लोग सम्पूर्ण वेदोंका केवल आध्यात्मिक अर्थमें ही पर्यवसान मानते हैं, यह भी उनकी बुद्धिकी विचित्रता ही है। वस्तुतः यज्ञोंकी अमान्यता और अभावसे ही हमलोग आज दीन-हीन और क्षीण हो गये हैं। भगवान् मनु (३।७६) के—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

इस वचनके अनुसार यज्ञमें डाला हुआ बलवर्धक आज्य प्रभृति सभी हव्य पदार्थ भस्मीभूत होकर वाष्परूपसे (भापरूपसे) ऊपर आकाश में जाता है, फिर वही कुछ समयके बाद वर्षाके रूप में पृथ्वी पर आता है और वह औषधियोंके रूपमें परिणत होकर हम लोगोंका

का पोषकतत्त्व बन जाता है। वह बल खाद्य-पदार्थों के बलकी अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। बड़े खेदकी बात है कि वेदोक्त श्रौत-स्मार्त्तादि यज्ञोंके अभावसे, कालकी महिमा तथा देश-दोषसे और आहार-विहारादिके दोष से हमारा ह्रास होता जा रहा है, यह प्रत्यक्ष है।

———

यज्ञ और ब्राह्मण

देवता दो प्रकारके होते हैं—एक मनुष्योंमें ब्राह्मण और दूसरे देवताओंमें भौतिक देवता।

'अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः।'

(षड्विंशब्राह्मण १।१)

'मनुष्योंमें ब्राह्मण ही देवता कहे जाते हैं।'

'एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणाः।'

(तैत्तिरीयसंहिता १।७।३)

'ये ब्राह्मण प्रत्यक्ष देवता हैं।'

ब्राह्मण देवताके सम्बन्धमें कहा गया है—

'ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाँ सोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः।'

(शतपथब्रा० २।२।२।६)

'जो ब्राह्मण वेदादि शास्त्रोंके ज्ञाता, बहुश्रुत और पूर्ण विद्वान् हैं, वे मनुष्योंमें देवता हैं।'

'विद्वांसो हि देवाः।' (शतपथब्रा० ३।७।३।१०)

'विद्वान् ही देवता कहे जाते हैं।'

'मन्त्रयज्ञपरा विप्राः' (ब्रह्मपुराण १८७।५०) के अनुसार ब्राह्मण ही वेदमन्त्र और यज्ञ के ज्ञाता अथवा अनुष्ठाता कहे जाते हैं। ब्राह्मणों पर ही यज्ञकी मर्यादाका रक्षण निर्भर है। ब्राह्मण ही यज्ञके रक्षार्थ वेदोंका अध्ययन कर उन्हें कण्ठस्थ रखते हैं और यज्ञोंमें वेदोंका उचित रूपसे प्रयोग कर वेदोंको जीवित रखते हैं। वेदोंके स्वाध्याय और रक्षणके कारण ही ब्राह्मणको भगवत्स्वरूप 'वेद' और 'यज्ञ' शब्दसे व्यवहृत किया गया है—

'ब्रह्म हि ब्राह्मणः ।' (शतपथब्रा० ५।१।५।२)

'वेद ही ब्राह्मण है ।'

'ब्रह्म हि यज्ञः' (शतपथब्रा० ५।३।४)

'ब्राह्मण ही यज्ञ है ।'

ब्राह्मण ही यज्ञके मुख्य आधार कहे जाते हैं। ब्राह्मणोंके बिना यज्ञ सुसम्पन्न नहीं हो सकते। महर्षि कात्यायनके **'ब्राह्मणा ऋत्विजो भक्तप्रतिषेधादितरयोः'** (का० श्रौ० सू० १।२।८) तथा यज्ञपरिभाषासूत्रकारके **'ब्राह्मणानामार्त्विज्यम्'** (२४) इस सूत्रसे स्पष्ट है कि यज्ञमें केवल ब्राह्मण ही 'ऋत्विक्' हो सकता है। इसीलिये प्रत्येक यज्ञ में हवन करनेवाले ब्राह्मण ही होते हैं।

जिस प्रकार यज्ञमें हवन करने के लिये ब्राह्मणोंका होना आवश्यक है, उसी प्रकार यज्ञ-कर्मको करानेके लिये 'आचार्य' का भी ब्राह्मण होना आवश्यक है।

यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ और पवित्र कर्म है। अतः पवित्रताकी दृष्टिसे यज्ञ करनेका अधिकार केवल द्विजको ही है। किन्तु कुछ यज्ञ ऐसे हैं,

जिनका अधिकार केवल 'ब्राह्मण' को ही है। जिन यज्ञोंको करनेका अधिकार क्षत्रिय और वैश्यको है, वे भी यज्ञके प्रभावसे यज्ञ करनेके समय ब्राह्मणत्वको प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके लिये उन्हें यज्ञारंम्भके समय दीक्षासम्पन्न होना पड़ता है। खासकर श्रौतयागमें दीक्षित होकर ही यजमान यज्ञ करने का अधिकारी बनता है—**'दीक्षितोऽयं यजमानः।'**

यज्ञार्थ दीक्षित होनेसे यजमान क्षत्रिय हो अथवा वैश्य हो, वह यज्ञ में प्रारम्भसे अन्त तक ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है—

'स ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति।'

(ऐतरेयब्रा० ७।२३)

अतः दीक्षासम्पन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यको यज्ञके समय 'ब्राह्मण' ही कहना चाहिये। जो यज्ञसे उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मण ही उत्पन्न होता है—

'तस्मादपि राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते।'

(शतपथब्रा० ३।२।१।४०)

'य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते।'

(शतपथब्रा० १३।४।१।३)

'जो कोई यज्ञ करता है, वह ब्राह्मण होकर (दीक्षित होकर)ही यज्ञ करता है।'

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' (शु० य० ३१।११)

'मुखादग्निरजायत' (शु० य० ३१।१२)

—के अनुसार ब्राह्मण और अग्नि की उत्पत्ति विराट् पुरुषके मुखसे हुई है। अतः ब्राह्मण और अग्नि दोनों सहोदर भाई हैं। इसीलिये वेदमें ब्राह्मणको 'आग्नेय' और 'अग्नि' कहा है—

५

'अग्नेयो वै ब्राह्मणः ।' (तैत्तिरीयब्रा० २।७।३१)

'ब्रह्म ह्यग्निः ।' (शतपथब्रा० १।४।२।२)

पुराणोंमें भी ब्राह्मणको 'अग्निदेव' कहा है—

'ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु' (भविष्यपु० ब्राह्मपर्व १३।३६)

'अग्निर्ब्रह्म' (महाभारत, शान्तिपर्व ३४२।१२)

ब्राह्मण साक्षात् अग्निके स्वरूप हैं, इसीलिये अग्निहोत्रीके लिये लिखा है—हवनके समय जब अग्निहोत्रशालाकी अग्नि शान्त हो जाय तब वह ब्राह्मणके हाथमें आहुति (हवनीय द्रव्य) देकर काम चलावे ।

भगवान् मनुने कहा है—

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥

(३।२१२)

'अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें ही हवनीय पदार्थ (आहुति) देना चाहिये; क्योंकि जो अग्नि है, वही ब्राह्मण है—ऐसा वेदज्ञाता ब्राह्मणोंने कहा है ।'

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' (शु० य० ३१।११) के अनुसार ब्राह्मणकी उत्पत्ति *विराट् पुरुषके मुखसे हुई है, इसीलिये ब्राह्मण ×मुखसे ही अपना बल (विद्याबल) दिखाता है—

---

* आदौ ब्रह्ममुखाद् विप्रः समुद्भूतः पुरानघः ।
वेदास्तत्रैव सञ्जाताः सृष्टिसंस्थितिहेतवः ॥
तस्माद् विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि ।
पूजार्थं सर्वलोकानां सर्वयज्ञार्थतो ध्रुवम् ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ४८।११३-११४)

× 'वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः ।'

(मनु० ११।३३)

'तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति मुखतो हि सृष्टः ।'

(ताण्ड्यमहाब्रा० ६।१।६)

वस्तुतः ब्राह्मणोंका मुख्य बल विद्याबल है, जिसका प्रदर्शन ब्राह्मणोंके मुखसे ही होता है । मनुस्मृति (८।२०) में लिखा है कि ब्राह्मण ही धर्मोपदेशक हो सकता है, शूद्रादि नहीं हो सकते । इसीलिये ब्राह्मणके लिये लिखा है कि उसे विद्याबल प्राप्त करना चाहिये, जिससे वह विद्याबलके द्वारा धर्मोपदेश करके समूचे संसारका कल्याण कर सके । ब्राह्मणको शास्त्रोंका, विशेषतः वेदोंका परिज्ञान होना आवश्यक है—

'तदध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति ।'

(शतपथब्रा० १।९।३।१६)

'ब्राह्मणको देवमय वेदका इष्ट होना चाहिये, जिससे वह ब्रह्मवर्चसी हो जाय ।'

'यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः ।'

(शतपथब्रा० ४।६।७।५)

'जो ब्राह्मणोंमें परम विद्वान् है, वही अत्यन्त बलवान् कहा जाता है ।'

अतः ब्राह्मणको विद्याबल अवश्य प्राप्त करना चाहिये । विद्याबलके द्वारा ही ब्राह्मण जगत्का कल्याण कर सकता है । विद्याबलसे सम्पन्न ब्राह्मणसे ही शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भगवान् मनुकी आज्ञा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

ब्राह्मणोंको विद्याबल प्राप्तकर यज्ञ-सम्पन्न होना आवश्यक है, क्योंकि ब्राह्मणका मुख्य शस्त्र 'यज्ञ' ही कहा गया है—

'एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद् यज्ञायुधानि ।'

(ऐतरेयब्रा० ७।१९)

शतपथ ब्राह्मण (१।५।१।११) में लिखा है कि ब्राह्मण ही यज्ञ-के रक्षक और यज्ञके विधि-विधानके ज्ञाता होते हैं। इसलिये यज्ञोंमें वेदसम्पन्न ब्राह्मणोंकी प्रधानता और मान्यता होती है। ब्राह्मणोंकी प्रधानता और मान्यतासे ही यज्ञ सफल होते हैं।

प्राचीन समयमें सभी लोगोंकी यज्ञोंमें और ब्राह्मणोंमें बड़ी आस्था थी। यज्ञप्रेमी व्यक्ति यज्ञोंमें वेदशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मणोंका द्रव्यादिके द्वारा उचित सत्कार किया करते थे। उस समय सभी प्राणी सर्वप्रकारसे सुखी और सन्तुष्ट रहा करते थे, किन्तु जबसे मनुष्योंमें यज्ञोंके प्रति अनास्था और ब्राह्मणोंमें अश्रद्धाकी प्रवृत्ति बढ़ी, तभीसे सभी प्राणी सब प्रकारसे दुःखित और पीड़ित रहने लगे। यदि पुनः सभी लोग यज्ञोंमें आस्था रखते हुए यज्ञोंके अनु-ष्ठापक और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखते हुए ब्राह्मणोंके पूजक बन जायँ, तो फिर यह देश सभी प्रकारसे सुख-समृद्धिको प्राप्त हो सकता है।

शास्त्रोंमें जिस प्रकार यज्ञोंका महत्त्व है उसी प्रकार ब्राह्मणोंका भी महत्त्व है। ब्राह्मणोंमें समस्त देवता और समस्त यज्ञ निवास करते हैं। अतः देशको सुख-समृद्धिशाली बनानेके लिये यज्ञोंका अनु-ष्ठान और ब्राह्मणोंका पूजन परमावश्यक है।

———

यज्ञ और अग्नि

'देवतोद्देशेन अग्नौ हविर्द्रव्यत्यागो यागः' के अनुसार देवताके उद्देश्यसे अग्निमें हविर्द्रव्यका जो त्याग किया जाता है, उसे 'यज्ञ' कहते हैं।

गीता (३।११) में भगवान्ने **'देवान्भावयतानेन'** के द्वारा मनुष्य और देवताके लिये आदान-प्रदानात्मकरूप परस्पर-भावन पर विशेष जोर देते हुए कहा है—जो मनुष्य यज्ञके द्वारा देवताओंको

सन्तुष्ट करते हैं, उनकी देवगण उन्नति करते हैं। अतः यज्ञके द्वारा मनुष्यों और देवताओंकी जो आदान-प्रदानात्मकरूप परस्पर-भावना उद्भूत होती है, वह बड़ी ही सुदृढ़ और कल्याणकारिणी होती है।

जिस प्रकार श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पितर तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं, उसी प्रकार यज्ञकी अग्निमें हवनीय द्रव्यद्वारा हवन करनेसे देवता तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं।

किसी मनुष्यको भोजन कराया जाय तो वह मनुष्यके समक्ष प्रत्यक्षरूपमें अपने मुखसे ही करता है, किन्तु यह बात देवताओंके लिये लागू नहीं है। देवगण अदृश्य होनेके कारण मनुष्यके द्वारा प्रदत्त हविर्द्रव्यको प्रत्यक्षरूपमें नहीं खाते, किन्तु वे अप्रत्यक्षरूपमें अग्निदेवके द्वारा ही खाते हैं। प्रदत्त हविर्द्रव्यको अग्निके द्वारा भोजन करनेके कारण अग्निको "देवताओंका मुख" कहा गया है—

अग्निर्वै देवानां मुखम्। (गोपथब्रा० उत्त० १।२।३।१)
अग्निर्हि देवानां मुखम्। (शतपथब्रा० ३।७।४।१०)
अग्निर्वै देवतानां मुखम्। (शतपथब्रा० ३।९।१।६)
अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्। (ऐतरेयब्रा० १।१।२)
अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्। (काठकसंहिता ४।१।१४)
मुखं देवानामग्निः। (कपिष्ठल कठसंहिता ३१।२०)
देवानां मुखमग्निः। (ब्रह्मपुराण ८।१२६)
अग्निमुखा वै देवाः। (आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।९।१।६)
अग्निमुखा वै देवाः। (ताण्ड्यमहाब्राह्मण २५।१५।४)
अग्निमुखा एव देवताः। (तैत्तिरीयब्राह्मण ३।७।१।८)

अग्निके द्वारा भोजन करनेवाले देवताओंके सम्बन्धमें कहा है कि-

'देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति, यस्यै कस्यै च देवतायै च जुह्वति अग्नावेव जुह्वति, अग्निमुखा हि तद्देवा अन्नमकुर्वत।'

(शतपथब्रा० ७।२।२।४)

'स यदग्नौ जुहोति तद्देवेषु जुहोति ।'

(शतपथब्रा० २।३।१।१६)

'यदन्नं होमान् जुहोति, देवानेव तत् प्रीणाति ।'

(शतपथब्रा० १३।२।१।१)

[1]'अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति ।'

(शतपथब्रा० ३।१।३।१)

*ऋग्वेद और +अथर्ववेदमें लिखा है कि यज्ञकी अग्निमें डाला हुआ पदार्थ देवताओंको प्राप्त होता है ।

उपर्युक्त प्रमाणोंके द्वारा स्पष्ट है कि देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो हवन किया जाता है, वह देवताओंके मुखमें ही जाता है और उससे देवता तृप्त एवं प्रसन्न होते हैं ।

देवताओंके पास यज्ञका हविर्द्रव्य पहुँचानेका काम अग्निका है, इसीलिये अग्निको 'देवदूत' और 'होता' कहा गया है—

अग्निर्हि देवानां होता दूतश्च । (शतपथब्रा० १।४।५।४)
अग्निरेव देवानां दूतः । (शतपथब्रा० १।४।१।३४)
अग्निर्वै देवानां होता । (ऐतरेयब्रा० १२।३)
अग्निर्वै देवानां होता । (तैत्तिरीयसं० २।५।६)
अग्निर्होता । (शतपथब्रा० १।५।२।१)
अग्निर्वै होता । (शतपथब्रा० ६।४।३।७)

[1]अग्निर्हि देवानां होता तस्मादाहाग्निर्दैवो दैव्यो होता ।

(शतपथब्रा० १।५।१।५)

---

*ऋग्वेद १।१।४, ऋ० ७।११।५

×अथर्ववेद ५।१२।२

१. अग्नि ही देवताओंको बुलानेवाला है, इसीलिये अग्निको देवताओंका हितैषी कहा है ।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे ।
देवाँ आसादयादिह ॥ (शुक्ल यजुर्वेद २२।१७)
[1]**त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।**
देवेभिर्मानुषे जने ॥ (सामवेद १।१।२)

अग्निको देवताओंके पास यज्ञिय हविर्द्रव्य पहुँचानेकी सर्वदा चिन्ता बनी रहती है, किन्तु जब उसे देवताओंके लिये हवनीय द्रव्य नहीं मिलता, तो वह कुपित होकर प्रकृतिके विरुद्ध कार्य करने लगता है । जिसका कुपरिणाम यह होता है कि जगह-जगह भीषण अग्नि-काण्ड होने लगते हैं, जिससे देश और समाजको बहुत भयङ्कर क्षति उठानी पड़ती है । अतः अग्निदेवकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करना आवश्यक है ।

यज्ञमें देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो हवनीय पदार्थ डाला जाता है उसे उन्हें समर्पण करनेके लिये अग्निदेव यज्ञमण्डपमें कुछ देवताओंको बुला लेते हैं और कुछके पास वे स्वयं जाते हैं । यज्ञ-मण्डपमें अग्निदेव सर्वप्रथम अपने मित्र वायुदेवको बुलाते हैं । वायु-देवके उपस्थित होनेपर उनकी विद्युत्, पर्जन्य आदि विविध दिव्य-शक्तियाँ भी उपस्थित हो जाती हैं । अग्निदेवकी आज्ञासे वायुदेव और वायुदेवकी दिव्य-शक्तियाँ अग्निदेवके द्वारा जलाये हुए हविर्द्रव्य की भस्मको तथा भस्मके सूक्ष्म अणुओंको समस्त ब्रह्माण्डमें फैला देती हैं, जिससे समस्त संसारका कल्याण होता है ।

जिस प्रकार समस्त आश्रमोंका आधार 'गृहस्थ आश्रम' है, उसी प्रकार समस्त यज्ञोंका आधार 'अग्नि' है । अग्नि केवल यज्ञोंका ही आधार नहीं है, किन्तु वह समस्त धार्मिक अनुष्ठानोंका आधार है ।

---

१. हे अग्ने ! तुम मेरे यज्ञोंके सम्पादन करनेवाले हो । तुम मानव-समाज-में उत्तम गुणोंके द्वारा सबका हित करनेवाले हो ।

अग्निके बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। अग्निके आधारसे ही गर्भाधानादि षोड़श संस्कार, शतचण्डी, गायत्रीपुरश्चरण, विष्णुयज्ञ, रुद्रयज्ञ आदि एवं वापी, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा आदि धार्मिक कृत्य सुसम्पन्न होते हैं। अग्निके द्वारा केवल धार्मिक अनुष्ठान ही सुसम्पन्न नहीं होते, किन्तु सांसारिक सभी-प्रकारके कार्य सुसम्पन्न होते हैं। जैसे—अग्निके द्वारा भाप तैयार करना, सुवर्णादि धातुओंकी शुद्धि करना, जंगलकी जड़ी-बूटियोंसे काढ़ा एवं अर्क तैयार करना, रेलगाड़ी चलाना, बड़ी-बड़ी मशीन और इंजन चलाना आदि। इतना ही नहीं, अग्निके द्वारा ही मनुष्यके भक्ष्य-पदार्थ (भोजन) का भी निर्माण होता है। अतः निश्चित है कि अग्नि जड़, चेतन सभीका आधार है। अग्निके बिना संसारके सभी कार्य विफल हो जाते हैं। अतः धार्मिक और लौकिक सभी दृष्टियोंसे अग्निका विशेष महत्त्व है।

मनुष्य—जीवनके लिये अग्नि बहुत ही उपकारक और महत्त्वपूर्ण वस्तु है। **'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः'** (गीता १५।१४) के अनुसार वैश्वानर भगवान् जाठराग्निके रूपमें प्राणिमात्रके शरीरमें निवास करते हैं। वैश्वानर भगवान् की तृप्ति और प्रसन्नताके लिये प्रत्येक प्राणी अपने मुखरूपी कुण्डमें भोजनरूपी आहुति प्रतिदिन डालता है। प्राणिमात्रका यह भोजनरूपी यज्ञ प्रतिदिन चलता रहता है। इस यज्ञके बिना प्राणी कथमपि जीवित नहीं रह सकता।

प्राणिमात्रमें रहनेवाला वैश्वानर अग्नि ही प्राणिमात्रका संचालन और संरक्षण करता है और वही प्राणिमात्रको चेतनता, तेजस्विता, स्वस्थता और जीवनशक्ति प्रदान करता है। इसलिये मनुष्यको वैश्वानरस्वरूप अग्निदेवकी उपासना जीवनपर्यन्त अवश्य ही करनी चाहिये।

मनुष्यका जीवन ही अग्निमय है। जीव जब अपनी माताके उदरमें नव मास तक रहता है, तब उसका सर्वप्रथम 'जाठराग्नि' से सम्बन्ध स्थापित होता है। पश्चात् जब वह माताके उदरसे बाहर आता है, तब उसका सम्बन्ध जीवनपर्यन्तके लिये 'लौकिक अग्नि' से स्थिर हो जाता है और जब वह मरणावस्थाको प्राप्त होता है तब उसका सम्बन्ध *'क्रव्याद अग्नि' (चिताग्नि) से हो जाता है, जिसके द्वारा उसका शरीर जलकर भस्म हो जाता है—**'भस्मान्तं शरीरम्'** (शु० य० ४०।१५)।

विशेष आश्चर्यकी बात तो यह है कि जिस अग्निका प्राकृतिक धर्म जलाना है, वह मनुष्यके उदरमें सर्वदा रहते हुए भी उसे नहीं जलाता। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपने उदरमें रहनेवाले 'जाठराग्नि' के लिये भोजनरूपी आहुति प्रतिदिन उचित मात्रामें डालता रहता है, जिससे उसकी 'जाठराग्नि' सर्वदा शान्त रहती है और मनुष्यको किसी प्रकार कष्ट नहीं देती। यदि किसी दिन मनुष्य अपने उदरमें भोजनरूपी आहुति डालनेमें गड़बड़ी कर देता है, तो उसकी 'जाठराग्नि' प्रबलरूप धारण कर मनुष्यको बेचैन कर डालती है, जिससे मनुष्य बार-बार जल पीकर अथवा अन्य कोई औषध-विशेष खाकर अग्निको शान्त करता है। अतः उदरस्थित अग्निको शान्त रखनेके लिये भोजनरूपी आहुति पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। अन्यथा मनुष्य मन्दाग्नि अथवा अन्य प्रकारके उदर रोगोंसे पीड़ित होकर शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायगा।

हमारे हिन्दू-धर्मशास्त्रोंमें द्विजके लिये जीवनपर्यन्त अग्निकी उपासना करनेके लिये कहा है। द्विज यज्ञोपवीत-संस्कारके बाद जब ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवेश करता है, तभीसे उसे जीवनपर्यन्तके लिये अग्निकी उपासनाका व्रत ग्रहण करना पड़ता है और वह जीवन-

---

*'क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि०' (शु० य० ३५।१९)

पर्यन्त पञ्चमहायज्ञादिके द्वारा अग्निकी उपासना करता रहता है।

शास्त्रोंमें द्विजातिके लिये अग्निको प्रत्यक्ष 'देवता' और 'गुरु' कहा है—

अग्निर्देवो द्विजातीनाम् । (लौगाक्षिस्मृति)
अग्निर्देवो द्विजातीनाम् । (चाणक्यनीति ४।१९)
गुरुरग्निर्द्विजातीनाम् । (चाणक्यनीति ५।१)
गुरुरग्निर्द्विजातीनाम् । (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२।५१)
गुरुरग्निर्द्विजातीनाम् । (व्याघ्रपादस्मृति २०८)

जो अग्नि द्विजातिके लिये प्रत्यक्ष देवता और गुरु है, उसकी उपासना द्विजातिको जीवनपर्यन्त करनी चाहिये।

[1]शतपथब्राह्मण (१।४।२।२) में ब्राह्मणको अग्नि, [2]तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।७।३१) में ब्राह्मणको आग्नेय, [3]भविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व १३।३६) और [4]महाभारत (शान्तिपर्व ३४२।१२) में ब्राह्मणको अग्निदेव कहा है।

ब्राह्मणके लिये कहा गया है कि उसे अग्निके गुणोंसे विभूषित होना चाहिये। अग्निके गुणोंसे विभूषित होनेके लिये ब्राह्मणको अग्निकी उपासना आवश्यक है। अग्निकी उपासनासे ब्राह्मण अग्निके गुणोंसे विभूबित हो जाता है। जो ब्राह्मण अग्निके गुणोंसे विभूषित हो जाता है, वही यथार्थरूपमें 'ब्राह्मण' कहलानेका अधिकारी है।

मनुष्यकी उत्पत्ति अग्निसे कही गई है। अतः प्रत्येक मनुष्यका सम्बन्ध अग्निसे जीवनपर्यन्त बना रहता है। मनुष्यकी जब मृत्यु होती है, तो उसको अग्निसे जला दिया जाता है। मनुष्यका अग्निके साथ विशेष सम्बन्ध होनेका प्रधान कारण यह है कि उसकी शिखा

---

१. ब्रह्म ह्यग्निः। २. आग्नेयो वै ब्राह्मणः।
३. ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु। ४. अग्निर्ब्रह्म।

(चोटी) के मूल भागमें अग्निका निवास होता है। अतः शिखावाले व्यक्तिको 'आग्नेय' कहा जाता है। शिखाको अग्निका विशेष चिह्न कहा गया है—**'अग्निचिह्नं शिखाकर्म।'**

संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होनेके बाद संन्यासीको अग्निचिह्नस्वरूप शिखाका परित्याग करना पड़ता है। शिखाके परित्याग करनेसे संन्यासीको अग्निका भी परित्याग करना पड़ता है। अग्निके परित्याग करनेके कारण संन्यासी 'आग्नेय' नहीं रह जाता। इसीलिये संन्यासीकी जब मृत्यु होती है, तो उसको अग्निसे जलाया नहीं जाता, किन्तु उसका गंगा आदि नदीमें प्रवाह किया जाता है अथवा भूमिमें गाड़ दिया जाता है।

हमारे शास्त्रोंमें प्रत्येक यज्ञ, प्रत्येक संस्कार और प्रत्येक कर्मकी अग्निके अलग-अलग नाम निर्दिष्ट हैं। अतः जिस कर्मको करना हो, उसी कर्मकी निर्दिष्ट अग्निका उपयोग करना चाहिये। जो लोग शास्त्रोंमें विश्वास न रखकर अथवा शास्त्रोंको न मानकर जिस किसी अग्निका उपयोग करते हैं, वे यज्ञादिके यथार्थ फलसे वञ्चित ही रहते हैं। अतः यज्ञादि शुभ कार्योंकी सफलतार्थ शास्त्रविहित अग्निका ही व्यवहार करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधिके अनुकूल अग्निके व्यवहार करनेसे ही किया हुआ कर्म फलप्रद होता है।

वेदोंमें अग्निका सबसे अधिक महत्त्व पाया जाता है। वेदोंमें अग्निको [1]'सर्वादेवता' कहा गया है—**'अग्निर्वै सर्वा देवताः'** (शतपथब्रा० ५।२।४।६)। इन्द्र, मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा, सोम, रुद्र आदि समस्त देवता अग्निके ही स्वरूप हैं। एक ही अग्निकी उपासनासे समस्त देवताओंकी उपासना हो जाती है। अग्निकी उपासनाके बिना अन्य देवताकी उपासना सर्वथा असम्भव है। अतः वैदिक-धर्मके ज्ञाताओंने अग्निको सर्वदासे अपनाया है और वे अग्निके द्वारा ही समस्त देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं।

वेदोंमें अग्निके महत्त्वके बारेमें इस प्रकार लिखा है—

अग्निर्वै देवानामवमः। (ऐतरेयब्रा० १।१।१)
अग्निर्वै देवानां प्रथमः। (ऐतरेयब्रा० २०।१।१)
अग्निः सर्वा देवताः। (तैत्तिरीयब्रा० १।४।५।२७)
अग्निः सर्वा देवताः। (तैत्तिरीयब्रा० १।८।१०।३७)
अग्निः सर्वा देवताः। (निरुक्त, परिशिष्ट० १४।३२)
अग्निः सर्वा देवताः। (निरुक्त, दैवतकाण्ड १।१७)
अग्निः सर्वा देवताः। (शतपथब्रा० ३।४।१।१९)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (शतपथब्रा० १।६।३।७)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (शतपथब्रा० ३।१।३।१)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (ऐतरेयब्रा० ३।१।३।१)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (षड्विंशब्रा० ३।७)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (शतपथब्रा० ५।२।४।६)
अग्निर्वै सर्वा देवताः। (तैत्तिरीयब्रा० १।४।५।२७)
अग्निर्वै देवताः। (ऐतरेयब्रा० १।१।१)
अग्निर्वै देवता। (ऐतरेयब्रा० (२०।१)
अग्निर्देवता। (ऐतरेयब्रा० २०।१)
अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः। (शतपथब्रा० १।१।१।२)
अग्निर्वै देवानां सेनानी। (ऐतरेयब्रा०)
अग्निर्वै देवानां यष्टा। (तैत्तिरीयब्रा० ३।३।७।४३)
अग्निर्वै देवानां अन्नादः। (तैत्तिरीयब्रा० ३।१।४।२७)
अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठम्। (शतपथब्रा० १।६।२।११)
अग्निर्वै देवानां गोपाः। (ऐतरेयब्रा० ५।२)
अग्निर्वै सर्वे यज्ञाः। (शतपथब्रा० ४।५।२।१३)
अग्निर्ह्येव यज्ञः। (शतपथब्रा० ३।२।२।१९)
अग्निरु देवानां प्राणः। (शतपथब्रा० १०।१।४।१२)

अग्निर्हि देवानां जठरम् । (तैत्तिरीयब्रा० २।७।१२)
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् । (तैत्तिरीयब्रा० ३।६।२।३)
अग्नौ ह देवाः । (शतपथब्रा० २।३।४।१)
अग्नौ हि सर्वान् यज्ञाँस्तन्वते । (शतपथब्रा० ४।५।२।१३)
आग्नेयो वा एष यज्ञः । (शतपथब्रा० ४।५।२।१५)
अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । (शतपथब्रा० १।२।१।६)
अग्निरु सर्वेषां पाप्मनामपहन्ता । (शतपथब्रा० ७।३।२।१६)
सर्वदैवत्योऽग्निः । (शतपथब्रा० ६।१।२।२८)

महाभारतमें भी अग्निका महत्त्व यों लिखा है—

अग्निर्हि देवताः सर्वाः । (महाभारत, अनुशासन० ८५।५६)
अग्निर्विष्णुः । (महाभारत, शान्तिपर्व ३४२।१५)
अग्निर्ब्रह्म । (महाभारत, शान्तिपर्व ३४२।१२)
अग्निर्हि यज्ञानां होता । (महाभारत, शान्तिपर्व ३४२।१२)

अग्निको यज्ञका देवता कहा गया है। यज्ञादिमें **'अग्निमीडे पुरोहितम्'** (ऋग्वेद १।१।१) इस मन्त्रके द्वारा जिस अग्निदेवताकी स्तुति की जाती है और **'अग्न आयाहि वीतये'** (ऋग्वेद ६।१६।१०) इस मन्त्रके द्वारा जिस अग्नि-देवताको यज्ञार्थ आवाहित किया जाता है, वह अग्नि 'अथर्वा' ऋषिके द्वारा प्राणापानरूपी दो अरणियोंके घर्षण (मन्थन) करने पर प्रकट होनेवाली परम पवित्र अग्नि है, जिसको महर्षि अथर्वाके पुत्र 'दध्यङ' ऋषि ने प्रज्वलित किया था।

वेदमें कहा है—

'अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।'
(कृष्णयजुर्वेद ४।१।३)

'तमुत्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।'
(कृष्णयजुर्वेद ४।१।३)

'त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।'

(शुक्लयजुर्वेद १५।२२)

वेदोंमें जिस अग्निकी विशेष प्रशंसा और महत्ताका उल्लेख है, वह अथर्वा ऋषिके द्वारा प्रकट की गई अग्निकी है, जिसे 'अधिदैवाग्नि' कहा गया है। उस परम पवित्र अधिदैवाग्निकी स्तुति महर्षि भरद्वाजने इस प्रकार की है—

अपत्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥

(ऋग्वेद ६।५१।१३)

'हे सत्पते ! सज्जनोंके रक्षक अग्निदेव ! तुम पापी तथा चोर–तस्कर आदि शत्रुओंको हमसे दूर करो अथवा उहें सन्मार्ग पर आरूढ़ करो, जिससे वे हमसे सर्वदा दूर रहें।'

अथर्वा ऋषिके द्वारा प्रकटित अधिदैवाग्निके अन्दर ही 'जातवेदा' नामक अग्नि रहता हैं, जो कि देवताओंके निमित्त समर्पित किये हुए हविर्द्रव्यको ग्रहण कर देवताओंके पास पहुँचाता है। उस 'जातवेदा' अग्निके सम्बन्धमें वेद कहता है—

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं
यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा
देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥

(शुक्लयजुर्वेद ३५।१९)

'मैं क्रव्याद (शवको भक्षण करनेवाले) अग्निको नहीं चाहता, किन्तु क्रव्याद अग्निके भीतर रहनेवाले 'जातवेदा' अग्निको चाहता हूँ, जो कि देवताओंके निमित्त हविर्द्रव्य ग्रहण करता है, मैं उस अधिष्ठातृ-देव को चाहता हूँ।'

प्राचीनकालमें प्रत्येक गृहस्थ अग्नितत्त्वसे पूर्ण परिचित रहा करते थे। वे लोग अग्निके यथार्थ महत्त्व और रहस्यको भलीभाँति जानते थे। इसीलिये वे अपने-अपने घरमें अखण्ड अग्नि अथवा अखण्ड ज्योति (अखण्ड दीपक) रखनेकी सर्वदा व्यवस्था रखते थे। इस तहर वे सारी रात्रिमें तेलका दीपक जलाकर अपने घरोंको प्रकाशमय रखते थे। उस समय प्रत्येक गृहस्थ धन-धान्यसे सर्वदा समृद्ध रहता था। किन्तु जबसे हमने अपने घरोंमें अखण्ड अग्नि अथवा अखण्ड ज्योतिका रखना बन्द कर दिया और रात्रिमें दीपक जलाना बन्द कर दिया, तभीसे हमारे घर अन्धकारसे परिपूर्ण हो गये और हम लक्ष्मीविहीन होगये। अतः समस्त प्रकारकी सुख-सम्पत्तिकी कामनावालोंको सर्वदा अपने घरोंमें अखण्ड अग्नि अथवा अखण्ड ज्योतिकी व्यवस्था करनी चाहिये। अखण्ड दीपकका सम्बन्ध मनुष्यके जीवन और मरणसे भी है।

गृहस्थोंके यहाँ जब 'बालक' पैदा होता है, तो वे 'प्रसूतिगृह' के द्वार पर दश दिन तक 'अखण्ड दीपक' और 'अखण्ड अग्नि' रखते हैं। इससे जच्चा और बच्चा दोनोंकी सब प्रकारसे रक्षा होती है। उन्हें भूत, प्रेत एवं बालग्रह आदिकी ऊपरी बाधाओंका भय नहीं रहता। इसी प्रकार अग्निके और भी अनेक लाभ हैं। शहरों और ग्रामोंके जिन मकानोंमें अथवा जिन गलियोंमें भूत, प्रेतका भय सुना जाता था, आज वहाँ बिजलीकी रोशनी लग जानेसे भूत, प्रेत आदिका भय सर्वदाके लिये दूर हो गया और पता नहीं भूत, प्रेत आदि कहाँ चले गये। जिन मकानोंमें बिजलीकी रोशनी नहीं है अथवा बिजलीकी रोशनी लगनेका कोई साधन नहीं है, उन मकानोंमें संयोगवश यदि भूत, प्रेतका भय प्रतीत हो तो उन मकानोंमें विधिपूर्वक हवन करनेसे सर्वदाके लिये वहाँसे भूत, प्रेत अन्यत्र चले जाते हैं।

इसी प्रकार जब मनुष्यकी मृत्यु होती है, तब भी उसके मृत्युके स्थानमें और उसके गृहके द्वार पर दश दिन तक दीपक (अखण्ड दीपक) जलाया जाता है । इससे मृतकके शोक-मोह आदि मानसिक वेदनाओंकी निवृत्ति तथा मृतकके स्थानकी शुद्धि हो जाती है। दीपक जलाये बिना मृतकका स्थान शुद्ध नहीं होता और भूत, प्रेत आदि बाधाओंका भय सर्वदा बना रहता है ।

इसी प्रकार मनुष्यके यहाँ श्राद्धमें, देवपूजनमें, दीपावली आदि त्यौहारोंमें दीपक जलाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्यमें दीपक जलाना अनिवार्य है। दीपक जलानेसे ही प्रत्येक कार्यकी पूर्णता कही गई है। जिस कार्यमें दीपक नहीं जलाया जाता, वह कार्य पूर्ण नहीं होता। कहा भी है—

'विना दीपेन सकला कार्यसिद्धिर्न जायते ।'

यज्ञ और अग्निका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। विराट् पुरुषने जब प्राणाग्निमें अपना हवन करके जगत्का कल्याण किया था, तभीसे यज्ञ और अग्निका अटूट सम्बन्ध चला आ रहा है। अतः यज्ञ और अग्नि दोनों ही मनुष्यके लिये शाश्वत सनातन धर्म हैं। जो यज्ञ और अग्नि मनुष्यके लिये शाश्वत सनातन धर्म हैं, उन भगवान् यज्ञनारायण और भगवान् अग्निनारायणकी प्रसन्नतार्थ यज्ञ और अग्निकी उपासना आवश्यक है। जिस घरमें यज्ञ और अग्निकी उपासना होती है, वह घर देवमन्दिरके सदृश पवित्र बन जाता है और जिस घरमें यज्ञ और अग्निकी उपासना नहीं होती, वह घर श्मशानके सदृश अपवित्र बन जाता है।

स्वाहा-स्वधा-स्वस्तिविवर्जितानि
श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥

आजके नास्तिकतापूर्ण जमानेमें वे लोग विशेष धन्यवादार्ह हैं, जो यज्ञ करते-कराते हैं और जो यज्ञमें सर्वदेवमय अग्निदेवके द्वारा

देवताओंको हविर्द्रव्य प्रदान कर यज्ञ-परम्पराको अद्यावधि किसी-न किसी रूपमें प्रचलित एवं जीवित रखे हुए हैं।

अनादि कालसे प्रचलित यज्ञ-परम्पराको जीवित और रक्षित रखना ही मानव-धर्म है। जो मनुष्य यज्ञ-परम्पराको जारी नहीं रखते, अथवा उसकी रक्षा नहीं करते, वे मनुष्य केवल इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाले और पापपूर्ण आयुको गँवानेवाले होते हैं। अतः स्पष्ट है कि यज्ञ-विहीन मनुष्यका जीवन व्यर्थ ही होता है। गीता (३।१६) में भी इसकी पुष्टि की गई है—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

यज्ञ और अग्निके यथार्थ रहस्य एवं महत्त्वसे परिचित होनेके लिये वेदोंका अनुशीलन आवश्यक है।

अन्तमें हम अग्निमहत्त्वसूचक शुक्लयजुर्वेद (४।१६) के एक मन्त्रको उद्धृत कर अपने लेखको समाप्त करते हैं—

त्वमग्ने व्रतपा ऽअसि देव ऽआ मर्त्येष्वा।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥

'हे अग्ने! तुम व्रतको पालन करनेवाले हो, अतः तुम देवताओं और मनुष्योंमें रहनेवाले हो। तुम यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य हो।'

———

यज्ञ और विष्णु

'यज्ञो हि भगवान् विष्णुः' (विष्णुधर्मोत्तरपु० १६२।२)
'यज्ञरूपो हि भगवान्' (देवीभागवत ६।४३।१२)
'भगवान् सर्वयज्ञभुक्' (श्रीमद्भागवत ७।१४।१७)

—के अनुसार भगवान् विष्णु यज्ञ, यज्ञस्वरूप और यज्ञभोक्ता हैं। भगवान् विष्णुसे ही समस्त यज्ञ प्रकट हुए हैं, अतः सभी यज्ञ भगवान्के ही स्वरूप हैं। इसलिये समस्त यज्ञोंके द्वारा भगवान् विष्णुका ही यजन-पूजन होता है।

भागवतमें लिखा है—

देशः कालः पृथग् द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः।
देवता यजमानश्च क्रतुधर्मश्च यन्मयः॥
स एष भगवान् साक्षात् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः।
(१०।२३।४७-४८)

'देश' काल, पृथक्-पृथक् हवनीय द्रव्य, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—ये सभी साक्षात् भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं।'

पद्मपुराणमें भी कहा है—

असौ यज्ञेश्वरो यज्ञो यज्ञभुग् यज्ञकृद् विभुः।
यज्ञभृद् यज्ञपुरुषः स एव परमेश्वरः॥
(उत्तरखण्ड २२६।७६)

'यह भगवान् विष्णु यज्ञेश्वर, यज्ञ, यज्ञभोक्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञस्वामी, यज्ञपोषक, यज्ञपुरुष और परमेश्वर कहे जाते हैं।'

विष्णुसहस्रनाममें लिखा है —

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः।
यज्ञभृद् यज्ञकृद्यज्ञो यज्ञभुग्यज्ञसाधनः॥

---

*'यज्ञो वै विष्णुः' (शतपथब्रा० १।१।१।२)

यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यम् .... ।

'भगवान् स्वयं यज्ञ हैं, यज्ञपति हैं, यजमान हैं, यज्ञाङ्ग हैं, यज्ञ-निर्वाहक हैं, यज्ञ-संरक्षक हैं, यज्ञ-विस्तारक हैं, यज्ञशेषी हैं, यज्ञभोक्ता हैं, यज्ञप्राप्तिके साधन हैं, यज्ञके पूर्ण करानेवाले हैं और यज्ञके पूर्ण ज्ञाता हैं।'

मार्कण्डेय पुराण (१०३।१०) के '**विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन्**' इस वचनानुसार वेदोक्त समस्त इष्टियाँ (दर्शपौर्ण-मासेष्टि आदि श्रौतयाग) भगवान् विष्णुकी ही स्वरूप हैं इसीलिये भगवान् विष्णुको समस्त यज्ञोंका स्वरूप कहा गया है—

'**सर्वक्रतुमयो विष्णुः।**' (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१।३१४)

भगवान्ने भी अपने सम्बन्धमें यों कहा है—

'**यज्ञरूपी विष्णुरहम्।**' (देवीभागवत ६।४५।७८)

'मैं ही यज्ञरूपी विष्णु हूँ।'

'**यज्ञरूपी विष्णुरहम्।**' (ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिखण्ड ४२।८६)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥

(गीता ९।१६)

'मैं क्रतु (श्रौतयज्ञ) हूँ, मैं यज्ञ (स्मार्तयज्ञ) हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं औषध हूँ, मैं मन्त्र हूँ, मैं घृत हूँ, मैं अग्नि हूँ और मैं ही हवनरूप कर्म हूँ।'

'**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।**'

(गीता ९।२४)

'समस्त यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु (स्वामी) मैं ही हूँ।'

दक्षप्रजापतिके यज्ञमें विघ्न उपस्थित होने पर अनेक देवताओंकी प्रार्थनासे दक्षके यज्ञमें आये हुए भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंने कहा है—

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं
त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥

(भागवत ४।७।४५)

'भगवन् ! आप ही यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, कुशा और यज्ञपात्र हैं तथा आप ही सदस्य, ऋत्विज, यजमान एवं उसकी धर्मपत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस, घृत और पशु हैं।'

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥

(भागवत ४।७।४७)

'हे यज्ञेश्वर ! जब लोग आपके पवित्र नामका संकीर्तन करते हैं, तब यज्ञके समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। हमारा यह यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट होगया था, अतः हम आपके दर्शनोंकी इच्छा कर रहे थे। अब आप हम पर प्रसन्न हो जाइये, आपको नमस्कार है।'

विष्णुपुराण (५।२१।६७) में लिखा है—

यज्ञैस्त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।
त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्वनां परमेश्वर ॥

'हे अचिन्त्य ! हे सर्वदेवमय ! हे अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आप ही का यजन किया जाता है तथा हे परमेश्वर ! आप ही यज्ञ करनेवालोंके यष्टा और यज्ञस्वरूप हैं।'

वेदोंमें लिखा है कि यज्ञ ही विष्णु है और विष्णु ही यज्ञ है—

यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयब्रा० १।२।५।४०)
यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयब्रा० १।३।८।५२)

यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयब्रा० १।४।३)
यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयब्रा० १।८।२।२)
यज्ञो वै विष्णुः । (ऐतरेयब्रा० १।१५)
यज्ञो वै विष्णुः । (ऐतरेयब्रा० ३।४)
यज्ञो वै विष्णुः । (शतपथब्रा० १।१।१।२)
यज्ञो वै विष्णुः । (शतपथब्रा० १।१।२।१३)
यज्ञो वै विष्णुः । (शतपथब्रा० ५।४।५।१९)
यज्ञो वै विष्णुः । (शाङ्खायनब्रा० ४।२)
यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयसंहिता १।७।४)
यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्ति० शा० २।५।७।३)
यज्ञो ह वै विष्णुः । (शतपथब्रा० १९।१।१)
विष्णुर्वै यज्ञः । (ऐतरेयब्रा० १।१५)
विष्णुर्वै यज्ञः । (कपि० शा० ३५।९)
विष्णुर्व यज्ञः । (तैत्ति० शा० ६।२।८।७)
विष्णुर्वै यज्ञः । (मैं० शा० ४।६।२)
यो वै विष्णुः स यज्ञः । (शतपथब्रा० ५।२।३।६)

भागवत आदि पुराणोंमें तो सभी यज्ञोंको विष्णुपरक ही स्वीकार किया है—

वासुदेवपरा मखाः । (भागवत १।२।२८)
नारायणपरा मखाः । (भागवत २।५।१५)
नारायणपरा यज्ञाः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ८०।९२)
नारायणपरा यज्ञाः । (ब्रह्मपुराण ६०।२६)
नारायणपरो यज्ञः । (मत्स्यपुराण २४७।३६)

जो विष्णु साक्षात् यज्ञस्वरूप और यज्ञपति हैं, उन भगवान् विष्णुका महत्त्व वेदादि शास्त्रोंमें इस प्रकार लिखा है—

विष्णुमुखा वै देवाः । (नारायणोपनिषद् १०)
विष्णुः सर्वा देवताः । (ऐतरेयब्रा० १।१।१)

विष्णर्वै देवानां परमः । (ऐतरेयब्रा० १।१।६)
विष्णुर्देवानां श्रेष्ठः । (शतपथब्रा० १४।१।१।५)
मूलं हि विष्णुर्देवानाम् । (भागवत १०।४।३६)
विष्णुरेव परं ब्रह्म । (पद्मपुराण, पातालखण्ड ६७।६०)
ईश्वरो भगवान् विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २२६।६६)
सर्वदेवमयो विष्णुः । (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ६४।३४)
सर्वतीर्थमयो विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१।३१३)
सर्वपापहरो विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १२६।८२)
नास्ति विष्णुसमो देवः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २६।८६)

अतः मनुष्यको भगवान् विष्णुके यथार्थ स्वरूप और महत्त्वको समझकर यज्ञ करना चाहिये । जो मनुष्य भगवान् विष्णुके यथार्थ स्वरूप और महत्त्वको न जानकर यज्ञ करता है, उसे पाखण्डी कहते हैं—

समस्तयज्ञभोक्तारमविदित्वाऽच्युतं हरिम् ।
उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च ॥
स पाषण्डीति विज्ञेयः..........................॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३५।८-६)

'समस्त यज्ञोंके भोक्ता भगवान् विष्णुको न जानकर केवल दूसरे देवताओंके उद्देश्यसे जो यज्ञ एवं दान करता है, उसे पाखण्डी कहा गया है ।'

यह भारतवर्ष सर्वदासे 'यज्ञिय देश' कहा जाता है । यहाँ प्राचीन कालसे ही भारतके प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक नगर, प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक घरमें सर्वदा यज्ञ होते थे । उस समय भारतवर्षकी स्थिति इस प्रकार थी—

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो ग्रामे ग्रामे स्थितो मखः ।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व)

'भारतके प्रत्येक ग्राममें देव-मन्दिर था, प्रत्येक देशमें यज्ञ होता

था, प्रत्येक घरमें द्रव्यका अटूट भण्डार भरा रहता था और प्रत्येक मनुष्यमें धर्मका अस्तित्व होता था।'

भारतवर्षकी धार्मिकता और यज्ञ-परम्परा प्रसिद्ध है। भारतवर्षकी धार्मिकता और यज्ञ-परम्परासे सन्तुष्ट होकर देवगण सर्वदा भारतवर्षमें ही निवास करते हैं, वे दूसरे देशोमें नहीं जाते। देवताओंके भारतवर्षमें रहने के कारण भारतवर्षका अत्यन्त महत्त्व है। इसीलिये भारतवर्षको 'देवभूमि' कहा गया है।

ब्रह्मपुराण (१६।२२-२३) में लिखा है—

पूरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः॥

'जम्बूद्वीपमें मनुष्योंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका सर्वदा यज्ञ हुआ करता है। यज्ञोंके कारण यज्ञस्वरूप भगवान् विष्णु दूसरे द्वीपोंमें न जाकर सर्वदा जम्बूद्वीपमें ही निवास करते हैं। इस जम्बूद्वीपमें भी 'भारतवर्ष' विशेष श्रेष्ठ है, जो कि यज्ञोंके कारण 'कर्मभूमि' कहलाता है और दूसरे द्वीप 'भोगभूमि' कहलाते हैं।'

भागवत (१०।८४।३५) में कहा है—

कर्मणा कर्मनिर्हारः एष साधु निरूपितः।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः॥

'कर्मोंके द्वारा कर्मवासनाओं और कर्म-फलोंका आत्यन्तिक नाश करनेका सबसे श्रेष्ठ उपाय यज्ञ है। अतः यज्ञादिके द्वारा समस्त यज्ञोंके अधिपति भगवान् विष्णुका श्रद्धापूर्वक आराधन करना चाहिये।'

भगवान् विष्णु सबके आराध्य और पूज्य हैं। अतः उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये यज्ञ ही एकमात्र साधन है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको

परमाराध्य आदिनारायण भगवान् विष्णुका सर्वदा यजन करना चाहिये। क्योंकि वे यज्ञोंके द्वारा ही आराधनीय हैं—'**यज्ञैराराधितो विष्णुः**' (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २०२।८)।

यज्ञ और प्रजापति

शतपथब्राह्मण (११।१।८।३) में कहा है कि प्रजापतिने अपनी प्रतिमा (चित्र) के रूपमें सर्वप्रथम यज्ञको उत्पन्न किया—

'अथैनमात्मनः प्रतिमामसृजत यद् यज्ञम्, तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येनं प्रतिमामसृजत।'

ऐतरेयब्राह्मण (२५।७) में कहा है—

'स प्रजापतिर्यज्ञमतनुत, तमाहरत्, तेनायजत।'

'पहले प्रजापतिने अपनी इच्छासे यज्ञका विस्तार किया। पश्चात् उन्होंने यज्ञसामग्रियोंको एकत्रित कर उनसे यज्ञ प्रारम्भ किया।'

शाङ्खायन ब्राह्मण (२८।१) में लिखा है—

'प्रजापतिर्ह यज्ञं ससृजे, तेन ह सृष्टेन देवा ईजिरे, तेन हेष्ट्वा सर्वान् कामानापुः।'

'प्रजापतिने ही यज्ञकी सृष्टि (रचना) की। प्रजापतिके द्वारा रचित यज्ञसे देवताओंने यजन किया, उस यज्ञसे यजन करके देवताओंने समस्त मनोरथोंको प्राप्त किया।'

शुक्लयजुर्वेदके '**तं यज्ञम्**' (३१।९) इस मन्त्रमें कहा गया है कि सर्वप्रथम उत्पन्न भगवत्स्वरूप उस यज्ञसे इन्द्रादि देवताओं,

सृष्टिसाधन योग्य प्रजापति आदि साध्यों और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने [1]यज्ञ (मानसयज्ञ) किया।

गीता (३।१०) में भी कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

'प्रजापतिने यज्ञके साथ प्रजा (मानव-जाति) की रचना कर कहा—तुमलोग मेरे द्वारा रचित यज्ञसे वृद्धि को प्राप्त हो, यह यज्ञ तुम लोगों की सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होगा।'

यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम्॥

(विष्णुपुराण १।६।७)

'हे महाभाग! ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानके लिये ही यज्ञके उत्तम साधनरूप इस सम्पूर्ण चातुर्वर्ण्य की रचना की है।'

मानव-जातिकी रचना करनेवाले प्रजापति (ब्रह्मा) ने विराट्के शरीरमें आत्म-रूपसे प्रविष्ट होकर प्रजाकी रचना की। अतः प्रजापतिको 'विराट्' अथवा 'विराट्-पुरुष' कहा जाता है। विराट्-पुरुषका विस्तृत वर्णन शुक्लयजुर्वेदके ३१वें अध्यायके '**सहस्रशीर्षा पुरुषः**' इत्यादि १६ मन्त्रोंमें किया गया है। शुक्ल यजुर्वेदके ३१वें अध्यायके १६ मन्त्रोंमें विराट्-पुरुषके अङ्गोंकी कल्पना, विराट्के विभुत्वका प्रतिपादन, विराट्के सृष्टिरूप यज्ञका वर्णन और विराट्—स्वरूप प्रजापतिके पूजनादिका वर्णन है। शुक्लयजुर्वेके ३१ वें अध्यायके प्रारम्भिक १६ मन्त्रोंमें विराट्-पुरुषका वर्णन होनेके कारण इसको 'पुरुषसूक्त' कहते हैं।

---

[1] यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। (शु० यजु० ३१।१६)
यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त। (ऐतरेयब्रा० १।१६)

प्रजापति (ब्रह्मा) के द्वारा यज्ञके साथ मनुष्यकी रचना होनेके कारण मनुष्य-जाति प्रजापतिकी सन्तति कही जाती है। अतः मनुष्य-जातिके लिये 'प्रजापति' परम पूज्य और परम आराध्य देवता हैं।

गीता (३।१५) के अनुसार सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा सर्वदा यज्ञमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। अतः यज्ञमें प्रतिष्ठित रहनेवाले परब्रह्मकी प्रसन्नतार्थ मनुष्यको प्रजापतिके द्वारा रचित यज्ञका सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये। जो मनुष्य प्रजापतिके द्वारा निर्मित यज्ञका अनुष्ठान नहीं करता, वह व्यर्थ ही संसारमें जीवित रहता है।

गीता (३।१६) में भी कहा है—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

'हे पार्थ! जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार चलाये हुए सृष्टि-चक्रके अनुसार आचरण नहीं करता है अर्थात् शास्त्रानुसार कर्म नहीं करता है, वह इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाला और पापपूर्ण आयुके द्वारा अपने जीवनको व्यर्थ ही गँवाता है अर्थात् यज्ञ-विहीन मनुष्यका जीवन व्यर्थ ही है।'

वेदोंमें प्रजापतिके महत्त्वका वर्णन करते हुए कहा है कि—यज्ञ ही प्रजापति है और प्रजापति ही यज्ञ है—

१—यज्ञः प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ११।६।३।९)
२—यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३।१०)
३—यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३०।१०।६५)
४—यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० ३।३।७।४०)
५-यज्ञो वै प्रजापतिः। (शाङ्खायनब्रा० १०।१)
६—प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० १।१।१।१)
७—प्रजापतिर्यज्ञः (शतपथब्रा० ५।४।५।१९)

८—**प्रजापतिर्यज्ञः ।** (शतपथब्रा० ११।१।८।३)
९—**प्रजापतिर्वै यज्ञः ।** (गोपथब्रा० पूर्व० २।१८)
१०—**प्रजापतिर्वै यज्ञः ।** (ऐतरेयब्रा० १।९।५)
११—**प्रजापतिर्वै यज्ञः ।** (शाङ्खायनब्रा० १३।१)
१२—**एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः ।** (शतपथब्रा० ४।३।४।३)

प्रजापतिकी अनन्त महिमा है। प्रजापतिका सिर द्यौ है, नेत्र सूर्य हैं और पैर पृथिवी हैं। समष्टि और व्यष्टि-रूपसे समस्त शक्तियोंमें प्रजापतिकी ही दिव्य शक्ति और महिमा व्याप्त है।

प्रजापतिको समष्टि-जगत्के अधिपतिरूपमें 'परमात्मा' कहा जाता है और उन परमात्माको सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण और इन्द्र आदि नामोंसे व्यवहृत किया गया है—'**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्**' (ऋग्वेद १।१६४।४६)।

'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**' (ऋ० १।१६४।४६) के अनुसार सविताको (ऋ० ४।५३।२), सोमको (ऋ० ९।५।९), वायुको (अथर्व० २।३४।४), सूर्यको (अथर्व० ४।१५।११), विष्णुको (अथर्व० १७।१।१८) और प्राणको (अथर्व० ११।६।१२) 'प्रजापति' कहा है।

'**महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते । एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।**'

(निरुक्त, दैवतकाण्ड ७।४)

'प्रजापतिकी विशिष्ट महिमा होनेके कारण उन एक ही आत्माकी अनेक रूपोंमें स्तुति की गई है, जिससे स्पष्ट है कि—एक ही प्रजापति अनेक हैं और दूसरे समस्त देवता उन्हीं एक आत्माके भिन्न-भिन्न अङ्ग हैं।'

विराट्-स्वरूप प्रजापतिके सूर्य आदि समस्त देवगण शरीर ही माने जाते हैं। अतः सूर्य आदि देवगण सर्वदा प्रजापतिकी महिमाका

गुणगान करते रहते हैं। प्रजापतिको यज्ञिय-देवता कहा गया है। जिस प्रकार प्रजापति यज्ञिय-देवता हैं, उसी प्रकार सूर्य आदि देवता भी यज्ञिय देवता हैं। जिस प्रकार हमलोग अपने अङ्गोंका संचालन और संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार प्रजापति भी अपने अङ्ग-स्वरूप देवताओंका संचालन और संरक्षण करते हैं।

शुक्लयजुर्वेदके 'अजो हि०' (१३।५१) इस मन्त्रमें कहा गया है कि प्रजापतिने प्रजाकी सृष्टि-कामनासे यज्ञ प्रारम्भ किया और उस यज्ञकी अग्निमें अपनी वपा (हृदयकी चर्बी) निकालकर उसका हवन किया। अतः जब कि प्रजापतिने सृष्टि-समृद्धिके लिये अपनी वपाद्वारा यज्ञ किया है, तो उनकी सन्तुष्टिके लिये हमें भी हवनीय द्रव्यद्वारा अवश्य ही यज्ञ करना चाहिये।

यज्ञ और गौ

वेदादि शास्त्रोंमें गौ और गौके दुग्ध, दधि घृत, गोमूत्र और गोबरका बहुत ही महत्त्व लिखा है। इनका उपयोग प्रत्येक श्रौत-स्मार्त यज्ञादि कर्ममें होता है। गौके गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत आदिसे ही पञ्चामृत और पञ्चगव्य बनता है। यज्ञमें यजमानको अपनी देह-शुद्धिके लिये पञ्चगव्यका प्राशन करना पड़ता है। यज्ञभूमि और यज्ञमण्डप आदिको पवित्र करनेके लिये गोमूत्रसे प्रोक्षण और गोबरसे लेपन किया जाता है। यज्ञकी अग्नि गोबरके कण्डोंसे ही प्रज्वलित की जाती है। यज्ञोंमें गोघृतकी ही प्रधानता होती है। देवगण गोघृतको ही ग्रहण करते हैं। इसीलिये हवनमें गोघृतका ही उपयोग विशेष रूपसे किया जाता है। अतः सिद्ध है कि गौके दुग्ध, दधि, घृत आदि पदार्थ यज्ञके प्रधान अङ्ग हैं, इनके बिना कोई भी यज्ञ और कोई भी धार्मिक अनुष्ठान सुसम्पन्न नहीं हो सकता।

ऋते दधि घृतेनेह न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतो मूलं च कथ्यते ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ८३।२)

'गौके दधि और घृतके बिना यज्ञ नहीं हो सकता, अतः गौसे ही यज्ञका यज्ञत्व (सत्ता) है। इसलिये गौको यज्ञका मूल कहा गया है।'

यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव ।
एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथञ्चन ॥
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ।
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि वै ।
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ८३।१७–१९)

'गौओंको यज्ञका अङ्ग और साक्षात् यज्ञ ही कहा है। इनके बिना यज्ञ कथमपि नहीं हो सकता। ये अपने दुग्ध और घृतसे प्रजाका पालन-पोषण करती हैं तथा इनके पुत्र (बैल) खेतीके काममें आते हैं और विविध प्रकारके अन्न तथा बीज उत्पन्न करते हैं, जिनसे यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं और सर्वदा हव्य-कव्यका भी कार्य चलता है।'

और भी कहा है—

अन्नं हि परमं गावो देवानां परमं हविः ।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ७८।७)

'गौएँ ही परम अन्न हैं और वे देवताओंकी परम पवित्र हवि हैं। स्वाहाकार और वषट्कार गौओंमें ही नित्यरूपसे स्थित रहते हैं।'

'गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ।'

(महाभारत, अनुशासनपर्व ७८।८)

'गौएँ ही यज्ञका फल देनेवाली हैं और गौओंमें समस्त यज्ञ प्रतिष्ठित रहते हैं।'

'यज्ञैरवाप्यते सोमः स च गोषु प्रतिष्ठितः।'

(महाभारत, अनुशासनपर्व ७७।१४)

'यज्ञ करनेसे सोमकी प्राप्ति होती है और वह यज्ञ गौओंमें प्रतिष्ठित रहता है।'

'गोभ्यो हविः प्रजायेत यज्ञसिद्धिस्ततोऽनिशम्।'

'गौओंसे दुग्ध, घृतादि हविष्य-पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है, जिनसे निरन्तर यज्ञकी सिद्धि होती है।'

'गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्।'

(महाभारत, अनुशासनपर्व ५१।५६)

'गौएँ ही यज्ञका सञ्चालन करनेवाली हैं और गौएँ ही यज्ञकी मुखरूपा हैं।'

'गावो वितन्वते यज्ञं गावः सर्वाघसूदनाः।'

(विष्णुसंहिता २३।५८)

गौएँ घृत आदिके द्वारा यज्ञका विस्तार करती हैं और वे समस्त प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली हैं।'

शुक्लयजुर्वेदके '**सा विश्वायुः**' (१।४) इस मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि यज्ञकी मुख्य क्रियाएँ गोमाता पर ही निर्भर हैं।

यज्ञके आदि और अन्तमें गोदान किया जाता है। यह गोदान केवल यज्ञमें ही नहीं, किन्तु प्रत्येक धार्मिक कृत्यमें आवश्यक है। जिस कर्ममें गोदान नहीं किया जाता, वह कर्म अपूर्ण माना जाता है। अतः धार्मिक दृष्टिसे गोदानका बहुत ही महत्त्व है।

गोदानके समय जो गोमाताकी स्तुति की जाती है, उसमें भी गौको 'यज्ञका साधन' कहा गया है—

यज्ञसाधनभूताया विश्वस्याघप्रणाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा॥

'समस्त यज्ञ गौकी सहायतासे परिपूर्ण होते हैं और गौ समस्त

संसारके पापसमूहको नाश करनेवाली है। अतः इस गौसे विश्वरूप भगवान् प्रसन्नताको प्राप्त हों।'

ब्रह्मा, विष्णु, महेशने भी गोमाताकी स्तुति करते हुए गोमाताको 'यज्ञका प्रधान कारण' बतलाया है—

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे॥

(स्कन्द० ब्रह्म० धर्मारण्य० १०।१८)

'हे पापरहित गौ! तुम समस्त देवताओंकी माता, यज्ञकी कारण-रूपा और समस्त तीर्थोंकी तीर्थरूपा हो। अतः हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।'

जिस प्रकार देवकार्यमें गोदुग्ध और गोघृत आदिकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार पितृकार्यमें भी गोदुग्ध एवं गोघृतकी आवश्य-कता होती है। गौके अतिरिक्त अन्य किसीभी जीवके दुग्ध, घृत आदिको पितृगण प्रसन्नतासे ग्रहण नहीं करते। अतः समस्त देवकार्य और पितृकार्यमें गौको प्रधान साधन बतलाया है। संक्षेपतः हमारे समस्त धार्मिक अनुष्ठान गौके आधारपर ही निर्भर हैं।

गौ यज्ञस्वरूपा, यज्ञसाधिका और सर्वदेवस्वरूपा है। अतः यज्ञोंमें गोदर्शन, गोपूजन और गोदानका विशेष महत्त्व कहा गया है। पूर्व-कालमें होनेवाले यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें गायोंको ही दिया जाता था। इसलिये यज्ञोंमें गौकी विशेष आवश्यकता होती है। गौके बिना कोई भी यज्ञ सफल नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि यज्ञादि समस्त धार्मिक कृत्योंकी सुसम्पन्नता गोमाता पर ही निर्भर है। इसलिये यज्ञकी सुसम्पन्नतार्थ गोरक्षण परमावश्यक है। गोरक्षणको ही यज्ञरक्षण कहा गया है। गोरक्षणसे ही धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है।

गौ और यज्ञका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। गौके बिना यज्ञ

सुसम्पन्न नहीं हो सकता और यज्ञके बिना गौकी रक्षा नहीं हो सकती। अतः गौकी रक्षार्थ यज्ञ करना आवश्यक है।

वेदादि शास्त्रोमें ×'गोयज्ञ' लिखे हैं, जिनके करनेसे गोरक्षा होती है। वैदिककालमें बड़े-बड़े 'गोयज्ञ' हुआ करते थे। भगवान् श्रीकृष्णनें भी गोवर्धन-पूजनके समयमें 'गो-यज्ञ' कराया था। गो-यज्ञमें वेदोक्त गो-सूक्तोंसे गो-रक्षार्थ हवन, गोपूजन, वृषभ-पूजन आदि कार्य किये जाते हैं, जिनसे गोसंरक्षण, गोसंवर्धन, गोवंशरक्षण, गोवंशवर्धन, गोमहत्त्व-प्रख्यापन और गो-सङ्गतिकरण आदिमें विशेष लाभ होता है। आज वर्त्तमान समयकी विकट परिस्थिति देखते हुए गो-प्रधान भारतभूमिमें सर्वत्र गो-यज्ञकी अथवा गोरक्षा-महायज्ञकी विशेष आवश्यकता है। गोपालनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थना है कि वे भारतवासी धर्मप्रेमी हिन्दुओंके हृदयोंमें गोरक्षार्थ 'गो-यज्ञ' करनेकी प्रेरणा करें, जिससे भारतवर्षके कोने-कोनेमें उत्साहके साथ अगणित गो-यज्ञ हों और उन गो-यज्ञोंके फलस्वरूप प्रत्येक हिन्दू भाईके मुखसे 'गो-माताकी जय हो' यह पवित्र ध्वनि सर्वदा निःसृत होती रहे, जिससे मानवमात्रका कल्याण हो।

देवी गौर्धेनुका देवाश्चादिदेवी त्रिशक्तिका।
प्रसादाद् यस्य यज्ञानां प्रभवो हि विनिश्चितः॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ५०।१३५)

'गौ देवी है, देवता है और त्रिशक्तिस्वरूप आदिदेवी है, अतः गौकी कृपासे ही समस्त यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है, यह निश्चित है।'

× देखिए—गोभिलगृह्यसूत्र (३।६।११)

वेदोंमें यज्ञका महत्त्व

वेद चार हैं। चारों वेदोंकी ११३१ शाखाएँ हैं, उनमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड—ये तीन भाग विभक्त हैं। इनके समस्त मन्त्रोंकी संख्या एक लक्ष है—

'लक्षं तु वेदाश्चत्वारः लक्षं भारतमेव च।'

(चरणव्यूह ५।१)

वेदोंके एक लक्ष मन्त्रोंमें कर्मकाण्डके ८० हजार, उपासनाकाण्डके १६ हजार और ज्ञानकाण्डके ४ हजार मन्त्र हैं। इनमें सबसे अधिक मन्त्र कर्मकाण्डमें हैं। अतः स्पष्ट है कि वेदोंमें कर्मकाण्डके जितने मन्त्र हैं, उतने अन्य किसी विषयके नहीं। इस दृष्टिसे यदि कहा जाय कि वेदोंमें कर्मकाण्ड-भागकी ही प्रधानता है और कर्मकाण्ड-भाग ही वेदोंका मुख्य विषय है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यदि वेदोंसे कर्मकाण्ड—भागको निकाल दिया जाय, तो वेद निर्जीव ही हो जायँगे। अतः कर्मकाण्ड-भाग अर्थात् यज्ञ-भागसे ही वेद सजीव और महत्त्वपूर्ण हैं। इस कर्मकाण्ड—भागमें विशेषकर यज्ञोंका ही प्राधान्य है। अतः वेदोंका मुख्य विषय 'यज्ञ' ही है। यज्ञोंसे ही वेद प्रतिष्ठित और मान्य हैं। इसलिये यज्ञोंकी रक्षार्थ सभीको, विशेषतः वैदिक-धर्मके अनुयायियोंको पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिये।

यज्ञ वैदिक-संस्कृतिका प्रधान अङ्ग है। यज्ञके द्वारा ही समस्त संसारका कल्याण होता है। यज्ञमें लोक-कल्याण-भावना विशेष रूपमें निहित रहती है।

ऐतरेयब्राह्मण (१।२।३) में लिखा है—

'यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते।'

'यज्ञ जनताके कल्याणके लिये किया जाता है।'

यज्ञमें लोक-कल्याणकी भावना मुख्य है, अतः लोक-कल्याणकी दृष्टिसे सभी युगोंमें यज्ञकी नितान्त आवश्यकता है।

हमारे धर्माचार्योंने मनुष्यके लिये जितने भी धर्म कहे हैं, वे सभी यज्ञ-लक्षणसे संयुक्त (यज्ञमय) हैं। प्राचीन ऋषि-महर्षियोंने शास्त्रोंके अनुसार ही अपना जीवन यज्ञमय बनाया था। वे यज्ञ-द्वारा अपना और जगत्का कल्याण किया करते थे। वस्तुतः यज्ञमें अपूर्व शक्ति है। यज्ञसे जो जिस वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, वह उसे वही वस्तु देता है—**'यो यदिच्छति तस्य तत्।'** (कठोपनिषद् १।२।१६)।

अतः स्पष्ट है कि संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो यज्ञके द्वारा प्राप्त न हो सके। यज्ञसे केवल ऐहलौकिक धन-धान्य, सन्तति आदि वस्तुओंकी ही नहीं, किन्तु पारलौकिक 'मोक्ष' आदि पदार्थोंकी भी प्राप्ति होती है। जिन यज्ञोंद्वारा लोक-लोकान्तरके महत्त्वपूर्ण अद्भुत मोक्षादि पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, उनका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये, जिससे हमारा भारतवर्ष पुनः 'यज्ञिय-देश' कहला सके।

समयकी अद्भुत गति है। जो भारतवर्ष पहले 'यज्ञिय-देश' कहलाता था, आज वही 'अयज्ञिय-देश' कहलाता है। जिस भारत-वर्षमें यज्ञोंके प्रति श्रद्धा-भक्ति थी, आज उसी भारतमें यज्ञोंके प्रति अश्रद्धाका साम्राज्य छा गया है। यज्ञोंके नामसे लोग चिढ़ने लगे हैं। सब लोग यज्ञोंको ढोंग और व्यर्थ बतलाकर यज्ञोंका विरोध करने लग गये हैं। उसीका भयङ्कर परिणाम है कि आज गीता (३।१४) के **'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** का यथार्थ फल प्राप्त नहीं हो रहा है। कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि हो रही है, जिससे उचित मात्रामें अन्न पैदा नहीं हो रहा है। अन्नकी कमीसे आज सारा देश पीड़ित और त्रस्त है। किसीको भी सुख-शान्ति नहीं। अतः सुख-शान्तिके स्थापनार्थ सबको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वेदोक्त यज्ञोंको अप-

नाना चाहिये । वेदोक्त यज्ञोंको अपनानेसे ही मानव-जीवन सुखमय बन सकता है, अन्यथा कठिन है ।

ऋग्वेद (८।८६।३) में कहा है कि जो मनुष्य यज्ञोंको नहीं मानता और जो यज्ञमें देवताओंके निमित्त अन्नको (हविर्द्रव्यको) स्वाहा, स्वधा, वषट्काररूपमें समर्पित नहीं करता, वह मनुष्य पर-लोकके समस्त सुखोंसे वञ्चित रहता है और उसे काक, गीध, कुत्ता आदिकी निकृष्ट योनि प्राप्त होती है । जो पुण्यात्मा यज्ञके प्रति श्रद्धा, विश्वास रखकर यज्ञ करता है, वह यज्ञके पुण्य-प्रतापसे 'देवता' बन जाता है ।

प्राचीन कालमें सुधन्वाके तीनों पुत्र यज्ञद्वारा मनुष्यसे 'देवता' बन गये (ऋग्वेद ५।३५।८) और मरुद्गण (जो पहले मनुष्य थे) भी यज्ञरूपी पुण्यके द्वारा 'देवता' बन गये (ऋग्वेद १०।७७।२) ।

शुक्लयजुर्वेद (३१।९) में आता है कि सर्वप्रथम उत्पन्न भगवत्स्वरूप उस यज्ञसे इन्द्रादि देवताओं, सृष्टि-साधन योग्य प्रजा-पति आदि साध्यों और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने [1]यज्ञ भगवान्का यजन किया—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥

शतपथब्राह्मण (११।१।८।३) में भी लिखा है कि प्रजापतिने अपनी प्रतिमा (चित्र) के रूपमें सर्वप्रथम यज्ञको उत्पन्न किया । अतः यज्ञ साक्षात् भगवान्का स्वरूप है—

'अथैनमात्मनः प्रतिमामसृजत यद् यज्ञम्, तस्मादाहुः प्रजापति-र्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येनं प्रतिमामसृजत ।'

---

१. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । (शु० य० ३१।१६)
यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त । (ऐतरेयब्रा० १।१६)

यज्ञके सम्बन्धमें कहा गया है कि [1]यज्ञ ही समस्त भुवनोंका केन्द्र है और वही [2]पृथ्वीको धारण किये हुए है। यज्ञ ही साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है, जो [3]विष्णु, राम, कृष्ण, यज्ञपुरुष, प्रजापति, सविता, अग्नि, इन्द्र, सूर्य आदि नामोंसे उच्चरित होते हैं —

१ यज्ञो वै विष्णुः। (शतपथब्रा० १।१।२।१३)
२ यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयसं० १।७।४)
३ यज्ञो वै विष्णुः। (कृष्णयजुर्वेदसं० ३।५।२)
४ विष्णुर्वै यज्ञः। (ऐतरेयब्रा० १।१५)
५ पुरुषो वै यज्ञः। (शतपथब्रा० १।३।२।१)
६ यज्ञः प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ११।६।३।९)
७ यज्ञ एव सविता। (गोपथब्रा० पू० १।३३)
८ अग्निर्वै यज्ञः। (ताण्ड्यब्रा० १२।५।२)
९ इन्द्रो वै यज्ञः। (मै० शा० ४।३।७)
१० यज्ञो वै स्वरहर्देवाः सूर्यः। (शतपथब्रा० १।१।२।२१)
११ भगवान् यज्ञपूरुषः। (भागवत ४।१४।१८)
१२ भगवान् सर्वयज्ञभुक्। (भागवत ७।१४।१७)
१३ साक्षात्स यज्ञपुरुषः। (भागवत २।७।११)
१४ यज्ञः सर्वगतो हरिः। (भागवत ८।१।१८)
१५ यज्ञोऽहं भगवत्तमः। (भागवत ११।१९।३९)
१६ यज्ञो हि भगवान् विष्णुः। (विष्णुधर्मोत्तर पु० १६२।२)
१७ यज्ञरूपो हि भगवान्। (ब्रह्मवैवर्त पु०, प्रकृतिखण्ड ४०।११)

---

१ अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (ऋग्वेद १।१६४।३५)
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (शु० यजुर्वेद २३।११)
यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (अथर्ववेद ९।१०।१४)
२ यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति। (अथर्ववेद)
३ एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद १।१६४।४६)

१८ यज्ञरूपी विष्णुरहम् । (ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृतिखण्ड ४२।७६)
१९ वासुदेवपरा मखाः । (भागवत १।३।२८)
२० नारायणपरा मखाः । (भागवत २।५।१५)
२१ नारायणपरा यज्ञाः । (ब्रह्मपुराण ६०।२६)
२२ नारायणपरा यज्ञाः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ८०।९२)
२३ नारायणपरो यज्ञः । (मत्स्यपुराण २४७।३६)
२४ प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव । (पद्मपुराण,सृष्टिखण्ड ३।४६)
२५ अहं क्रतुरहं यज्ञः । (गीता ९।१६)
२६ अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्तारं प्रभुरेव च । (गीता ९।२४)
२७ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् । (गीता ३।१५)
२८ .... क्रतुधर्मश्च यन्मयः ।

स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥

(भागवत १०।२३।४७–४८)

२९ वेदयज्ञमयं रूपमाश्रित्य जगतः स्थितौ ।
स्थितः स्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३।३०)

जो यज्ञ समस्त भुवनोंका केन्द्र है, जो यज्ञ समस्त पृथ्वीको धारण किये हुए है, जो यज्ञ साक्षात् भगवान्का स्वरूप है, उस यज्ञका महत्त्व चारों वेदोंमें बड़े विस्तारसे मिलता है।

वेदोंमें यज्ञको अत्यन्त महत्त्व दिया है। शुक्लयजुर्वेदके इकतीसवें अध्यायके मन्त्र ६, ७, ८, ११, १२ और १३वें मन्त्रमें कहा है कि यज्ञपुरुष परमेश्वरने यज्ञके द्वारा ही समस्त सृष्टिको, वेदोंको, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पञ्चप्राण, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वीलोक और दश दिशाओंको उत्पन्न करके सभीको स्वयं धारण कर रखा है।

तस्माद्यज्ञात सर्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

(शु० य० ३१।७)

यह मन्त्र चारों वेदोंमें प्राप्त है। इस मन्त्रमें कहा गया है कि यज्ञ (यज्ञपुरुष भगवान्) से ही समस्त वेदोंकी उत्पत्ति हुई है। यज्ञसे उत्पन्न होनेवाले वेदोंमें जो कुछ भी लिखा है, वह सब यज्ञ-परक ही है।

ऐतरेयब्राह्मण (५।५।८) में कहा गया है कि यज्ञपुरुष भगवान्ने यज्ञ-कार्यके सम्पादनार्थ ही चारों वेदोंका निर्माण किया।

अब हम यज्ञ महत्त्वसूचक चारों वेदोंके कतिपय मन्त्रोंका उल्लेख करते हैं, जिनसे यज्ञोंका महत्त्व स्पष्ट है।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति॥ (ऋग्वेद ३।१०।३)

'हे यज्ञाग्नि! जो मनुष्य तुम्हारे लिये समिधा प्रदान करता है, वह निश्चित ही उत्तम वीर्यको धारण करता है और वह सब प्रकारसे पुष्ट होता है।'

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम्।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे॥

(ऋग्वेद ५।२५।५)

'यज्ञकी अग्नि हविर्द्रव्य प्रदान करनेवालेको अत्यन्त यशस्वी, ज्ञानी, विजयी और श्रेष्ठ वाग्मी (वक्ता) बनाती है और उसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्रदान करती है।'

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥

(ऋग्वेद ६।५।५)

---

१ पुरुषसूक्त (शु० य० अध्याय ३१) में ईश्वरका एक नाम 'यज्ञ' भी कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि यज्ञ भी 'ईश्वर' का ही नाम है।

२ 'ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।' (ब्रह्मपुराण १।४६)

'हे भगवन् ! जो मनुष्य यज्ञ में उत्तम समिधा आदि सामग्रीसे और यज्ञ-स्तुतिपरक वैदिक मन्त्रोंसे तुम्हारी उपासना करता है, वह धन, ऐश्वर्य, तेज और यश से परिपूर्ण होकर ज्ञानवान् हो जाता है और अन्तमें अमरताको प्राप्त करता है।'

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षांसि सुक्रतो॥

(ऋग्वेद ६।१६।२९)

'हे यज्ञाग्नि ! तुम धर्मातमा यजमानके लिये उत्तम वीरों (पुत्रों) को उत्पन्न करो और धन प्रदान करो और धर्मात्माओंको दु:ख पहुँचानेवाले राक्षसोंका नाश करो।'

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्यर्यामिन्द्र सोमः।

(ऋग्वेद १।१७७।४)

'यह यज्ञ मनुष्यको परमात्माके पास पहुँचानेवाला है। यह यज्ञ स्वयं पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है।'

तमीडत प्रथमं यज्ञसाधम्। (ऋग्वेद १।९६।३)

'यज्ञद्वारा ही प्रभुकी प्राप्ति होती है।'

स यज्ञेन वनवद् देव मर्त्तान्। (ऋग्वेद ५।३।५)

'वह परमात्मा यज्ञके द्वारा मनुष्योंको सर्वदाके लिये भक्तियुक्त बना देता है।'

यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्। (ऋग्वेद ८।१४।५)

'यज्ञके द्वारा इन्द्र समृद्धिको प्राप्त होता है।'

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु। (ऋग्वेद १०।१२१।१०)

'हवनसे अभिलषित कामनाएँ पूर्ण होती हैं।'

त्रिꣳ शद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः॥

(शु० यजुर्वेद ३।८)

'प्रतिदिन किया जानेवाला यज्ञ सर्वदा अपनी प्रदीप्त ज्वालाके

सहित यज्ञकर्ताके शरीरमें निवास करता है। अतः यज्ञकर्ता यज्ञके प्रभावसे समस्त प्रकारके अन्धकार और अज्ञानसे मुक्त होकर प्रभुके सामीप्यको प्राप्त करता है।'

त्वामग्ने यजमाना ऽअनु द्यून्
विश्वा वसु दधिरे वार्याणि।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना
व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः॥

(शु० य० १२।२८)

'हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति सर्वदा यज्ञ करते रहते हैं, वे श्रेष्ठ सम्पत्तिके अधिपति होते हैं और उन्हें यज्ञके प्रभावसे सर्वदा श्रेष्ठ पुरुषोंका सत्सङ्ग एवं धनकी प्राप्ति होती है।'

यज्ञं वष्टु धिया वसुः। (शु० य० २०।८४)

'यज्ञसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।'

यज्ञो भुवनस्य नाभिः'× (शु० य० २३।६२)

'यज्ञ ही समस्त ब्रह्माण्डको बाँधनेवाला नाभिस्थान है।'

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्तु। (शु० य० १०। २०)

'जो जिस कामनाको लेकर हवन करता है, उसकी वह कामना पूर्ण होती है।'

शुक्लयजुर्वेदके अठारहवें अध्यायमें १ से २९ मन्त्रतक यज्ञकी ही महिमाका विस्तृत रूपसे उल्लेख किया गया है।

यज्ञं वष्टु धिया वसुः। (सामवेद, पूर्वा० २।८।५)

'यज्ञसे अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है।'

यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्। (सामवेद, पूर्वा० २।१।७)

'यज्ञके द्वारा ही इन्द्रदेव समृद्धिशाली हुए।'

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते। (सामवेद, उत्तरा० ७।१।१)

× नाभिमें ही भगवान् रहते हैं, अतः 'यज्ञो वै विष्णुः' (शतपथब्रा० १।१।२।१३) कहा है।

'यज्ञकी ज्योति मनुष्यको पवित्र करती है।'

जानीत स्मैनं परमे व्योमन्
देवाः सधस्था विद लोकमत्र।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं
स्म कृणुताविरस्मै॥

(अथर्ववेद ६।१२३।३)

'यज्ञ करनेवाला मनुष्य परम धाममें प्रतिष्ठित होता है, यह ध्रुव है। अतः परम धाममें जानेवाले यज्ञकर्ताका इष्टापूर्तिके द्वारा स्वागत करना चाहिये।'

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (अथर्ववेद ६।१०।१४)

'यज्ञ समस्त भुवनोंका केन्द्रस्थान है।'

यैरीजानाः स्वर्गं यान्ति लोकम्।' (अथर्ववेद १८।४।२)

'यज्ञ करनेवालोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है।'

यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्। (अथर्ववेद २०।२७।५)

'यज्ञसे इन्द्रदेवने उन्नति की।'

यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति। (अथर्ववेद)

'यज्ञ ही पृथिवीको धारण किये हुए हैं।'

यज्ञो हि देवानां महः। (शतपथब्रा० १।५।१।११)

'यज्ञ ही देवताओंकी विभूति है।'

यज्ञो वसुः। (शतपथब्रा० १।७।१।९)

'यज्ञ ही ऐश्वर्य है अर्थात् ऐश्वर्यको देनेवाला है।'

यज्ञाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। (शतपथब्रा० १।६।२।५)

'यज्ञसे ही सन्ततिकी उत्पत्ति होती है।'

मनुष्या एव हि यज्ञेनाण्नुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गानुसारिणः मनुष्या वा आपश्चन्द्राः। (शतपथब्रा० ७।३।१।२०)

'यज्ञ करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें जाते हैं।'

यज्ञो वै देवानामात्मा। (शतपथब्रा० ६।३।२।७)

'यज्ञ ही देवताओंका आत्मा (जीवन) है।'

यज्ञ उ देवानामात्मा । (शतपथब्रा० ८।६।१।१०)

'यज्ञ ही देवताओंका आत्मा है।'

सर्वेषां देवानामात्मा यद् यज्ञः । (शतपथब्रा० १३।३।२।१)

'यज्ञ समस्त देवताओंकी आत्मा है।'

यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति । (शतपथब्रा० ६।४।१।२०)

'यज्ञ ही समस्त प्राणियोंका रक्षण (पालन) करता है।'

सर्वेषां वा एष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मा यद् यज्ञस्तस्य समृद्धिमनु यजमानः प्रजया पशुभिर्ऋद्ध्यते ॥

(शतपथब्रा० १४।३।२।१)

'यज्ञ समस्त प्राणियों और समस्त देवताओंका आत्मा (जीवन) है, अतः यज्ञ करते रहनेसे यजमान सन्तति और पशु आदिसे परिपूर्ण हो जाता है।'

यज्ञो वै भुवनम् । यज्ञ एव यजमानं प्रजया पशुभिः प्रथयति ॥

(तैत्तिरीयब्रा० ३।३।७)

'यज्ञ ही भुवन (लोक) है। यज्ञ ही यजमानको सन्तति और पशुसे समृद्ध करता है।'

यज्ञो वै भुवनेषु ज्येष्ठः । (शाङ्खायनब्रा० २५।११)

'यज्ञ ही समस्त भुवनोंमें श्रेष्ठ है।'

ऐतरेयब्राह्मण (१।२।१०) में लिखा है— यज्ञ करनेवालेको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

ॐ अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेन इध्यस्व वर्धस्व च इद्धय वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन अन्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।८।१३)

'हे यज्ञाग्ने ! तुम प्रज्वलित होकर हमको प्रज्वलित करो। तुम बढ़ो और हमको भी बढ़ाओ। प्रजया अर्थात् सन्तानसे, पशुओंसे, आत्मज्ञानसे तथा अन्नसे, यज्ञसे इन चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है।'

यज्ञेन हि देवा दिवङ्गता यज्ञेनासुरानपानुदन्तः यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ॥

(नारायणोपनिषद्)

'यज्ञसे ही देवताओंने स्वर्गको प्राप्त किया और असुरोंको परास्त किया। यज्ञसे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यज्ञमें सब प्रकारके गुण हैं। अतः श्रेष्ठजन यज्ञको श्रेष्ठ कर्म कहते हैं।'

'देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभिः स्वर्गं लोकमायन्।'

(ऐतरेयब्रा० ३।४२)

'विद्वानोंने यज्ञ, परिश्रम, तप और नित्य हवनसे स्वर्गलोककी प्राप्ति की।'

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥

(मुण्डकोपनिषद्)

'ज्योतिष्मती आहुति यज्ञके यजमानको 'आओ, आओ' यों पुकारती हुई सूर्यकी रश्मि-द्वारा पुण्यमय ब्रह्मलोकमें ले जाकर उसकी प्रिय-वाणी और पूजाद्वारा सेवा करती है।'

इस प्रकार यज्ञोंकी महिमा वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मणग्रन्थोंमें विशेषरूपसे वर्णित है।

प्राचीन समयमें भारतवर्षमें यज्ञोंकी विशेष प्रधानता और मान्यता थी। उस समय समस्त भारतमें यज्ञोंका इतना अधिक प्रचार था कि यह देश 'यज्ञिय-देश' कहलाता था। उस समय सभी लोग यज्ञको अपना परम धर्म समझकर यज्ञ किया करते थे। यज्ञोंमें

---

१ 'विद्वाँसो हि देवाः' (शतपथब्रा० ३।७।३।१०) 'विद्वान् ही देवता कहे जाते हैं।'

सभीका अटूट विश्वास था। यज्ञोंकी महत्ता सर्वमान्य थी। यज्ञोंमें शास्त्रीय विधिके पालनका पूर्ण ध्यान रखा जाता था। यज्ञोंमें वैदिक-धर्मके अनुयायी सन्त, महात्मा और विद्वान् विशेष-रूपसे आमन्त्रित किये जाते थे, जिनके द्वारा यज्ञोंके महत्त्वका विशेष प्रख्यापन और प्रसार-प्रचार होता था। आज भी भारतवर्षमें जो कुछ यज्ञोंकी परम्परा चल रही है अथवा जो कुछ यज्ञोंका सम्मान और अस्तित्व है, वह सन्त-महात्माओंकी ही देन है।

इधर कुछ वर्षोंसे यज्ञोंकी परम्परा उच्छिन्नप्राय हो चली थी, तो सौभाग्यवश त्यागतपोमूर्ति श्री १००८ स्वामी करपात्रीजी महाराज जैसी दिव्य विभूति यज्ञ-रक्षार्थ पुनः प्रादुर्भूत हो गयी, जिन्होंने देहली, कानपुर, काशी और बम्बई जैसे नगरोंमें अनेक बार विशाल वैदिक शाखासम्मेलन और कोटिहोमात्मक शतमुख महायज्ञ कराकर 'वैदिक-धर्म' को विशेष जागृत किया, जिससे आज समस्त भारतके कोने-कोनेमें यज्ञोंका प्रसार-प्रचार हो गया।

अन्तमें यज्ञ भगवान्से प्रार्थना है कि हमारा पवित्र भारतवर्ष पुनः यज्ञोंके बाहुल्यसे 'यज्ञिय-देश' कहला सके और यज्ञिय देश (भारत-वर्ष) में रहनेवाले सभी प्राणी सर्वदा सर्वप्रकारसे सुखी और समृद्ध हो जायँ।

———

यज्ञसे कामना-सिद्धि

वेद हिन्दू-धर्मका प्रधान धर्मग्रन्थ है। इस धर्मग्रन्थमें हिन्दूधर्मके विषयमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो इसमें न हो। '**यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्**' यह वाक्य वेदोंके लिये सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

वेदोंमें समस्त विषयोंका खजाना भरा पड़ा है। वेदोंमें से जो चाहे वह सुन्दर-सुन्दर रत्नोंको ढूँढ़कर अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकता है। वेदोंका प्रधान अङ्ग यज्ञ है। वेदोंमें यज्ञको साक्षात् विष्णु-स्वरूप बतलाते हुए स्पष्ट कहा गया है कि यज्ञकी उपासनाद्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

प्राचीन कालके ऋषि-महर्षियोंने, राजर्षियोंने और राजा-महाराजाओंने यज्ञकी उपासनाद्वारा ही अपनेमें अतुल-शक्ति प्राप्तकर अपने-अपने इष्टकी सिद्धि प्राप्त की थी। देवताओंने यज्ञके द्वारा 'देवत्व' पदकी और इन्द्रने सौ यज्ञ करके 'देवराज' पदकी प्राप्ति की थी। महाराजा जनकने यज्ञके द्वारा अवर्षणको दूर किया था और महाराजा दशरथने यज्ञके द्वारा पुत्रकी प्राप्ति की थी। महाराजा दिलीप-की यज्ञकथा प्रसिद्ध ही है कि उनके केवल ९९ यज्ञोंसे सन्तुष्ट होकर इन्द्रने १०० यज्ञ करनेका समस्त फल उन्हें दे दिया था। आज भी श्रद्धाभक्तिपूर्वक किये जानेवाले यज्ञोंका वही महत्त्व है, जो पुरातन कालमें था।

यज्ञपद्धतियोंमें अनेक प्रामाणिक विधान निहित हैं, जिनके द्वारा आज भी प्राणी पुत्र-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, वृष्टि-प्राप्ति, मुकदमेमें विजय प्राप्ति एवं समस्त प्रकारके रोगादिसे निवृत्ति आदि अनेक कामनाओंकी सरलतासे प्राप्ति कर सकता है।

उपर्युक्त कामनाओंकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको वैदिक-वंशपरम्परागत प्रतिष्ठित वेदज्ञसे ही यज्ञादि अनुष्ठान कराना चाहिये।

———

निष्काम यज्ञ

गीतामें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। जो यज्ञ निष्काम-भावसे किया जाता है, उसे 'सात्त्विक यज्ञ' कहते हैं (गी० १७।११)। जो यज्ञ सकाम अर्थात् फल-विशेषकी इच्छासे किया जाता है, उसे 'राजसिक यज्ञ' कहते हैं (गी० १७।१२)। जो यज्ञ शास्त्रोंके विरुद्ध किया जाता है, उसे 'तामसिक यज्ञ' कहते हैं (गी० १७।१३)*। इनमें सात्त्विक यज्ञका मुख्य उद्देश्य सात्त्विकताको लेकर ही होना चाहिये। शास्त्रोंमें सात्त्विक यज्ञका विशेष महत्त्व लिखा है। सात्त्विक यज्ञका विशेष महत्त्व होनेका कारण यह है कि सात्त्विक यज्ञ निष्काम-भावसे किया जाता है। निष्काम-भावसे किया हुआ यज्ञ ही फलप्रद और कल्याणप्रद होता है।

जो यज्ञ फलप्राप्तिकी दृष्टिसे सकाम-भावसे किया जाता है, वह 'अधम' कहा जाता है और जो भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम-भाव (ईश्वरार्पण बुद्धि)से किया जाता है, उसे 'उत्तम' कहा जाता है। वेदादि शास्त्रोंमें निष्काम-यज्ञको ही सर्वोत्तम यज्ञ कहा गया है।

तस्मात् सुनिश्चिताः पूर्वे सर्वान् कामांश्च लेभिरे।
अकृष्टपच्या पृथिवी आशीर्भिर्वीरुधोऽभवन्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २६३।१२-१३)

---

*यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः।
यज्ञः फलाय दम्भात्मा राजसस्तामसः क्रतुः॥
(अग्निपुराण ३८१।४३)

'विधिपूर्वक निष्कामभावसे किये जानेवाले यज्ञको सात्त्विक कहते हैं। जो यज्ञ किसी कामना को लेकर किया जाता है, उसे राजस कहते हैं और जो यज्ञ दम्भसे किया जाता है उसे तामस कहते हैं।'

'प्राचीन कालके मनुष्य स्वकर्तव्य समझकर यज्ञमें श्रद्धापूर्वक प्रवृत्त होते थे और उस यज्ञसे उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ स्वतः पूर्ण हो जाती थीं। पृथ्वीसे बिना जोते—बोये ही काफी अन्न पैदा होता था तथा संसारके कल्याणके लिये उनके शुभ सङ्कल्पसे ही वृक्षों और लताओंमें फल-फूल लगते थे।'

न ते यज्ञेष्वात्मसु वा फलं पश्यन्ति किञ्चन।
शङ्कमानाः फलं यज्ञे ये यजेरन् कथञ्चन॥
जायन्तेऽसाधवो धूर्ता लुब्धा वित्तप्रयोजनाः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २६३।१३-१४)

'वे मनुष्य यज्ञोंमें अपने लिये किसी फलकी ओर दृष्टि नहीं रखते थे। जो मनुष्य 'यज्ञसे कोई फल मिलता है या नहीं' इस प्रकारका सन्देह मनमें रखकर किसी तरह यज्ञोंमें प्रवृत्त होते हैं, वे धन चाहनेवाले लोभी, धूर्त और दुष्ट होते हैं।'

शास्त्रोंमें सकाम यज्ञ करनेवाले मनुष्यकी निन्दा की गई है। सकाम यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर इन्द्रदेवकी कृपा नहीं होती, जिससे उसके किये हुए यज्ञका यथार्थ फल उसको प्राप्त नहीं होता।

वेदमें कहा गया है—

अतीहि मनुष्याविणं सुषुवां समुपारणे।
इमं रातं सुतं पिब॥

(ऋग्वेद ८।३२ २१)

'क्रोधसे यज्ञ करनेवाले मनुष्यको इन्द्र अन्धा समझकर उसकी ओर नहीं देखते। ईर्ष्यासे यज्ञ करनेवालेको इन्द्र बधिर समझकर उसकी पुकारको नहीं सुनते। यशके लिये यज्ञ करनेवालेको धूर्त समझ कर इन्द्र उससे धूर्तताका व्यवहार करते हैं। जिसका आरचण निकृष्ट है, उसके साथ इन्द्र श्रेष्ठ व्यवहार नहीं करते। जो कटु-भाषी है, उसको इन्द्र शाप देते हैं और जो दूसरेके अधिकारको स्वा-यत्त करता है, उसकी पूजाको इन्द्र हजम कर जाते हैं।'

प्राचीन समयके मनुष्य यज्ञको बहुत श्रेष्ठ समझते थे। वे जब भी यज्ञ किया करते थे, तो भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम यज्ञ (सात्त्विक-यज्ञ) ही किया करते थे। किन्तु आजके मनुष्य भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम यज्ञ न कर किसी न किसी कामनाको लेकर ही यज्ञ करते हैं। इसीसे यज्ञोंका जो वास्तविक फल होना चाहिये, वह आज नहीं हो रहा है। अतः यज्ञमें श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले प्रत्येक मनुष्यको सर्वदा भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम यज्ञ ही करना चाहिये। भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम-भावसे किये जानेवाले यज्ञका महत्त्व इस प्रकार लिखा है—

ये विष्णुभक्ता निष्कामा यजन्ति परमेश्वरम्।
त्रिसप्तकुलसंयुक्तास्ते यान्ति हरिमन्दिरम्॥

(बृहन्नारदपुराण ३९।६१)

'जो मनुष्य निष्काम-भावसे यज्ञके द्वारा परमेश्वरका यजन करते हैं, वे अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको हरिमन्दिर (देवधाम) में पहुँचाते हैं।'

———

आजका यज्ञ

गीता (१७।११) में 'सात्त्विक यज्ञ' का विशेष महत्त्व बतलाया है। इसीलिये प्राचीन कालके ऋषि-महर्षि विश्वकल्याणार्थ 'सात्त्विक यज्ञ' किया करते थे। निष्काम-भावसे होनेवाले सात्त्विक यज्ञका जो फल होना चाहिये वह फल प्रत्यक्षरूपमें भारतवासी अनुभव करते थे। परन्तु खेद है कि आज उस परम पुनीत 'सात्त्विक यज्ञ' के बदले †'तामसिक यज्ञ' का व्यवहार होने लगा है। अतएव आज यज्ञोंका वास्तविक फल नहीं हो रहा है।

सात्त्विक यज्ञका महान् फल है और इससे समस्त संसारका कल्याण होता है। ऐसी स्थितिमें भी इस यज्ञसे विमुख होनेका एकमात्र कारण है अपनी स्वतन्त्ररूपसे स्वार्थसिद्धि करना। इधर कुछ वर्षोंसे जो यज्ञादि धर्मानुष्ठान हो रहे हैं उनमें स्वार्थसिद्धिका रोग प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। कोई बैंकोंमें रुपया जमा करने के लिये, कोई मठ-मन्दिर निर्माणके लिये, कोई धर्मशाला निर्माणके लिये, कोई स्कूल-कालेज निर्माणके लिये और कोई गृह-निर्माणके लिये यज्ञरूपी नाटककी रचना कर अपने उद्देश्यकी पूर्ति करते हैं।

कुछ लोगोंने अपनी उदरपूर्तिके लिये यज्ञको व्यापाररूपमें परिणत कर दिया है। ऐसे लोग वेदोक्त शास्त्रीय यज्ञोंको न करके मनमाने ढँगसे 'उदरपूर्ति-यज्ञ' करने लग गये हैं। कोई मानस-यज्ञ, कोई चतुर्वेद-यज्ञ, कोई गायत्री-यज्ञ, कोई कृष्ण-यज्ञ, कोई इन्द्र-यज्ञ, कोई गंगा-यज्ञ और कोई यमुना-यज्ञ आदि विविध नामोंसे यज्ञ करते हैं। इस प्रकारके कपोलकल्पित एवं अशास्त्रीय यज्ञोंमें यजमान तथा ब्राह्मणोंकी जाति-पाति, अधिकारी और अनधिकारीका तो विचार ही उपस्थित नहीं होता। ऐसे यज्ञोंमें सभी समाजके व्यक्तियोंको यज्ञमें प्रविष्टकर उनसे हवन कराया जाता है और उनसे पैसा ऐंठा जाता

† गीता १७।१३

है। यहाँ तक कि स्त्रियोंको भी यज्ञोपवीत पहनाकर उनसे गायत्री आदि वेद—मन्त्रोंको कहलाकर हवन कराया जाता है।

विधिहीन यज्ञोंके करनेवाले स्वार्थियोंके स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी पूर्तिमें सबसे अधिक सहयोग विद्वानोंका रहता है, जो दक्षिणाके लोभसे यज्ञमें प्रविष्ट होनेके लिये कई मास पूर्व यज्ञाध्यक्षों और यज्ञ-प्रबन्धकोंके निवासस्थानकी परिक्रमा करने लगते हैं। **'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'** के अनुसार सेवाधर्मके प्रभावके कारण जिन लोगोंके नाम कृपालिष्टमें दर्ज हो जाते हैं, वे लोग अपना और अपने पूर्वजोंका बड़ा ही सौभाग्य समझते हैं। यज्ञादि कर्म समाप्त हो जानेपर यज्ञाध्यक्ष याज्ञिक विद्वानोंको थोड़ी-बहुत दक्षिणा देकर (चाहे वे विद्वान् सन्तुष्ट हों या असन्तुष्ट, इस बातकी परवाह न करते हुए) उन्हें यज्ञस्थलसे बिदा कर देते हैं और यज्ञीय समस्त धन स्वयं हड़प कर लेते हैं और उस ब्राह्मणांश द्रव्यद्वारा वे अपनी स्वार्थसिद्धि पूर्ण करते हैं।

शास्त्रोंमें इस प्रकारके अशास्त्रीय विधिहीन यज्ञोंकी बड़ी निन्दा की गई है और उन्हें 'तामस-यज्ञ' कहा गया है। तामस यज्ञोंके द्वारा देश, समाज और राष्ट्रका कथमपि कल्याण नहीं हो सकता। तामस यज्ञोंसे प्रजा सर्वदा सभी प्रकारसे पीड़ित रहती है।

कालिकापुराण (२०।१९) में लिखा है—

न यज्ञाः सम्प्रवर्त्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः।
आहारदुःखान्निश्रीकाः प्रजाः क्षीणा भयातुराः॥

'इस समय प्रजा विधिपूर्वक न तो यज्ञ करती है और न तपस्वी तप ही करते हैं, इसलिये प्रजा भोजनकी न्यूनतासे और धनकी कमीसे भय और व्याकुलताको प्राप्त होती है।'

अतः भोलीभाली धार्मिक जनताको इस प्रकारके विधिहीन तामस यज्ञों और तामस वृत्तिवाले यज्ञकर्त्ताओंसे सर्वदा सतर्क रहना चाहिये।

—०—

यज्ञसे सभीको लाभ होता है

बहुत लोग यज्ञको ब्राह्मणोंकी उदरपूर्तिका साधन बतलाते हैं। वस्तुतः विचारपूर्वक देखा जाय, तो यज्ञसे केवल ब्राह्मणोंको ही लाभ नहीं होता, किन्तु सभीको लाभ होता है। यज्ञकी योजना निश्चित होनेपर यज्ञके प्रचारार्थ सर्वप्रथम नोटिस, बड़े-बड़े पम्पलेट और चन्दा वसूल करनेकी रसीद आदि छपाई जाती हैं, जिससे कागज-वालोंको और प्रेसवालोंको लाभ होता है। पश्चात् यज्ञ-मण्डप निर्माण करनेके लिये यज्ञ-भूमिको यज्ञयोग्य बनानेके लिये तथा यज्ञ-मण्डप एवं कुण्डोंके निर्माणके लिये मज़दूरों और कारीगरोंकी आव-श्यकता होती है, जिससे उन्हें रोजी मिलती है और उनको लाभ होता है। यज्ञ-मण्डप निर्माणके लिये ईंटा, सिलमिट, चूना, लकड़ी, बाँस, छप्पर, सिरकी, टीन और लोहेकी कंटिया आदिकी जरूरत पड़ती है, जिससे ईंटा, सिलमिट, चूना, लकड़ी, बाँस, छप्पर, सिरकी और टीन आदिके विक्रेताओंको लाभ होता है।

यज्ञमें देवपूजनार्थ रोली, मौली, धूपवत्ती, केशर, कपूर, पंचमेवा और नारियल आदि विविध सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे पनसारीवाले दुकानदारोंको लाभ होता है।

यज्ञमें हवनार्थ तिल, जौ, चावल एवं घृत आदिकी जरूरत होती है, जिससे अन्न और घृतके व्यापारियोंको लाभ होता है। यज्ञमें देवपूजनके लिये और ब्राह्मणोंके वरणके लिये ऊनी, रेशमी और सूती वस्त्रोंकी जरूरत पड़ती है, जिससे वस्त्रके व्यापारियोंको लाभ होता है। यज्ञमें सुवर्णकी मूर्त्तियों और चांदीके वर्त्तनोंकी जरूरत होती है, जिससे सुनारोंको लाभ होता है। यज्ञमें तांबे और पीतलके वर्त्तनोंकी आवश्यकना होती है, जिससे वर्त्तनके व्यापा-रियोंको लाभ होता है। यज्ञमें विविध प्रकारके काष्ठके यज्ञीय पात्रोंकी जरूरत होती है, जिससे यज्ञपात्र बनानेवाले मिस्त्रियों (बढ़इयों)

को लाभ होता है। यज्ञमें यज्ञ भगवान्‌को पहनानेके लिये सिले हुए वस्त्रोंकी जरूरत होती है, अतः उनके वस्त्र निर्माणके लिये और यज्ञमण्डप आदिमें वस्त्र लगानेके लिये दर्जीकी आवश्यकता होती है, जिससे उसको लाभ होता है।

यज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये तथा यज्ञमें आये हुए विशेष दर्शकोंके लिये दुग्ध, दधि, घृत, अन्न और फलकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे दुग्ध, दधि, घृत अन्न और फलवाले दुकानदारोंको लाभ होता है। यज्ञमें आये हुए साधु-महात्माओं, उपदेशकों और यज्ञके ब्राह्मणोंके लिये दरियों, तंबुओं, कनातों और खेमोंकी जरूरत पड़ती है, जिससे इन वस्तुओंके व्यापारियोंको लाभ होता है। यज्ञमें यज्ञ भगवान्‌के लिये तथा यज्ञमें आये हुए साधु-महात्माओं और उपदेशकोंके लिये दर्शकगण पुष्पमाला, फल एवं मिठाई आदि लेते हैं, इससे तत्-तत् दुकानदारोंको लाभ होता है।

यज्ञमें उपदेशकोंके भाषण करनेके लिये 'लाउड स्पीकर' की जरूरत पड़ती है, जिससे लाउड स्पीकरवालेको लाभ होता है। यज्ञमें यज्ञ-मण्डप, सभा-मञ्च तथा तंबुओं और डेरोंमें विजलीकी रोशनीकी जरूरत पड़ती है, जिससे विजलीके दूकानदारको लाभ होता है। बड़े-बड़े यज्ञोंमें अधिक संख्यामें डाकद्वारा पत्र तथा तार दिये जाते हैं और टेलिग्राम किये जाते हैं, जिससे डाक-विभागको विशेष लाभ होता है। बड़े-बड़े यज्ञोंमें यज्ञस्थलमें 'टेलीफोन' का विशेष प्रवन्ध किया जाता है, जिससे टेलीफोन-विभागको लाभ होता है।

बड़े-बड़े यज्ञोंमें यज्ञके प्रारम्भसे यज्ञके अन्ततक माङ्गलिक रूपमें शहनाई अथवा अंग्रेजी बाजा बजानेकी व्यवस्था की जाती है, जिससे बाजेवालोंको लाभ होता है। यज्ञमें यज्ञ भगवान्‌के दर्शनार्थ तथा यज्ञमें आये हुए साधु-महात्माओंके दर्शनार्थ और उनके उपदेश सुननेके लिये दूर-दूरसे हजारों, लाखोंकी संख्यामें मनुष्य रेल (ट्रेन)

और मोटर सर्विससे आते हैं, जिससे रेल्वे वालों और मोटर सर्विस वालोंको विशेष लाभ होता है। बहुतसे यज्ञोंमें अनेक प्रकारकी दुकानें, अनेक प्रकारके मनोरञ्जक खेल-तमाशा दिखलानेवाले आते हैं, जिससे उनको भी लाभ होता है।

यज्ञमें यज्ञमण्डप और सभा-मञ्च आदि बनानेके लिये कारीगरों और मजदूरोंकी जरूरत पड़ती है, जिससे उनको भी लाभ होता है। यज्ञमें यज्ञीय ब्राह्मणों और यज्ञमें आये हुए दर्शकों और मेहमानोंके लिये पाचकों (रसोइयों), कहारों, पनभरों, नापितों और अनेक प्रकारके कर्मचारियोंकी आवश्यकता होती है, जिससे उन्हें भी लाभ होता है।

बड़े-बड़े यज्ञोंमें यज्ञस्थलकी सफाईकी व्यवस्थार्थ अन्त्यजोंकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे उन्हें भी लाभ पहुँचता है। अतः यज्ञ एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विशाल कार्य है, जिसमें सभी प्रकारके मनुष्योंकी और सभी प्रकारकी वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। अतः यज्ञके द्वारा सभीको लाभ होता है।

यज्ञ किसी जाति-विशेषके लाभके लिये नहीं किया जाता, किन्तु प्राणिमात्रके लाभके लिये किया जाता है। जिस प्रकार वृक्षकी जड़को सिञ्चित करनेसे समस्त वृक्षका रग-रग सिञ्चित हो जाता है, उसी प्रकार यज्ञके द्वारा समस्त प्राणियोंका कल्याण होता है।

एक बात विशेष ध्यान देनेकी यह है कि यज्ञमें उपदेशक, कारीगर, मजदूर अपना-अपना मेहनताना (पारिश्रमिक द्रव्य) प्रथम निश्चित करके ही यज्ञमें भाग लेते हैं। इसी प्रकार लाउड स्पीकरवाले, शहनाई आदि बाजावाले, विजलीवाले तथा अन्य दरी, तंबू आदि वाले अपना रेट निश्चित करके ही लाउड स्पीकर आदिका उपयोग करते हैं, किन्तु यह बात ब्राह्मणवर्गमें नहीं पाई जाती। वे लोग बिना दक्षिणा निश्चित किए ही यज्ञमें भाग लेते हैं और त्यागवृत्तिसे

यज्ञ-कार्यको सम्पादित करते हैं। यज्ञ पूर्ण होनेके बाद ब्राह्मणोंको यज्ञ-समितिके द्वारा जो दक्षिणा दी जाती है, वे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी स्थितिमें भी जो लोग यज्ञ-विषयको लेकर ब्राह्मणोंके विषयमें व्यर्थका आक्षेप किया करते हैं, वह सर्वथा अनुचित है।

—:०:—

यज्ञमें सभीको सहयोग देना चाहिये

यज्ञ एक अत्यन्त पवित्र कर्म है। इस पवित्र कर्ममें प्रायः समस्त देवगणका निवास रहता है। यज्ञमें अनेक विरक्त साधु, महात्मा, तपस्वी, विद्वान्, उपदेशक आदि दूर-दूर से सम्मिलित होकर यज्ञकी शोभावृद्धिमें सहायक होते हैं। अतः यज्ञ जैसे महनीय कार्यमें सभीको यथाशक्ति तन, मन, धनसे सहायता करनी चाहिये। जिस मनुष्यकी शक्ति द्रव्य देनेकी नहीं है, उसे शरीरसे ही श्रमदान-द्वारा यज्ञ-कार्यमें सहयोग देकर अपने मानव-जीवनको सार्थक करना चाहिये।

यज्ञमें सहयोग देना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। जो मनुष्य यज्ञमें किसी भी रूपमें सहयोग नहीं देते, वे निन्दनीय और तिरस्कारके योग्य कहे गये हैं।

शतपथब्राह्मण (२।३।१।२०) में लिखा है—

'या वै प्रजा यज्ञे अनन्वाभक्ताः पराभूता वै ताः, एवमेवैतद्या इमाः प्रजा अपराभूतास्ता यज्ञमुख आभजति।'

'जो प्रजा यज्ञमें सहयोग प्रदान नहीं करती, वह पराभत है अर्थात्

तिरस्कार करनेके योग्य है और जो प्रजा सहयोग प्रदान करती है, वह अपराभूत है अर्थात् स्वीकार करनेके योग्य है।'

इस विषयकी पुष्टि कृष्ण यजुर्वेदके ऐकपदिक काण्ड (३।१।२०) में भी की गई है।

यज्ञादिमें विघ्न करनेसे हानि

यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कर्ममें प्रत्येक मनुष्यको किसी न किसी प्रकारकी सहायता करनी चाहिये। यदि किसीसे किसी भी प्रकारकी सहायता न हो सके, तो उसे यज्ञमें विघ्न-बाधा नहीं करनी चाहिये। यज्ञमें विघ्न-बाधा पहुँचानेवालेके लिये शास्त्र-मर्मज्ञोंने बहुत बड़ा दोष कहा है—

उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दानेऽपि वा विभो।
मोहात् करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व १११।८१)

'हे प्रभो! जो मनुष्य विवाह, यज्ञ अथवा दानका अवसर आनेपर मोहवश विघ्न करता है, वह मरनेके बाद कीड़ा होता है।'

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव!।
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः॥

(बृहस्पतिस्मृति ७०)

'हे इन्द्र! विवाह, यज्ञ और दानके उपस्थित होने पर जो मनुष्य मोहादिके वशीभूत होकर विघ्न करता है, वह मरनेके बाद कृमि होता है।'

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिकम् ॥
विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम् ।
स्थानमेतत् समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये ॥

(विष्णुपुराण १।६।४१-४२)

'तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, कालसूत्र और अवीचिक आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा करनेवाले और यज्ञोंमें व्याघात पहुँचानेवाले तथा स्वधर्मके त्यागनेवाले पुरुषोंके स्थान कहे गये हैं।'

इस विषयकी पुष्टि पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (३।१६१–१६३) में भी की गई है।

वेदोंमें लिखा है कि जो मनुष्य यज्ञमें विघ्न करते हैं, वे 'राक्षस' कहलाते हैं—

'देवान् ह वै यज्ञेन यजमानास्तानसुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्वमिति । तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि ।'

(शतपथब्राह्मण १।१।१।१६)

'एक समय देवगण यज्ञ कर रहे थे। राक्षसोंने उनके यज्ञ-कार्यमें अनेक प्रकारसे विघ्न किया और कहा—'यज्ञ न करो।' अतः यज्ञ-कर्ममें विघ्न करनेवालेकी 'राक्षस' संज्ञा होती है।'

प्रचीन कालमें हिरण्यकशिपु और बलि जैसे अनेक असुर यज्ञके विरोधी थे, जिन्होंने अपनी पूर्ण शक्तिसे यज्ञका विरोध किया और धार्मिक प्रजाको खूब सताया। जिस कारण भगवान्को नृसिंहावतार एवं वामनावतार आदि धारण कर उन पापी असुरोंका नाश करना पड़ा। धर्म-विरोधी राजा वेनकी तो यह स्पष्ट घोषणा थी—

'न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।'

(भागवत ४।१४।६)

'कोई भी द्विज कभी किसी प्रकारका यज्ञ, दान और हवन न करे।'

धर्म-विरोधी वेनके द्वारा यज्ञके विरोध करनेके कारण यज्ञ-यागादि धार्मिक कृत्य बन्द होगये। यज्ञोंके बन्द होनेसे वर्षा होनी बन्द होगई। वर्षाके बन्द होनेसे अन्न होना बन्द होगया। अन्नकी कमीसे भयङ्कर अकाल पड़ने लगा, जिससे समस्त प्रजा भूखसे पीड़ित होकर मरने लगी। अन्तमें वेनको भी मृत्युके मुखमें जाना पड़ा।

धर्मराज युधिष्ठिरके 'राजसूय-यज्ञमें अत्याचारी शिशुपालने भगवान् कृष्णके अग्रपूजनका विरोध कर यज्ञमें विघ्न पहुँचानेकी पूर्ण चेष्टा की, तो स्वयं भगवान् कृष्णने अपने 'सुदर्शन चक्र' द्वारा उसका शिर काट दिया। अतः यह निश्चित है कि जो कोई यज्ञका विरोध करता है, वह स्वयं अपनी मृत्युका आह्वान करता हैं।

यज्ञमें 'श्रद्धाकी आवश्यकता

यज्ञके यजमानको श्रद्धा-भक्ति-सत्य-ब्रह्मचर्यादि व्रतके नियमानुकूल आचार-सम्पन्न होकर ही यज्ञ करना चाहिये। अन्यथा श्रद्धादिसे रहित किया हुआ यज्ञ-कर्म सर्वथा निष्फल होता है। यजमानके द्वारा अश्रद्धासे दी हुई 'आहुति' को देवगण भी स्वीकार नहीं करते—**'नाश्रद्धधानाय' हविर्जुषन्ति देवाः।'**

'(क) श्रद्धा तु चतुर्विधपुरुषार्थेषु यथार्था 'एवमिदम्' इति समुत्पद्यमाना या धीस्तदधिदेवताभाव संज्ञैव।

(ख) प्रत्ययो धर्मकार्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता।
नास्ति ह्यश्रद्धधानस्य धर्मकृत्ये प्रयोजनम्॥ (देवलः)

'अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। तथा च अश्रद्धधानस्येति फलति।

गीता (१७।२८) में भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि की गई है—

अश्रद्धया हुतं द्रव्यं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

'अश्रद्धासे हवन, दान, तप अथवा जो कुछ कर्म किया जाता है उसे 'असत्' कहते हैं। हे पार्थ ! असत्कर्मका फल न तो परलोकमें और न इहलोकमें ही लाभदायक होता है।'

अश्रद्धया च यद्दत्तं विप्रेऽग्नौ दैविके क्रतौ ।
न देवास्तृप्तिमायान्ति दातुर्भवति निष्फलम् ॥

'इष्ट-देवताकी प्रीतिके लिये अनुष्ठित यज्ञमें ब्राह्मणरूपी अग्निके लिये (अथवा ब्राह्मण और अग्निके लिये) जो दक्षिणा आदि द्रव्य अश्रद्धासे समर्पित किया जाता है, उससे देवगणकी तृप्ति नहीं होती। दाताका वह दक्षिणा आदि द्रव्य निरर्थक ही जाता है।'

श्रद्धाके बिना अग्निदेवको आवाहित करनेसे वे भी यज्ञमें उपस्थित नहीं होते, यह वेदमें लिखा है—

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥

(ऋग्वेद ८।१०३।२)

'दिवोदासने अश्रद्धासे अग्निदेवका आवाहन किया था, अतः वे अश्रद्धासे बुलानेके कारण स्वर्गलोकसे भूमि पर उपस्थित नहीं हुए और न देवताओंके लिये हवनीय पदार्थको ले जानेमें समर्थ हुए।'

श्रद्धाहीन सम्पादित यज्ञ नास्तिकतापूर्ण और निन्दनीय कहे जाते हैं। श्रद्धाहीन यज्ञोंसे राजा और राष्ट्र दोनोंकी भयङ्कर क्षति होती है। लिखा भी है—

शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते ।
राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति ॥

(मत्स्यपुराण २३७।११)

'शान्ति, मङ्गल तथा हवन-कार्यों में जहाँ पर श्रद्धाहीनतासे उत्पन्न नास्तिकताका साम्राज्य रहता है, वहाँके राजा तथा उस देशका विनाश होता है।'

अतः श्रद्धापूर्वक यज्ञादि धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक यज्ञादि करनेसे ही मनुष्यको किये हुए कर्मका यथार्थ फल प्राप्त होता है।

भगवान् मनुने कहा है—

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥

(मनु० ४।२२६)

'सावधान होकर श्रद्धासे सर्वदा यज्ञ करे और कूप, तालाव बनवावे। क्योंकि न्यायपूर्वक आये हुए धनके द्वारा श्रद्धापूर्वक जो यागादि किये जाते हैं, वे मोक्षको देते हैं।'

वेदोंमें श्रद्धाका महत्त्व इस प्रकार लिखा है—

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

(ऋग्वेद ८।८।९)

'श्रद्धासे ही यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की जाती है, श्रद्धासे ही हवनीय पदार्थोंकी आहुति दी जाती है। श्रद्धा ही धनके मस्तकके ऊपर रहती है, अतः समस्त आराध्यकी प्रधानभूता श्रद्धाका हम स्तवन करते हैं।'

'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (शुक्लयजुर्वेद १९।३०)

'श्रद्धासे ही सत्यताकी प्राप्ति होती है।'

———

श्रौतयज्ञ—एक संक्षिप्त परिचय

भारतीय जन-जीवनमें यज्ञोंका क्या स्थान है, इसे जाननेके लिये दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। भगवती गीता ही स्पष्ट और अभ्रान्त शब्दोंमें बताती है कि ब्रह्मदेवने यज्ञोंके सहित प्रजाकी सृष्टि कर उससे कहा कि इसी साधनसे अपनी जीविका चलाओ, यह तुम्हारे लिये कामधेनु है। इसके द्वारा आपलोग देवताओंको तृप्त करें और देवता वृष्टि आदिके द्वारा आपको तृप्त करेंगे (३।१०-११) अर्थात् आजकी भाषामें आपका एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट (आयात-निर्यात) केवल विदेश तक ही सीमित नहीं, विलोक (स्वर्ग) तक उसकी व्याप्ति है। गीताकारने केवल वचन ही नहीं, युक्ति या कार्य-कारण-भाव भी प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यज्ञसे वृष्टि और वृष्टिसे अन्न, अन्नसे [रेतस् और रेतस्से] प्राणी होते हैं (३।१४)। इतने विवेचनके बाद शास्त्र-विश्वासीके लिये यज्ञकी उपयोगिताके बारेमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

ये यज्ञ दो प्रकारके हैं—श्रौत और स्मार्त। श्रुतिप्रतिपादित यज्ञोंको 'श्रौतयज्ञ' और स्मृतिप्रतिपादित यज्ञोंको 'स्मार्तयज्ञ' कहते हैं। श्रौतयज्ञमें केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग होता है और स्मार्तयज्ञमें वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक भी मन्त्र प्रयुक्त हुआ करते हैं। हम यहाँ केवल श्रौतयज्ञों पर ही प्रकाश डालेंगे।

वेदोंमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन मिलता है, किन्तु उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकारके यज्ञ ही प्रधान माने गये हैं—

'स एष यज्ञः पञ्चविधः—अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः सोमः।' (ऐतरेयब्राह्मण)

अर्थात् अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। इन्हीं पाँच प्रकारके यज्ञोंमें श्रुतिप्रतिपादित वैदिक यज्ञोंकी परिसमाप्ति हो जाती है। वेदोंमें

श्रौतयज्ञोंकी अत्यन्त महिमा वर्णित है। शतपथब्राह्मण (१।७।१।५) में श्रौतयज्ञोंको श्रेष्ठतम कर्म कहा है—'**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**।' कुल श्रौतयज्ञोंको १९ प्रकारोंमें विभक्त कर यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय देनेका यत्न किया जा रहा है।

(१) **स्मार्त-कर्म**—विवाहके अनन्तर विधिपूर्वक अग्निका स्थापन करके जिस अग्निमें सायं और प्रातः नित्य हवनादि कृत्य किये जाते हैं, उसे 'स्मार्ताग्नि' (आवसथ्याग्नि, औपवसथ्याग्नि) कहते हैं। इस स्मार्त अग्निमें किये जानेवाले कर्मोंको 'स्मार्त-कर्म' कहते हैं। स्मार्ताग्निमें पका भोजन ही प्रतिदिन करना चाहिये।

(२) **श्रौताधान**—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निके विधिपूर्वक स्थापनको 'श्रौताधान' कहते हैं। इन अग्नियोंमें हवि आदिका संस्कार आहवनीयमें हवन और दक्षिणाग्निमें पितृ-सम्बन्धी कार्य होते हैं।

(३) **दर्शपूर्णमास**—अमावास्या और पूर्णिमाको होनेवाले यज्ञको क्रमशः 'दर्श' और 'पौर्णमास' कहते हैं। इस यज्ञका अधिकारी सपत्नीक होता है। इसमें अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और आग्नीध्र—ये चार प्रकारके ऋत्विक् होते हैं। इस यज्ञका अनुष्ठान यावज्जीवन करना चाहिये। यदि कोई जीवनभर करनेमें असमर्थ हो, तो ३० वर्ष तक तो करना ही चाहिये।

(४) **चातुर्मास्य**—चार-चार महीने पर किये जानेवाले यज्ञको 'चातुर्मास्य यज्ञ' कहते हैं। इस यज्ञमें चार पर्व होते हैं—वैश्वदेव[1], वरुणप्रघास[2], साकमेध[3] और शुनासीरीय[4]। प्रथम वैश्वदेव पर्वका

---

१. जिस पर्वके 'विश्वेदेवा' देवता हों उसे 'वैश्वदेव पर्व' कहते हैं।
२. जिस पर्वमें वरुणके लिये प्रघास अर्थात् हवि दी जाती है, उसे 'वरुण प्रघास पर्व' कहते हैं।
३. जिस पर्वमें हवि प्राप्त करनेसे देवगण वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसे 'साकमेध पर्व' कहते हैं।
४. जिस पर्वके देवता वायु और आदित्य हों, उसे 'शुनासीरीय पर्व' कहते हैं।

अनुष्ठान फाल्गुनी पूर्णिमाको, द्वितीय वरुणप्रघास पर्वका अनुष्ठान आषाढ़ी पूर्णिमाको, तृतीय साकमेध पर्वका अनुष्ठान कार्तिकी पूर्णिमाको और चतुर्थ शुनासीरीय पर्वका अनुष्ठान फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदाको करना चाहिये। इन चारों पर्वोंको मिलाकर 'चातुर्मास्य-यज्ञ' होता है।

चातुर्मास्य यज्ञ करनेके लिये दो पक्ष हैं। इस यज्ञको यावज्जीवन करना, यह प्रथम पक्ष है और द्वितीय पक्ष है—इस यज्ञको केवल एक ही बार कर पश्चात् पशुयाग और सोमयाग करना चाहिये।

(५) **निरूढ़ पशुबन्ध**—प्रतिवर्ष वर्षा ऋतुमें या दक्षिणायन या उत्तरायणमें संक्रान्तिके दिन एक बार जो पशुयाग किया जाता है, उसे 'निरुढ़पशु' कहते हैं।

(६) **आग्रयणेष्टि**—प्रतिवर्ष वसन्त और शरद् ऋतुमें नवीन यव और चावलसे जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'आग्रयण' अथवा 'नवान्न' कहते हैं। इस यज्ञको करनेके बाद ही नवीन अन्न खाना चाहिये।

(७) **सौत्रामणी**—इन्द्रके निमित्त जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'सौत्रामणी यज्ञ' कहते हैं। यह सौत्रामणी यज्ञ इन्द्र-सम्बन्धी पशुयाग है। यह यज्ञ दो प्रकारका है—स्वतन्त्र और दूसरे यज्ञोंका अङ्गभूत।

चयनके बाद जो सौत्रामणी यज्ञ किया जाता है, वह अङ्गभूत सौत्रामणी है, जिसे 'चरक सौत्रामणी' भी कहते हैं। दूसरा स्वतन्त्र सौत्रामणी नामक जो यज्ञ है, वह पाँच दिनमें सुसम्पन्न होता है। सौत्रामणी यज्ञमें गोदुग्धके साथ 'सुरा' (मद्य) का भी विधान है, किन्तु कलियुगमें वह वर्ज्य है, अतः उसके स्थानमें 'पयोग्रह' लिया जाता है।

सौत्रामणी 'पशुयाग' कहा जाता है, क्योंकि इसमें पाँच अथवा तीन पशुओंकी बलि दी जाती है।

स्वतन्त्र सौत्रामणी यज्ञमें केवल ब्राह्मणका अधिकार है और अङ्गभूत सौत्रामणीमें क्षत्रिय तथा वैश्यका।

(८) **सोमयाग**—सोमलताद्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'सोमयाग' कहते हैं। वह वसन्त ऋतुमें होता है। यद्यपि यह यज्ञ एक ही दिनमें पूर्ण होता है, तथापि अपने अङ्गके साथ पाँच दिनोंमें सुसम्पन्न होता है। इस यज्ञमें सोलह ऋत्विक् (देखिये, कात्यायन श्रौतसूत्र ७।१।७) होते हैं, जो कि चार गणोंमें विभक्त हैं। जैसे—अध्वर्युगण, ब्रह्मगण, होतृगण और उद्गातृगण। प्रत्येक गणमें चार-चार ऋत्विक् होते हैं। ये सब मिलकर सोलह ऋत्विक् होते हैं।

सोमयागके सात भेद होते हैं अर्थात् सोमयाग सात प्रकारका होता है—अग्निष्टोम (ज्योतिष्टोम), अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम।

अग्निष्टोम साममें जिस यज्ञकी समाप्ति हो और उसके बाद अन्य साम न पढ़ा जाय, उसे 'अग्निष्टोम' कहते हैं। इसी प्रकार उक्थ्य साम, षोडशी साम, वाजपेय साम, अतिरात्र साम और अप्तोर्याम नामक साम पढ़कर जिन यज्ञोंकी समाप्ति होती है, वे यज्ञ क्रमसे उक्थ्य आदि नामोंसे कहे जाते हैं। अग्निष्टोम सामके अनन्तर षोडशी साम जिस यज्ञमें पढ़ा जाता है, वह 'अत्यग्निष्टोम' कहा जाता है।

(९) **द्वादशाह यज्ञ**—यह 'सत्र' और 'अहीन' भेदसे दो प्रकारका होता है। जिसमें सोमयागके सोलहों ऋत्विक् आहिताग्नि और बिना दक्षिणावाले ब्राह्मण हों, ऐसे सोमयागको 'सत्र' कहते हैं। सत्रमें १२ से लेकर १००० तक सुत्याएँ होती हैं। सोमलताके रसको विधिपूर्वक निकालकर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायङ्काल इन तीनों समयोंमें हवन करनेको 'एक सुत्या' कहते हैं।

जिस यज्ञमें दो सुत्यासे लेकर ग्यारह सुत्याएँ हों और जिसके

आदि—अन्तमें 'अतिरात्र' नामक यज्ञ हो और जिसमें एक तथा अनेक यजमान कर्त्ता हों, ऐसे सोमयागको 'अहीन' कहते हैं। द्वादशाह यज्ञ छत्तीस दिनोंमें पूर्ण होता है। इस यज्ञके त्रैवर्णिक अधिकारी हैं।

(१०) **गवामयन सत्र**—यह सत्र तीन सौ पचासी दिनोंमें पूर्ण होता है। गौओं द्वारा अनुष्ठित होनेसे यह 'गवामयन' कहलाता है। इसका प्रारम्भ माघ कृष्ण अष्टमी, माघ शुक्ल एकादशी, फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा अथवा चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको होता है। इसमें प्रारम्भसे लेकर बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और तीन सौ इकसठ सुत्याएँ होती हैं।

(११) **वाजपेय यज्ञ**—इस यज्ञके आदि और अन्तमें 'बृहस्पति सव' नामक सोमयाग अथवा 'अग्निष्टोम यज्ञ' होता है। अथवा वाजपेय यज्ञके प्रथम और पश्चात् बारह-बारह शुक्ल पक्षोंमें बारह-बारह अग्निष्टोमादि यज्ञ होते हैं। इसमें सतरह-सतरह हाथके सतरह यूप होते हैं। यह यज्ञ शरद् ऋतुमें होता है और चालीस दिनोंमें पूर्ण होता है। इस यज्ञका अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षत्रियको ही है, किन्तु सप्तसंस्थान्तर्गत वाजपेय यज्ञका अधिकार वैश्यको भी है।

(१२) **राजसूय यज्ञ**—इस यज्ञमें अनुमती आदि बहुत-सी इष्टियाँ मल्हादि पशुयाग और पवित्र आदि बहुत-से सोमयाग होते हैं। इस यज्ञका अधिकार राज्यसिंहासनारूढ़ अभिषिक्त क्षत्रिय राजाको ही है। यज्ञका प्रारम्भ फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदको होता है। यह तैंतीस महीनेमें पूर्ण होता है। राजसूय यज्ञ करनेके बाद क्षत्रिय राजा 'सम्राट्' (चक्रवर्ती) उपाधिको धारण करता है।

(१३) **अग्निचयन**—जिस यज्ञमें ईंटोंके द्वारा वेदीका निर्माण हो उसे 'चयन' अथवा 'अग्निचयन' कहते हैं। वह वेदी दस हाथ लम्बी और चौडी होती है, जिसको 'आत्मा' कहते हैं। इसके दक्षिण

और उत्तरकी ओर छः-छः हाथका चबूतरा बनता है, जिसे 'दक्षिण-पक्ष' और 'उत्तरपक्ष' कहते हैं। पश्चिमकी तरफ साढ़े पाँच हाथका बनता है, जिसे 'पुच्छ' कहते हैं। इसकी ऊँचाई पाँच हाथकी होती है। अतः इसको 'पञ्चचितिक स्थण्डिल' कहते हैं। इसमें चौदह तरहकी ईंटें लगती हैं। (इन ईंटोंके नाम और माप स्वर्गीय म० म० पं० श्रीविद्याधर गौडके रचित 'श्रौतयज्ञ-परिचय' (पृष्ठ ७६) नामक ग्रन्थमें देखिये)। चयन यज्ञके चबूतरे समस्त इष्टिकाएँ ग्यारह हजार, एक सौ सत्तर (१११७०) होती हैं।

(१४) **अश्वमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें दिग्विजयके लिये अश्व (घोड़ा) छोड़ा जाता है। इसमें इक्कीस हाथके यूप होते हैं। इस यज्ञका प्रारम्भ फाल्गुन मासकी शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको होता है। अथवा ग्रीष्म ऋतुमें अष्टमी या नवमी तिथिको प्रारम्भ होता है। यह यज्ञ दो वर्षसे भी अधिक समयमें समाप्त होता है। इस यज्ञका अधिकार अभिषिक्त सार्वभौम चक्रवर्ती राजाको ही बताया गया है।

(१५) **पुरुषमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें पुरुष आदि यूपमें बाँधकर छोड़ दिये जाते हैं। इसमें तेईस दीक्षाएँ, बारह उपसद और पाँच सुत्याएँ होती हैं। इसमें ग्यारह यूप होते हैं। यह यज्ञ चैत्र शुक्ल दशमीसे प्रारम्भ होता है। इस यज्ञकी समाप्ति चालीस दिनोंमें होती है। इस यज्ञका अधिकार ब्राह्मण और क्षत्रियको ही है। इस यज्ञको करनेके बाद यज्ञकर्त्ता गृहत्यागपूर्वक वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश कर सकता है।

(१६) **सर्वमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें सभी प्रकारके अन्नों और वनस्पतियोंका हवन होता है। इस यज्ञमें बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और बारह सुत्याएँ होती हैं। यह यज्ञ चौंतीस दिनोंमें समाप्त होता है।

(१७) **पितृमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें मृत पिता आदिका अस्थिदाह होता है। अर्थात् मरे हुए पिता आदिकी अस्थियोंको जंगलमें ले

जाकर उन अस्थियोंको यथास्थान तत्तत् अङ्गोंकी कल्पनाकर पुरुषाकृति (मानवाकृति) बना लें। पश्चात् सेवार, कुश आदिसे उन्हें ढँक कर ग्राममें वापस आकर स्नान करें। पश्चात् घरमें प्रवेश करें। इस यज्ञमें केवल एक ही अध्वर्यु ऋत्विक् होता है। इस यज्ञके अधिकारी त्रैवर्णिक हैं।

(१८) **एकाह यज्ञ**—एक दिनमें होनेवाले यज्ञको 'एकाह यज्ञ' कहते हैं। जिन यज्ञोंमें एक सुत्या होती है, ऐसे सोमयाग, विश्वजित्, सर्वजित्, भूष्टोम आदि शताधिक यज्ञ तत्तत्सूत्रोंमें विहित हैं। इस यज्ञमें एक यजमान और सोलह ऋत्विक् होते हैं।

(१९) **अहीन यज्ञ**—दो सुत्यासे लेकर ग्यारह सुत्याओं तकको 'अहीन यज्ञ' कहते हैं। ये भी विभिन्न नामोंमें शताधिक तत्तत्सूत्रोंमें विहित हैं। यह अहीन यज्ञ अनेक दिनोंमें पूर्ण होनेवाले ऋतुओंका वाचक है।

(२०) **सत्र**—बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उन्तीस, तीस, इकतीस, बत्तीस, तेंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनतालीस, चालीस, उनचास, सौ, तीनसौ साठ और एक हजार सुत्यावाले जो अनेक सोमयाग हैं, उन्हें 'सत्र' कहते हैं।

यह विशेष स्मरण रखना चाहिये कि एक दिनमें एक ही सुत्या होती है।

अपने स्वर्णिम अतीतमें भारत इस श्रौतयज्ञ-संस्थाको बड़ी मुस्तैदीके साथ चलाता रहा। कोई द्विज ऐसा न था, जो ये वेदोक्त श्रौतयज्ञ न करता हो। फलस्वरूप उन दिनों देश सब तरहसे भरा-पूरा रहा। आज केवल स्मार्तयज्ञ थोड़े-बहुत दीख भी पड़ते हैं (यद्यपि वे नगण्य हैं), किन्तु श्रौतयज्ञ और उसके कर्ता याज्ञिक तो ढूँढ़ने पर भी कठिनाईसे मिलते हैं। इसका कुफल भी प्रत्यक्ष है। अतः हमें

प्राचीन वेदोक्त इन श्रौतकर्मोंकी ओर अविलम्ब मुड़कर देशको पुनः उन्नतिके पथपर अग्रसर करना होगा ।

———

यज्ञाद् भवति पर्जन्यः

सन् १९६० की बात है। मैं श्रावण मासमें जि० हिसारके सुप्रसिद्ध 'किरमारा' ग्राममें 'रुद्रयाग' कराने गया था। वहाँ प्रतिदिन यज्ञके प्रेमी यज्ञ भगवान्‌के दर्शनार्थ आते थे। एक दिन 'किरमारा' ग्रामके पासके 'गोरखपुर' ग्रामके मिडिल स्कूलके कई अध्यापक यज्ञके दर्शन करके मेरेसे मिलने पधारे। उनमेंसे एक अध्यापक महोदय (जिनका नाम मुझे स्मरण नहीं है) ने मेरेसे कहा—'आप काशीके सुप्रसिद्ध याज्ञिक विद्वान् हैं । गीताके **'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** के अनुसार यज्ञके द्वारा तत्काल वर्षा कराके दिखाइये।'

मैंने अध्यापक महोदयके प्रश्नका चार प्रकारसे समाधान इस प्रकार किया—

(१) मैंने कहा—**'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** का अर्थ यह आपने कैसे समझा कि—यज्ञ करनेसे तत्काल वर्षा होती है ? अध्यापक महोदय निरुत्तर हो गये।

मैंने कहा—आपको गीताका **'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** केवल इतना ही याद है या पूरा श्लोक याद है ? अध्यापक महोदयने कहा—मुझे पूरा श्लोक याद है और उन्होंने इस प्रकार पूरा श्लोक सुनाया—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥
(गीता ३।१४)

मैंने कहा—इस श्लोकमें '**पर्जन्यादन्नसम्भवः**' भी लिखा है। अर्थात् वर्षासे अन्नकी उत्पत्ति होती है। 'आप बतलाइये—संसारमें ऐसी भी कोई 'भूमि' है, जहाँ पर वर्षा होते ही तत्काल 'अन्न' पैदा हो जाय ?

अध्यापक—मेरी समझमें ऐसी भूमि तो कहीं भी नहीं है कि वर्षा होते ही तत्काल अन्न उत्पन्न हो जाय। वर्षा होने पर काफी समयकी प्रतीक्षा करने पर ही प्रभुकी कृपासे अन्न होता है।

मैंने कहा—जिस प्रकार वर्षासे तत्काल अन्नके उत्पन्न होनेकी सम्भावना करना भूल है, उसी प्रकार यज्ञसे तत्काल वर्षाकी सम्भावना व्यर्थ है।

(२) मैंने अध्यापक महोदयसे कहा—आप यह बतलाइये कि—'यज्ञसे वर्षा होती है, यह आपको कैसे मालूम हुआ ?'

अध्यापक—यज्ञाग्निमें ब्राह्मणलोग जो हवन करते हैं, उससे शक्तिसम्पन्न धूम (धूवाँ) उत्पन्न होकर आकाशमें पहुँचता है और वह मेघरूपमें परिणत होकर पृथ्वीमें जलके रूपमें बरसता है।

मैंने कहा—मैं आपकी बातको मानता हूँ। सारांश यह है कि—वर्षा होनेके लिये काफी प्रपञ्च करने पड़ते हैं। प्रथम यज्ञकी व्यवस्था करनी पड़ती है। पश्चात् यज्ञाग्निमें ब्राह्मणोंके द्वारा हवन होता है, फिर उस हवनसे निःसृत धूम आकाशमें जाकर वर्षाके रूपमें परिणत होता है।

मैंने पुनः अध्यापकसे कहा—कृपया यह बतलाइये कि इस 'किरमारा' ग्राममें जो महायज्ञ हो रहा है, इसमें हवन करनेवाले कितने ब्राह्मण हैं ?'

अध्यापकने कहा—यज्ञमें पचीस-तीस ब्राह्मण हवन करते हैं ।

मैंने कहा—किरमारा ग्राममें बहुत वर्षोंसे हजारों व्यक्तियों द्वारा प्रतिदिन बीड़ी, सिगरेट, गाँजा आदिका जो धूम्रपानात्मक अखण्ड 'महायज्ञ' चल रहा है, उसने यहाँके आकाश—मण्डलको इस प्रकार आच्छादित कर दिया है कि वह अल्पसंख्यक यज्ञके ब्राह्मणोंके द्वारा निःसृत धूएँको आकाश-मण्डलमें जाने ही नहीं देता अर्थात् बीड़ी, सिगरेट, गाँजा आदिका अत्यधिक धूवाँ बीचमें यज्ञके धूएँको रोक देता है । ऐसी स्थितिमें वर्षा तत्काल कैसे हो ? अतः आप यज्ञके द्वारा तत्काल वर्षा चाहते हैं, तो सर्वप्रथम बीड़ी, सिगरेट, गाँजा आदिके धूम्रपानको रोकनेकी व्यवस्था कीजिये ।

अध्यापक मेरी बातोंको सुनकर मौन हो गये ।

(३) मैंने कहा—किसीके पुत्रका विवाह हो और उस पुत्रके विवाह-मण्डपमें विवाहके समय वर-वधूको शुभाशीर्वाद-प्रदानार्थ साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश पधारकर उन्हें 'पुत्र' प्राप्तिके निमित्त आशीर्वाद देदें और भगवत्कृपासे तत्काल नव-विवाहिता वधू गर्भवती हो जाय और गर्भवतीके रूपमें सर्वप्रथम नव-वधू 'पतिगृह' पहुँचे और उसको 'गर्भवती' देखकर पतिगृहवाले उस गर्भवती नववधूको अपने घर रखेंगे या उसे व्यभिचारिणी समझकर घृणा और हेय दृष्टिसे उसका परित्याग करेंगे ?

अध्यापक—ऐसी स्थितिमें नववधूका परित्याग होगा ।

मैंने कहा—उसी प्रकार यज्ञके द्वारा तत्काल वर्षा भी हानिकारक और परित्यागके योग्य है ।

(४) **'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** का आप यह अर्थ कदापि न समझिये कि—आपके गाँवमें जीवनमें केवल एक बार यज्ञ करानेसे वर्षा हो जाय । यज्ञका अर्थ बहुत व्यापक है । प्राचीन कालमें घर-घरमें यज्ञ होते थे । उस समय कोई भी ऐसा द्विज नहीं था, जिसके घरमें प्रति-दिन यज्ञ न होता हो । यज्ञकी प्रचुरतासे आवश्यकतानुसार समय-

समय पर सर्वत्र वर्षा होती थी, जिससे गीताका **'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः'** यह भगवद्वाक्य पूर्ण घटित होता था।

राजा दिलीपकी कथा प्रसिद्ध है। वह पुत्र की इच्छासे महर्षि वशिष्ठजीके आश्रममें पहुँचे, तो उन्हें विदित हुआ कि महर्षि वशिष्ठ अपनी पत्नी अरुन्धतीके सहित 'यज्ञशाला' में बैठे हुए यज्ञ-कार्य सम्पादन कर रहे हैं। यज्ञकार्यको पूर्ण करके महर्षिने राजा दिलीपको दर्शन देकर उनकी इच्छा पूर्ण की।

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्याः स्वाहयेव हविर्भुजम्॥

(रघुवंश १।५६)

यह था प्राचीन कालका आदर्श यज्ञमयजीवन। इन्हीं यज्ञोंके कारण सारे संसारका सब प्रकारसे सर्वदा कल्याण होता रहता था। आज हम उन आदर्शमय यज्ञोंको भूल गये, जिससे हमें गीताके **'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः'** का यथार्थ फल प्राप्त नहीं हो रहा है।

वस्तुतः गीताके **'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः'** इसमें 'पर्जन्य' शब्द साकूत (साभिप्राय) है, वह केवल मेघ या वर्षाके साधारण अर्थमें प्रयुक्त नहीं है, किन्तु 'पॄपालनपूरणयोः' इस धातुपाठके अनुसार पालन और पूर्णार्थक अर्थमें प्रयुक्त है। **'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः'** (मेघदूत, पूर्वमेघ) के अनुसार बादल और वर्षा तो जैसे-तैसे धूम्रसे भी हो सकती है, किन्तु वह वर्षा विषाक्त और असामयिक होगी, जिससे प्राणी रुग्ण और क्लेशभाजन बनेंगे। परन्तु यज्ञसे पर्जन्य अर्थात् प्राणियोंका पालन और पोषण करनेवाली सामयिक वर्षा होगी, यही 'पर्जन्य' शब्दका मुख्य अभिप्राय है।

—०—

यज्ञ-सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर

प्रश्न—यज्ञका फल यदि स्वर्ग है, तो यज्ञ करनेसे यज्ञकर्ताको तत्काल स्वर्गकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर—'**ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत**', '**अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्गकामः**' इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है कि यज्ञसे स्वर्गकी प्राप्ति अवश्य होती है, किन्तु यज्ञसे तत्काल स्वर्गकी प्राप्ति सर्वथा असंभव है। यज्ञ एक विशिष्ट क्रियाकलाप है, जो कि इसी लोकमें समाप्त हो जाता है, किन्तु तज्जन्य व्यापार अदृष्ट अथवा पुण्य स्थायी बना रहता है। वह अदृष्ट अथवा पुण्य आत्मामें अथवा अन्तःकरणमें विद्यमान रहता है, जो कि यज्ञकर्ता यजमानको स्वर्गादि फल देनेमें साधक होता है। जिस प्रकार कुम्भकार घटनिर्माणार्थ चक्र चलाकर जब उसको बन्द करता है, तब भी उसमें तज्जन्य चक्रका भ्रमण-व्यापार पूर्ववत् निहित रहता है और वह घटको तैयार करके ही शान्त (बन्द) होता है, उसी प्रकार '**काशीमरणान्मुक्तिः**' की भी व्यवस्था है। मनुष्यके श्वास-प्रश्वास बन्द होनेसे उसकी मृत्यु हो जाती है, किन्तु उससे उसकी मुक्ति नहीं होती। मुक्तिके लिये भगवान् विश्वनाथजीके प्रणवोपदेशकी आवश्यकता होती है, जो कि जीवात्माके अन्तःकरणमें विद्यमान होकर मुक्ति प्रदान करता है। यदि इसको न माना जाय, तो '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' यह श्रुति व्यर्थ हो जायगी। इसी प्रकार और भी अनेक दृष्टान्त हैं। अतः स्पष्ट है कि यज्ञकर्मके द्वारा जो अदृष्ट अथवा पुण्य बनता है, वह स्वर्ग-प्रदानका हेतु अवश्य है और वह फल प्रदान कर शान्त हो जाता है। वही व्यापार पुण्यस्थानीय स्वर्गादि लोकोंको देता है, यह मीमांसकोंका सिद्धान्त है।

(२) **प्रश्न**—यज्ञमें 'नारायणाय स्वाहा' आदि कहकर यज्ञ कुण्डमें जो 'आहुति' डाली जाती है, वह क्या भगवान् नारायणको प्राप्त होती है ?

उत्तर—श्रीमद्भागवत (६।२।७) में अजामिलकी कथा प्रसिद्ध है। वह सत्कर्मसे च्युत और असत्कर्ममें लिप्त था, किन्तु मृत्युकालमें भयवश उसने भगवन्नामधारी 'नारायण' नामक अपने पुत्रका उच्चारण किया, जिसके प्रभावसे उस दुष्कर्मीकी रक्षा भगवान्‌के द्वारा हुई और वह यम—यातनासे मुक्त होकर भगवान्‌के परम दिव्य धामको प्राप्त हुआ।

विचार करनेकी बात है कि अजामिल जैसे पाप-परायण व्यक्तिने साक्षात् भगवान्‌का नामोच्चारण न कर, केवल अपने पुत्रके बहाने 'नारायण' का उच्चारण कर भगवान्‌के दिव्य धामको प्राप्त कर लिया, तो जो व्यक्ति वेद-मन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग आदिके द्वारा विधि-विधानपूर्वक 'नारायणाय स्वाहा' कहकर यज्ञ-कुण्डमें आहुति डालते हैं, तो क्या उनकी दी हुई आहुतिको भगवान् नारायण स्वीकार नहीं करेंगे? अवश्य ही करेंगे। विधि-विधानपूर्वक दी हुई आहुतिको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं और वे यज्ञकर्ताको श्रेष्ठ फल प्रदान करते हैं, यह ध्रुव है।

(३) **प्रश्न**—यज्ञ करनेका विशेष विधान 'त्रेतायुग' में कहा गया है, तो कलियुगमें 'यज्ञ' करनेकी क्या जरूरत है?

उत्तर—त्रेतायुगमें यज्ञ करनेका जो शास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है, उसका यह अभिप्राय नहीं है कि त्रेतायुगमें ही यज्ञ करना चाहिये, अन्य युगमें नहीं करना चाहिये। त्रेतायुगमें यज्ञ करनेकी जो बात कही गई है, उसका अभिप्राय यह है कि—त्रेतायुगमें ही यज्ञका प्रादुर्भाव हुआ था, अतः त्रेतायुगमें यज्ञके प्रति प्रायः सभी लोगोंकी विशेष श्रद्धा रहती थी। उस समय सभी लोग यज्ञ करते थे और उस समय यज्ञका कोई भी विरोधी नहीं था।

जिस प्रकार त्रेतायुगमें यज्ञके प्रति सब लोग श्रद्धा रखते थे, उस प्रकार अन्य युगोंमें, विशेषकर कलियुगमें यज्ञके प्रति सब लोग श्रद्धा

नहीं रखेंगे, किन्तु यज्ञके प्रति तरह-तरहके खण्डन-मण्डन और निन्दा करनेवाले होंगे ।

(४) **प्रश्न**—**'कलौ केशवकीर्तनात्'** और **'दानमेकं कलौ युगे'** के अनुसार कलियुगमें कीर्तन करना और दान करना ही उचित है, तो कलियुगमें यज्ञ करनेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—शास्त्रोंमें **'कलौ केशवकीर्तनात्'** और **'दानमेकं कलौ युगे'** आदि जो वाक्य लिखे हैं, वे अर्थवादपरक (स्तुतिमात्रपरक) हैं, न कि यज्ञविरोधी वाक्य हैं ।

(५) **प्रश्न**—शास्त्रोंमें **'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'** का उल्लेख कर यज्ञको 'शत्रु' बतलाया गया है, तो शत्रुरूप यज्ञ करनेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—मत्स्यपुराण (९३।१११) में **'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'** का जो उल्लेख किया गया है, वह सबके लिये नहीं कहा गया है, किन्तु केवल यज्ञके यजमानके लिये कहा गया है। 'जो यजमान शास्त्र-विधिके अनुकूल यज्ञ करते हैं और यज्ञके आचार्यादि ऋत्विजोंका दक्षिणा आदिके द्वारा पूर्णरूपसे सम्मान करते हैं, उनके लिये यज्ञ सर्वप्रकारसे कल्याणकारक होता है और जो यजमान शास्त्र-विधिके विरुद्ध यज्ञ करते हैं उनके लिये वह शत्रुरूपमें परिणत होकर हानिकारक होता है ।' अतः निष्कर्ष यह है कि **'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'** इस वाक्यका उल्लेख केवल विधिहीन यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये ही किया गया है, न कि समस्त संसारके लिये ।

(६) **प्रश्न**—जो यज्ञ विधिपूर्वक नहीं किया जाता, उसका फल यजमानको प्राप्त होता है या नहीं ?

उत्तर—जिस यज्ञको यजमान श्रद्धासे करता है उसका फ़ल उसको अवश्य प्राप्त होता है और जिस यज्ञको वह अश्रद्धासे करता

है, उसका फल उसको प्राप्त नहीं होता। इस विषयमें गीता (१७।२८) का भी कहना है कि—

अश्रद्धया हुतं द्रव्यं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

'हे अर्जुन! अश्रद्धासे किया हुआ हवन, दान, तप और जो कुछ भी कर्म किया जाता है वह सब असत् कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोकमें और न परलोकमें ही कल्याणकारक होता है।'

अतः मनुष्यको श्रद्धापूर्वक यज्ञ करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक किया हुआ यज्ञ विधिपूर्वक हो अथवा अविधिपूर्वक उसका फल यजमानको अवश्य ही प्राप्त होता है।

यह निर्विवाद है कि यज्ञ जैसे महनीय कार्योंमें मनुष्यसे ज्ञाताज्ञात रूपमें थोड़ी-बहुत त्रुटि अवश्य ही हो जाती है। अतएव शास्त्रोंकी आज्ञा है कि यज्ञादि कर्मके अन्तमें कर्मकी न्यूनताकी पूर्तिके लिये भगवन्नामका स्मरण अवश्य करना चाहिये। भगवान्‌के स्मरणमात्रसे ही यज्ञादिमें होनेवाली सभी प्रकारकी त्रुटियों और अविधियोंकी पूर्ति हो जाती है।

(७) **प्रश्न**—यज्ञ करनेसे ही यदि वर्षा होती है, तो जिन देशोंमें (इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस, जर्मन आदि देशोंमें) यज्ञ नहीं होते, वहाँ वर्षा क्यों होती है?

उत्तर—यज्ञका बहुत व्यापक प्रभाव होता है। अतः यज्ञ किसी भी स्थानमें किया जाय, उसका प्रभाव सर्वत्र पड़ता ही है, जिससे समस्त देशोंमें वर्षा होती है। यज्ञ करनेसे केवल भारतवर्षमें ही वर्षा होती है, अन्य देशोंमें नहीं होती, ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है। इसलिये किसी भी स्थानमें विधिपूर्वक यज्ञ किया जाय, तो उसका व्यापक प्रभाव समस्त देशोंमें पड़ता है, जिससे सर्वत्र वर्षा होती रहती है।

जिस प्रकार मनुष्योंके द्वारा प्रतिदिन किसी न किसी प्रकारके यज्ञ होते रहते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिके द्वारा भी नित्य—निरन्तर यज्ञ होते रहते हैं। अतः मनुष्योंके द्वारा और प्रकृतिके द्वारा होनेवाले यज्ञोंके परिणामस्वरूप वर्षा केवल भारतवर्षमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी होती है।

यज्ञका फल चिरस्थायी होता है। अतः प्राचीनकालमें जो यज्ञ हुए हैं, उन्हींके फलस्वरूप आज भी सर्वत्र वर्षा होती रहती है और सर्वदा होती रहेगी।

—:०:—

वेदोंमें यज्ञसम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें

ऋग्वेद

१—यज्ञकी अग्निमें डाला हुआ पदार्थ देवताओंको प्राप्त होता है (१।१।४)

२—इन्द्र ऋषियोंके द्वारा की गई स्तुतिमें और मनुष्योंके द्वारा किये गये यज्ञोंमें जाते हैं (१।८४।२)

३—यज्ञके द्वारा ही प्रभुकी प्राप्ति होती है (१।९६।३)

४—यह यज्ञ समस्त भुवनोंका केन्द्र (नाभिस्थान) है (१।१६४।३५)

५—यह यज्ञ मनुष्यको परमात्माके पास पहुँचानेवाला है। यह यज्ञ स्वयं पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है (१।१७७।४)

६—यज्ञसे प्राणिमात्रका कल्याण होता है तथा यज्ञसे देश और समाजका सञ्चालन एवं संरक्षण होता है (२।३८।१)

७—अग्निदेव हविर्द्रव्यके द्वारा देवताओंका सत्कार करते हैं, अतः सत्य-सनातनस्वरूप यज्ञोंको (निन्दाद्वारा) कोई भी दूषित करनेमें समर्थ नहीं हो सकता (३।३।१)

८—परमात्मा यज्ञके द्वारा मनुष्योंको सर्वदाके लिये भक्ति-युक्त बना देता है (५।३।५)

९—यज्ञकी अग्नि हविर्द्रव्य प्रदान करनेवालेको अत्यन्त यशस्वी, ज्ञानी, विजयी और श्रेष्ठ वाग्मी (वक्ता) बनाती है और सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र प्रदान करती है (५।२५।५)

१०—व्यभिचारी मनुष्यको यज्ञादि धार्मिक कार्योंमें भाग नहीं लेना चाहिये (७।२१।५)

११—देवगण यज्ञकर्ता (यजमान), पुरुषार्थी और भक्तको चाहते हैं, वे आलसीसे प्रेम नहीं करते (८।२।१८)

१२—यज्ञके द्वारा इन्द्र समृद्धिको प्राप्त हुए (८।१४।५)

१३—जो यज्ञकर्ता (यजमान) ब्रह्म-परायण है, वह निश्चित ही कभी ऋणी नहीं रह सकता (८।३२।१६)

१४—यज्ञ ही प्रथम और मुख्य धर्म है (१०।९०।१६)

१५—यज्ञादि सत्कर्मोंकी समस्त देशोंमें वृद्धि करनी चाहिये (१०।१०१।१०)

१६—हवन करनेसे अभिलषित कामनाओंकी पूर्ति होती है (१०।१०१।२)

शुक्ल यजुर्वेद

१—यजमान (यज्ञकर्ता) को यज्ञादि समस्त कार्योंमें परमेश्वरकी सहायतार्थ प्रार्थना करनी चाहिये। परमेश्वरकी प्रार्थना करनेसे यजमानके द्वारा किया गया यज्ञ ठीक-ठीक सम्पादित होता है और यजमानका मङ्गल होता है। परमात्माकी प्रार्थना न करनेसे यज्ञमें अमङ्गल होता है (१।९)

२—हिंसारहित यज्ञ श्रेष्ठ होता है (२।८)

३—यज्ञके द्वारा मनुष्यकी आत्माग्नि प्रदीप्त होती है। आत्माग्निके प्रदीप्त होनेसे परमात्मा प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्न होकर यज्ञकर्ताके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं (२।१४)

४—यज्ञ त्रिलोक-व्यापी है अर्थात् यज्ञ समस्त संसारमें रहता है (४।६)

५—यज्ञ-हवनसे विविध कामनाएँ पूर्ण होती हैं (१०।२०)

६—जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता, उसपर दुर्भाग्य अपना आक्रमण कर लेता है (१२।६२)

७—प्रजापतिने प्रजाकी सृष्टि-कामनासे यज्ञ प्रारम्भ किया और उस यज्ञकी अग्निमें अपनी वपा (हृदयकी चर्बी) निकाल कर उसका हवन किया। अतः जब कि प्रजापतिने सृष्टि-समृद्धिके लिये अपनी वपाद्वारा यज्ञ किया, तो उनकी सन्तुष्टिके लिये हमें भी हवनीय द्रव्यद्वारा अवश्य यज्ञ करना चाहिये (१३।५१)

८—यज्ञमें यजमान देवताओंको आह्वान करता हुआ उनसे प्रार्थना करता है कि आपलोग मेरे यज्ञमें पधार कर मुझे अभिलषित पदार्थोंको देनेकी कृपा करें (२०।४८)

९—यज्ञ करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है (२०।८४)

१०—देवताओंके निमित्त प्रकृतिद्वारा रात्रिन्दिवा यज्ञ होता रहता है (२१।४१)

११—देवताओंका यज्ञ सर्वदा होता रहता है। अतः मनुष्योंको भी सदैव यज्ञ करना चाहिये (२१।४७)

१२—यह सम्पूर्ण पृथ्वी यज्ञकी वेदीरूप है, इसमें होनेवाले यज्ञ ही विश्वको धारण किये हुए हैं (२३।६२)

१३—यज्ञ-मण्डपके दर्वाजे मजबूत बनवाने चाहियें, जिससे किसी प्रकारके पशु यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश न कर सकें और धूल तथा वृष्टि आदिका जल यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश न कर सके (२८।१३)

१४—यज्ञ और यज्ञ भगवान्‌की उपासना करनेसे मनुष्यके मनकी, वाणीकी एवं बुद्धिकी उन्नति होती है (३०।१)

१५—यज्ञ दूसरी वस्तुओंके अभावमें तो हो सकता है, किन्तु अग्निके अभावमें कथमपि नहीं हो सकता (३३।१६)

१६—यज्ञोंमें ऋत्विजोंका पूर्ण राज्य अर्थात् स्वातन्त्र्य होता है। अतः जिस प्रकार राजाओं पर अनुशासन नहीं किया जाता, उसी प्रकार यज्ञके ऋत्विजों पर भी यजमानको अनुशासन नहीं करना चाहिये (३३।८३)

१७—वायु और इन्द्रसे प्रार्थना की गई है कि वे यज्ञके दिनोंमें जल और वायुको दूषित न होने दें। क्योंकि जल और वायुके दूषित होनेसे संक्रामक रोगोंके होनेकी संभावना रहती है, जिससे मनुष्योंमें बिमारी होनेका विशेष भय रहता है (३३।८६)

१८—हव्य-प्रदानद्वारा मित्रावरुणकी उपासना करनेसे संक्रामक रोग शान्त हो जाते हैं (३३।८७)

१९—यज्ञमें समस्त देवताओंको आह्वान करते हुए कहा गया है कि आपलोग यज्ञमें पधार कर हमारी आयुकी वृद्धि करें, पापोंको दूर करें, दुर्भाग्यका नाश करें और हमारे सभी कार्योंमें सहायक बनें (३४।४७)

सामवेद

१—यज्ञके द्वारा ही इन्द्रदेव समृद्धिशाली हुए (पूर्वा० २।१७)

२—यज्ञसे अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है (पूर्वा० २।८।५)

३—देवगण यज्ञकर्ता, पुरुषार्थी और भक्तको चाहते हैं, वे आलसीसे प्रेम नहीं करते (पूर्वा० ३।८।६)

४—इन्द्र ऋषियोंके द्वारा की गई स्तुतिमें और मनुष्योंके द्वारा किये गये यज्ञोंमें जाते हैं (उत्तरा० ३।३।२३)।

५—यज्ञकी ज्योति मनुष्यको पवित्र करती है (उत्तरा० ७।१।१)

अथर्ववेद

१—यज्ञाग्निमें डाला हुआ हविर्द्रव्य देवताओंको प्राप्त होता है (५।१२।२)

२—यज्ञ करनेवाला मनुष्य परम धाममें प्रतिष्ठित होता है, यह ध्रुव है। अतः परम धाममें जानेवाले यज्ञकर्ताका इष्टापूर्तिके द्वारा स्वागत करना चाहिये (६।१२३।३)

३—यज्ञ समस्त ब्रह्माण्डका बाँधनेवाला नाभिस्थान है (९।१०।१४)

४—यज्ञहीन पुरुषका तेज नष्ट हो जाता है (१२।२।३७)

५—यज्ञ करनेवाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं (१८।४।२)

६—जो यज्ञ हमारा कल्याणकारक है, जिसके द्वारा हम सब प्रकारसे वृद्धिङ्गत होते हैं, उस यज्ञके निमित्त यज्ञ भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये (१९।६०।२)

७—यज्ञके द्वारा इन्द्रदेवने अपनी उन्नति की (२०।२७।५)

८—देवगण यज्ञकर्ता (यजमान), पुरुषार्थी और भक्तको चाहते हैं, वे आलसीसे प्रेम नहीं करते (२०।१८।३)

—०—

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बातें

शतपथब्राह्मण

१—यज्ञसे ही यज्ञका निर्माण होता है (१।१।२)

२—यज्ञके समय अपवित्रता नहीं करनी चाहिये (१।४।१)

३—हिंसारहित यज्ञकर्म श्रेष्ठ होता है (१।४।५)

४—यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म है (१।७।१।५)

५—यज्ञमें ही ऐश्वर्य है (१।७।१।६)

६—यज्ञ ही विश्वका उत्पत्तिस्थान है और वही श्रेष्ठ कर्म है (१।७।४।५)

७—यज्ञ ही देवताओंकी विभूति है (१।७।२।११)

८—यजमानके लिये यज्ञको ही देवताओंका आशीर्वाद कहा गया है। यज्ञमें जो आहुति दी जाती है, वह भी यज्ञरूपमें यजमानके लिये आशीर्वाद ही है (२।३।४।५)

९—इन्द्र ही यज्ञका देवता है (३।५।२।६)

१०—यज्ञसे सन्तति उत्पन्न होती है (४।४।२।६)

११—यज्ञ ही देवताओंका अन्न (भोजनीय पदार्थ) है (५।१।१।२)

१२—यज्ञ करनेसे मनुष्यको चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है (७।३।१।२०)

१३—यज्ञ ही देवताओंकी आत्मा है (८।६।१।१०)

१४—यज्ञ ही समस्त प्राणियोंका रक्षण (पालन) करता है (९।४।१।११)

१५—यज्ञकी रक्षा तभी होती है जब विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण यज्ञको करते कराते हैं (९।८।९।२८)

१६—यज्ञकर्ताको स्वर्गकी प्राप्ति होती है (१२।४।३।७)

१७—जो ब्राह्मण अश्वमेध यज्ञकी विधि नहीं जानता, वह ब्राह्मण नहीं है (१३।४।२।१७)

१८—यज्ञ समस्त प्राणियों और समस्त देवताओंका आत्मा (जीवन) है (१४।३।२।१)

ऐतरेयब्राह्मण

१—यज्ञ जनताके कल्याणके लिये होता है (१।२।३)

२—यज्ञकर्ता (यजमान) को स्वर्गकी प्राप्ति होती है (१।२।१०)

३—यज्ञ करनेसे और वेदमन्त्रोंके उच्चारण (स्वाध्याय) करनेसे वायुमण्डलमें परिवर्तन होता है, जिससे समस्त विश्वमें धर्मचक्र चलने लगता है (१।४।३)

४—यज्ञको ब्राह्मणोंका शस्त्र कहा है (७।१९)

५—ब्रह्म बनकर ही यज्ञकी उपासना करनी चाहिये (३४।१)

तैत्तिरीयब्राह्मण

१—यज्ञ ही भुवन है (३।३।७।५)

२—यज्ञ करना तप है (१०।८)

गोपथब्राह्मण

१—यज्ञ ही सूर्य है (पू० १।३३)

२—विधिहीन यज्ञोंसे संसारका कल्याण नहीं होता है।

शाङ्खायनब्राह्मण

यज्ञ ही समस्त भुवनोंमें श्रेष्ठ है (२५।११)

—:०:—

उपनिषदोंमें यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बातें

१—पुरुष ही यज्ञ है (छान्दोग्योपनिषद् ३।१६)

२—आकाशमें और पृथिवीमें प्रतिदिन और प्रतिक्षण यज्ञ होते रहते हैं (छान्दोग्योपनिषद्)

३—यज्ञ ही देवता है (नारायणोपनिषद् ७८)

४—यज्ञसे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यज्ञमें सब प्रकारके गुण हैं (नारायणोपनिषद् ७९)

५—यज्ञके द्वारा जो जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसे वही वस्तु देता है (कठोपनिषद् १।२।१६)

६ यज्ञ करनेसे यजमानको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है (मुण्डकोपनिषद् २।६)

७—जो लोग यज्ञ करना, वापी, कूप, तालाव आदिका निर्माण कराना और बगीचा लगवाना आदि इष्टापूर्त्तरूप कर्मका अवलम्बन करते हैं, वे चन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं (प्रश्नोपनिषद् १।९)

८—यज्ञको देवताओं, पितरों और ऋषियोंका जीवन कहा है (प्रश्नोपनिषद् २।१।८)

९—यज्ञसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है (सरस्वत्युपनिषद्)

१०—यज्ञमें ही सरस्वती प्रसन्न होती है (सरस्वत्युपनिषद्)

११—यज्ञिय कर्मको छोड़कर समस्त कर्म मानवको बन्धनमें डालनेवाले हैं (गीतोपनिषद् ३।९)

१२—ब्रह्माजीने यज्ञके साथ ही मनुष्यकी रचना की है (गीतोपनिषद् ३।१०)

१३—यज्ञसे ही वर्षा होती है (गीतोपनिषद् ३।१४)

१४—सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा सर्वदा यज्ञमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं (गीतोपनिषद् ३।१५)

१५—यज्ञ ही सृष्टिचक्रका सञ्चालन करता है (गीतोपनिषद् ३।१६)

१६—यज्ञोंके परिणामस्वरूप ज्ञानामृतको भोगनेवाले श्रेष्ठ जन सनातन परमात्माको प्राप्त होते हैं। यज्ञ न करनेवाले पुरुष इहलोक (मृत्युलोक) को ही प्राप्त नहीं कर सकते, परलोक (स्वर्गलोग) की तो बात ही क्या है (गीतोपनिषद् ४।३१)

१७—समस्त यज्ञोंमें ज्ञानरूप यज्ञ श्रेष्ठ है (गीतोपनिषद् ४।३३)

१८—देवयज्ञ करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं (गीतोपनिषद् ७।२३)

१९—यज्ञको दैवी–सम्पत्ति कहा गया है (गीतोपनिषद् १६।१)

२०—यज्ञ कभी भी त्याग करनेके योग्य नहीं है (गीतोपनिषद् १८।३)

२१—यज्ञ बुद्धिमान मनुष्योंको पवित्र करनेवाला है (गीतोपनिषद् १८।५)

—०—

पुराणोंमें यज्ञसम्बन्धी आवश्यक बात

१—समस्त यज्ञ वासुदेवपरक हैं (भागवत १।३।२८)

२—यज्ञादिमें वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे ही हवन कराना चाहिये। वेदशून्य ब्राह्मणको होतृत्वका अधिकार नहीं है (भागवत १।७।५)

३—समस्त यज्ञ नारायणपरक हैं (भागवत २।५।१५)

४—यज्ञ-शेषको अमृत कहा है (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १५।३१२)

५—बुद्धिमान् पुरुषोंको यज्ञकी सिद्धिके लिये १०० दुग्ध देनेवाली गौएँ दान करनी चाहियें (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३४।२३)

६—यजमान यज्ञान्तमें अपना सर्वस्व दान कर दे, यह स्वायम्भुव मनुका कथन है (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३४।२६)

७—यज्ञमें समस्त प्रकारके शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ही नियुक्त करना चाहिये (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

८—यज्ञमें सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहियें (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

९—यज्ञमें आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मण होने चाहियें (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

१०—यज्ञमें प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञसामग्री, निर्मल आसन और दिव्य विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहने चाहियें (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

११—यज्ञमें गाँव, दास, दासी, भेड़ तथा बकरियाँ देनी चाहियें (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

१२—अवभृथस्नानके बाद यज्ञिय ब्राह्मणोंको षड्रस भोजन कराना चाहिये (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

१३—विष्णु सर्वक्रतुमय हैं (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१।११३)

१४—यज्ञार्थ शूद्रकी भिक्षा ग्रहण करनेसे यज्ञ नष्ट हो जाता है (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १२५।२२)

१५—विष्णु यज्ञोंके द्वारा आराध्य हैं (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड (२०२।८)

१६—यज्ञ ही साक्षात् यज्ञपति हैं (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २२४।१७)

१७—सुख-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रतिदिन यज्ञ (हवन) करना चाहिये यज्ञ करनेसे यज्ञ करनेवाले का उपकार होता है (पद्मपुराण, भूमिखण्ड १५२)

१८—यज्ञसिद्धिके लिये ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका निर्माण किया गया है (ब्रह्मपुराण १।४९)

१९—समस्त यज्ञोंका प्रभु ईश्वर है (ब्रह्मपुराण ३४।४०)

२०—समस्त यज्ञ नारायणपरक हैं (ब्रह्मपुराण ६०।२६)

२१—यज्ञोंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम (विष्णु) का यज्ञ जब-जब नहीं होता, तब-तब कलियुगका बल बढ़ रहा है, यह समझना चाहिये (ब्रह्मपुराण २२९।४७)

२२—यज्ञादि कर्म वस्त्रके बिना पूर्ण नहीं हो सकते (ब्रह्म-पुराण २२०।१३९)

२३—तीनों लोकोंमें यज्ञके सदृश और कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है (महाभारत, शान्तिपर्व ६१।५३)

२४—यज्ञ—शेषको अमृत कहा है (महाभारत, शान्तिपर्व २४२।३०)

२५—यज्ञसे सन्तति उत्पन्न होती है महाभारत, शान्तिपर्व २६३।१०)

२६—यज्ञोंमें देवता प्रतिष्ठित रहते हैं (महाभारत, वनपर्व (१५०।२८)

२७—वेदाचारविधानसे होनेवाले यज्ञोंमें ही देवगण पधारते है (महाभारत, वनपर्व १५०।२९)

२८—यज्ञ ही धर्ममन्त्रात्मक है (वायुपुराण ५७।११७)

२९—यज्ञसे देवताओंकी प्राप्ति होती है (वायुपुराण ५७।११७)

३०—यज्ञोंके नाशसे देवताओंका नाश होता है, जिससे सब कुछ नष्ट हो जाता है (वायुपुराण ६०।६)

३१—यज्ञ ही समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है (वायु-पुराण ६०।७)

३२—शान्तिके अभिलाषुकोंको रात्रिमें यज्ञमण्डपमें निवास नहीं करना चाहिये (कालिकापुराण ८८।४३)

३३—यज्ञ ही भगवान् विष्णु है (विष्णुधर्मोत्तरपुराण १६२।२)

३४—महायज्ञ (पञ्चमहायज्ञ) विहीन व्यक्ति ब्राह्मणोंकी पङ्क्तिमें बैठनेके योग्य नहीं है (कूर्मपुराण, उत्तरार्ध २१।४२)

३५—समस्त यज्ञ नारायणपरक हैं (मत्स्यपुराण २४७।३६)

३६—विश्वकल्याणार्थ होनेवाले यज्ञोंमें ब्राह्मणकी संख्या और समयका नियम नहीं है (भविष्यपुराण)

३७—वाणिज्य-वृत्तिसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मण यज्ञमें त्याज्य हैं (स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

३८—यज्ञ और श्राद्धमें जो ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर उसका त्याग करता है, वह पापात्मा शूकर योनिको प्राप्त होता है (स्कन्द-पुराण, प्रभासखण्ड)

३९—यज्ञमें जो व्यक्ति मौन रहता है, वह स्वर्गमें जाता है (स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

४०—यज्ञादिमें उत्तम सावन मास माना जाता है, यह ज्यौतिष-शास्त्रका मत है (स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

४१—यज्ञादिमें पूर्णाहुति खड़े होकर ही करना चाहिये (बह्निपुराण)

४२—यज्ञमण्डपमें देवपीठपर आभूषण चढ़ानेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है (नन्दिपुराण)

—:o:—

यज्ञसम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें

१—जिस भूमिमें देवप्रीत्यर्थ यज्ञ किया जाता है, उसे 'देवयजन' कहते हैं।

२—यज्ञ स्वर्ग जानेके लिये सुखद नौका है। अत: यज्ञरूपी नौका पर सवार होकर संसार-सागरसे तरना चाहिये।

३—यज्ञ एक ऐसा श्रेष्ठ और पवित्र कर्म है, जिसके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

४—यज्ञके द्वारा भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है और यज्ञातिरिक्त कर्म भगवान्से दूर हटानेवाले हैं।

५—निष्काम-भावसे किया हुआ यज्ञ ही सफल होता है और स्वार्थ-भावसे किया हुआ यज्ञ असफल होता है।

६—यज्ञमें ही सच्चा सुख और आनन्द है। यज्ञको छोड़कर समस्त कर्म बन्धनमें डालनेवाले हैं।

७—यज्ञमें दैवी-गुणोंका खज़ाना भरा हुआ है। अतः दैवी-गुणोंसे परिपूर्ण यज्ञके द्वारा मनुष्यकी समस्त कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं।

८—जो व्यक्ति निःस्वार्थ-भावसे यज्ञमें तन, मन, धनसे सहयोग देते हैं, वे सर्वदा सब प्रकारके ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण रहते हैं।

९—यज्ञके प्रति श्रद्धा-विश्वास रखनेवाले पुण्यात्मा मनुष्यों पर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अपना कुप्रभाव नहीं डाल सकते।

१०—यज्ञको दैवी-सम्पत्ति कहा है। जो मनुष्य यज्ञरूपी दैवी-सम्पत्तिको अपनाता है, वह 'देवता' बन जाता है।

११—जो मनुष्य यज्ञको नहीं मानते अथवा यज्ञ नहीं करते, वे दुर्भाग्यरूपी आक्रमणसे घिरे रहते हैं।

१२—जिस प्रकार माता-पिता अपने छोटे-छोटे बालकोंके खेल-कूद देखकर तथा उनकी अमृतमयी तोतली वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार देवगण अपने यज्ञप्रेमी यजमानोंके किये हुए यज्ञकर्मको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

१३—जिस प्रकार मनुष्योंके द्वारा देवताओंके निमित यज्ञ होता है, उसी प्रकार प्रकृतिके द्वारा भी देवताओंके निमित्त यज्ञ होता रहता है।

१४—यज्ञके द्वारा जो धूम्र निकलता है, वह सूर्यकी किरण और वायुके साथ प्राप्त होकर आकाशमण्डलमें जाकर वर्षाका रूप धारण करता है, जिससे समस्त संसारका कल्याण होता है।

१५—यज्ञमें मन्त्रोंके द्वारा देवताओंके निमित्त जो आहुति डाली जाती है, उससे देवता बलिष्ठ और सन्तुष्ट होते हैं।

१६—यज्ञके ब्राह्मणोंका दक्षिणासहित पूजन करनेसे तथा उनके चरणोदकका पान करनेसे समस्त देवताओंके दर्शन करनेका पुण्य और धन-धान्य एवं पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति होती है।

१७—यज्ञमण्डपकी १०८ बार परिक्रमा करनेसे समस्त तीर्थोंकी यात्रा करनेका फल प्राप्त होता है और मनोभिलषित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

१८—यज्ञमण्डपकी १०८ बार परिक्रमा करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको १०८ सुपारी अथवा १०८ बादाम अथवा १०८ रुपया अथवा १०८ अठन्नी अथवा १०८ चवन्नी अथवा १०८ इकन्नी अथवा १०८ पैसासे परिक्रमा करनी चाहिये।

१९—यज्ञमण्डपकी १०८ बार परिक्रमा करनेवाली सौभाग्यवती स्त्रियों (नारियों) को अपने-अपने सौभाग्यवृद्धि एवं पुत्र तथा पति-की आयुवृद्धिके लिये यज्ञ भगवान्का पूजन कर सौभाग्य-पिटारी चढ़ाना चाहिये। सौभाग्य-पिटारीमें सिन्दूर, रोली, शीशा, कंघा, तेल, कज्जल, सुरमा, मेंहदी, साबुन, सुवर्णकी नथ, चाँदीके बिछूवे, जनानी धोती और कब्जा आदि होते हैं।

२०—जो मनुष्य यज्ञ भगवान्की आरतीका दर्शन करता है और अपने दोनों हाथोंसे आरती लेता है, वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार करता है और अन्तमें भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त करता है।

२१—यज्ञमें प्रातःकाल देवपूजनके अन्तमें और सायङ्काल हवनके अन्तमें यज्ञ भगवान्की प्रतिदिन आरती करनी चाहिये। आरती करनेसे देवपूजनादिमें जो त्रुटि रह जाती है, उसकी पूर्ति हो जाती है।

२२—देवताओंकी परिक्रमाके सम्बन्धमें 'बह्वृचपरिशिष्ट' का

मत है कि—गणेशकी एक प्रदक्षिणा, सूर्यकी दो प्रदक्षिणा, ईश्वर (भगवान्) की तीन प्रदक्षिणा, विष्णुकी चार प्रदक्षिणा और शिवकी आधी प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।

२३—यज्ञके यजमान और यज्ञके ब्राह्मणोंको यज्ञमण्डपके पश्चिम द्वारसे जाना चाहिये ।

२४—यज्ञमण्डपमें हवनसामग्रीको यज्ञमण्डपके पूर्व द्वारसे ले जाना चाहिये ।

२५—यज्ञमण्डपमें दान करनेकी सामग्रीको यज्ञमण्डपके दक्षिण द्वारसे ले जाना चाहिये ।

२६—यज्ञमण्डपमें प्रतिष्ठाकी सामग्रीको यज्ञमण्डपके उत्तर द्वारसे ले जाना चाहिये ।

२७—यज्ञमें अरणिमन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करनेकी शास्त्रीय विधि है । यज्ञमें जिस काष्ठके टुकड़ेपर अग्नि मथी जाती है, उसको 'अरणि' कहते हैं । उसमें जो अरणि पृथ्वीमें रखी जाती है, उसको 'अधरारणि' कहते हैं । यह अधरारणि स्त्री-स्थानीय है, जिसका नाम 'उर्वशी' है । अधरारणिके ऊपर रखनेवाली अरणिको 'उत्तरारणि' कहते हैं । यह उत्तरारणि पुरुष-स्थानीय है, जिसका नाम 'पुरूरवा' है । इस प्रकार अधरारणि और उत्तरारणि-रूप स्त्री और पुरुषके संयोगके मन्थनसे अग्निकी जो उत्पत्ति की जाती है, उसे 'अग्निचयन' कहते हैं (शुक्लयजुर्वेद ५।२) ।

२८—यज्ञमें वेद-मन्त्रोंके द्वारा अरणिमन्थनसे जो अग्नि प्रकट की जाती है, उसे 'ब्राह्म' अग्नि कहते हैं । यज्ञमें 'ब्राह्म' अग्निका विशेष महत्त्व कहा गया है ।

२९—यज्ञमें हवनके प्रारम्भ होनेके बाद यदि अग्नि नष्ट हो जाय, तो पुनः अरणिमन्थनद्वारा अग्निका प्राकट्य करना चाहिये ।

३०—सात्त्विक हवनमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग होता है और

आभिचारिक हवनमें एवं किसीके नष्ट-भ्रष्ट अथवा छिन्न-भिन्न करनेमें 'फट्' शब्दका प्रयोग होता है।

३१—यज्ञमें आचार्यकी आज्ञाके बिना देवपूजन नहीं करना चाहिये।

३२—यज्ञ-मण्डपमें भोजन करना निषिद्ध है। यज्ञमण्डपमें भोजन करनेसे एक दिन व्रत (उपवास) करना चाहिये।

३३—हवनार्थ संस्कृत आज्य (घृत) और पय (दुग्ध) आदिका हवन किये बिना उनके पान करनेमें उपवास करना चाहिये।

३४—स्मार्त होम और श्रौत होमके १ दिनके लोपमें १००८ गायत्रीजप करना चाहिये।

३५—पञ्चमहायज्ञमें से किसी एक यज्ञका भी लोप होनेसे एक दिनका उपवास कहा गया है। इसी प्रकार सप्तपाकसंस्थाके लोपमें भी उपवासका विधान है। पञ्चमहायज्ञ तथा सप्तपाकसंस्थाके सर्व-लोपमें कृच्छ्रार्ध अथवा चान्द्रायण प्रायश्चित्त कहा गया है। आतुर अवस्थावालेके लिये उक्त प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है।

३६—यज्ञके अभावसे कलियुगके बलकी वृद्धि होती है।

३७—यज्ञप्रेमियोंको यज्ञविरोधी नास्तिक मनुष्योंसे संसर्ग और व्यवहार नहीं करना चाहिये।

३८—जो यजमान यज्ञके ब्राह्मणोंको यथेष्ट दक्षिणा देता है, उससे यज्ञ भगवान् प्रसन्न होकर उसको ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करते हैं।

३९—यज्ञके हवनके लिये वृक्षादि काटनेसे दोष नहीं होता है।

४०—यज्ञमें प्रतिदिन और खासकर पूर्णाहुतिके शुभावसर पर यज्ञाचार्यद्वारा यज्ञका प्रसाद और शुभाशीर्वाद प्राप्त करना विशेष महत्त्व रखता है।

४१—यज्ञान्तमें यज्ञाचार्यका यथाशक्ति दक्षिणासहित सबको पूजन करना चाहिये। यज्ञमें आचार्य 'प्रधान' होता है। आचार्यको

ब्रह्मलोकका मालिक कहा गया है—'**आचार्यो ब्रह्मलोकेशः**' (पद्म-पुराण, सृष्टिखण्ड १५।३१६)।

४२—यज्ञमें मनुष्यसे ज्ञाताज्ञातरूपमें जो भूल और अपराध हो जाते हैं, उनकी निवृत्ति यज्ञ भगवान्के स्मरण और नमस्कार करनेसे हो जाती है।

४३—यज्ञमण्डपमें चढ़ाया हुआ समस्त समान यज्ञके प्रधानाचार्य-का होता है।

४४—यज्ञमण्डपमें यज्ञके निमित्त आया हुआ समस्त सामान प्रधानाचार्यका होता है।

४५—यज्ञमण्डपके चारों द्वारोंके ऊपर सर्वसाधारण जनताके द्वारा चढ़ाया हुआ द्रव्य और यज्ञमण्डपकी परिक्रमाके निमित्त चढ़ाया हुआ द्रव्य तथा यज्ञकी आरतीमें चढ़ाया हुआ समस्त द्रव्य यज्ञके प्रधानाचार्यका होता है।

४६—यज्ञमें ब्रह्मा केवल पूर्णपात्र लेनेका अधिकारी है। आज्य-स्थाली, चरुस्थाली, अभिषेकपात्र तथा यज्ञपात्रादि सभी सामान यज्ञके प्रधानाचार्यका होता है।

४७—यज्ञमें आचार्य, ब्रह्मा आदि समस्त ऋत्विज गृहस्थ ब्राह्मण ही होने चाहियें।

४८—यज्ञ करानेवाला आचार्य गृहस्थ ब्राह्मण ही होना चाहिये।

४९—साधु, महात्मा और संन्यासी दर्शकरूपमें यज्ञमें भाग ले सकते हैं, ऋत्विक्रूपमें नहीं।

५०—साधु, महात्मा और संन्यासी यज्ञके प्रेरक या संयोजक हो हो सकते हैं, यजमान नहीं हो सकते।

५१—आजकल कुछ यज्ञोंमें देखा जाता है कि यज्ञावसर पर साधु, संन्यासी, महात्मा यज्ञमण्डपमें ब्रह्मचारियों और गृहस्थोंको शिष्य बनाते हैं, जो कि सर्वथा अनुचित और शास्त्रविरुद्ध है। साधु, संन्यासी, महात्मा, ब्रह्मचारियों और गृहस्थोंको शिष्य नहीं

बना सकते, किन्तु वे अपने सम्प्रदायके साधु-महात्माओंको ही शिष्य बना सकते हैं। स्त्रियोंको तो कभी भी शिष्या (चेली) नहीं बनाना चाहिये।

५२—यज्ञके प्रेरक अथवा संयोजक साधु, महात्मा, संन्यासीको केवल यज्ञकी सुव्यवस्था करनेका ही अधिकार है, उन्हें यज्ञके निमित्त आये हुए द्रव्य आदिको अपने पास रखनेका अधिकार नहीं है। यज्ञके निमित्त चन्देके रूपमें आये हुए द्रव्य और अन्य प्रकारकी सामग्रियोंको रखनेका अधिकार यज्ञसमितिको है, दूसरेको नहीं।

यज्ञसे लाभ

१—यज्ञसे सद्बुद्धि, सद्विचार, सद्धर्म और सत्कर्मकी ओर प्रवृत्ति होती है।

२—यज्ञसे स्वधर्म और स्वकर्तव्यका परिज्ञान होता है!

३—यज्ञसे मनुष्यकी आत्मशक्ति, ज्ञानशक्ति और मन्त्रशक्ति जागृत होती है।

४—यज्ञसे मनुष्यकी आत्माग्नि प्रदीप्त होती है। आत्माग्निके प्रदीप्त होनेसे परमात्मामें दृढ़ भक्ति और अनुराग होता है।

५—यज्ञसे मनुष्य माया-मोहके बन्धनसे मुक्त होकर भगवत्परायण हो जाता है।

६—यज्ञसे मनुष्य बड़े-बड़े दुःखोंसे उस प्रकार पार हो जाता है, जिस प्रकार मनुष्य नौकाद्वारा नदीको पार कर जाता है।

७—यज्ञसे मनुष्यकी परमात्मामें और आत्मतत्त्वचिन्तनमें प्रवृत्ति होती है।

८—यज्ञसे मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है।

९—यज्ञसे मनुष्य मोक्षमार्गका अधिकारी बनता है।

१०—यज्ञसे मनुष्यका जीवन मङ्गलमय बनता है।

११—यज्ञसे मनुष्यमें दैवी-शक्ति अथवा दैवी-गुणोंका प्रादुर्भाव होता है।

१२—यज्ञसे मनुष्यके अहङ्कारादि तामसिक पदार्थोंका दूरीकरण होता है।

१३—यज्ञसे मतुष्यके अन्तःकरणकी अपवित्रता, मलविक्षेप और कुसंस्कारोंका निवारण होता है।

१४—यज्ञसे मनुष्यके संशयोंकी निवृत्ति होकर आत्मामें शान्तिकी स्थापना होती है।

१५—यज्ञसे भगवान्की सत्ता और सर्वव्यापकतामें विश्वास होकर मनुष्य भगवद्भजन और भगवत्स्मरणमें प्रवृत्त होता है।

१६—यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं। देवताओंकी प्रसन्नतासे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

१७—यज्ञसे भगवान्का सान्निध्य प्राप्त होता है।

१८—यज्ञसे मनुष्य देवता बनकर जगत्के कल्याण करनेकी क्षमता प्राप्त करता है।

१९—यज्ञसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है।

२०—यज्ञसे पितर तृप्त और अशुभ योनिसे मुक्त हो जाते हैं।

२१—यज्ञसे प्राणिमात्रका ही नहीं, समस्त चराचर जगत्का कल्याण होता है।

२२—यज्ञसे देश और समाजका संरक्षण और संचालन होता है।

२३—यज्ञसे धर्म, कर्म, संस्कृति और सभ्यताका यथार्थ परिज्ञान होता है।

२४—यज्ञसे मानव-जातिमें फैले हुए साम्यवाद, समाजवाद, अधिनायकवाद आदि विभिन्न मतवादोंकी समस्याओंका समाधान होता है।

२५—यज्ञसे माता, पिता, गुरु आदिके वास्तविक महत्त्व और रहस्यका परिज्ञान होता है।

२६—यज्ञसे गोमाताके महत्त्वकी पुष्टि और गोरक्षा होती है।

२७—यज्ञसे ब्राह्मणोंके स्वरूप और महत्त्वका असली परिचय प्राप्त होता है।

२८—यज्ञसे वैदिक-धर्मका प्रचार, रक्षण और पोषण होता है।

२९—यज्ञसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति होती है।

३०—यज्ञसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तापत्रयकी निवृत्ति होती है।

३१—यज्ञसे ऐहलौकिक और परलौकिक अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी सिद्धि सरलतासे प्राप्त होती है।

३२—यज्ञसे ऐहलौकिक और पारलौकिक सभी प्रकारकी एषणाओंकी पूर्ति होती है।

३३—यज्ञसे आश्रमचतुष्टय और वर्णचतुष्टयके धर्मपालनकी शिक्षा मिलती है।

३४—यज्ञसे मानवताका संरक्षण, धर्मका संरक्षण और स्वकर्तव्यका संरक्षण होता है।

३५—यज्ञसे मनुष्यकी भूलों, अपराधों और पापोंका प्रायश्चित होता है।

३६—यज्ञसे संक्रामक रोग नष्ट होते हैं।

३७—यज्ञसे शारीरिक समस्त दोषोंका नाश होता है।

३८—यज्ञसे सर्वविध अमङ्गलोंका नाश होता है।

३९—यज्ञसे बड़े-बड़े पापोंकी निवृत्ति होती है।

४०—यज्ञसे पैशाचिक कष्टोंकी निवृत्ति होती है।

४१—यज्ञसे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

४२—यज्ञसे असाध्य कार्य भी साध्य हो जाते हैं।

४३—यज्ञसे मनुष्यका कभी अध:पतन नहीं होता है।

४४—यज्ञसे मनुष्यकी सर्वप्रकारकी विघ्न-बाधाएँ टल जाती हैं।

४५—यज्ञसे मनुष्यकी सर्वदा सर्वत्र विजय होती है।

४६—यज्ञसे सत्य और सदाचारपालनकी शिक्षा प्राप्त होती है।

४७—यज्ञसे परमात्माका साक्षात्कार होता है।

४८—यज्ञसे मनुष्य 'महापुरुष' बन जाता है।

४९—यज्ञसे मनुष्य ब्रह्म-निर्वाण और परम पद (मुक्ति) को प्राप्त करता है।

५०—यज्ञसे मनुष्य सर्वदा स्वधर्म पर स्थित रहता है।

५१—यज्ञसे मनुष्य आरोग्यता, विद्या, कीर्ति, पराक्रम, धन-धान्य और पुत्र-पौत्रादि अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंको प्राप्त करता है।

५२—यज्ञसे यज्ञस्थल, यज्ञमण्डप, यज्ञवेदी, यज्ञकुण्ड, यज्ञसामग्री एवं अन्यान्य यज्ञाङ्गभूत उपकरण तथा यज्ञके ऋत्विज, यजमान और यज्ञदर्शक—ये सभी देवमय बन जाते हैं।

५३—यज्ञसे धर्मकी जय, अधर्मका नाश, प्राणियोंमें सद्भावना और विश्वका कल्याण होता है।

———

कामनापरक यज्ञोंका फल

(१) तेज, इन्द्रिय, पशु और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तथा ब्रह्महत्या को दूर करनेके लिये 'अश्वमेध यज्ञ' करना चाहिये। (शतपथब्राह्मण १३।२।६।३)

(२) अकाल मृत्युके निवारणार्थ 'राजसूय यज्ञ' करना चाहिये।

(३) ग्रहोंकी प्रतिकूलता—निवारणार्थ गायत्रीयज्ञ (सावित्रीयज्ञ) करना चाहिये। (महाभारत, वनपर्व २००।८५)

(४) लक्ष्मी तथा शान्तिकी प्राप्तिके लिये 'नवग्रह यज्ञ' करना करना चाहिये। (अग्निपुराण १४१।२)

(५) चक्षुर्दृष्टि, दीर्घायु और शारीरिक पुष्टिकी प्राप्तिके लिये 'नवग्रह यज्ञ' करना चाहिये। (अग्निपुराण १४१।२)

(६) ग्रहात्मक लक्षहोमसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं और वह आठ-सौ कल्प तक वसु, आदित्य, मरुद्गण आदिके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है। पश्चात् वह 'मोक्ष' पदको प्राप्त करता है।

(७) स्वर्गकी कामनाके लिये 'ज्योतिष्टोम यज्ञ' करना चाहिये।

(८) वर्षाके लिये 'कारीरी इष्टि' नामक यज्ञ करना चाहिये।

(९) अन्नोत्पादनके लिये 'सीतायज्ञ' करना चाहिये। यह यज्ञ हल जोतनेके पूर्व किया जाता है और इस यज्ञको किसानवर्ग करते हैं।

(१०) यज्ञ करनेसे मनुष्य ग्रामाधिपति होता है। (न्याय-दर्शन २।१।६८)

यज्ञ करनेसे नेत्रकी ज्योति बढ़ती है। (महाभाष्य १।१।६३)

(११) पुत्रकामनार्थ 'पुत्रेष्टियज्ञ' करना चाहिये। (न्यायदर्शन भाष्य २।१।५७)

(१२) महाराज दशरथके पुत्र नहीं था। उन्होंने पुत्रकी कामना-से 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञ किया था, जिससे उन्हें भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये चार पुत्र हुए।

(१३) पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि पुत्रेष्टि-यज्ञमें अग्निकुण्डसे साक्षात् भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उनसे राजा दशरथने याचना की कि 'भगवन्! आप मेरे पुत्रभावको प्राप्त हों।'

इस यज्ञके फलस्वरूप भगवान् विष्णु अपने अंशोके सहित रामके रूपमें लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ दशरथके यहाँ प्रकट हुए ।

(१४) भागवत (९।२०।३५) में 'मरुत्स्तोम' नामक यज्ञ पुत्र-प्राप्तिके लिये कहा गया है। दुष्यन्तके पुत्र चक्रवर्ती राजा भरत-ने पुत्रप्राप्त्यर्थ 'मरुत्स्तोम' यज्ञ किया था, जिससे मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको 'भरद्वाज' नामक पुत्र दिया ।

(१५) भागवत (९।१।१३) में 'मित्रावरुण' नामक यज्ञका विधान है, जिसको करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है ।

(१६) मनुने पुत्र-प्राप्तिके लिये भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया था, जिससे उन्हें १० पुत्र हुए (भागवत ९।२) । अत: पुत्र-प्राप्तिके लिये 'वासुदेव-यज्ञ' करना चाहिये ।

(१७) वैवस्वत मनु सन्तानहीन थे। उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिये महर्षि वशिष्ठके द्वारा 'मित्रावरुण-यज्ञ' कराया, जिससे उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई ।

(१८) त्रिशंकुके पुत्र राजा सत्य हरिश्चन्द्र पुत्रहीन थे । वे नारद मुनिकी आज्ञानुसार 'वरुणदेव' की शरणमें गये और पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रार्थना की। वरुणदेवकी कृपासे उन्हें 'रोहित' नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई ।

(१९) चक्रवर्ती राजा दिलीप सन्तति-विहीन थे। उन्हें महर्षि वशिष्ठने कामधेनुकी पुत्री 'नन्दिनी' नामक गौकी सेवा करनेका उपदेश दिया । नन्दिनी गौकी सेवासे दिलीपको 'रघु' नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई ।

(२०) अथर्ववेदमें पुत्रोत्पादनार्थ कुछ मन्त्र लिखे हैं, जिन मन्त्रोंके द्वारा सविधि हवन (यज्ञ) करनेसे निश्चित ही पुत्रकी प्राप्ति होती है ।

(२१) विष्णुयज्ञ करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है*।

—:०:—

शुक्ल यजुर्वेदमें यज्ञसम्बन्धी सूक्तियाँ

१—ते यज्ञपतिः प्रथताम्। (१।२२)

तुम्हारा यज्ञपति (यजमान) पुत्र-पौत्र और पशु आदिसे परिपूर्ण हो।

२—पाहि यज्ञम्। (२।६)

हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णुदेव! तुम हमारे यज्ञकी रक्षा करो।

३—स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व। (२।१९)

हे यज्ञपुरुष! तुम मेरे श्रेष्ठ यज्ञमें उपस्थित हो।

४—त्वं यज्ञेष्वीड्यः। (४।१६)

हे अग्निदेव! तुम यज्ञोंमें स्तुतियोग्य (पूजनीय) हो।

५—ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। (५।२८)

यह यजमान इस यज्ञस्थानमें सन्ततियों और पशुओंके सहित सुखी हो।

६—सं यज्ञपतिराशिषा। (६।१०)

यज्ञका यजमान आशीर्वादसे श्रेष्ठ सङ्गति प्राप्त करे।

---

*आश्वलायन श्रौतसूत्र और विद्यार्णव तन्त्रमें 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' का विधान है, जिसको सविधि करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है।

वाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड १५।२) में 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' का वर्णन किया गया है।

७—ऊर्ध्वमिममद्ध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ। (६।२५)

हे देव! तुम इस यज्ञको उन्नत करके यज्ञके होताओंको देवलोकमें देवताओंके मध्यमें ले जाकर देवत्व प्रदान करो।

८—देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्। (७।१६)

हे देवताओ! तुम इस यज्ञसे प्रीति करो।

९—पाहि यज्ञम्, पाहि यज्ञपतिम्। (७।२०)

हे देव! तुम यज्ञकी रक्षा करो और यज्ञपति (यजमान) की रक्षा करो।

१०—जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिम्। (८।७)

हे देव! तुम यज्ञ और यजमानको तृप्त करो।

११—यं कं च लोकमगन् यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत्। (८।६०)

मेरा यज्ञ जिस किसी भी लोकमें गया हो, मेरे उस यज्ञसे मेरा कल्याण हो।

१२—प्रसुव यज्ञम्, प्रसुव यज्ञपतिम्। (११।७)

हे सवितृदेव! तुम यज्ञको प्रेरणा करो और यज्ञ-यजमानको सुख-सौभाग्यके लिये प्रेरणा करो।

१३—आयुर्यज्ञेन कल्पताम्। (१८।२९)

यज्ञके द्वारा दीर्घायुकी प्राप्ति हो।

१४—यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। (१८।२९)

यज्ञके द्वारा महायज्ञ प्राप्त हो।

१५—विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे। (१८।७६)

समस्त देवगण उत्तम लोकमें हमारे यज्ञकी रक्षा करें।

१६—यज्ञो देवेषु कल्पताम्। (१९।४५)

यज्ञ देवताओंको तृप्त करनेमें समर्थ हो।

१७—प्रतितिष्ठामि यज्ञे। (२०।१०)

मैं यज्ञमें प्रतिष्ठा प्राप्त करूँ।

१८—यज्ञस्य समनक्तु देवान्। (२०।४४)

यज्ञके देवताओंको भोजन कराकर तृप्त करो।

१९—यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः। (२०।५४)

हे यज्ञके ऋत्विजो ! तुम अनेक कल्याणोंके द्वारा हमारी सदैव रक्षा करो।

२०—यज्ञं वष्टु धियावसुः। (२०।८४)

यज्ञसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

२१—यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (२३।६२)

यज्ञ ही सारे भुवनोंका केन्द्र-स्थान है।

२२—ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु। (२६।१४)

हे अग्निदेव ! समस्त ऋतुएँ तुम्हारे निमित्त किये गये हमारे यज्ञका विस्तार करें।

२३—संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः। (२६।१४)

हे अग्निदेव ! संवत्सरके अधिष्ठातृदेवता तुम्हारे निमित्त किये गये हमारे यज्ञको पुष्ट करें।

२४—देवानो यज्ञमृतुथा नयन्तु। (२६।१९)

देवगण हमारे किये हुए यज्ञको स्वीकार करें।

२५—इमं यज्ञमवतामध्वरं नः। (२७।१७)

हमारे इस कुटिलतादिदोषशून्य यज्ञकी रक्षा करो।

२६—यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त। (२९।८)

भारती, सरस्वती और इडा नामकी तीनों देवियाँ हमारे यज्ञको देवताओंमें स्थापित करें।

२७—कृणु ह्यध्वरं नः। (२९।२६)

हे अग्ने ! तुम हमारे यज्ञको देवताओंको प्राप्त कराओ।

२८—यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। (३१।१६)

देवताओंने यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान्का यजन किया।

२९—यज्ञेषु विप्रराज्ये। (३२।८३)

यज्ञोंमें ब्राह्मण राजाकी तरह स्वतन्त्र होते हैं अर्थात् यज्ञोंमें ब्राह्मणोंका राज्य होता है।

३०--देवा यज्ञं नयन्तु नः। (३३।८६)

यजनशील देवगण हमारे यज्ञको प्राप्त करें।

३१--शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः। (३६।२)

समस्त भुवनों का अधिपति यज्ञ हमारे लिये सुखस्वरूप हो।

३२--ऊर्ध्वो ऽअध्वरं दिवि देवेषु धेहि। (३७।१९)

हे देव! सावधान होकर हमारे यज्ञको द्युलोकमें रहनेवाले देवताओंमें स्थापित करो।

यज्ञिय देश

जिस प्रकार शास्त्रोंमें यज्ञके विषयमें अनेक विधि-विधान प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शास्त्रोंमें यज्ञिय देशके लिये भी विशेष विधान मिलते हैं। अतः यज्ञ करनेसे प्रथम यज्ञके लिये उत्तम देशका निर्णय करना चाहिये। भगवान् मनु (२।२३) ने यज्ञिय देशका निर्णय इस प्रकार किया है—

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो *म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥

---

* चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
स म्लेच्छदेशो विज्ञेयः ··· ··· ··· ···॥ (विष्णुसंहिता ८४।४)

'जिस देशमें वर्णाश्रम-धर्मका परिपालन न हो, जहाँ ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमोंकी व्यवस्थाका पूर्ण अभाव हो, उसको 'म्लेच्छ-देश' कहते हैं।'

'जिस देशमें कृष्णसार (काला मृग) स्वभावतः विचरण करता है वह देश यज्ञिय है और जिस देशमें ऐसी बात न हो, उसे 'म्लेच्छ-देश' कहते हैं।'

अयज्ञिय देश

गवां वा ब्राह्मणानां वा वधो यत्र च दस्युभिः।
असावयज्ञियो देशः ... ...॥

'जिस देशमें दुष्टोंद्वारा गौ और ब्राह्मणों का वध किया जाता है, वह देश अयज्ञिय अर्थात् यज्ञके योग्य नहीं है।'

अयज्ञिय देशकी शुद्धिका प्रकार

गवां वा ब्राह्मणानां वा वधो यत्र च दस्युभिः।
असावयज्ञियो देशः शोधनीयो द्विजातिभिः॥
प्रायश्चित्तं विधायादौ वध्यभूमिं खनेत्ततः।
वह्निना तापनं कुर्यात् पर्जन्येनापि वर्षयेत्॥
विशुद्धायां मृदा पश्चात्पूरणीया प्रयत्नतः।
पञ्चरत्नं क्षिपेत्तत्र पञ्चगव्येन शोधयेत्॥

'जिस स्थानमें चोर-डाकुओंके द्वारा गौओं अथवा ब्राह्मणोंका वध किया गया हो, वह स्थान 'अयज्ञिय' कहा जाता है। इसलिये ब्राह्मणोंको चाहिये उस स्थानकी शुद्धि कर लें। शुद्धि करनेके लिये सर्वप्रथम प्रायश्चित्त करके उस वध्य भूमिको खोदवा डाले। पश्चात् अग्निके द्वारा उस भूमिको तपा दे। फिर एक बारकी वृष्टि होनेसे वह भूमि शुद्ध हो जाती है। पश्चात् उस गढ़ेमें पञ्चरत्न छोड़ दे और उस गढ़ेको शुद्ध मिट्टीसे भरवा दे और उस भूमिको पञ्चगव्यसे शुद्ध कर दे।'

यज्ञकी उत्पत्ति

(एक हजार आठ यज्ञोंका प्रादुर्भाव)

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं--

स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायाच्छम्भुविदारितात् ।
यथाहं कथये तद्वः शृण्वन्त्ववहिता द्विजाः ॥
विदारिते वराहस्य काये भर्गेण तत्क्षणात् ।
ब्रह्म-विष्णु-शिवा देवाः सर्वैश्च प्रमथैः सह ॥
निन्युर्जलात् समुद्धृत्य तच्छरीरान्नभः प्रति ।
तद् विभिदुः शरीरं ते विष्णोश्चक्रेण खण्डशः ॥
तस्याङ्गसन्धयो यज्ञा जातास्ते वै पृथक् पृथक् ।
यस्मादङ्गाच्च ये जातास्तच्छृण्वन्तु महर्षयः ॥
भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत ॥
चक्षुर्भ्रुवोः सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो व्यजायत ।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पौत्रोष्ठसन्धितः ॥
वृद्धिष्टोम—बृहत्स्तोमौ जिह्वामूलादजायताम् ।
अतिरात्रं स वैराजमधोजिह्वान्तरादभूत् ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
स्नानं तर्पणपर्यन्तं नित्ययज्ञाश्च सर्वशः ।
कण्ठसन्धेः समुत्पन्ना जिह्वातो विधयस्तथा ॥
वाजिमेध—महामेधौ नरमेधस्तथैव च ।
प्राणिहिंसाकरा येऽन्ये ते जाताः पादसन्धितः ॥
राजसूयोऽर्थकारी च वाजपेयस्तथैव च ।
पृष्ठसन्धौ समुत्पन्ना ग्रहयज्ञास्तथैव च ॥

प्रतिष्ठोत्सर्गयज्ञाश्च दान-श्राद्धादयस्तथा ।
हृत्सन्धितः समुत्पन्नाः सावित्री यज्ञ एव च ॥
सर्वे सांस्कारिका यज्ञाः प्रायश्चित्तकराश्च ये ।
ते मेढ्रसन्धितो जाता यज्ञास्तस्य महात्मनः ॥
रक्षःसत्रं सर्पसत्रं सर्वञ्चैवाऽभिचारिकम् ।
गोमेधो वृक्षयागश्च सुरेभ्यो ह्यभवन्निमे ॥
मारयेष्टिः परमेष्टिश्च गीष्पतिर्भोगसम्भवः ।
लाङ्गूलसन्धौ सञ्जाता अग्नीषोमस्तथैव च ॥
नैमित्तिकाश्च ये यज्ञाः सङ्क्रान्त्यादौ प्रकीर्तिताः ।
लाङ्गूलसन्धौ ते जातास्तथा द्वादशवार्षिकम् ॥
तीर्थप्रयागमाशौचं यज्ञः सङ्कर्षणस्तथा ।
अर्कमाथर्वणश्चैव नाडीसन्धेः समुद्गताः ॥
ऋचोत्कर्षः क्षेत्रयज्ञः पञ्चभागातियोजनः ।
लिङ्गसंस्थानहेरम्बयज्ञा जाताश्च जानुनि ॥
एवमष्टाधिकं जातं सहस्रं द्विजसत्तमाः ।
यज्ञानां सततं लोकायैर्भाव्यन्तेऽधुनापि च ।
स्रुगस्य पोत्रात् सञ्जाता नासिकायाः स्रुवोऽभवत् ।
अन्ये स्रुक्-स्रुवभेदा ये ते जाताः पोत्रनासयोः ।
ग्रीवाभागेन तस्याभूत् प्राग्वंशो मुनिसत्तमाः ॥
इष्टापूर्तं यजुर्धर्मा जाताः श्रवणरन्ध्रतः ।
दंष्ट्राभ्यो ह्यभवन् यूपाः कुशा रोमाणि चाभवन् ॥
उद्गाता च तथाध्वर्युर्होता शामित्र एव च ।
अग्रे दक्षिणवामाङ्गे पश्चात् पादेषु सङ्गताः ॥
पुरोडाशाः सचरवो जाता मस्तिष्कसञ्चयात् ।
कखुनेत्रयुगाज्जाता यज्ञकेतुस्तथा खुरात् ॥
मध्यभागोऽभवद्वेदी मेढ्रात् कुण्डमजायत ।
रेतोभागास्तथैवाज्यं स्वधामात्राः समुद्गताः ॥

यज्ञालयः पृष्ठभागात् हृत्पद्मात् यज्ञ एव च ।
तदात्मा यज्ञपुरुषो मुञ्जाः कक्षात् समुद्गताः ॥
एवं यावन्ति यज्ञानां भाण्डानि च हवींषि च ।
तानि यज्ञवराहस्य शरीरादेव चाभवन् ॥
एवं यज्ञवराहस्य शरीरं यज्ञतामगात् ।
यज्ञरूपेण सकलमाप्यायितुमिदं जगत् ॥

(कालिकापुराण ३२।६–३६)

महादेवके द्वारा वराहके शरीर विदीर्ण करने पर उनके शरीरसे यज्ञकी उत्पत्ति हुई। वराहके देहके विदारित होने पर प्रमथोंके सहित ब्रह्मा, विष्णु और महेश उस वराहके शरीरको जलसे निकाल कर आकाशमें ले गये। आकाशमें ले जाकर उस वराहके शरीरको विष्णु भगवान्‌के सुदर्शन चक्रसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वराहके शरीरकी अङ्ग-सन्धियोंसे पृथक्-पृथक् अनेक यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई।

हे महर्षिगण, वराहके जिस अङ्गसे जिस यज्ञकी उत्पत्ति हुई, उसे सुनिये।

दोनों भ्रू और नासिका-देशके सन्धिभागसे ज्योतिष्टोम यज्ञ, कपोल-देशके उच्च स्थानसे लेकर कर्णमूलके मध्यस्थित सन्धि-भागसे बह्निष्टोम यज्ञ, चक्षु और दोनों भ्रूके सन्धि-भागसे व्रात्यस्तोम यज्ञ, मुखके अग्रभाग और ओष्ठके सन्धि-भागसे पौनर्भव स्तोमयज्ञ, जिह्वा-मूलीय सन्धिभागसे बृद्धस्तोम और बृहत्स्तोम यज्ञ, जिह्वा-देशके अधोदेशसे अतिरात्र तथा वैराज-यज्ञ हुए। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथियज्ञ, स्नान–तर्पणादि नित्य-यज्ञ तथा उनकी विधियाँ, कण्ठ-सन्धि तथा जिह्वासे हुई। अश्वमेध, महामेध और नरमेध आदि प्राणिहिंसाकारक यज्ञ तथा हिंसाप्रवर्तक समस्त यज्ञ चरण-सन्धिसे हुए। राजसूय, वाजपेय और ग्रहयज्ञ पृष्ठसन्धिसे, प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, दान, श्रद्धा तथा सावित्री आदि यज्ञ हृदय-सन्धिसे

एवं उपनयन-संस्कार आदि यज्ञ और प्रायश्चित्त आदि यज्ञ मेढ्रसन्धिसे हुए। राक्षसयज्ञ, सर्पयज्ञ, सभी प्रकारके आभिचारिक यज्ञ, गोमेध, वृक्षयज्ञ आदि खुरसे हुए। मायेष्टि, परमेष्टि, गीष्पति, भोगज और अग्नीषोम यज्ञ लाङ्गूलसे हुए। संक्रान्ति आदिमें होनेवाले नैमित्तिक यज्ञ और द्वादश वार्षिक यज्ञ लाङ्गूल-सन्धिसे हुए। तीर्थप्रयाग, मास, आशौच, सङ्कर्षण, आर्क और आथर्वण यज्ञ नाड़ीकी सन्धिसे हुए। ऋचोत्कर्ष, क्षेत्रयज्ञ, पञ्चमार्ग, लिङ्गसंस्थान और हेरम्बयज्ञ जानु-देशसे हुए। इस प्रकार वराहके शरीरके अङ्गोंसे एक हजार आठ (१००८) यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई।

यज्ञ-वराहके पोत्र (मुखका अग्रभाग) से स्रुक् और नासिकासे स्रुव हुआ। यज्ञ-वराहके पोत्र और नासिकासे और भी स्रुक् और स्रुवके भेद हुए। यज्ञ-वराहके ग्रीवाभागसे प्राग्वंश (होमगृहके पूर्वभागका घर), कर्णरन्ध्रसे इष्टापूर्त्त, यजुर्वेदोक्त धर्म, दाँतसे यूप और रोमसे कुश उत्पन्न हुआ।

यज्ञ-वराहके दाएँ और बाएँ चारों पैरोंसे उद्गाता, अध्वर्यु, होता और शामित्र (यज्ञ-विशसन कर्म) हुआ। मस्तकसे चरु और पुरोडाश, दोनों नेत्रोंसे यंज्ञ, खुरसे यज्ञकेतु हुआ। यज्ञवराहके मध्य भागसे वेदी और मेढ्रसे कुण्ड, रेतोभागसे आज्य, स्वधा और मात्रा उत्पन्न हुईं। पृष्ठ-भागसे यज्ञालय (यज्ञगृह) और हृत्पद्मसे यज्ञ हुआ। यज्ञपुरुष वराहकी आत्मा हैं। उनके कक्षभागसे मुञ्ज हुआ। इस प्रकार जितने भी यज्ञके भाण्ड एवं हविस् आदि पदार्थ हैं, वे सभी यज्ञ-वराहके शरीरसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार यज्ञ-वराहका शरीर यज्ञस्वरूपको प्राप्त हुआ। यज्ञरूपमें समस्त जगत्को आप्यायित करनेके लिए यज्ञवराहका शरीर यज्ञरूपमें परिणत हुआ।

भागवतके तृतीय स्कन्धके तेरहवें अध्यायमें भी लिखा है कि यज्ञ—वराहके रोमोंसे समस्त यज्ञों तथा समस्त यज्ञोपयोगी

सामग्रियोंकी उत्पत्ति हुई है। अतः विशेष जिज्ञासुओंको कालिका-पुराण और भागवतका उक्त प्रकरण देखना चाहिये।

यज्ञके आयुध

'स्फ्य-कपालादीनि यज्ञस्य साधनानि यज्ञायुधानीत्युच्यते।

'स्फ्य, कपाल इत्यादि यज्ञके साधनोंको यज्ञायुध कहते हैं।'

यज्ञके संरक्षक देवता

'ग्रहहोमपूजायां गणपति-दुर्गा-वायु-आकाश-अश्वि-वास्तोष्पति-क्षेत्रपाल— क्रतुसंरक्षकदेवता उच्यन्ते।'

(संस्काररत्नमाला)

'ग्रह-हवन एवं देवपूजन आदिमें गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश, अश्विनीकुमार, वास्तोष्पति और क्षेत्रपाल—यह यज्ञके संरक्षक देवता कहे जाते हैं।'

शुभाशुभ कर्मके साक्षी देवता

सूर्यः सोमो यमः कालः महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥

'सूर्य, चन्द्रमा, यम, काल और पञ्च महाभूत (पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश) इस संसारमें ये नौ शुभाशुभ कर्मके साक्षी कहे गये हैं।'

कलियुगमें विहित यज्ञ

महारुद्रोऽतिरुद्रश्च लक्षहोमस्ततः परम् ।
कोटिहोमस्ततः पश्चाद्विष्णुयागः प्रशस्यते ॥
एते पञ्चमहायज्ञाः कलौ कार्याः द्विजातिभिः ।
अन्ये हिंसात्मका यज्ञाः कलौ सर्वे विवर्जिताः ॥

(विष्णुसिद्धान्त)

'महारुद्र, अतिरुद्र, लक्षहोम, कोटिहोम और विष्णुयागका क्रमशः अनुष्ठान करना उत्तम है । कलियुगमें द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) को इन पाँच महायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये । इनके अतिरिक्त जो यज्ञ हिंसात्मक हैं, वे सब कलियुगमें निषिद्ध हैं ।'

पाँच प्रकारके यज्ञोंका निषेध

आयुर्वेदके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव—'प्रकाश' की टीका में निम्न-लिखित पाँच प्रकारके यज्ञोंको करनेके लिये स्पष्ट निषेध किया है —

विधिहीनं यथाशास्त्रावबोधितविपर्ययम् ।
अन्नदानविहीनं च स्वरतो वर्णतस्तथा ॥
मन्त्रहीनं यथाशास्त्रं दक्षिणाहीनमध्वरम् ।
आस्तिक्यबुद्धिशून्यं तं तामसं कथयन्ति वै ॥
अयं पञ्चविधो यज्ञस्त्याज्यः श्रेयोऽर्थिभिः सदा ।

'शास्त्रोक्त सिद्धान्तों के विपरीत विधिहीन यज्ञ, अन्नदानादिसे रहित यज्ञ, मन्त्रोंके स्वर तथा वर्णोंके यथार्थ उच्चारणरहित यज्ञ, सर्वथा मन्त्रोंसे हीन यज्ञ, दक्षिणाहीन यज्ञ और आस्तिक्य बुद्धि-हीन यज्ञको 'तामस' कहते हैं । अतः अपना कल्याण चाहने वाले

मनुष्योंको इन पाँच प्रकारके यज्ञोंका सर्वदा त्याग करना चाहिये।'

यज्ञमें पशुहिंसाका विचार

वेदोंके वास्तविक रहस्यको न जाननेवाले व्यक्ति भी वेदके अर्थवादसे मोहित होकर कर्मकाण्डके चक्करमें फँस जाते हैं और वे कर्मकाण्डी बनकर अन्न और दक्षिणासे रहित यज्ञोंका अनुष्ठानकर अपनी आत्मतृप्तिके लिये पशुओंका वध करते हैं और उसे वेदविहित बताते हैं।

यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं
वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः।

(भागवत ११।५।८)

'भगवान्‌के सम्बन्धमें वेद भी बार-बार बतलाते हैं कि—वे समस्त प्राणियोंमें जीवरूपसे स्थित रहते हैं। किन्तु स्वार्थी मनुष्य वेदोंकी भी बातको न मानकर पशुओंका वध करते ही हैं। वे निवृत्तिपरक वेदको प्रवृत्तिपरक बताते हैं और 'पुष्प' को ही 'फल' समझकर अपने सुखके लिये हिंसा—प्रधान यज्ञोंके द्वारा इन्द्रादि देवताओंका यजन करते हैं, भगवान्‌का नहीं। ऐसे अहङ्कारियोंको भगवान्‌की चर्चा भी अच्छी नहीं लगती।

संसारमें प्राणियोंकी विशेष प्रवृत्ति मैथुन, मांस और मद्यकी ओर देखी जाती है। शास्त्रोंमें मनुष्योंको मैथुन, मांस एवं मद्य आदिसे निवृत होनेके लिये ही लिखा है, प्रवृत होनेके लिये नही। मैथुनादिमें प्रवृत्त होनेके लिये शास्त्र कभी भी आज्ञा नहीं दे सकता। सौत्रामणी यज्ञ आदिमें जो सुरा (मद्य) आदिके सेवनका विधान शास्त्रोंमें मिलता है, उसका तात्पर्य निवृत्तिमें ही है, प्रवृत्ति में नहीं। सौत्रामणी यज्ञमें सुराको सूँघनेमें तात्पर्य है, पीनेमें नहीं। यज्ञमें

पशुका आलभन (स्पर्शमात्र) ही विहित है, हिंसा नहीं। इसी प्रकार मैथुन भी सन्तान उत्पन्न करनेके लिये कहा गया है, इन्द्रिय-सुखके लिये नहीं।

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः।
हिंसायां यदि रागः स्याद् यज्ञ एव न चोदना॥
हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः॥

(भागवत ११।२१।२९-३०)

'यदि हिंसा (पशुहिंसा) और उसके फल मांस-भक्षणमें राग ही हो, उसका त्याग न किया जा सकता हो, तो यज्ञमें ही करे—यह परिसंख्या विधि है, स्वाभाविक प्रवृत्तिका संकोच है, सन्ध्या-वन्द-नादिके सदृश अपूर्व विधि नहीं है। इस प्रकार मेरे (भगवान्के) परोक्ष अभिप्रायको न जानकर विषयलोलुप पुरुष हिंसाका खिलवाड़ खेलते हैं और दुष्टतावश अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिए वध किये हुए पशुओंके मांससे यज्ञ करके देवता, पितर तथा भूतपतियोंके यजनका ढोंग रचते हैं।'

यज्ञं कृत्वा पशुं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गो नरकः केन गम्यते ?॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १३।३२३)

'पशु मारकर, यज्ञ करके रुधिरका कीचड़ कर यदि स्वर्गमें जाया जाता है तो नरकमें कौन जाता है ?'

केचिद् विनिन्दां वेदानां देवानामपरे नृप॥
यज्ञकर्मकलापस्य तथा चान्ये द्विजन्मनाम्।
नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसाधर्माय जायते॥
हवींष्यनलदग्धानि फलान्यर्हन्तिको विदाः।

निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ॥
स्वपिता यजमानेन किं वा तत्र न हन्यते ! ।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १३।३६५-३६७)

'हे राजन्, कोई वेदोंकी खूब निन्दा करते हैं, दूसरे देवताओंकी निन्दा करते हैं, कोई यज्ञीय कर्मकलापकी निन्दा करते हैं और कोई ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं । हिंसा धर्मके लिए होती है, यह युक्तिरूपी कसौटीमें कसने योग्य वचन नहीं है अर्थात् यह युक्तियुक्त वचन नहीं है । हविस् पदार्थोंको अग्निने जला डाला, फल विद्वान् प्राप्त करते हैं । यज्ञमें मारे गये पशुको स्वर्गप्राप्ति होती है, यह यदि इष्ट है तो यजमान अपने पिताकी यज्ञमें हत्या क्यों नहीं कर डालता !'

जो मनुष्य वेदादि शास्त्रोंकी आज्ञाको न मानकर वेदविरुद्ध धर्ममें तत्पर होकर पशुओंकी हिंसा करते हैं, मरनेके बाद वे ही पशु अपने मारनेवाले मनुष्योंको खाते हैं । अतः वेदविरुद्ध पशुहिंसा करनेवालों का अधःपतन निश्चित है ।

अखण्ड अनुष्ठानका विचार

वर्त्तमान समयमें अखण्ड रुद्राभिषेक और अखण्ड शतचण्डी आदिका अनुष्ठान विशेष प्रचलित है । अखण्ड रुद्राभिषेक और अखण्ड शतचण्डी आदिके अनुष्ठानको देखकर कुछ लोग हवनात्मक अखण्ड यज्ञ कराना चाहते हैं । अखण्ड अनुष्ठानके सम्बन्धमें 'पुरश्चर्यार्णव'-के सप्तम तरङ्ग (पृ० ५६६) में कुछ वचन मिलते हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥

सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् ।
तावज्जप्त्वा निरातङ्कं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥
(कालीतन्त्र)

'दोनों ही पक्षोंमें (शुक्ल और कृष्ण पक्ष में) अष्टमी अथवा चतुर्दशीके दिन सूर्योदयसे आरम्भ कर जबतक दूसरा सूर्योदय न हो तबतक भयरहित हो साधक जपकर सर्वसिद्धीश्वर (सब सिद्धियों-का स्वामी) होता है अर्थात् सब सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं ।'

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् ॥
तावज्जप्त्वा निरातङ्कं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

'सूर्योदयसे आरंभ कर जबतक दूसरा सूर्योदय न हो, तबतक भयरहित हो मन्त्र जपकर साधक सब सिद्धियाँ प्राप्त करता है अर्थात् सर्वसिद्धियोंको अपने वशमें करता है ।'

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
सूर्यास्तं समारभ्य सूर्यास्तं यावदेव तु ॥
तावज्जप्त्वा निरातङ्कं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

'अथवा अन्य प्रकारसे पुरश्चरण कहा जाता है—सूर्यास्तसे आरंभ कर दूसरे सूर्यास्त तक ही भयरहित हो मन्त्र जपकर साधकको सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।'

यज्ञमें आचार्यके कुण्डका विचार

जिस यज्ञमें ९ कुण्ड अथवा ५ कुण्ड होते हैं, उनमें आचार्यका कुण्ड कौन होना चाहिये, इस विषयपर विचार किया जाता है ।

कुछ लोग 'नवकुण्डी' पक्षमें 'नवम' कुण्डको मण्डप-मध्य नवमांश में बनाना एवं 'पञ्चकुण्डी' पक्षमें 'पञ्चम' कुण्डको मण्डप-मध्यमें बनाना अवैध बतलाते हैं ।

कुण्ड और मण्डप-विधायक अनेक ग्रन्थोंके पर्यालोचनसे यह विदित होता है कि 'नवमकुण्ड' एवं 'पञ्चमकुण्ड' को मण्डपके मध्यमें ही बनाना, यही मुख्य कल्प है और दोनोंको पूर्व तथा ईशानके मध्यमें बनाना तथा 'पञ्चम' को ईशानमें बनाना, यह सामान्य कल्प है।

'आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः'।
(शारदातिलक)

'नवमं चेशपूर्वयोः' इत्यादि।
'पञ्चमं त्वीशदले' इत्यादि।
'पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचरं द्विजः' इत्यादि।

अब यहाँ पर नवम तथा पञ्चम कहनेसे यदि आचार्य-कुण्डका बोध होता है, तो 'आचार्य-कुण्ड' यह शब्द क्यों कहा गया है? आचार्यकुण्ड कहनेसे नवम और पञ्चमका बोध होता है, तो अन्य कुण्डोंमें अव्याप्ति होती है।

कुण्डकारिका, कुण्डप्रदीप, कुण्डाङ्कुश, कुण्ड नारदपञ्चरात्र, कुण्ड-रचना, कुण्ड रामवाजपेयी और कुण्ड मरीचिमाला आदि ग्रन्थोंमें नवम, पञ्चम, आचार्य, नाम न कह कर केवल १ कुण्ड, ७ कुण्ड, १० कुण्ड, ११ कुण्ड कहे गये हैं। अतः पञ्चम, नवम और आचार्य शब्द कल्प्य है। वस्तुतः सभी कुण्ड आचार्यके होते हैं। अग्नि-प्रणयनके लिये प्रधान कुण्डका ही प्राथम्य होना चाहिये, इसीलिये नवम और पञ्चम कुण्डकी प्रधानता दी गई है।

जब हवन-प्रधानमें मण्डपके मध्यमें ही 'कुण्ड' बनाना शुभप्रद कहा गया है, तो नवम और पञ्चम कुण्डको मण्डपके मध्यमें बनानेका कहीं भी दोष-श्रवण नहीं है।

देव-प्रतिष्ठा और तुलादानादिमें मण्डपके मध्यमें 'वेदी' निर्मा-

णार्थ कहा गया है। इसलिये प्रतिष्ठा और तुलादानादिमें प्रधान कुण्ड मण्डपके मध्यमें न होकर पूर्व और ईशानके मध्यमें होता है—

'आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ।'

एक कुण्डसे ही कार्य हो सकता है, तो अधिक कुण्डोंके बनानेका विधान विशेष गौरव रखता है। उनमें भी उत्तमादिका विकल्प है। जैसे—कुण्डकौमुदीमें ९ कुण्ड उत्तम, ७ कुण्ड मध्यम और ५ कुण्ड साधारण (निकृष्ट) कहे गये हैं। कुण्ड मरीचिमालामें ९ कुण्ड उत्तम, ५ कुण्ड मध्यम और १ कुण्ड साधारण (निकृष्ट) कहा गया है। अतः शक्त्यपेक्षया साधारण कुण्ड (निकृष्ट कुण्ड) से मध्य-मोत्तम अर्थात् 'पञ्चकुण्डी' और 'नवकुण्डी' बनाना श्रेष्ठ है।

महर्षि कात्यायनके **'अर्थात् परिमाणम्'** इस वचनके बलसे हवन-में आहुति-संख्याकी वृद्धि होनेपर कुण्ड रत्नि, अरत्नि एवं एक हाथसे लेकर सोलह हाथ तक कुण्ड निर्माण करनेका विधान है।

शतकोटि—हवनमें सोलह हाथके कुण्ड बनानेके लिये 'मणित्थ' ने कहा है।

कुछ लोगोंका कहना है कि देव-प्रतिष्ठामें नवकुण्डी तथा पञ्च-कुण्डीका विधान है और विष्णुयज्ञ तथा रुद्रयज्ञ आदिमें एक कुण्डका विधान है।

'कुण्डार्क' नामक ग्रन्थमें मण्डप—निर्माणार्थ प्रथम **'प्रपद्ग-मखिनः'** यह शब्द आया है। इसमें 'मख' शब्दका अर्थ कोशकारोंने 'यज्ञ' किया है—**'मखिनः कोऽर्थः यज्ञकर्तुः ।'**

आगे भी तोरणस्थापनमें वैष्णवयाग और शैवयाग लिखा है। कुण्डार्कके टीकाकारोंने अनेक प्रमाणों-द्वारा विष्णुयाग एवं रुद्रयाग यही सिद्ध किया है।

कुण्डसिद्धिमें **'शैवे तु विष्णोर्यजनेऽङ्गुलर्द्धिः'** यह स्पष्ट लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि देवप्रतिष्ठाकी अपेक्षा विष्णुयज्ञ एवं रुद्रयज्ञके लिये नवकुण्ड और पञ्चकुण्ड विशेष कहे गये हैं।

'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' इस धात्वर्थसे भी देवप्रतिष्ठाकी अपेक्षा देवपूजा-कार्य वर्त्तमानकाल है और देवप्रतिष्ठामें देवपूजा भविष्यकाल है।

यज्ञमें सुवर्णके पत्रमें देवताओंका आवाहन और पूजन होता है एवं यज्ञान्तमें देवताओंका विसर्जन होता है। अतः प्रतिष्ठाकी अपेक्षा पूजा ही प्रधान है और अन्यत्र प्रतिष्ठा करके सर्वदा पूजित होते रहना समुचित है।

जिस प्रकार गौके निष्क्रय रूपमें दिया हुआ द्रव्य दानके समय गौके सदृश होता है और दानके अनन्तर वही द्रव्य व्यवहारके समय 'द्रव्य' माना जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी वेदी बनानेमें वेदी-का प्रमाण सम चतुरस्र मण्डप-मध्य नवमांशमें **'वेदिरियन्मिता'** प्रतिपादित है।

मण्डप दो प्रकारका होता है—सममण्डप और कुण्डमण्डप।

सममण्डपमें मण्डपमध्य चतुःस्तम्भान्तरालमें ९ कुण्ड बनाना और ईशानकोणमें वेदी बनाना—यह वौधायन और शौनकादि आचार्योंका मत है और कुण्डमण्डपमें मध्यवेदी तथा दिशा और विदिशामें कुण्डका निर्माण करना कहा है। नवम कुण्डको इन्द्र (पूर्व) और ईशानके मध्यमें तथा पञ्चम कुण्डको ईशान और इन्द्र (पूर्व) के मध्यमें बनानेके लिये कहा है।

अब यहाँ पर प्रथमोपस्थितिका त्याग और द्वितीयके ग्रहणमें मानाभाव होनेसे सर्वप्रथम प्रथमोपस्थिति 'सममण्डप' ही प्रधान कल्प है, जिसके सिद्धान्तसे नवम कुण्ड और पञ्चम कुण्ड मण्डपनव-मांश चतुःस्तम्भान्तराल मध्य केन्द्रमें ही होना चाहिये, यही मुख्य कल्प है।

———

यज्ञ करनेके अधिकारी

'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्यो वर्षासु वैश्यः।'

(शतपथब्रा० २।१।३।५)

'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, ग्रीष्मे राजन्यम्, शरदि वैश्यम्।'

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १।१।१।१९)

उपर्युक्त श्रुतियोंके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंको ही आधान (अग्निहोत्र) तथा उपनयनका अधिकार प्राप्त होता है। अतः उपनीत 'वेदस्वाध्याय' का अधिकारी होता है और अधीत वेद-पुरुष ही यागादिका अधिकारी होता है। अतः श्रौतयज्ञका अधिकार केवल द्विजातिको है।

जिनको उपनयन तथा आधानका अधिकार प्राप्त नहीं है, वे (शूद्रादि) श्रौत—यागादि करनेके अधिकारी नहीं हो सकते। इस सिद्धान्तकी पुष्टि '**ब्राह्मण–राजन्य–वैश्यानां** श्रुतेः' (का० श्रौ० सू० १।१।६) इस कातीय वचनमें भी की गई है।

यज्ञ—परिभाषा—सूत्रकारने भी अपने **'स त्रयाणां वर्णानां ब्राह्मण–राजन्ययोर्वैश्यस्य च'** इस सूत्रद्वारा स्पष्ट कहा है कि द्विजातिको ही श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार है, अन्य जातिको नहीं।

महर्षि जैमिनिने अपने 'मीमांसादर्शन' के 'शूद्रानधिकाराधिकरण' प्रकरणमें **"अपि वा वेदनिर्देशादपशूद्राणां प्रतीयेत"** (६।१।३३) इस सूत्रद्वारा स्पष्ट निर्णय किया है कि 'वेदाज्ञासे यज्ञ करनेका अधिकार केवल द्विजोंको ही है, शूद्रोंको नहीं।'

त्रैवर्णिकाधिकारं स्यान्नैव सर्वाधिकारिकम्।
नाधिकारो हि शूद्राणां यतः कर्मणि वैदिके॥
नैवास्ति वेदवाक्यस्य श्रवणेऽप्यधिकारिता।
तस्य स्यादधिकारित्वं कथं कर्मणि वैदिके॥

अतो रुद्राद्यनुष्ठाने सर्वस्मिन्नपि वैदिके ।
त्रैवर्णिकोऽधिकारी स्यान्न शूद्रादिरिति स्थितिः ॥

(कालिकापुराण)

'वैदिक कर्म में केवल द्विजका ही अधिकार है, सबका नहीं। शूद्रों-को वेद-वाक्योंके श्रवणका भी अधिकार नहीं है, अतः वे वैदिक कर्म करनेके अधिकारी नहीं हो सकते। अतएव रुद्रयागादि समस्त वैदिक कर्मके त्रैवर्णिक ही अधिकारी हैं, शूद्र नहीं।'

कुछ लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार द्विजातिको है, उसी प्रकार शद्रको भी होना चाहिये।

श्रुतिप्रतिपादित सोमयाग (ज्योतिष्टोम याग) में यजमानको दीक्षासम्पन्न होना पड़ता है। दीक्षासम्पन्न यजमान साक्षात् 'देवता' बन जाता है। दीक्षित यजमानके लिये कहा गया है कि वह यज्ञके समय शूद्रसे भाषण न करे, शूद्रका स्पर्श न करे और शूद्रका दर्शन न करे।

वेदके ब्राह्मणग्रन्थोंमें लिखा है—

'तन्न सर्वऽ इवाभिप्रपद्येत। ब्राह्मणो वैव, राजन्यो वा, वैश्यो वा। ते हि यज्ञियाः। स वै न सर्वेणैव संवदेत। देवान्वा एष उपावर्त्तते यो दीक्षते। स देवानामेको भवति। न वै देवाः सर्वेणैव संवदन्ते। ब्राह्मणेन वैव, राजन्येन वा, वैश्येन वा। ते हि यज्ञियाः। तस्माद्यद्येनं शूद्रेण संवादो विन्देत्—एतेषामेवैकं ब्रूयात् 'इममिति विचक्ष्व, इममिति विचक्ष्व' इत्येष उ तत्र दीक्षितस्योपचारः।'

(शतपथब्राह्मण ३।१।१।९)

'अनृतं स्त्री, शूद्रः, श्वा, कृष्णः, शकुनिः (काकः), तानि न प्रेक्षेत।'

(शतपथब्राह्मण १४।१।३१)

'असतो वा एष सम्भूतः, यच्छूद्रः ।

(तैत्तिरीयब्राह्मण ३।२।३।६)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि शूद्र द्विजाति-धर्मोंसे बहिष्कृत हैं, उन्हें श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार नहीं है। श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार केवल द्विजातिको ही है। द्विजातिको भी प्रत्येक श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार नहीं है। अधिकारकी दृष्टिसे द्विजातिके लिये भी पृथक्-पृथक् यज्ञ करनेका निर्देश किया गया है। यथा—

'स वाऽ एष (वाजपेययज्ञः) ब्राह्मणस्यैव यज्ञः, यदनेन बृहस्पतिरजयत। ब्रह्म हि बृहस्पतिः। ब्रह्म हि ब्राह्मणः।'

(शतपथब्राह्मण ५।१।११)

'राज्ञ एव राजसूयम्।' (शतपथब्राह्मण ५।१।१२)

'राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड् वाजपेयेन (ब्राह्मणः) अवरं हि राज्यम्, परं साम्राज्यम्।'

—इन प्रमाणोंके द्वारा कहा गया है कि राजसूय यज्ञ करनेका अधिकार राजा (क्षत्रिय) को है, ब्राह्मणको नहीं। और वाजपेय यज्ञ करनेका अधिकार ब्राह्मणको है, राजाको नहीं। अतः स्पष्ट है कि राजा 'वाजपेय यज्ञ' नहीं कर सकता और ब्राह्मण 'राजसूय यज्ञ' नहीं कर सकता।

जब कि ब्राह्मण और क्षत्रिय इनके लिये भी श्रौतयज्ञ करनेके लिये प्रतिबन्ध लगा रखा है, तो शूद्रके लिये श्रौतयज्ञाधिकारकी चर्चा ही व्यर्थ है। शूद्रको तो अनुपनीत होनेके कारण किसी भी प्रकारके वेदोक्त यज्ञ करनेकी शास्त्रोंमें आज्ञा नहीं है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।

मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

(अथर्ववेद ७।१९।७१।१)

—इस मन्त्रमें भी स्पष्ट कहा गया है कि—गायत्री-मन्त्रका अधिकार द्विजोंको ही है, शूद्रोंको नहीं।

शुक्ल यजुर्वेदके '**ब्रह्मणे ब्राह्मणम्**' (३०।५) इस मन्त्रमें द्विजोंके, सच्छूद्रोंके, असच्छूद्रोंके और निकृष्ट वर्णोंके धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है। अतः स्पष्ट है कि—समस्त वर्णोंके धर्म भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये प्रत्येक वर्णको वेदप्रतिपादित धर्मके अनुसार ही अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये और किसीको दूसरे वर्णके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। जो लोग हठात् दूसरे वर्णके धर्ममें दखल देते हैं, वे भूल करते हैं।

वेदका कहना है कि जिसको जिस कार्यका अधिकार कहा गया है, उसको वही कार्य करना चाहिये। द्विजके लिये श्रौतयज्ञ करनेका अधिकार कहा गया है, शूद्रके लिये नहीं कहा गया है। अतः शूद्र श्रौतयज्ञ करनेका अधिकारी नहीं है (शु० य० १।१७)।

शूद्रको मन्त्ररहित यज्ञ करनेका अधिकार है

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां धर्ममनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥

(मनु० १०।१२७)

'धर्मार्जनकी इच्छा करनेवाले, धर्मके ज्ञाता तथा सत्य-धर्मका अनुसरण करनेवाले शूद्र भी यदि मन्त्ररहित यज्ञ करें, तो उन्हें कोई दोष नहीं लगता, प्रत्युत वे सन्तसमाजमें प्रशंसाके भाजन होते हैं।'

अन्यत्र भी लिखा है—

'मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियाम्।'

'यदि शूद्र आयु तथा धनके अभिवृद्ध्यर्थ मन्त्र-रहित पौष्टिक कर्म करें, तो उन्हें कोई दोष नहीं है।'

भागवत (७।११।२४) में शूद्रोंके धर्मका उल्लेख करते हुए कहा है कि—शूद्र वैदिक मन्त्रोंसे रहित यज्ञ कर सकते हैं।

'अमन्त्रयज्ञो हि शूद्राणाम्' के अनुसार शूद्रोंको वेद-मन्त्ररहित यज्ञ करनेका ही अधिकार है।

स्त्रीको ब्राह्मणद्वारा यज्ञ करनेका अधिकार है

स्त्रीको वेदाध्ययनका अधिकार न होनेके कारण उसे श्रौतकर्म करनेका अधिकार नहीं है, किन्तु स्मार्तकर्म अर्थात् रुद्रयाग, विष्णु-याग करनेका अधिकार है।

जिस प्रकार स्त्रीको स्वतः वेदमन्त्रोच्चारण न कर ब्राह्मणद्वारा श्राद्ध करनेका अधिकार है, उसी प्रकार उसे ब्राह्मणद्वारा यज्ञ (स्मार्तयज्ञ) करनेका अधिकार है।

'विधवा स्वयं सङ्कल्पं कृत्वा, अन्यद् ब्राह्मणद्वारा यज्ञादि कारयेत्' इस निर्णयसिन्धुके वचनानुसार विधवा स्वयं सङ्कल्प कर यज्ञादि कर्म अन्य ब्राह्मणद्वारा करावे।

भर्तृहीना तु या नारी संयता विजितेन्द्रिया।
व्रतादीनां तु सङ्कल्पं दानं च स्वयमाहरेत्॥
वैदिकं तान्त्रिकं कर्म आचार्यद्वारतश्चरेत्।

(स्कन्दपुराण)

'संयम-नियमसे रहनेवाली विधवा स्त्री व्रतादिका सङ्कल्प और दान स्वयं करे, किन्तु वैदिक और तान्त्रिक कर्म आचार्यके द्वारा ही करे।'

स्त्रीको पतिकी आज्ञाके बिना यज्ञादि करनेका निषेध

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥

(मनुस्मृति ५।१५५)

'स्त्रियोंको पतिकी आज्ञाके बगैर स्वतन्त्ररूपेण यज्ञ, व्रत तथा उपवास करनेका अधिकार नहीं है। स्त्री तो केवल पति-सेवारूपी यज्ञके प्रभावसे ही स्वर्गमें आदर प्राप्त करती है।'

अनधिकारीको यज्ञ करानेसे हानि

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम्।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥

(मनु० ३। ६५)

'जिनको यज्ञ करनेका अधिकार अथवा योग्यता नहीं है, उनके द्वारा यज्ञ करानेसे, कर्मोंकी नास्तिकतासे और वेदमन्त्रोंसे रहित होनेसे कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।'

पतितको यज्ञ करानेसे हानि

पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते।
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥
कृमिभावाद् विमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः।
गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि सूकरः ॥

कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः।
श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ॥

(महाभारत, अनुशा० १११।४९–५१)

'पतित पुरुषको यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण कीड़ा बनकर उत्पन्न होता है और हे भरतवंशी राजन्! वह पन्द्रह वर्ष तक कीड़ेकी

योनिको भोगता है। कीड़ेकी योनिसे छूटकर वह गधा होता है, फिर वह पाँच वर्षमें गधेकी योनिसे छूटकर सूअर होकर उत्पन्न होता है और पाँच वर्ष तक मुर्गेकी और पाँच वर्ष तक गीदड़की तथा एक वर्ष तक कुत्तेकी योनिको भोग कर फिर वह मनुष्य योनिमें जन्म लेता है।'

शूद्रको यज्ञ करानेसे हानि

दक्षिणार्थे तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत्॥

(पाराशरस्मृति १२।३६)

'जो ब्राह्मण दक्षिणाके लोभसे शूद्रको यज्ञ कराता है, वह शूद्र हो जाता है और यज्ञ करनेवाला शूद्र ब्राह्मण हो जाता है।'

आचार्य

सविधि वेदोक्त मार्गसे यज्ञकर्मको कराना और यज्ञमण्डपमें उपस्थित समस्त ऋत्विजोंको यथायोग्य कार्योंमें लगाना तथा उनके कार्योंका भलीभाँति निरीक्षण करना, यह आचार्यका कार्य है।

नानाविधानि कर्माणि कर्ता कारयिता च यः।
सर्वधर्मविधिज्ञश्च स वै आचार्य उच्यते॥

'अनेक प्रकारके कर्मोंको स्वयं करनेवाला और दूसरोंको करानेवाला तथा सम्पूर्ण धर्म एवं विधिको जाननेवाला जो ब्राह्मण है, वही आचार्य कहा जाता है।'

सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो लोभ-मोहविवर्जितः॥
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः॥

समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः।
ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः॥
आचार्यश्च भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः।

(मत्स्यपुराण २६५।२-५)

'सभी अवयवोंसे युक्त, वेदमन्त्रोंका ज्ञाता, समस्त पुराणोंका ज्ञाता, लोभ-मोहसे रहित, कृष्णसार मृगके देशमें उत्पन्न, सुन्दर आकृतिवाला, शौचाचारसम्पन्न, पाखण्ड-समूहोंसे निरपेक्ष, शत्रु और मित्रमें समान व्यवहार रखनेवाला अर्थात् किसीसे भी न मित्रता और शत्रुता करनेवाला, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनोंका समान स्नेहभाजन, तर्क-वितर्क-पूर्वक तत्त्वज्ञान सम्पादन करनेमें कुशल, वास्तुशास्त्रका पूर्ण परिज्ञाता और जो सर्वदोषोंसे नित्य ही रहित हो, उसे 'आचार्य' कहते हैं।'

जिस प्रकार यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ और पवित्र कर्म है, उसी प्रकार उसके विधि-विधान भी अत्यन्त परिमार्जित एवं आदर्श हैं। अतः यज्ञको करानेके लिये सुयोग्य 'आचार्य' होना चाहिये। जो आचार्य यज्ञको साङ्गोपाङ्ग सविधि कराते हैं, वे ही उत्तम 'याज्ञिक' कहलाते हैं और वे ही वस्तुतः यज्ञ करानेके अधिकारी कहे गये हैं। जो आचार्य शास्त्रविरुद्ध यज्ञ कराते हैं, वे *'यागकण्टक' और †'मन्त्र-कण्टक' कहलाते हैं। अतः वे यज्ञ-कर्मके लिये सर्वथा निषिद्ध कहे

---

* मन्त्राणां दैवतं छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणान् ऋषीन्।
कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्ते यागकण्टकाः॥
(कात्यायनसर्वा० अनन्त भा०)

† ऋषिच्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वरानपि।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते॥
(ऋ० सा० १।१।१)

गये हैं। इसलिये श्रेष्ठ याज्ञिक अथवा आचार्य बननेके लिये [1]मन्त्रोंका सस्वर कण्ठस्थीकरण एवं वेदमन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग का परिज्ञान तथा मन्त्रोंके अर्थका परिज्ञान होना परमावश्यक है। साथ ही धर्मविश्वास, ईश्वरविश्वास, शास्त्रविश्वास, शिष्टाचार, लोककल्याण-भावना, लोकप्रियता, परोपकारशीलता, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति एवं सन्ध्योपासना आदि सद्‌गुणोंसे सुसम्पन्न व्यक्ति ही 'आचार्य' बननेका अधिकारी है। इन गुणोंसे रहित व्यक्ति आचार्य बननेका अधिकारी कथमपि नहीं हो सकता।

ब्रह्मा

यज्ञादि कर्ममें यजमान तथा ऋत्विजोंके समस्त कार्योंका योग्यतापूर्वक निरीक्षण तथा प्रायश्चित्तादिका उपदेश करना, यह ब्रह्माका कार्य है।

सदस्य

यज्ञादि कर्ममें उपस्थित होनेवाली सर्वविध आपत्तियोंको दूर करना तथा यज्ञरक्षार्थ ध्यान रखना, यह सदस्यका कार्य है।

[1]उपद्रष्टा

यज्ञादि कर्ममें यज्ञमण्डप और ऋत्विजोंके कार्योंका निरीक्षण करना, यह उपद्रष्टाका कार्य है।

---

[1]मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

(पाणिनीयशिक्षा)

१. उपद्रष्टाका वरण 'प्रतिष्ठाकौमुदी' में लिखा है।

गाणपत्य[1]

यज्ञादि कर्ममें यजमानके अभिलषित फलकी प्राप्तिके लिये तथा यज्ञके निर्विघ्न सुसम्पन्न होनेके निमित्त जपादि कार्य करना, यह गाणपत्य (गणपति) का कार्य है।

द्वारपाल

यज्ञमण्डपके चारों द्वारोंमें उपस्थित हो कर अपने-अपने वेदके नियत सूक्तोंका पारायण, सूक्तोंका जप तथा अपने-अपने द्वारकी रक्षा करना, यह द्वारपालोंका कार्य है।

जापक

अर्थपुरस्सर मन्त्रका ध्यान रखते हुए जप करना और जप करते हुए वार्त्तालाप न करना, चित्तको एकाग्र रखना तथा यथाशक्ति एकासनसे जप करना, यह जापकका कार्य है।

होता

'यज्ञियदेवानां स्तुतिपूर्वकमाह्वाता होता।'

'स्तुतिपूर्वक यज्ञिय देवताओंका आह्वान करनेवाला 'होता' कहलाता है।'

स्तुतिपूर्वक यज्ञिय देवताओंका आह्वान करना तथा सविधि हवनकुण्डमें हवन करना, यह होताका कार्य है।

स्तुतिपूर्वक देवताओंको आह्वान करनेके कारण होताको 'देवहूति' कहा जाता है। निरुक्तके पाँचवें अध्यायमें 'देवहूति' शब्दका अर्थ '**देवानामाह्वाता**' किया गया है।

---

१. गाणपत्यका वरण 'रुद्रयामल' में लिखा है।

ऋत्विक्

यज्ञादि कार्योंके सुसम्पादनार्थ सर्वप्रथम ऋत्विजों (ब्राह्मणों) की आवश्यकता पड़ती है। ऋत्विजोंके वगैर यज्ञादि कर्म निष्पन्न नहीं हो सकते। अतः यह निश्चित है कि ऋत्विजों पर ही समस्त यज्ञ-कर्मकी प्रतिष्ठा निर्भर है—

'ऋत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः।'

(ऐतरेयब्रा० ६।८)

'यो दक्षिणादिना परिक्रीतः श्रौत-स्मार्त्तादीनि कर्माणि करोति स ऋत्विक्।'

(पार० गृ० सू० 'विवृति' टीका)

'जो दक्षिणा लेकर श्रौत-स्मार्त्त कर्मोंको करता है, उसे 'ऋत्विक्' कहते हैं।'

'ये च यज्ञकरा विप्रा य ऋत्विज इति स्मृताः।'

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ४१।८२)

'जो यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण हैं, उन्हें ऋत्विक् कहते हैं।'

'ऋत्विक्' का लक्षण भगवान् यास्काचार्यने इस प्रकार लिखा है—

'ऋत्विक् कस्मात्? ईरणः। ऋग्यष्टा भवति'
इति शाकपूणिः। ऋतुयाजी भवतीति वा।'

(निरुक्त ३।४।२)

'ऋत्विक् क्यों है? वह स्तुति-वाक्योंको कहता है। ऋचाओं द्वारा यज्ञ कराता है, इसीसे ऋत्विक् है—ऐसा आचार्य शाकपूणि का मत है अथवा ऋतुमें यजन करता है।'

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान्।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते॥

(मनु० २।१४३)

'जो यजमानकी प्रेरणानुसार अग्न्याधान, पाकयज्ञ तथा अग्निष्टोमादि यज्ञोंको आचार्यत्वेन वृत होकर करता है वह यजमानका ऋत्विक् कहा जाता है।'

याज्ञवल्क्यस्मृतिके आचाराध्याय (ब्रह्मचर्य-प्रकरण) के पैंतीसवें श्लोककी मिताक्षरामें श्रीविज्ञानेश्वरने ऋत्विक्का लक्षण इस प्रकार किया है—

'यः पाकयज्ञादिकं वृतः करोति स ऋत्विक्।'

'जो वृत होकर पाकयज्ञादि करता है उसे ऋत्विक् कहते हैं।'

यज्ञादिमें होताका विचार

जो ब्राह्मण—शरीरधारी माता-पितासे उत्पन्न है, वही प्रशस्त 'होता' कहा जाता है—

'अयं स होता यो द्विजन्मा।'

(ऋग्वेद १४९।५)

होताको वेदोक्त यज्ञ—कर्म में कुशल और वेदोंका ज्ञाता होना चाहिये—'**होता स्याद् वेदपारगः।**' (मनु० ११।३७)

नातिवृद्धो भवेद् होता नाल्पविद्यो न बालिशः।
नार्त्तो नासंस्कृतश्चैव अग्निहोत्रादिकर्मसु॥
नरकं हि पतन्त्येते जुह्वतस्ते च तस्य तत्।
तस्माद्वै कुशलो होता कुर्यात् स्याद्वेदपारगः॥
रजस्वलाङ्गना यस्य गर्भिणी वा यदा भवेत्।
न यज्ञकरणे योग्यो गालवो मुनिरब्रवीत्॥

(संस्काररत्नमाला)

'अग्निहोत्रादि यज्ञ-कर्ममें होता (हवन करनेवाला) अत्यन्त वृद्ध, अल्पवयस्क (बालक) और अल्पज्ञ (मूर्ख) नहीं होना चाहिये। और आर्त्त (पीड़ित) तथा असंस्कृत (अनुपनीत) भी

नहीं होना चाहिये। अन्यथा अयोग्य व्यक्तिके द्वारा हवन करने पर वे अवश्य नरकमें गिरते हैं। इसलिये वेदका पूर्ण ज्ञाता और चतुर होता होना चाहिये। गालव मुनिने तो कहा है कि जिस होता की स्त्री रजस्वला हो या गर्भिणी हो, वह यज्ञ-कर्म करनेमें अयोग्य है।'

यज्ञादिमें सर्वप्रथम *वरण किसका हो ?

किसी भी जिम्मेदारीपूर्ण कार्यके सुव्यवस्थित सञ्चालनके लिये एक सुयोग्य नेताकी आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा उस कार्यमें अनेक प्रकारकी विघ्न–बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। विशेषत: यज्ञादि शुभ-कार्योंमें तो अवश्य ही सर्वशास्त्रवेत्ता सुयोग्य सञ्चालक की क्षण-क्षणमें आवश्यकता पड़ती रहती है। ऐसी स्थितिमें पूज्य ऋषि–महर्षियोंने यज्ञादि कर्मके लिये 'आचार्य' को ही नेता (सर्वाध्यक्ष) स्वीकार किया है। अतः यज्ञादिमें आचार्यका ही सर्वप्रथम वरण तथा पूजन युक्तियुक्त सङ्गत प्रतीत होता है। यही शास्त्राज्ञा भी है—

आचार्यं प्रथमं वृत्त्वा ब्रह्माणं वृणुयात्ततः।
गणेशं ऋत्विजादींश्च पूजयेत्तु विधानतः॥
(रुद्रयामल)

'आचार्यका वरण सर्वप्रथम करके पश्चात् ब्रह्माका वरण करे, अनन्तर गणेश और ऋत्विजादिका विधिपूर्वक वरण और पूजन करे।'

अनन्तदेव प्रभृति नागरगण 'आचार्य' का ही वरण सर्वप्रथम स्वीकार करते हैं। पञ्चगौड भी अनन्तदेवके मतानुसार सर्वप्रथम

---

* वरणं नाम करिष्यमाणकर्मस्वरूपश्रावणपूर्वकं स्वयमप्रवृत्तानामाचार्यादिकर्मसु कर्तृत्वेनाभ्यर्थनम्।

'आचार्य' का वरण करते हैं। आजकल यही क्रम विशेष प्रचलित और मान्य है

हेमाद्रिका मत है कि सदस्यका सर्वप्रथम वरण होना चाहिये और त्रिविक्रमका मत है कि ब्रह्माका सर्वप्रथम वरण होना चाहिये। परन्तु हेमाद्रि और त्रिविक्रमका मत सर्वमान्य नहीं है।

यज्ञादिमें ब्राह्मण ही ऋत्विक् हो सकता है

'तद्वै नाऽब्राह्मणः पिबेत्'

(शतपथब्रा० २।३।१।३९)

इस शतपथ सिद्धान्तसे अग्निहोत्रके अवशिष्ट हविके पानका अधिकार केवल ब्राह्मणको ही प्राप्त है। अतः हविका पानकर्ता ब्राह्मण ही ऋत्विक् कर्म कर सकता है। इसी सिद्धान्तकी पुष्टि महर्षि कात्यायनने भी की है--

'ब्राह्मणा ऋत्विजो भक्षप्रतिषेधादितरयोः।'

(कात्यायनश्रौतसूत्र १।२।८)

यज्ञपरिभाषासूत्रकारने भी **'ब्राह्मणानामार्त्विज्यम्'** (२४) इस सूत्रद्वारा उपर्युक्त सिद्धान्तका ही पूर्णतः समर्थन किया है। अतः स्पष्ट है कि ब्राह्मणको ही 'आर्त्विज्य' का अधिकार है, क्षत्रियादि को नहीं।

यज्ञादिमें ऋत्विजोंके नियम

ऋत्विजश्च यथा पूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन्।
यूयं तथा मे भवत ऋत्विजो द्विजसत्तमाः ॥ १ ॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्चिता मया।
सुप्रसन्नैश्च कर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ॥ २ ॥

ब्राह्मणाः सन्तु शास्तारः पापात्पान्तु समाहिताः ।
देवानां चैव दातारस्त्रातारः सर्वदेहिनाम् ॥ ३ ॥
जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः ।
देवानाञ्च ऋषीणाञ्च तृप्त्यर्थं याजकाः कृताः ॥ ४ ॥
येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत्त्रयम् ।
रक्षन्तु सततं ते मां रुद्रयागे (विष्णुयागे) व्यवस्थिताः ५
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ६ ॥
पावनाः सर्ववर्णानां ब्राह्मणा ब्रह्मरूपिणः ।
सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ७ ॥
श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा ।
यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्ति नरद्रुमाः ॥ ८ ॥
अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्पद्रुमसमाशिषः ।
यथोक्तनियमैर्युक्ता मन्त्रार्थे स्थिरबुद्धयः ॥ ९ ॥
यत्कृपालोचनात् सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः ।
देवयागे मया पूज्याः सन्तु मे नियमान्विताः ॥ १० ॥
कृताह्निकविधिर्विप्र आचार्यं प्रणिपत्य वै ।
शुद्धेन मनसा नित्यं यज्ञकर्मपरो भवेत् ॥ ११ ॥
आचार्यकथने स्थेयान्न प्रतिग्रहमाचरेत् ।
सदा साधुमनाः कुर्यात् संस्थितिं *स्वस्तिकासने ॥१२॥
उपवीती बद्धशिखो धीरो मौनी दृढव्रतः ।
धौतवासाः पञ्चकच्छो द्विराचामः कृताह्निकः ॥ १३ ॥

---

* जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥
(वीरमित्रोदय, लक्षणप्रकाश)

क्षमा सत्यं दयादानं गुरुदेवादिपूजनम्।
अनालस्यं सौमनस्यं सन्तोषः सत्यभाषणम्॥ १४॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवानां ध्यानं धारणमर्थतः।
होमकाले च मौनित्वं परस्परमनिन्दनम्॥ १५॥
अक्रोधः सर्वथा शुद्धिरिन्द्रियाणाञ्च निग्रहः।
प्रिया वाणी प्रसन्नत्वं तत्तन्मन्त्रार्थचिन्तनम्॥ १६॥
न यज्ञमण्डपे हस्त-पाद-प्रक्षालनं क्वचित्।
निरर्थकं न संल्लापो नाङ्गानां चालनं मुधा॥ १७॥
अवैधं नाभ्यधः स्पर्शं कर्मकाले न कारयेत्।
न पदा पादमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ॥ १८॥
न तैलमर्दनं कार्यं न क्षौरं नातिभोजनम्।
दूरतः सन्त्यजेत् सर्वं मादकद्रव्यसेवनम्॥ १९॥
दाक्षिण्यवान् परं पुण्यं हविष्याशनमाचरेत्।
नान्यं प्रतिनिधिं कुर्यान्न निःस्वाहं समुच्चरेत्॥ २०॥
जृम्भायामथ छिक्कायां जातायां जलमास्पृशेत्।
† मृगीमुद्रामुपाश्रित्य यथार्हं हुतमाचरेत्॥ २१॥
आत्मनो यजमानस्य च यागे शुभमिच्छता।
बुधेन नियमा एते पालनीयाः प्रयत्नतः॥ २२॥
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि॥ २३॥

'हे द्विजश्रेष्ठ! जिस प्रकार आप लोग पूर्व कालमें इन्द्र आदि देवताओंके यज्ञमें ऋत्विज होते थे उसी प्रकार मेरे यज्ञमें भी ऋत्विज

---

† मीलितानाऽमिकांगुष्ठमध्यमांगुलीर्योजयेत्।
शेषांगुली उच्छ्रितेति मृगीमुद्रेयमीरिता॥ (कर्मकाण्डप्रदीप)
अन्यत्र भी लिखा है—
अनामिकांगुष्ठकेन योजयेन्मध्यमांगुलिम्।
शेषांगुली उच्छ्रिते तौ मृगीमुद्रेयमीरिता॥
'मृगीमुद्रा तिलाहुतौ' (वसिष्ठः)

हों। मैंने अपने यागको निष्पन्न करनेके लिये आप लोगोंकी पूजा की है, इसलिये इस कार्यको सुप्रसन्न होकर विधिपूर्वक करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग शासन करनेवाले हों और पापोंसे मेरी रक्षा करनेवाले हों। ब्राह्मण देवताओंके दर्शन करानेवाले हों और समस्त प्राणियोंके रक्षा करनेवाले हों। आप लोग विविध प्रकारके जपयज्ञ, होम तथा दानके द्वारा देवताओं और ऋषियोंकी तृप्तिके लिये याजक बनाये गये हैं। जिन ब्राह्मणोंके शरीरमें वेद निवास करते हैं और जो तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं, वे रुद्रयज्ञमें विराजमान ब्राह्मण मेरी रक्षा करें। ब्राह्मण चलते-फिरते तीर्थ हैं, जोकि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, जिनके वचनामृतसे पापी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। वेदमूर्ति ब्राह्मण समस्त वर्णोंको पवित्र करनेवाले और समस्त यज्ञिय कर्मोंमें निरत वेदशास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं। श्रोत्रिय (श्रौतकर्ममें निष्ठ), सत्यवादी, देवताओंके ध्यानमें सर्वदा संलग्न रहनेवाले ब्राह्मणोंकी वाक्सुधासे मनुष्य समस्त ऋद्धि-सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं। आप लोग कल्पवृक्षके सदृश सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले, हैं, अतः मेरे इस कर्मको सम्पन्न करें। शास्त्रोक्त नियमोंसे आप लोग परिपूर्ण हैं और मन्त्रोंके अर्थमें आप लोगोंकी स्थिर बुद्धि है। आप लोगोंकी कृपादृष्टिसे समस्त ऋद्धियाँ वृद्धिको प्राप्त होती हैं, अतः समस्त नियमोंसे युक्त आप लोगोंका इस यज्ञमें मैं पूजन करता हूँ।

ब्राह्मण अपना दैनिक कृत्य करके आचार्यको प्रणाम करे और शुद्ध चित्तसे यज्ञ-कर्ममें तत्पर हो। आचार्यकी आज्ञाका पालन करे और दूसरेकी दी हुई वस्तुको न ले। सर्वदा शुद्ध मन होकर यज्ञिय कर्म करे और स्वस्तिकासन लगाकर बैठे। सर्वदा यज्ञोपवीत धारण करे, शिखा बाँधे रहे, धीर रहे, मौन रहे, दृढ़व्रत रहे, धुला हुआ वस्त्र धारण करे, पञ्चकच्छ होकर रहे। दो बार आचमन करे और आह्निक कर्म किया करे।

क्षमा, सत्य, दया, दान, गुरु और देवताओंका आराधन, आलस्यहीनता, प्रसन्न मनसे रहना, सन्तोष, सत्य बोलना, मन्त्राधिष्ठातृदेवोंका ध्यान तथा अर्थानुसन्धानपूर्वक उनका धारण करना, होमके समय मौन, परस्परमें निन्दाका त्याग, क्रोधसे रहित, सर्वथा आत्म-शुद्धि, इन्द्रियोंका निग्रह, सुन्दर वाणी, प्रसन्नता, तत्तन्मन्त्रोंके अर्थोंका चिन्तन, अव्यर्थ भाषण, अव्यर्थ हस्त-पादादि अङ्गोंका हिलाना इत्यादि नियमोंका दृढ़ता-पूर्वक पालन करना चाहिये। विशेषतः तेल लगाना, क्षौर कराना, अधिक भोजन करना और मादक द्रव्यका सेवन करना, यज्ञ-मण्डपके अन्दर हाथ और पैर धोना इत्यादि अवश्य निषेध्य है।

उपर्युक्त नियमोंका पालन करता हुआ विद्वान् ब्राह्मण शुद्ध चित्तसे आह्निक कृत्योंको पूर्ण कर और आचार्यको प्रणाम करके यज्ञ-कार्योंमें संलग्न हो। साथ ही आचार्यकी आज्ञा मानता हुआ अन्य किसी प्रकारका दान आदि न लेवे। सर्वदा प्रसन्न चित्त होकर स्वस्तिकासन होकर बैठे और वह अत्यन्त पवित्र हविष्यान्नका ही आहार करे। यज्ञ-कार्यमें अपनी जगह दूसरा प्रतिनिधि न दे, बिना स्वाहाकारके मन्त्रोंका उच्चारण न करे, नशेकी प्रत्येक वस्तुका दूरसे ही त्याग करे, जंभाई तथा छींक आ जाने पर जलसे मार्जन करे और मृगीमुद्राका आश्रयण कर उचित रूपसे हवन करे। इस प्रकार ऋत्विक् अपना और यजमानका कल्याण चाहता हुआ समस्त नियमोंका भलीभाँति पालन करे।' (यह संक्षिप्तार्थ है)

ऋत्विजोंके विशेष नियम

१—ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपमें प्रतिदिन स्नान-सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म करके ही जाना चाहिये।

२—ऋत्विजोंको यज्ञ-मण्डपमें प्रतिदिन नियत समय पर उपस्थित होकर अपने नियत स्थान पर ही बैठना चाहिये।

३—ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपमें अपने पैर धोकर ही जाना चाहिये ।

४—ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपमें पवित्र वस्त्र धारण करके ही जाना चाहिये ।

५—ऋत्विजोंको प्रधानाचार्यकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ।

६—ऋत्विजोंको अपने-अपने नियम और कर्तव्यका पूर्ण रूपसे पालन करना चाहिये ।

७—आचार्य, ब्रह्मा आदि समस्त ऋत्विजोंको अपने-अपने कार्यमें संल्लग्न रहना चाहिये ।

८—द्वारपालोंको अपने-अपने नियत स्थान पर बैठकर अपने-अपने वेद-सूक्तका पाठ करना चाहिये और अपने-अपने द्वारका ध्यान रखना चाहिये ।

९—ब्रह्मा आदि समस्त ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपकी और कुण्डोंकी अग्निकी रक्षार्थ सर्वदा ध्यान रखना चाहिये ।

१०—यज्ञमें ब्रह्माको वेदका ज्ञाता, कुशकण्डिकाका ज्ञाता और कर्म-काण्डका ज्ञाता होना चाहिये ।

११—ऋत्विजोंको अग्नि और प्रधानवेदीके **आदि और** मध्यसे नहीं जाना चाहिये ।

१२—यज्ञमण्डपमें ऋत्विजोंको परस्पर वाद-विवाद नहीं करना चाहिये ।

१३—यज्ञमण्डपमें आचार्यके उपस्थित होने पर ही यज्ञकार्य प्रारम्भ होना चाहिये ।

१४—प्रधानाचार्यकी आज्ञाके बिना ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपसे बाहर नहीं जाना चाहिये ।

१५—ऋत्विजोंको किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, तो उसके लिये आचार्यसे कहना चाहिये, यजमानसे नहीं कहना चाहिये ।

१६—ऋत्विजोंको यज्ञकी पूर्णाहुति आदि होनेके बाद तथा यज्ञकी दक्षिणा मिलनेके बाद ही अपना बाल कटाना चहिये ।

१७—ऋत्विजोंको मध्याह्नके विश्रामके बाद ठीक समयमें यज्ञमण्डपमें पहुँच जाना चाहिये।

१८—ऋत्विजोंको यज्ञ-प्रारम्भके दिनसे यज्ञकी पूर्णाहुति तक रात्रिमें यज्ञस्थलमें ही शयन करना चाहिये।

१९—ऋत्विजोंको लघुशङ्काके बाद अपने हाथ-पाँव धोना और शौचादिके बाद स्नान करना चाहिये।

२०—ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपमें भोजन, दुग्धपान और जलपान आदि नहीं करना चाहिये।

२१—ऋत्विजोंको यज्ञके निमित्त अपनी दक्षिणा पहलेसे ही निश्चित नहीं करनी चाहिये।

२२—ऋत्विजोंको यजमान जो दक्षिणा प्रेमसे दे, उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिये।

२३—समस्त ऋत्विजोंको अपने-अपने कार्योंके द्वारा यज्ञके संयोजक, यज्ञके यजमान, यज्ञके दर्शक और यज्ञके कार्यकर्ता इन सबको श्रद्धान्वित और प्रभावित करना चाहिये।

२४—प्रत्येक होताको हवनमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंको कठस्थ होना चाहिये।

२५—प्रत्येक होताको मृगीमुद्रासे हवन करना चाहिये और हवन करते समय परस्पर वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये।

२६—यज्ञ निर्विघ्न और सानन्द सम्पन्न हो, इस बातका ध्यान समस्त ऋत्विजोंको विशेष रूपसे होना चाहिये।

२७—ऋत्विजोंको बीड़ी, सिगरेट आदि मादक वस्तुओंका त्याग, सिले हुए वस्त्रोंका त्याग, क्रोधका त्याग और व्यर्थ वार्त्तालापका त्याग करना चाहिये।

२८—ऋत्विजोंको ब्रह्मचर्यका पालन और सत्यका पालन करते हुए सन्तोष-वृत्तिको धारण करना चाहिये।

२९—ऋत्विजोंको यज्ञके यजमान, आचार्य और यज्ञके प्रबन्धसम्बन्धी विषयकी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

३०—ऋत्विजोंको आचार्यकी आज्ञाके बिना यज्ञमण्डपकी कोई भी वस्तु नहीं उठानी चाहिये।

३१—यज्ञ भगवान्‌की आरती होनेके बाद ही समस्त ऋत्विजोंको यज्ञमण्डपसे बाहर जाना चाहिये।

यजमानके नियम

१—यज्ञमण्डपमें प्रतिदिन यथासमय स्नान-सन्ध्यादि नित्यकर्म करके सपत्नीक उपस्थित होना चाहिये।

२—यज्ञमण्डपमें पैर धोकर ही प्रवेश करना चाहिये।

३—यज्ञमण्डपमें प्रवेश करते समय घुटनोंके बल पृथ्वीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर पश्चिम द्वारसे प्रवेश करना चाहिये।

४—यज्ञमण्डपमें रेशमी पीताम्बर आदि पवित्र वस्त्र पहन कर ही प्रवेश करना चाहिये।

५—यज्ञमण्डपमें मोजा, पैजामा, टोपी, पगड़ी तथा सिले हुए सूती वस्त्र पहन कर नहीं जाना चाहिये।

६—यज्ञके प्रारम्भसे यज्ञकी पूर्णाहुति तक ब्रह्मचर्यपालन, सत्यभाषण और एक समय भोजन करना चाहिये तथा क्रोधका त्याग एवं बीड़ी-सिगरेट आदि मादक वस्तुओंका त्याग करना चाहिये।

७—यज्ञाचार्यजीसे यज्ञका स्वरूप, यज्ञका महत्त्व एवं यज्ञसम्बन्धी विषयोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

८—यज्ञमण्डपके ऋत्विजोंको देवसदृश समझकर उनका अपमान नहीं करना चाहिये।

९—यज्ञमें जिन ब्राह्मणोंका वरण होगया हो, उनका दोष नहीं देखना चाहिये।

१०—यज्ञको अत्यन्त श्रद्धा—भक्तिसे तथा चित्तको एकाग्र करके करना चाहिये।

११—सर्वदा सनातनधर्मानुकूल वेदप्रतिपादित यज्ञको करना चाहिये।

१२—यज्ञाचार्यकी आज्ञाके बिना यज्ञसम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

१३—यज्ञको निरभिमान होकर करना चाहिये।

१४—यज्ञ-सामग्रीमें कार्पण्य नहीं करना चाहिये।

१५—यज्ञके निमित्त नूतन वस्त्र और नूतन कलश आदिकी व्यवस्था करनी चाहिये।

१६—यज्ञमण्डपमें द्विजेतर न जायँ, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये।

१७—यज्ञमण्डपको प्रतिदिन गोबरसे लेपन (लिपवाना) कराना चाहिये।

१८—यज्ञमण्डपमें ऋत्विजोंके प्रवेशके समय उनके पैर धोनेके लिये यज्ञमण्डपके बाहर जलकी व्यवस्था करनी चाहिये।

१९—यज्ञके समस्त ऋत्विजोंका प्रतिदिन दक्षिणासहित पूजन करना चाहिये।

२०—यज्ञके ऋत्विजोंके लिये ठहरनेके स्थान आदिका समुचित प्रवन्ध करना चाहिये।

२१—यज्ञके ऋत्विजोंके लिये बिछानेके लिये दरी, शयनके लिये चौकी, भोजन बनानेके लिये वर्त्तन, प्रकाशके लिये लालटेन, सेवाके लिये नौकर और भोजनके लिये पाचक (रसोइया) आदिका प्रवन्ध करना चाहिये।

२२—यज्ञके प्रवन्धार्थ परिश्रमी और ईमानदार व्यक्तियोंको रखना चाहिये।

२३—यज्ञमण्डप और यज्ञमण्डपमें रखी हुई समस्त वस्तुओंकी रक्षार्थ विश्वसनीय व्यक्तियोंका प्रवन्ध करना चाहिये।

मत है कि—गणेशकी एक प्रदक्षिणा, सूर्यकी दो प्रदक्षिणा, ईश्वर (भगवान्) की तीन प्रदक्षिणा, विष्णुकी चार प्रदक्षिणा और शिवकी आधी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

२३—यज्ञके यजमान और यज्ञके ब्राह्मणोंको यज्ञमण्डपके पश्चिम द्वारसे जाना चाहिये।

२४—यज्ञमण्डपमें हवनसामग्रीको यज्ञमण्डपके पूर्व द्वारसे ले जाना चाहिये।

२५—यज्ञमण्डपमें दान करनेकी सामग्रीको यज्ञमण्डपके दक्षिण द्वारसे ले जाना चाहिये।

२६—यज्ञमण्डपमें प्रतिष्ठाकी सामग्रीको यज्ञमण्डपके उत्तर द्वारसे ले जाना चाहिये।

२७—यज्ञमें अरणिमन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करनेकी शास्त्रीय विधि है। यज्ञमें जिस काष्ठके टुकड़ेपर अग्नि मथी जाती है, उसको 'अरणि' कहते हैं। उसमें जो अरणि पृथ्वीमें रखी जाती है, उसको 'अधरारणि' कहते हैं। यह अधरारणि स्त्री-स्थानीय है, जिसका नाम 'उर्वशी' है। अधरारणिके ऊपर रखनेवाली अरणिको 'उत्तरारणि' कहते हैं। यह उत्तरारणि पुरुष-स्थानीय है, जिसका नाम 'पुरूरवा' है। इस प्रकार अधरारणि और उत्तरारणि-रूप स्त्री और पुरुषके संयोगके मन्थनसे अग्निकी जो उत्पत्ति की जाती है, उसे 'अग्निचयन' कहते हैं (शुक्लयजुर्वेद ५।२)।

२८—यज्ञमें वेद-मन्त्रोंके द्वारा अरणिमन्थनसे जो अग्नि प्रकट की जाती है, उसे 'ब्राह्म' अग्नि कहते हैं। यज्ञमें 'ब्राह्म' अग्निका विशेष महत्त्व कहा गया है।

२९—यज्ञमें हवनके प्रारम्भ होनेके बाद यदि अग्नि नष्ट हो जाय, तो पुनः अरणिमन्थनद्वारा अग्निका प्राकट्य करना चाहिये।

३०—सात्त्विक हवनमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग होता है और

२४—यज्ञमण्डपमें प्रतिदिन काम आनेवाली सामग्रीका पुर्जा आचार्य-जीसे एकदिन पूर्व प्राप्त करना चाहिये और तदनुसार सामग्रीका प्रवन्ध करना चाहिये ।

२५—यज्ञमण्डपमें काम आनेवाली पूजन और हवन आदिकी सामग्री-को प्रातःकाल यज्ञमण्डपमें पहुँचानेका प्रवन्ध करना चाहिये ।

२६—यज्ञ भगवान्‌के दर्शनार्थ आये हुए दर्शकोंको सायङ्काल यज्ञ भगवान्‌की आरती होनेके बाद यज्ञका प्रसाद देना चहिये और रात्रिमें यथासम्भव दर्शकोंको भोजन करानेकी व्यवस्था करनी चाहिये ।

२७—यज्ञमण्ड़पके पश्चिम द्वारसे ही यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये।

२८—यज्ञमण्डपमें हवन-सामग्रीको यज्ञमण्डपके पूर्व द्वारसे भेजना चाहिये ।

२९—यज्ञके निमित्त दान की जानेवाली वस्तुको यज्ञमण्डपके दक्षिण द्वारसे ले जाना चाहिये ।

३०—प्रतिष्ठाके लिये ले जानेवाली वस्तुको यज्ञमण्डपके उत्तर द्वारसे ले जाना चाहिये ।

३१—यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद यज्ञमण्डपमें ही आचार्यादि समस्त ऋत्विजोंको उचित रूपमें दक्षिणा देनी चाहिये ।

३२—यज्ञकी पूर्णाहुति पर यज्ञफलकी प्राप्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार आचार्यको गौ, भूमि और गृह आद देना चाहिये ।

३३—स्वायम्भुव मनुका कथन है कि यजमानको यज्ञान्तमें अपनी समस्त सम्पत्तिका दान अर्थात् सर्वस्व दान कर देना चाहिये ।

३४—यज्ञान्तमें ऋत्विजोंको 'षड्रस' आदि मधुर भोजन कराना चाहिये ।

३५—यज्ञके निमित्त प्राप्त हुए धनको यज्ञमें ही लगाना चाहिये । यज्ञमें प्राप्त हुए धनसे स्कूल, कालेज, मन्दिर एवं धर्मशाला आदि नहीं बनवाना चाहिये ।

३६—यज्ञके ऋत्विजोंको दी जानेवाली दक्षिणाका प्रवन्ध यज्ञकी पूर्णाहुतिके पूर्व ही कर लेना चाहिये और ब्रह्मा, सर्वोपद्रष्टा, सदस्य, द्वारपाल और होता आदिको उनकी योग्यतानुसार दक्षिणा देनेका विचार यज्ञाचार्यजीसे करना चाहिये ।

३७—यजमानको यज्ञके प्रसादका भक्षण अपनी उदरपूर्तिके लिये नहीं, किन्तु आत्माग्निकी शान्तिके लिये ही करना चाहिये ।

३८—यज्ञके ऋत्विजोंके लिये दिनमें १२ बजे प्रतिदिन दुग्ध, फल और फलिहारी मिष्टान्नका प्रवन्ध करना चाहिये ।

३९—यज्ञके ऋत्विजों पर अनुशासन नहीं करना चाहिये ।

४०—यज्ञकी निर्विघ्न पूर्णताके लिये प्रतिदिन परमेश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये ।

४१—यज्ञमण्डपकी प्रतिदिन १०८ बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।

४२—यज्ञके समय यज्ञसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका प्रकाशन कर यज्ञप्रचारार्थ धर्मार्थ वितरण करना चाहिये ।

४३—यज्ञ भगवान्‌के विसर्जन होनेके बाद और ऋत्विजोंको दक्षिणा देनेके बाद ही अपना बाल कटाना चाहिये ।

यजमानको सत्य-पालनका व्रत ग्रहण करना चाहिये

प्राचीन कालमें यजमानको यज्ञके प्रारम्भमें यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी—

'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि' (शुक्लयजुर्वेद १।५)

'अब मैं असत्यसे सत्यभावको प्राप्त करता हूँ ।'

यज्ञके द्वारा यजमानको सर्वदाके लिये सत्य-पालनरूपी व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये ।

भगवान् मनुने कहा है कि यजमानको यज्ञ करनेके बाद मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए—**'वदेदिष्ट्वा च नानृतम्'** (मनु०४।२३६)।

मिथ्या भाषण करनेसे किये हुए यज्ञका फल नष्ट हो जाता है—
'यज्ञोऽनृतेन क्षरति' (मनु० ४।२३७)
'यज्ञोऽनृतेन क्षरति' (संवर्तस्मृति ८।९६)
अतः यज्ञके यजमानको **'सत्यवादी स्यात्'** (शतपथब्रा० १।१।६) के अनुसार सर्वदा सत्यपालनरूप व्रतका पालन करना चाहिये।

यज्ञादिमें द्वारपालोंका पूजन आवश्यक है

'यज्ञे तु द्वारपालांश्च तत्तन्नामभिरर्चयेत्।'
'यज्ञमें तत्तन्नामसे द्वारपालोंकी पूजा करनी चाहिये।'

यज्ञके ऋत्विजोंका पादप्रक्षालन आवश्यक है

यथावृद्धं विधातव्यं पादक्षालनमृत्विजाम्।
आत्मनश्चरणौ धूत्वा गत्वा मण्डपमध्यतः॥

'अपने पैर धोकर और यज्ञमण्डपके मध्यमें जाकर यथावृद्ध (जो जितना अधिक वृद्ध हो उसका पहले अर्थात् वृद्धका अतिक्रम किये बिना) ऋत्विजोंका पादप्रक्षालन करना चाहिये।'

यज्ञादिमें विद्वानोंका प्रतिदिन पूजन करना चाहिये

प्रत्यहं पूजयेद्विद्वानादावन्ते च कर्मणि।
एवं यः कुरुते शान्तिं तस्य श्रीः सर्वतोमुखी॥

'कर्मके आदि और अन्तमें विद्वान्का पूजन प्रतिदिन करना चाहिये। जो यजमान ऐसा करता है, उसके यहाँ लक्ष्मी सर्वप्रकारसे प्रसन्न होकर विराजमान होती है।'

ब्राह्मणोंके पूजनसे ही कर्मकी पूर्णता होती है

ब्राह्मणानां नित्यपूजा कार्या वित्तानुसारतः।

यावद् विप्रा न पूज्यन्ते न तावत् पूर्णतां व्रजेत् ॥
पूजितेषु तु विप्रेषु सर्वं सम्पूर्णतां व्रजेत् ।

'यज्ञ-मण्डपमें प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। क्योंकि जब तक ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया जाता, तब तक यज्ञ पूर्ण नहीं होता। अतः ब्राह्मणोंका पूजन होने पर ही यजमानके समस्त कार्य परिपूर्ण होते हैं।'

यज्ञमें ब्राह्मणोंके पूजनका महत्त्व

प्रतिमा तेऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने ।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥

'देवताओंसे भी अधिक यज्ञकें ब्राह्मणोंके पूजन करनेका महत्त्व है, चाहे वे विद्वान् हों या अविद्वान् हों। क्योंकि वे साक्षात् भगवान्के ही शरीर हैं।'

यज्ञशाला आदिमें ब्राह्मणोंको अलग-अलग नमस्कार करना अनावश्यक है

सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेषु च ।
प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ।
सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च ।
नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणं न पृथक् नमेत् ॥

'सभा, यज्ञशाला और देवमन्दिरमें अलग-अलग ब्राह्मणको प्रणाम नहीं करना चाहिये, ऐसा करनेसे उसके पूर्व पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सभी सभाओंमें,यज्ञशालाओंमें तथा राजभवनोंमें एकत्र विद्वान् ब्राह्मणोंको एक साथ ही प्रणाम करना चाहिये, पृथक्-पृथक् नहीं।'

नित्यकर्म करके ही यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये

'कृत्वा सन्ध्यां जपेत् स्तोत्रं यायाद्वै यागमन्दिरम् ।'

(मन्त्रप्रकाश)

'सन्ध्या करके ही जप एवं स्त्रोत्र-पाठ करे, तत्पश्चात् यज्ञशालामें प्रवेश करे।'

'यागमण्डपमासाद्य विशेत् कृत्वा प्रदक्षिणम् ।'

(महाकपिञ्जल पञ्चरात्र)

'यज्ञमण्डपकी प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेश करना चाहिये ।'

द्वारपालोंकी आज्ञासे ही यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश उचित है

'द्वारपालाननुज्ञाप्य प्रविश्य सदनं हरेः ।'

(पञ्चरात्ररक्षा)

'द्वारपालोंकी आज्ञा लेकर भगवान्के यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करना चाहिये ।'

यज्ञ-मण्डपमें द्विजेतरका प्रवेश निषिद्ध है

यज्ञ भगवान्का पवित्रतम स्वरूप है। अतः यज्ञकी पावनता अत्यन्त आवश्यक है। जिस जगह यज्ञ होता हो, वह स्थान अत्यन्त पवित्र होना चाहिये। यज्ञस्थानमें पवित्र द्विजोंका ही प्रवेश उचित है। द्विजेतर शूद्रादिका प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है।

महाभारतके सभापर्वमें लिखा है—

न तस्यां सन्निधौ शूद्रः कश्चिदासीन्न चाव्रती ।
अन्तर्वेद्यां तदा राजन् युधिष्ठिरनिवेशने ॥

'महाराज युधिष्ठिरकी यज्ञशालामें वेदीके समीप कोई भी शूद्र और अनुपनीत द्विज नहीं था।'

यज्ञादिमें प्रतिनिधिका विचार

'काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः ।'

'नित्य एवं नैमित्तिक कार्योंमें ही प्रतिनिधि ग्राह्य है, काम्यमें नहीं ।'

यज्ञादिमें यजमानके प्रतिनिधिका विचार

असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते तु समुपस्थिते ।
कारयेत् धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा बिनयान्वितम् ॥
भगिनीं भ्रातरं वापि व्रतमस्य न लुप्यते ।

'जब रोगादिवश शरीरमें व्रत करनेकी क्षमता न हो और व्रत उपस्थित हो जाय तो अपनी धर्मपत्नीसे, या विनयी (आज्ञाकारी) पुत्रसे, बहनसे, अपने भाईसे व्रत करावे, इनके द्वारा व्रत करानेसे कर्ताका व्रत लोप नही होता ।'

प्रतिनिधिका विचार

ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ।
एतैरेव हुतं यच्च तद् हुतं स्वयमेव तु ॥

(स्मृत्यर्थसार)

'यदि यजमान स्वयं हवन करनेमें असमर्थ हो, तो वह ऋत्विक्, शिष्य, गुरु, भाई, भानजा, जामाता (दामाद) इनमेंसे किसी से भी प्रतिनिधिरूपमें हवन करावे, तो वह स्वयं हवन करनेके सदृश ही होता है ।'

अन्यत्र लिखा है—

स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ।
ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः ॥
एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि ॥

अन्यैः शतहुताद् होमादेकदा स्वहुतो वरम्।
शिष्यैः शतहुताद् होमादेकः पुत्रहुतो वरम्॥
पुत्रैः शतहुताद् होमादेक आत्महुतो वरम्।
तस्मात्सदैव होमं तु प्रकुर्वीत स्वयं द्विजः।

'दूसरोंके द्वारा सौ बार हवन करानेकी अपेक्षा स्वयं ही एक बार हवन करना श्रेष्ठ है। शिष्योंके द्वारा सौ बार हवन करानेकी अपेक्षा अपने पुत्रसे एक बार हवन कराना उत्तम है। इसी प्रकार पुत्रोंके द्वारा सौ बार हवन करानेकी अपेक्षा स्वयं ही एक बार हवन करना श्रेष्ठ है। अतः द्विजको चाहिये वह सदैव स्वयं ही हवन करे।'

देवपूजनमें प्रतिनिधिका विचार

स्वयं यजति चेद्देवमुत्तमा सोदरात्मजैः।
मध्यमा या यजेद् भृत्यैरधमा याजनक्रिया॥

(शम्भुरहस्य)

'देव-पूजन स्वयं करना उत्तम,अपने भाई एवं पुत्र आदि से कराना मध्यम और नौकरोंसे कराना अधम कहा गया है।'

असमर्थ व्यक्ति ब्राह्मणद्वारा यज्ञ करा सकता है

जो व्यक्ति व्रत. यज्ञ आदि स्वयं करनेमें असमर्थ हो, वह अपने पुरोहित अथवा आचार्यसे व्रत आदि करा सकता है। पुरोहित अथवा आचार्यके द्वारा व्रत, यज्ञ आदि करनेसे यजमानको उसका फल अवश्य प्राप्त होता है।

'स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत्कुर्यात्तत्पुरोधसा।'

(वायवीयसंहिता)

'जो व्यक्ति किसी धर्म-कर्मको स्वयं करनेमें असमर्थ हो, तो वह उस कर्मको अपने पुरोहितसे करा सकता है।'

उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्।
विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तत्फलम्॥

(पराशरः)

'उपवास, व्रत, हवन, तीर्थस्नान और जप आदि धार्मिक कृत्य ब्राह्मणोंके द्वारा सम्पादन करानेसे भी कर्ता (यजमान) को उसका फल अवश्य प्राप्त होता है।'

यज्ञादिमें वेदशून्य हवनकर्ता त्याज्य है

होता चेन्मन्त्रहीनः स्यादशुचिर्भवते सदा।
तस्मात्तत् संस्कृते वह्नौ न होतव्यमवैदिकैः॥
समन्त्रवेदज्ञातारः आप्याययन्ति देवताः।
अवैदिकास्तु होतारो नैव प्रीणन्ति वै सुरान्॥

'होता (हवन करनेवाला) यदि वेद-मन्त्रोंका ज्ञाता नहीं है, तो वह सर्वदा अपवित्र ही है, अतः संस्कार की हुई अग्निमें अवैदिक ब्राह्मणको हवन नहीं करना चाहिये। सस्वर वेदको जाननेवाले हवनकर्ता ब्राह्मणोंसे ही देवता प्रसन्न होते हैं। जो अवैदिक (वेदसे शून्य) ब्राह्मण हवन करते हैं, उनसे देवगण सन्तुष्ट नहीं होते।'

वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे ही हवन कराना चाहिये

'हूयन्तामग्नयः सम्यग ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः।'

(भागवत पू० १०।२४।२७)

'वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंसे अग्नियोंमें घृत आदिका हवन कराना चाहिये।'

वेदशून्य विद्वान्‌के आचार्यत्वमें होनेवाले यज्ञमें भोजनका निषेध

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा।
स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित्॥

(मनु० ४।२०५)

'जिस यज्ञको वेदको न जाननेवाला (अश्रोत्रिय) कराता है, उस यज्ञमें तथा बहुतोंको यज्ञ करानेवालेके यज्ञमें और जिस यज्ञमें स्त्री एवं नपुंसक आहुति देते हों, ऐसे यज्ञमें ब्राह्मणको भोजन नहीं करना चाहिये।'

स्त्री और नपुंसकके द्वारा हवन करनेवाले यज्ञका निषेध

अश्लोकमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः।
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

(मनु० ४।२०६)

'जिस यज्ञमें स्त्री और नपुंसक हवन करते हों, वह यज्ञ सज्जनोंके लिये लक्ष्मीका विनाशक है और इस प्रकारका यज्ञ देवताओंके लिये भी विरुद्ध है, अतः ऐसे यज्ञका त्याग कर दे।'

यज्ञादिमें निमन्त्रित ब्राह्मणका त्याग निषिद्ध है

यज्ञ और श्राद्धमें जो निमन्त्रित ब्राह्मणका त्याग करता है, वह पापात्मा शूकर-योनिको प्राप्त होता है। (स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

यज्ञादिमें धर्मपत्नीकी आवश्यकता

पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रवरं स्मृतम्।
अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नरः॥

'हे भूप! पत्नी धर्म, अर्थ तथा कामकी सिद्धिका श्रेष्ठ साधन

है। कोई भी पत्नी-रहित पुरुष चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो—धार्मिक कर्म करनेके योग्य नहीं हो सकता।'

'अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः।' (तैत्तिरीयब्राह्मण २।२।२)

'जो पुरुष पत्नीसे रहित है, वह यज्ञके अयोग्य है।'

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।
‡अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥

(भविष्यपुराण)

'जिस प्रकार एक पहियेवाला रथ और एक पाँखवाला पक्षी चलने या उड़नेमें असमर्थ होता है, उसी प्रकार भार्यारहित पुरुष समस्त कर्मोंमें अयोग्य है।'

इसीलिये '**सस्त्रीको धर्ममाचरेत्**' लिखा है। अर्थात् पत्नीके साथ ही समस्त प्रकारके धार्मिक कार्य करने चाहिये।

धर्माचारपरां पुण्यां साधुव्रतपरायणाम्।
पतिव्रतरतां भार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम्॥
तामेवापि परित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति यः।
वृथा तस्य कृतः सर्वो धर्मो भवति नान्यथा॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ५९।९-१०)

'धर्माचरणमें तत्पर, पुण्यशील, सत्पुरुषोंके व्रतमें परायण, पातिव्रत्य धर्ममें अनुरक्त, सद्‌गुणसम्पन्न और पुण्य कार्योंमें प्रेम रखनेवाली—ऐसी गुण विशिष्ट पत्नीका परित्याग करके जो धर्म-कार्यमें उद्यत होता है उसका किया हुआ सभी धर्म व्यर्थ होता है, यह निश्चित है।'

एवं यो भार्यया हीनस्तस्य गेहं वनायते।
यज्ञाश्चैव न सिद्ध्यन्ति दानानि विविधानि च॥
भार्याहीनस्य पुंसोऽपि न सिद्ध्यति महाव्रतम्।
धर्मकर्माणि सर्वाणि पुण्यानि विविधानि च॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ५९।१९-२०)

---

‡ 'अभार्यस्त्वधमो ज्ञेयः' (ब्रह्मपुराण)

'इसी प्रकार जो भार्याहीन पुरुष है, उसका घर बन के सदृश है, उसके किये हुए यज्ञ निश्चित ही फलदायक सिद्ध नहीं होते और विविध दान भी निष्फल होते हैं। भार्याहीन पुरुषके महाव्रत और समस्त प्रकारके धर्म-कर्म पुण्य भी सिद्ध नहीं होते।'

'भार्यां विना च यो धर्मः स एव विफलो भवेत्।'

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ५९।३४)

'भार्याके बिना अनुष्ठित धर्म निष्फल होता है।'

भार्यां विना तु यो लोके धर्मं साधितुमिच्छति।
स गार्हस्थ्यं विलोप्यैव एकाकी बिचरेद् वनम्॥
विफलो जायते लोके तं न मन्यन्ति देवताः।
यज्ञाः सिद्धिं तदायान्ति यदा स्याद् गृहिणी गृहे॥
एकाकी स समर्थो न धर्मार्थसाधनाय च।

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ६०।४-६)

'इस संसारमें जो मनुष्य धर्मपत्नीके बिना धार्मिक कृत्य सम्पादन करना चाहता है, वह गृहस्थाश्रमका परित्याग कर एकाकी जंगलमें विचरण करे। क्योंकि पत्नीके बिना किया हुआ धर्म-कार्य विफल होता है और उसको देवता नहीं मानते। अतः यज्ञ तभी सफल होते हैं, जब घरमें गृहिणी रहती है। इसलिये एकाकी पुरुष धर्मार्थ-साधन-सिद्धिमें कदापि समर्थ नहीं हो सकता।'

यस्य भार्या विदूरस्था पतिता वा रजस्वला।
अनिष्टा प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधौ क्रिया॥
अन्यां कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु प्रतिरूपिकाम्।
क्वचिच्छरमयीं पत्नीं नित्यकर्माणि कारयेत्॥

(वाधूलस्मृति)

'जिसकी पत्नी दूर हो, पतित हो, रजस्वला हो, अनिष्ट करने-वाली हो अथवा अनुकल न हो, ऐसी स्थितिमें भी अपनी पत्नीके

प्रतिनिधिरूपमें कुशाकी अथवा शरकी पत्नीका निर्माण कर नित्य-कर्म करे।'

यज्ञादिमें सङ्कल्पकी आवश्यकता

सङ्कल्पेन विना कर्म यत्किञ्चित्कुरुते नरः।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्॥
(भविष्यपुराण)

'मनुष्य सङ्कल्पके बिना जो कुछ भी कर्म करता है उसका फल बहुत थोड़ा होता है। उसके आधे पुण्यका क्षय हो जाता है।'

'सङ्कल्पं विधिवत्कुर्यात् स्नान-दान-व्रतादिके।'
(मार्कण्डेयपुराण)

'स्नान, दान, व्रत आदिमें विधिवत् संकल्प करना चाहिये।'

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥
(मनु० २।३)

'किसी कामको करनेकी इच्छाका मूल संकल्प है। इस कामसे यह अभीष्ट फल सिद्ध किया जाता है, इस प्रकारकी बुद्धि संकल्प है। संकल्पमूलक ही यज्ञ हैं—संकल्पसे ही यज्ञ होते हैं। व्रत, नियमरूप धर्म सब संकल्पसे होते हैं।'

सङ्कल्पमें प्रतिदिन मास, पक्ष, तिथि आदिका उच्चारण आवश्यक है

मास-पक्ष-तिथीनाञ्च निमित्तानां च सर्वशः।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्॥
(देवलः)

'यज्ञ आदि कर्मोंमें मास, पक्ष, तिथि एवं यज्ञ आदिके निमित्तों-का साकल्येन उल्लेख न करता हुआ पुरुष यज्ञके फलका भाजन नहीं होता अर्थात् उसे यज्ञफल प्राप्त नहीं होता है।'

अन्यच्च—

प्रातरेव हि सङ्कल्पे देशकालानुकीर्तनम् ।
ततोऽद्यपूर्वोक्तगुणैर्विशिष्टायां तिथाविति ॥
न्यूनाधिकेषु योगेषु पुनः कालादिकीर्तनम् ।
विदुषां सूक्ष्मदृष्टीनां याज्ञिकानामिदं मतम् ॥
यदि किञ्चिन्न जानन्ति देशं वा कालमेव वा ।
तदा तिथिर्विष्णुरिति कर्मादौ संस्मरेद् द्विजः ॥

'प्रातःकालमें ही संकल्पमें देश, काल आदिका उच्चारण करना चाहिये, उसके बाद 'अद्य पूर्वोच्चारितगुणविशिष्टायां तिथौ' (आज पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त तिथिमें) इतना ही कहना चाहिये। योगोंके न्यून या अधिक होने पर फिर काल, देश आदिका उच्चारण करना चाहिये, यह सूक्ष्मदृष्टि विद्वान् याज्ञिकोंका मत है। यदि देश अथवा काल कुछ भी न जानते हों अर्थात् देश अथवा कालका ज्ञान बिलकुल न हो, तो ब्राह्मण तिथि विष्णु यों कर्मके आदिमें स्मरण कर लें।' कहा भी है—

तिथिर्विष्णुस्तथा वारो नक्षत्रं विष्णुरेव च ।
योगश्च करणं विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

यज्ञादिमें चतुर्वेद पारायणकी आवश्यकता

एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् ।
तेषां च वरणं कार्यं वेद-पारायणाय वै ॥
(रुद्रयामल)

'यज्ञादिमें चारों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा वेदोंका पारायण करानेके लिये उनका वरण करना चाहिये और उन्हें दक्षिणा आदिसे प्रसन्न करना चाहिये।'

यज्ञादिमें प्रायश्चित्तकी आवश्यकता

महत्कर्म समुत्कर्तुं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत सायाह्ने वाऽपराह्णके ॥

(प्रतिष्ठेन्दु)

'यज्ञ, याग आदि महान् कर्म करनेके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। उसे यागारंभके पहले दिन सायंकालमें या अपराह्णमें करना चाहिये।'

यज्ञादि धार्मिक कार्योंमें सर्वप्रथम यजमानको अपने ज्ञाताज्ञात समस्त दोषोंके निवारणार्थ एवं अपनी शरीर-शुद्धिके लिये अवश्य ही यथाशक्ति सर्वप्रायश्चित्त करना चाहिये।

धर्मकार्यं महत्कर्तुं यदीच्छेद्दशभिर्दिनैः ।
प्रायश्चित्तं यथावित्तं प्राक् कार्यं तेन शुद्धये ॥
षडब्दं चतुरब्दं वा त्र्यब्दं द्व्यब्दं तथैव वा ।
गो-हिरण्यादिदानं वा कृत्वा कर्म समारभेत् ॥

(परशुरामकारिका)

'मनुष्य यदि विशाल यज्ञादि धार्मिक कृत्य करनेकी इच्छा करे, तो उसे दस दिन पहले अपने शरीरकी शुद्धिके लिये यथाशक्ति षडब्द अथवा चतुरब्द अथवा त्र्यब्द अथवा द्व्यब्द प्रायश्चित्त करना चाहिये और गोदान एवं सुवर्ण आदिका दान करके कर्म प्रारम्भ करना चाहिये।'

नारायण भट्टने तो षडब्द, त्र्यब्द और सार्धाब्द—इस क्रमसे प्रायश्चित्त करनेके लिये लिखा है। अतः इनमेंसे किसी एक प्रायश्चित्तको करके यज्ञका प्रारम्भ करना चाहिये।

सर्वप्रायश्चित्तमें द्रव्यका निर्णय

अब्द—त्रिंशत् (३०)
सार्धाब्द—पञ्चचत्वारिंशत् (४५)
त्र्यब्द—नवतिः (९०)
चतुरब्द—विंशत्युत्तरशतम् (१२०)
षडब्द—अशीत्यधिकशतम् (१८०)
द्वादशाब्द—षष्टच्युत्तरत्रिशतम् (३६०)

इति प्राजापत्यानि कुर्यात्। प्राजापत्याभावे तावत्संख्यकगवाँ दानं कार्यम्। तदशक्तौ तन्निष्क्रयदानम्।

'द्वात्रिंशत्पणिका गावः' (कात्यायनः)

धेनुः पञ्चभिराढ्यानां मध्यानां त्रिपणात्मिका।
+कार्षापणैकमूल्या हि दरिद्राणां प्रकीर्तिता॥

पादकृच्छ्रादि प्रायश्चित्तमें तत्तद् वस्तुओंके दानका क्रम

पादकृच्छ्रे वस्त्रदानं कृच्छ्रार्द्धे तैलकाञ्चनम्।
पादोनकृच्छ्रे गोदानं कृच्छ्रे गोमिथुनं स्मृतम्॥

'पादकृच्छ्रमें वस्त्र, अर्धकृच्छ्रमें तेल और सुवर्ण, पादोनकृच्छ्रमें गोदान और कृच्छ्रमें दो गौका दान करना चाहिये।'

सर्वप्रायश्चित्तमें राजा आदिके वपनका विचार

'राज्ञः तत्पुत्रस्य च बहुश्रुतविप्राणामिच्छया वपनाभावः। तदा च द्विगुणं प्रायश्चित्तं दक्षिणा च द्विगुणा भवतीति।'

(रुद्रकल्पद्रुम, पृष्ठ २९३)

'राजाका और राजकुमारका बहुश्रुत (विद्वान्) ब्राह्मणोंकी

+षोडशपणः सैककार्षापणः।

यदि इच्छा हो तो मुण्डनाभाव (क्षौर न करना) कहा गया है। ऐसी परिस्थितिमें प्रायश्चित्त दुगुना और दक्षिणा भी दुगुनी होती है।'

यज्ञादिमें ब्राह्मण और राजाकी आज्ञासे यजमान बाल कटा सकता है

नृप-विप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्ध-मोक्षणे।
उद्वाहेऽखिलवारर्क्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥
(नारदः)

'राजा और ब्राह्मणकी आज्ञासे यज्ञमें, मरणमें, कारागृहसे मुक्ति मिलनेपर और विवाहमें सब वार, सब नक्षत्र और सब तिथियोंमें क्षौरकर्म इष्ट है।'

यज्ञादिमें न्यासकी आवश्यकता

पूजाजपार्चना होमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ॥
(शारदातिलक टीका, ४ पटल)

'सिद्ध मन्त्र करने पर भी पूजन, जप, अर्चन तथा होमकर्म अंगन्यासके बिना फलप्रद नहीं होते। अतः अङ्गन्यास, करन्यास अवश्य करना चाहिये।'

न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं बुधाः।
न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु तं यजेत् ॥
(शारदातिलक टीका, ४ पटल)

'पण्डितोंने न्यासके बिना किया हुआ जप आसुरी कहा है, उसका कुछ फल नहीं होता। इसलिये न्यासादि कर्मद्वारा तदाकार बनकर अर्थात् देवस्वरूप होकर देवार्चन करना चाहिये-'देवो भूत्वा देवान् यजेत्।'

'न्यासहीनं तु यत्कर्म गृह्णन्त्यर्द्धं तु राक्षसाः ।'

(प्रतिष्ठातिलक)

'न्यासके बिना जो कर्म किया जाता है, उसका आधा फल राक्षस ले लेते हैं ।'

'मन्त्राक्षराणि विन्यसेद्देवताभावसिद्धये ।'

(शारदातिलक टीका, ४ पटल)

'देव-भावकी सिद्धिके लिये मंत्राक्षरोंका यथास्थान न्यास करे ।'

मण्डपमें घड़ी (घटीयन्त्र) की आवश्यकता

'कालज्ञानार्थं घटीयन्त्रादिकं संस्थापयेत्' इति प्रतिष्ठेन्दौ हेमाद्रौ च ।

'समयके परिज्ञानार्थ यज्ञ-मण्डपमें 'घड़ी' यन्त्रको लगाना चाहिये, यह प्रतिष्ठेन्दु और हेमाद्रिमें लिखा है ।'

तिलक (चन्दन) धारणकी आवश्यकता

स्नानं सन्ध्या पञ्चयज्ञान् पैत्र्यं होमादिकर्म यः ।
विना तिलकदर्भाभ्यां कुर्यात्तन्निष्फलं भवेत् ॥

(पद्मोत्तरखण्ड)

'जो पुरुष स्नान, सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ, तर्पण, श्राद्ध आदि पितृ-कर्म तथा होम आदि कार्य तिलक और दर्भ (कुश) के बिना करता है, उसका वह निष्फल जाता है ।'

तिलकसे रहित ब्राह्मणको नमस्कार करनेका निषेध

यदि स्नातो भवेद्विप्रो मस्तकं तिलकं विना ।
नमस्कारं न कुर्यात्तमिति प्रोचुर्मनीषिणः ॥

'यदि कोई ब्राह्मण स्नान करके अपने मस्तकमें तिलक न लगावे तो उसे प्रणाम नहीं करना चाहिये, ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कहना है ।'

यज्ञादिमें ग्राह्य ब्राह्मण

विप्राः कार्याः सदाचाराः श्रोत्रियाः सत्यवादिनः ।
षट्कर्मनिरताः श्रेष्ठाः साधवश्च बहुश्रुताः ॥
जपनिष्ठास्तपोनिष्ठा धर्मिष्ठा वेदवादिनः ।
‡अनूचानाः कुलीनाश्च धर्मशास्त्रविशारदाः ॥
पुण्य-पापविचारज्ञा वेदवेदाङ्गपारगाः ।

'यज्ञादिमें इस प्रकारके ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये—जो सदाचारी हों, जो श्रोत्रिय हों (सम्पूर्ण स्वशाखाका अध्ययन कर चुके हों), जो सत्यवक्ता हों, जो यज्ञ,अध्ययन, दान, याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह—इन छह कर्मोंमें निरत हों, जो प्रशंसनीय हों, जो परोपकारपरायण (साध्नुवन्ति परकार्याणीति साधवः) हों, जो बहुत शास्त्रीय विषयोंके जानकार हों, जो गायत्री आदिका जप करनेवाले हों, जो तप करनेवाले हों, जो स्वधर्ममें स्थित हों, जो वेदका अध्यापन करनेवाले हों, जो साङ्ग वेदमें पारङ्गत हों, जो कुलीन (सद्वंशोद्भव) हों, जो धर्मशास्त्रकोविद हों, जो पुण्य और पापके विचारको जाननेवाले हों और जो वेद तथा वेदाङ्गके पण्डित हों ।'

वैष्णवाः कर्मनिरताः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः ।
नियोज्या वैष्णवे यागे स्फुरन्मुख्या द्विजोत्तमाः ॥
शुद्धवंशसमुत्पन्ना वैष्णवाश्च जितेन्द्रियाः ।
एते विप्राः प्रशस्ता वै यागकर्मविशारदाः ॥
एषु आचार्यकः प्रोक्तो वैष्णवो वेदपारगः ।
द्विजश्रेष्ठो महात्मा च कुशलो विष्णुकर्मणि ॥
वेदशास्त्रार्थसम्पन्नः सर्वकार्यार्थसाधकः ॥

(वैष्णवसिद्धान्त)

---

‡अनूचानाः—गुरोः सकाशाद् अधीतसाङ्गवेदाः । 'अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गुरोस्तु यः' इत्यमरः । साङ्गे प्रवचने साङ्गे वेदे ।

'विष्णुयागमें जो ब्राह्मण श्रेष्ठ हों, जो वैष्णव हों, जो विहित श्रौत और स्मार्त कर्ममें परायण हों, जो प्रतिग्रहसे विमुख हों, जो वाणीके दोषसे रहित हों, जिनकी वाणीमें किसी प्रकारका दोष न हो अर्थात् स्फूर्तिमती वाणीवाले, जो जितेन्द्रिय हों और जो यज्ञकर्मके पण्डित हों, ऐसे ब्राह्मण वैष्णव-यागमें प्रशस्त और नियुक्तिके योग्य कहे गये हैं। इनमें जो वैष्णव हो, वेदपारगामी हो, ब्राह्मण-श्रेष्ठ हो, महात्मा हो, विष्णुयज्ञमें कुशल हो, वेदशास्त्रके अर्थको जाननेवाला हो और जो सब कामनाओंका साधक हो, वह आचार्य कहा गया है।'

यज्ञादिमें त्याज्य ब्राह्मण

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन॥
श्राद्धे च पितरो घोरं (नरकं) दानं चैव तु निष्फलम्।
यज्ञे च फलहानिः स्यात्तस्मात्तान् परिवर्जयेत्॥
(अत्रिस्मृति ३८३, ३८४)

'ज्योतिषी, अभिचार-कर्म करनेवाले, काश्मीरदेशी, पौराणिक-इन्हें श्राद्ध, यज्ञ और महादानमें कदापि वरण नहीं करना चाहिये। श्राद्धमें यदि उनका वरण किया जाय, तो पितरोंको नरक होता है और महादानमें यदि वरण किया जाय, तो दान निष्फल होता है। यज्ञमें वरण करनेसे यज्ञका फल नहीं होता। अतः उपर्युक्त द्विजोंका श्राद्धादिमें त्याग करना चाहिये।'

आविकाश्चित्रकारश्च वैद्यो† नक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि॥

---

† 'चिकित्सकस्य यश्चान्नमभोज्यं रक्षिणस्तथा।'
(महाभारत, शान्तिपर्व ३६।३०)

×मागधो माथुरश्चैव कापटः कीकटानजौ ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥
(अत्रिस्मृति ३८५,३८६)

'भेड़, बकरी पालनेवाला, चित्रकार, वैद्य और ज्योतिषी—ये चार प्रकारके ब्राह्मण यदि बृहस्पतिके सदृश विद्वान् हों तो भी इनका यज्ञादिमें पूजन नहीं करना चाहिये । मागध (स्तुतिपाठक), मथुरानिवासी (बहुभोजी), कपटी, कीकट देश (गया प्रदेश) अर्थात् विहार (देखिए-भागवत ७।१०।१९ तथा ११।२१।८) और आन देशमें उत्पन्न होनेवाला-ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण यदि बृहस्पतिके सदृश विद्वान् हों तो भी इनका यज्ञादिमें पूजन नहीं करना चाहिये ।'

न तत्र कुनखी काणो हीनाङ्गो विकलस्तथा ।
क्षयरोगी च कुष्ठी च श्यावदन्तोऽभिशापकः ॥
बन्ध्यश्च विधुरो वापि क्रूरस्तु खलसेवकः ।
नक्रवृत्तिश्च दम्भी च हैतुको ज्ञानदुर्बलः ॥
सहोपपतिरुन्मत्तो व्यसनी सोमविक्रयी ।
कन्याविक्रयकृद् वाजिविक्रयी पिशुनोऽनृतः ॥
लोकद्विष्टो पराधीनो राजद्रोहपरायणः ।
एते चान्येन विप्रास्युर्न वाच्याः ❀स्वस्तिवाचने ॥
(विधानरत्नमाला)

× 'ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ।'
(औशनसीस्मृति ७)

'ब्राह्मणीमें वैश्यके संसर्गसे उत्पन्न होनेवालेको मागध कहते हैं ।' 'मागधः स्तुतिपाठकः' । किसीने मागधका 'मगध देश' भी अर्थ कहा है । गयाको भी 'मगध' कहते हैं ।

❀ स्वस्तिवाचने—यज्ञकर्मणि ।

'यज्ञमें कुत्सित नखवाला, काना, विकलाङ्ग (अङ्गहीन), मानसिक एवं शारीरिक स्वस्थतासे रहित, क्षयरोगी, कुष्ठरोगसे पीडित, काले दांतवाला, शाप देनेवाला, निःसन्तान, पत्नीविहीन, निर्दय, खलकी सेवामें रत, नक्रवृत्ति अर्थात् मगरके समान जो पावे उसे निगल जानेवाला, दाम्भिक, वेदविरोधी तर्कोंको व्यवहारमें लानेवाला, अल्प ज्ञानवाला, जिसके घरमें उपपति रहता हो, पागल, द्यूत आदिका व्यसनी, सोमरसका विक्रय करनेवाला, कन्याका विक्रय करनेवाला, घोड़ोंको बेचनेवाला, चुगलखोर, झूठा, लोक-विद्विष्ट, पराधीन, राजद्रोहमें तत्पर, ये और ऐसे और भी यज्ञमें वरण योग्य नहीं हैं।'

काणः कुष्ठिर्जडः क्रोधी *पुनर्भूः श्यावदन्तकः।
निन्दितः पतितः क्लीबः कुदेशी वेदवर्जितः॥
हीनाङ्गोऽप्यधिकाङ्गो वा [1]छिन्नाङ्गः कर्कशः शठः।
मागधो वामनः कृष्णो द्विजो वर्ज्यो जपादिषु॥

(रुद्रकल्पद्रुम)

'काना, कोढ़ी, मूर्ख, क्रोधी, वर्णशङ्कर, काले दाँतोंवाला, निन्दित, पतित, नपुंसक, कुदेश—अर्थात् विदेशका रहनेवाला, जिसने वेद न पढ़ा हो, जिसके शरीरका कोई अङ्ग हीन अथवा कोई अङ्ग अधिक हो गया हो, जिसका कोई अङ्ग कट गया हो, जो देखनेमें भयङ्कर मालूम हो, मगध देशका निवासी, बौना और जो अत्यन्त कृष्ण वर्णका हो—ऐसे ब्राह्मण जपादि कार्योंमें सर्वथा त्याज्य हैं।'

व्रात्यो ×देवलकश्चैव दुःशीलो गणकस्तथा।
शूद्रापतिः कर्महीनो लोके कुत्सितवृत्तिमान्॥

---

* अक्षतायां क्षतायां वोत्पन्नः पुनर्भूः।

१ छिन्नाङ्गो विद्धप्रजननः। अङ्गान्तरच्छिन्नोऽपि।

× देवार्चनपरो यस्तु वित्तार्थी वत्सरत्रयम्।
असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥

महापातकिनः सङ्गी क्षयरोगी भगन्दरी ।
दुश्चर्मा शूद्रसेवी च भिषक् शूद्रान्नभक्षकः ॥
वृथा तुलादिसंग्राही मर्यादाघातकस्तथा ।
ग्रामदाही ग्रामणीश्च यो दुःसंसर्गवान् द्विजः ॥
एतेऽनर्हाश्च विज्ञेया अयाज्याः परिकीर्तिताः ।
(कूर्मपुराण)

'व्रात्य (उपनयनादि संस्कारोंसे रहित), देवलक (वेतन-रूपमें द्रव्य लेकर देवताओंका पूजन करनेवाला), शीलतासे रहित, गणक (ज्योतिषी), शूद्रा स्त्रीका पति, क्रियाहीन, कुत्सित वृत्तिवाला, महापापियोंसे संसर्ग रखनेवाला, क्षयका रोगी, भगन्दर रोगवाला, निकृष्ट चर्म-रोगवाला, शूद्रकी सेवा करनेवाला, वैद्य, शूद्रका अन्न भक्षण करनेवाला, तुलादान लेनेवाला, मर्यादा नष्ट करनेवाला, ग्राममें अग्नि लगानेवाला, ग्रामाधिपति और दुर्जनोंका साथ करनेवाला—ऐसे ब्राह्मण यज्ञादि शुभ कार्योंमें पूजनके अयोग्य कहे गये हैं और इन्हें यज्ञके अयोग्य कहा गया है ।'

वर्जयेच्च परानन्दरहितं रूपवर्जितम् ।
कुष्ठिनं क्रूरकर्माणं निन्दितं रोगिणं द्विजम् ॥
अष्टप्रकारकुष्ठेन गलत्कुष्ठिनमेव च ।
श्वित्रिणं जनहिंसार्थं सदार्थग्राहिणं तथा ॥
स्वर्णविक्रयिणं चौरं बुद्धिहीनं च वर्बरम् ।
श्यावदन्तं कुलाचार-रहितं शान्तिवर्जितम् ॥
सकलं नेत्ररोगं च पीडितं परदारगम् ।
असंस्कारप्रवक्तारं स्त्रीजितं चाधिकाङ्क्षकम् ॥
कपटात्मानकं हिंसाविशिष्टं बहुजल्पकम् ।
बह्वाशिनं हि कृपणं मिथ्यावादिनमेव च ।
अशान्तं भावहीनं च सदाचारविवर्जितम् ॥

'दूसरेकी प्रसन्नतासे अप्रसन्न होनेवाला, कुत्सित रूपवाला,

कुष्ठ रोगवाला, क्रूर कर्म करनेवाला, निन्दनीय और रोगी—ये ब्राह्मण यज्ञादिके लिये सर्वथा त्याज्य हैं। आठ प्रकारके श्वित्र कुष्ठ रोगसे और गलित कुष्ठसे पीड़ित, मनुष्योंको मारनेवाला, सर्वदा दूसरोंके धनको लेनेवाला, सुवर्णको बेचनेवाला, चोरी करनेवाला, बुद्धिहीन, अत्यन्त रूखे स्वभाववाला, काले दाँतवाला, कुलाचारसे हीन, शान्तिसे रहित, नेत्रका रोगी, दूसरेकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, व्यर्थकी सारहीन बातें करनेवाला, स्त्रीके वशमें रहनेवाला, अधिक अंगवाला, कपटी, हिंसक, बहुत बोलनेवाला, बहुत भोजन करनेवाला, कृपण, मिथ्याभाषी, अशान्त, भावहीन और सदाचारसे रहित—इस प्रकारके सभी ब्राह्मण यज्ञादिमें त्याज्य हैं।'

वैष्णवे शान्तिके होमे तथा देवार्चने जपे।
भार्याहीनो द्विजो यस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतः॥
अपुत्राः पत्नीहीनाश्च श्राद्धे ये च विगर्हिताः।
हव्ये कव्ये जपे दाने वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥
काणाः कुष्ठास्तथा कुब्जाः स्थूला वामनसम्भवाः।
क्लीबाश्च पङ्गुलुब्धाश्च बधिरान्धाश्च ये द्विजाः॥
एते विप्रा न पूज्याश्च श्राद्धे दाने जपे तथा।
विष्णुस्मरणहीनाश्च ते वै त्याज्याश्च दूरतः॥
(वैष्णवसिद्धान्त)

महर्षि शातातप कहते हैं—

अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता इति शातातपोऽब्रवीत्।
आद्यस्तु राजभृत्यः स्याद् द्वितीयः क्रय-विक्रयी॥
तृतीयो [1]बहुयाजाख्यश्चतुर्थो[2]ऽश्रौतयाजकः।

---

१ यस्तु सत्यपि जीवने धनाधिक्यवाञ्छया याजनशीलः सोऽत्र बहुयाजी।

२ यः पुमान् श्रौतकर्मण्यधिकृतोऽनादरेण स्वयं श्रौतं नानुतिष्ठति, अन्यानपि नानुष्ठापयति, किन्तु स्मार्तकर्मपरः सन्ननुतिष्ठत्यनुष्ठापयति च सोऽयमश्रौतयाजकः।

पञ्चमो *ग्रामयाजी च षष्ठोऽसन्ध्यो† द्विजो मतः ॥

'महर्षि शातातपने छः प्रकारके ब्राह्मणोंको अब्राह्मण कहा है— राजाके यहाँ नौकरी करनेवाले, दूकानदार, धन रहने पर भी लोभवश यज्ञ करानेवाले, जो श्रौतयागाधिकारी होते हुए भी न तो स्वयं श्रौतयज्ञ करे और न दूसरेको करावे, किन्तु स्मार्त्त-कर्ममें ही तत्पर रहे, ऐसे अश्रौतयाजक, जो योग्यायोग्यका विचार न करते हुए सर्वत्र गाँवों और नगरोंमें द्रव्यके लोभसे यज्ञ करावे और जो ठीक समय सन्ध्या न करे, ऐसे ब्राह्मण यज्ञादिमें अग्राह्य (ग्रहणके अयोग्य) हैं।'

अन्यत्र लिखा है—

परच्छिद्रेषु यः पापो निमग्नो मोहतत्परः ।
वर्जनीयः शुभे कार्ये होमे चैव विशेषतः ॥
श्राद्धेषु यज्ञकार्येषु विवाहसमये तथा ।
परमर्मरतं नित्यं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥
तस्मात्सर्वप्रयस्नेन सदोषान् वर्जयेत्सदा ।
निर्दोषाः फलदा विप्राः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥

'जो पापी मोहवश दूसरेके छिद्रान्वेषणमें तत्पर रहता है, वह माङ्गलिक कृत्यमें, विशेषतः होमकर्ममें वर्जनीय है। जो मनुष्य दूसरेके मर्मान्वेषणमें निरत रहता है, वह श्राद्ध, यज्ञकार्य एवं विवाह कार्यमें वर्ज्य कहा गया है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक उक्त दोषवाले ब्राह्मणोंका त्याग करना चाहिये। दोषरहित ब्राह्मण ही समस्त कर्मोंमें ग्राह्य हैं और वही फलप्रद होते हैं।'

---

* ग्रामे नगरे च योग्या अयोग्याश्च यावन्तः सन्ति **धनाभिलाषेण** तावतां सर्वेषां याजको ग्रामयाजी ।

† यः प्रातः सूर्योदयात्प्राक् सन्ध्यां नोपास्ते, सायं **चास्तमयात्प्राक्** नोपास्ते सोऽयमब्राह्मणः ।

कर्मकाण्डप्रदीपमें लिखा है—

'[1]**द्विर्नग्न** - [2]**शुक्ल** - [3]**विक्लिद्य** - [4]**श्यावदन्त** - [5]**विद्धप्रजनन**-[6]**व्याधित**-[7]**व्यङ्गि**-[8]**श्वित्रिकुष्ठि**-[9]**कुनखिवर्जम्** ।'

'जिसके शरीरका चमड़ा बिगड़ गया हो, अत्यन्त गोरा या सफेद कुष्ठवाला, लंबे दाँतवाला, स्वभावसे काले दाँतवाला, मुसलमानोंकी कुर्बानीकी तरह जिसके लिङ्गका चर्म काट दिया गया हो, रोगी, हीनाङ्ग अथवा अधिकाङ्ग, गलित कुष्ठ-वाला और बुरे नाखूनवाला, ऐसे ब्राह्मण यज्ञादि कर्मोंमें वर्ज्य हैं।'

त्रिविक्रमपद्धतिमें भी लिखा है—

"**व्यसनी, वामनः, खल्वाटः, कुब्जकः, कुनखी, शठः, चपलः, अधिकाङ्गः, हीनाङ्गः, पापी, कुटिलः, व्याधितः, तार्किकः, वार्द्धिकः, काकस्वरः, बकवृत्तिकः, गुरुदेवद्विजातिनिन्दकः, वृषलीपतिः,**

---

१ द्विर्नग्नः—दुश्चर्मा। तथा च कर्मकाण्डप्रदीपे—

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्।
द्विर्नग्नः स तु विज्ञेयः......................॥

२ शुक्लः—अतिगौरो मण्डलकुष्ठी वा।

३ विक्लिद्यः—दन्तुरः। तथा च वृद्धमनुः—

यस्य नैवाऽधरोष्ठाभ्यां छाद्यते दशनावलिः।
विक्लिद्यः स तु विज्ञेयो ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषणः॥

४ श्यावदन्तः—स्वभावात्कृष्णदन्तः।

५ विद्धप्रजननः—'छिन्नलिङ्गचर्मा'।

६ व्याधितः—व्याधियुक्तः।

७ व्यङ्गः—हीनाङ्गः, अधिकाङ्गः, विरुद्धाङ्गसंस्थितश्चेति।

८ श्वित्रिकुष्ठी—श्वेतकुष्ठी कुष्ठगलिताङ्गः।

९ कुनखी—कुत्सितनखः।

साहसिकः, अशुचिः, पण्यरङ्गोपजीवी, नास्तिकः, क्लीबः, धर्मवृत्ति-विवर्जितः, परदाररतः, निर्घृणी, दुर्हृदः, अतिकृष्णः, अतिगौरः, केकराक्षः, कातरः, जड़ः, पशुशास्त्ररतः, कुण्डः, गोलकः, स्वयंभूः, शवश्राद्धभुक्, लम्बोष्ठकः, भग्नवक्त्रः, शिशुः, अतिवृद्धः, बधिरः, कपिलाङ्गः, व्यङ्गः, गर्वितः, स्तब्धः, कलिप्रियः, परापवादरतः, पिशुनः, असंस्कृतः, दीनः, दुश्चर्मा, सालस्यः, अतिस्थूलः, अतिकृशः, विषग्रन्थोपजीवी, अभिशस्तः, निष्ठीवनशीलः, कुवृत्तिकः, कुष्ठी, काणः, गारुडी, म्लेच्छदेशवासी, मांसभक्षी, तन्त्रशास्त्रविद्वेषकः, पुराणनिन्दकः, प्रतिमानिन्दकः, सन्ध्योपासनरहितः, अनेककार्ययुक्तः, रोगी चेति ।"

यज्ञादिमें ग्राह्य वस्त्र

ईषद्धौतं[1] नवश्वेतं सदशं यन्न धारितम् ।
अहतं[2] तद् विजानीयात् सर्वकर्मसु शोभनम् ॥

(ब्रह्मपुराण)

'रजकसे भिन्न पुरुषद्वारा धोया गया अथवा एकबार धोया हुआ, नवीन, सफेद, दशासे (दोनों ओरके किनारोंसे) युक्त और जो धारण न किया गया हो. उस वस्त्रको 'अहत' जानना चाहिये । वह सब कर्मोंमें शोभन है ।'

---

१. ईषद्धौतम्—अरजकादिना धौतम्, सकृद्धौतमिति वा ।

२. महर्षि कश्यपने तो 'अहत' शब्दका दूसरे ढंगसे अर्थ किया है—

अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
शस्तं तन्माङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ॥

'यन्त्र (कल)से निकले वस्त्रको ब्रह्माने अहत कहा है, वह माङ्गलिक कार्योंमें उतने ही समयके लिये प्रशस्त कहा गया है, सदा नहीं ।'

ईषद्धौतं नवश्वेतं सदशं यन्न धारितम्।
अहतं तद् विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम्॥

(स्मृतिरत्नावली)

'जो वस्त्र रजक (धोबी) से अन्य पुरुषद्वारा धोया गया हो, नवीन, सफेद, दशायुक्त हो तथा जो पहले न पहना गया हो, उसे अहत जानना चाहिये। वह सब कर्मोंमें पवित्र है।'

अधौते कारुधौते च परिदध्यान्न वाससी।
अहते तु परीदध्यात् सर्वकर्मणि संयतः॥

(हेमाद्रि)

'दीक्षित या व्रती (नियमवान्) पुरुष न धोये हुए और धोबीके धोये हुए वस्त्रोंको न पहने। अहत (सदश दशायुक्त) वस्त्रोंको सब कर्मोंमें पहनना चाहिये।'

स्वयं धौतेन कर्तव्या क्रिया धर्म्या विपश्चिता।
न तु [1]नैजकधौतेन नोपभुक्तेन वा क्वचित्॥

(हेमाद्रि)

'विद्वान् पुरुषको स्वयं अपने हाथसे धोये हुए वस्त्रसे धार्मिक क्रिया करनी चाहिये, किन्तु धोबीके द्वारा धुले हुए अथवा जिसे पहन कर भोजन आदि किया गया हो, ऐसे उपभुक्त (पहले पहने हुए) वस्त्रसे धार्मिक कर्म कभी नहीं करना चाहिये।'

'अहतं वासो धौतं वा *अमौत्रेण आच्छादयीत।'

(पारस्करगृह्यसूत्र)

'अथवा अहत (सदश दशायुक्त) वस्त्र यदि धोबीके द्वारा न धोया गया हो, धोबीसे अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुषके द्वारा धोया गया हो तो उसे धर्मकर्म में पहनना चाहिये।'

---

१ नेजको रजकः।

*अमौत्रेण—अरजकेन।

यज्ञादिमें त्याज्य वस्त्र

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येन विशेषतः ।
मूषकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः ॥
(महाभारत)

'फटे हुए, जले हुए, दूसरेके, चूहेने जिसे काटा हो, पुराना हो, ऐसे कपड़ोंसे विद्वान् पुरुष कर्म न करें ।'

न रक्तमुल्बणं* वासो न नीलं च प्रशस्यते ।
मलाक्तं च दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः ॥
(आचारादर्श)

'वस्त्र न अत्यन्त लाल और न अत्यन्त नीला प्रशस्त है । मलिन (मलयुक्त) और दशासे विहीन (किनारा रहित) वस्त्रका विद्वान् पुरुष परित्याग करे ।

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते ।
दशाहीनं मलाक्तञ्च वर्जयेत् कुत्सितं बुधः ॥
(भृगुः)

अधौतं क्षारधौतं च पूर्वेद्युर्धृतमेव च ।
त्रयमेतदसम्बद्धं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥
(याज्ञवल्क्यः)

'बिना धोया हुआ, सोडा, सज्जी आदिसे पका कर धोया हुआ और पहले दिन पहना हुआ ये तीनों प्रकारके वस्त्र धर्म-कर्ममें पहनने योग्य नहीं हैं, इनका सब कर्मोंमें परित्याग करना चाहिये ।'

---

*उल्बणम्—प्रव्यक्तम्, एतच्च रक्तविशेषणम्, तेनात्यन्तरक्तमित्यर्थः उल्बणमञ्चलमिति केचित् ।

काषायं कृष्णवस्त्रं वा मलिनं केशदूषितम्।
जीर्णं नीलं सन्धितं च पारक्यं मैथुने धृतम्॥
छिन्नाग्रमुपवस्त्रं च कुत्सितं धर्मतो विदुः।
(व्याघ्रपादः)

'गेरुवा, काला, गन्दा, जिसमें क्षौर समयके बाल लगे हों, पुराना, नीले रंगका, जिसमें छिद्र हों, दूसरेका हो, जिसको धारण कर स्त्री-प्रसङ्ग किया हो, जिस उपवस्त्रका किनारा या अंचल फट गया हो, ऐसे वस्त्रोंको धर्मादि कार्योंके अयोग्य कहा है।'

काषायं कृष्णवस्त्रं वा मलिनं केशदूषितम्।
छिन्नाग्रश्चोपवस्त्रश्च कुत्सितं धर्मतो विदुः॥
(जातूकर्ण्यः)

ईषद्धौतं स्त्रिया धौतं शूद्रधौतं तथैव च।
प्रसारितं यमदिशि गर्हितं सर्वकर्मसु॥
(गर्गः)

'रजकसे भिन्न पुरुषद्वारा धोया गया अथवा एक बार धोया हुआ, स्त्रीके द्वारा धोया हुआ और शूद्रके द्वारा धोया हुआ एवं यमकी दिशा (दक्षिण दिशा) में फैलाया हुआ वस्त्र समस्त कर्मोंमें त्याज्य है।'

गृह्यसंग्रहमें लिखा है—

कटिवेष्ट्यं तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन वा कृतम्।
मूत्र-मैथुनकृद्वस्त्रं धर्मकार्ये विवर्जयेत्॥

'कमरमें बाँधनेका वस्त्र अर्थात् लंगोटा, चद्दर, जिसको पहनकर पाखानेमें जाय, पेशाब करे, स्त्री-प्रसङ्ग करे, ऐसे वस्त्रोंको धर्मकार्यमें व्यवहार नहीं करना चाहिये।'

अन्यत्र भी कहा है—

न कुर्यात् सन्धितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप।
न दग्धं न च वै छिन्नं पारक्यं न तु धारयेत्॥

'धार्मिक कार्योंमें सिले हुए, जले हुए, फटे हुए तथा दूसरेका वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए।'

यज्ञादिमें आर्द्र वस्त्र धारणका निषेध

आर्द्रवासास्तु यः कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहान्।
सर्वं तद्राक्षसं विद्यात् बहिर्जानु च यत्कृतम्॥
यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा।
जपो होमस्तथा दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।
(आपस्तम्बः)

'जो मनुष्य गीले कपड़ेसे जप, होम, प्रतिग्रह आदि कर्म करें अथवा जानु (घुटने) के बाहर हाथ निकाल कर करे, वह राक्षस कर्म कहा जाता है। जलमें सूखे कपड़ेसे, स्थलमें गीले कपड़ेसे किये हुए जप, होम, दान आदि सभी कृत्य निष्फल होते हैं।'

यज्ञादिमें नील रंगके विहित वस्त्र

केवलं पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते।
द्रव्यान्तरयुता नीली न दुष्यति कदाचन॥
(याज्ञवल्क्यः)

'केवल रेशमी वस्त्र पर ही नील रंगका दोष नहीं होता है, परन्तु दूसरे द्रव्यसे युक्त नील वस्त्रको दूषित नहीं समझना चाहिये।'

कम्बले पट्टवस्त्रे च नीलीरागो न दुष्यति।
स्त्रीणां क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति॥
(आचारचिन्तामणि)

'कंबलमें, रेशमी वस्त्रमें, स्त्रीके साथ रति किये गये वस्त्रमें तथा विस्तरमें नील रंगका रहना निषिद्ध नहीं होता है।'

यज्ञादिमें नील रंगके वस्त्र धारणका निषेध

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म कुरुते नरः।
स्नानं दानं तथा होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीरक्तस्य धारणात्॥
(भविष्यपुराण)

'नीलसे रंगे हुए वस्त्रसे मनुष्य स्नान, दान, होम, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण तथा महायज्ञ आदि जो भी कार्य करता है, उसके सभी कर्म नील वस्त्र धारणसे व्यर्थ हो जाते हैं।'

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥
(अङ्गिरःसंहिता)

'नील रंगके वस्त्रको धारण कर जो मनुष्य स्नान, दान, जप, हवन, वेदका स्वाध्याय, तर्पण और महायज्ञ करता है, उसके सभी कर्म व्यर्थ होते हैं।'

नीलीरक्तं च यद् वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत्।
द्रव्यान्तरयुता नीली न दुष्यति कदाचन॥
केवलं पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते।
स्त्रिया वस्त्रं सदा त्याज्यमन्यवस्त्रं विवर्जयेत्॥
(याज्ञवल्क्यः)

'नीलसे रंगे हुए वस्त्रका दूरसे ही त्याग कर दे, परन्तु दूसरे द्रव्यसे युक्त नीले वस्त्रको त्याज्य नहीं समझना चाहिये। केवल रेशमी कपड़े पर ही नीलका दोष नहीं है। स्त्रीका वस्त्र तथा अन्य किसी व्यक्तिका भी वस्त्र शुभ-कार्योंमें सर्वथा त्याज्य है।'

नील रंगके वस्त्र धारण करनेका प्रायश्चित्त

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽङ्गेषु धारयेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥
(आपस्तम्बसंहिता ६।४)

'ब्राह्मण यदि नीलसे रंगे हुए वस्त्रको धारण करे, तो वह एक रात और दिनका पूर्ण उपवास करके पञ्चगव्यद्वारा ही शुद्ध हो सकता है।'

नीलीरक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥
(अङ्गिरःसहिता)

'अज्ञानसे नील रंगके वस्त्रको पहननेसे अहोरात्र उपवास करके और पञ्चगव्यका प्राशन करके शुद्धि होती है।'

यज्ञादिमें एक वस्त्र धारणका निषेध

×नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याद्भोजनं च सुरार्चनम्।
तत्सर्वमसुरेन्द्राणां ब्रह्मा भागमकल्पयत्॥
(व्याघ्रपादः)

'ब्राह्मणको उचित है कि वह एक कपड़ा शरीरमें धारण कर भोजन अथवा देवाराधन न करे, क्योंकि ब्रह्माने ऐसा करना असुरोंके लिये ही आदेश किया है।'

×सव्यादंसात्परिभ्रष्टकटिदेशे धृताम्बरः।
एकवस्त्रं तु तं विद्याद् दैवे पित्र्ये च वर्जयेत्॥
(शातातपः)

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा।
नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत *द्विजवाचनिके जपे॥
(विष्णुपुराण ३।१२।२०)

'होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, पुण्याहवाचनमें और जपमें एक वस्त्र धारण करके कभी प्रवृत्त नहीं होना चाहिये (अर्थात् शुभ कार्योंमें उपवस्त्रके सहित प्रवृत्त होना चाहिये)।'

न दानजपहोमेषु श्रद्धाध्ययनकर्मसु।
एकवस्त्रः प्रवर्त्तेत द्विजवाचनिके तथा॥
(भविष्यपुराण)

'एक वस्त्र पहन कर दान, जप, होम, श्राद्ध, अध्ययन तथा अन्यान्य शुभ कर्मोंमें एवं ब्राह्मणवरणमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये अर्थात् एक वस्त्र पहन कर ये कार्य नहीं करने चाहिये।'

स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याच्छ्राद्धभोजनसत्क्रियाः॥
(योगियाज्ञवल्क्यः)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, श्राद्ध, भोजन और सत्कर्म एक वस्त्र पहन कर न करें।'

एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
न कुर्याद्देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा॥
(गौतमः)

खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धालम्बितस्तथा।
उत्तरीयव्यपेतश्च तत्कृतं निष्फलं भवेत्॥
(मनुः)

'खण्डित वस्त्र पहन कर तथा आधा वस्त्र पहनकर आधा शरीर पर लटका कर उत्तरीय वस्त्र–रहित होकर जो कर्म किया जाता है वह निष्फल जाता है।'

यज्ञादिमें काषाय वस्त्रके धारणका निषेध

काषायवासा यान् कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान्।
न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः॥

'कर्ता काषाय (गेरुवा) वस्त्र धारण कर जिन जप, होम और प्रतिग्रहोंको करता है तथा हव्य और कव्योंमें (दैव पित्र्य कर्मोंमें) जो हविष् या कव्य प्रदान करता है, वह देवताओंको प्राप्त नहीं होता है।'

काषायवासाः कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान्।
न तद्देवगमं कार्यं हव्यकव्येष्वथो विधिः॥
(बौधायनः)

'जो काषाय वस्त्रधारी होकर जप, होम और प्रतिग्रह करता है, उसका वह कर्म देवताओं तक नहीं पहुँचता। अतः हव्य-कव्यमें अर्थात् दैव एवं पित्र्य कर्ममें काषाय वस्त्र पहनकर कर्म नहीं करना चाहिये, यह शास्त्रीय विधि है।'

'स्नान करते समय तथा दान, जप, होम, देवसम्बन्धी और पितृसम्बन्धी कर्म करते समय आसुरी कक्षा नहीं बाँधनी चाहिये, अन्य समयोंमें जैसा रुचिकर हो वैसा करे।'

परिधानाद् [१]बहिः [२]कक्षा निबद्धा चासुरी मता।
धर्मकर्मणि विद्वद्भिर्वर्जनीया प्रयत्नतः॥
(योगियाज्ञवल्क्यः)

'दुपट्टे आदि परिधानके बाहर निकले बाँधे गये आँचलको आसुरी कक्षा कहते हैं। जैसे दुपट्टा ओढा उसके पीछेके आँचल (दोनों छोर या तो धोतीमें खोंस दिये या दोनों बाँध दिये) धार्मिक कर्ममें विद्वानोंको जतनसे उसका त्याग करना चाहिये।'

यज्ञादिमें धौतवस्त्र पहनना चाहिये

जपहोमोपचारेषु धौतवस्त्रपरो भवेत्।
अलंकृतः शुचिर्मौनी श्राद्धादौ विजितेन्द्रियः॥
(वसिष्ठः)

'जप, होम आदि शुभ कृत्योंमें धोती पहन कर ही कर्म करना चाहिये और श्राद्ध आदि कृत्यमें पवित्र वस्त्रको धारण कर तथा जितेन्द्रिय एवं मौनी बनकर श्रद्धापूर्वक कर्म करना चाहिये।'

यज्ञादिमें स्त्रीको एक वस्त्र धारण करनेका निषेध

एकवस्त्रा तु या नारी मुक्तकेशा व्यवस्थिता।
न साऽधिकारिणी ज्ञेया श्रौते स्मार्ते च कर्मणि॥
(विधानपारिजात)

१—बहिः—बहिर्निर्गता।

२—कक्षा पश्चादञ्चलम्। कक्षा परिधानग्रन्थिः, सा च परिधानवस्त्रादुपरिवेष्टनादिना बहिः न कार्येति केचित्। कक्षा वस्त्रोभयप्रान्त इत्यन्ये।

'जो स्त्री एक वस्त्र पहने हो, जिसके केश खुले हों और जो अव्यवस्थित हो (लौकिक मर्यादाका पालन न किये हो) उसे श्रौत और स्मार्त कर्म करनेकी अधिकारिणी नहीं जानना चाहिये ।'

धोबीसे धुलाया हुआ वस्त्र अपवित्र है

रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः ।
हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रञ्च शुद्ध्यति ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ४६।५३)

'विद्वान् पुरुष धोबीके धोये हुए वस्त्रको अशुद्ध मानते हैं। धोबीसे धुले हुए वस्त्रको अपने हाथसे पुनः धोने पर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है ।'

यज्ञादिमें नूतन वस्त्र धारणकी आवश्यकता

उत्सवेषु च सर्वेषु गीत-नृत्तविनोदने ।
दानकर्मणि यज्ञे च तथा युद्धे ऋतूत्सवे ॥
जनैर्नवाम्बरं धार्यं न दुष्यति कदाचन ।

'समस्त प्रकारके उत्सवोंमें, माङ्गलिक गायनमें, नर्तनमें (नाचमें), खेल-कूदमें, दानकर्ममें, यज्ञमें, युद्धमें और वसन्त आदि उत्सवोंमें मनुष्योंको नवीन वस्त्र (कोरा वस्त्र) धारण करना चाहिये, ऐसे अवसरों पर नवीन वस्त्र धारण करना दूषित नहीं समझा जाता है ।'

यज्ञादिमें ग्राह्य वृक्ष

पलाशाऽश्वत्थन्यग्रोधप्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः ।
वैतसौदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा ॥
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ।

(ब्रह्मपुराण)

'पलाश (ढाक), पीपल, वट, प्लक्ष (पाकर), वैकङ्कत, बेंत, गूलर, बेल, चन्दन, शाल, देवदारू और कत्था—इनकी लकड़ी याज्ञिक कही जाती है।'

पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ।
उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये ॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा ।
समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ॥

(वायुपुराण ७५।७१-७२)

'पलाश (ढाक), फ़ल्गु, वट, पाकर, पीपल, विकङ्कत (जिसके स्रुवा आदि यज्ञपात्र बनते हैं, जो कठेर नामसे विख्यात है) गूलर, बेल, चन्दन और भी जो यज्ञीय वृक्ष हैं—सरल, देवदारू, शाल, खैर—ये वृक्ष समिधाओंके लिए विशेष रूपसे प्रशस्त हैं।'

यज्ञके योग्य वृक्ष (काष्ठ) न मिलने पर विचार

'एतेषामप्यलाभे तु सर्वेषामेव यज्ञियाः।'

(यमः, शौनकश्च)

'यज्ञके योग्य शास्त्रविहित लकड़ी प्राप्त न हों, तो जो लकड़ी मिले, वही यज्ञके योग्य कही गई है।'

यज्ञादिमें त्याज्य वृक्ष

निवासा ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये ।
अयज्ञिया गर्हिताश्च वल्मीकैश्च समावृताः ॥
शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् महीरुहान् ।
अन्यांश्चैवंविधान् सर्वान् यज्ञियांश्च विवर्जयेत् ॥

(वायुपुराण)

'जिन वृक्षोंमें कीड़े-मकोड़े रहते हों, जो लताओंसे परिवेष्टित हों

वे यज्ञार्ह नहीं हैं। इमली, कटहर आदि जो यज्ञादिमें निन्दित हैं, बबूर आदि काँटेदार वृक्ष, जिनमें दीमकोंने बांबी बना रक्खी हों और जिनमें विशेष पक्षी रहते हों ऐसे, और इस प्रकारके अन्यान्य सब वृक्षोंको, वे यज्ञार्ह ही क्यों न हों, यज्ञके काममें नहीं लेना चाहिये।'

विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः ससुषिराः कृशाः।
दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः ॥
(मरीचिः)

'फटे हुए, बिना पत्तेके, बहुत छोटे, टेढ़े-मेढ़े, छिद्रयुक्त, बहुत पतले, बहुत लम्बे, बहुत मोटे, घुन आदि कीटोंसे जुष्ट अर्थात् युक्त समिधाएँ कर्मसिद्धिकी विघातक हैं।'

विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः सशुषिराः कृशाः।
दीर्घाः स्थूला घुणैर्दुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः ॥
(वायुपुराण)

'फटी हुई (चीरी हुई), बिना पत्तेके, बहुत छोटी, टेढ़ी-मेढ़ी, छिद्रवाली, बहुत पतली, बहुत लम्बी, बहुत मोटी, घुनी हुई (जिसमें घुन लगे हों) ऐसी समिधा कर्मसिद्धिकी विघातक कही गई है।'

यज्ञादिमें विहित समिधा

प्रागग्राः समिधो देयास्ताश्च योगेषु पातिताः।
शान्त्यर्थेषु प्रशस्ताऽऽर्द्रा विपरीता जिघांसति ॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण संयुताः।
प्रादेशमात्राः समिधो ग्राह्याः सर्वत्र चैव वा ॥
(आह्निकसूत्रावली)

'योजनीय द्रव्य शहद, घी, दही और दूधमें डुबोई हुई वे समिधाएँ पूर्वकी ओर अगला भाग कर अग्निमें (कुण्डमें) छोड़नी चाहिये। शान्त्यर्थ कर्मोंमें आर्द्र (कच्ची) समिधा प्रशस्त है, सूखी हुई समिधा मार डालना चाहती है अर्थात् विघातक है। शहद, घृत, दही और दूधसे सानकर समिधाओंका होम करना चाहिये। अथवा सब कर्मोंमें प्रादेशमात्र (अँगूठा और तर्जनीको फैलानेसे जो नाप होती है उसके बराबर ही) समिधाएँ ग्राह्य कही गई हैं।'

नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित्।
न निर्मुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥

(कात्यायनः)

'यज्ञमें अंगूठेसे अधिक मोटी समिधा नहीं डालना चाहिये। बिना छिलकाके तथा कीड़ेवाली और फाड़ा हुई समिधाको भी यज्ञमें नहीं डालना चाहिये।'

नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित्।
न निर्मुक्तत्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥
प्रादेशान्नाधिका नोना न सशाखा विशाखिका।
न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता॥

'हवनकी समिधा (लकड़ी) अंगूठेसे अधिक मोटी न हो और उसकी छाल छुटी हुई न हो अर्थात् छालके सहित समिधा हो और उसमें कीड़े-मकोड़े न लगे हों तथा सड़ी-गली न हो। समिधा एक बीतेसे अधिक अथवा कम न हो और उसमें अनेक शाखा-प्रशाखा भी न हों अर्थात् सीधी हों। समिधा पत्तोंवाली और कमजोर न हो, इस प्रकारकी समिधा हवनके लिये प्रशस्त कही गई है।'

प्रादेशान्नाधिका नोना न च शाखासमन्विता।
न त्वग्घीना न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता॥

(आह्निकसूत्र)

ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशाङ्गुलाः ।
अवक्राश्चाप्यशुष्काश्च सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥
दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलिसम्मिताः ।
प्रादेशमात्रा वाऽलाभे होतव्याः सकला अपि ॥
(वायवीयसंहिता)

'समिधाएँ पलाशकी होती हैं अथवा यज्ञिय अन्य वृक्षोंकी भी होती हैं। वे बारह अंगुल लम्बी, सीधी, आर्द्र (विना सूखी हुई), त्वचायुक्त, व्रणरहित और सब बराबर होनी चाहियें। अथवा दस अंगुलकी भी शास्त्रसे विहित हैं, वे कनिष्ठिका (कानी) अंगुली-के बराबर मोटी हों। अथवा प्रादेशमात्र (अंगूठा और तर्जनी अंगुली फैलानेसे जो लम्बाई होती है उसे प्रादेश कहते हैं) उसकी नापकी हों।'

यदि उपयुक्त लक्षणवाली पलाश आदि यज्ञिय वृक्षोंकी समिधाएँ न मिल सकें; तो अश्वत्थ-खदिर-रोहितक-उदुम्बर आदि सब वनस्पतियोंकी *समिधाओंका हवन करना चाहिये।

शूद्रके द्वारा लाई हुई समिधा आदिसे हवन करनेका निषेध

समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः ॥
(आचारप्रदीप)

'समिधा, पुष्प, कुशा आदिको ब्राह्मण स्वयं लाकर काममें लेवे। शूद्रके द्वारा खरीदकर लाई हुई समिधा आदिसे हवन-कर्मको करने-वाला मनुष्य नरकमें जाता है।'

---

* तिन्दुक-धवल-आम्र-निम्ब-राजवृक्ष-शाल्मलि-कोविदारक—विभीतक-श्लेष्मातक—इन कटीले वृक्षोंको छोड़ देना चाहिये।

शूद्रके द्वारा स्पर्श की गई आहुतिसे यजमानकी हानि

'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्कदूषिता ।'

(लिङ्गपुराण)

'जो आहुति शूद्रके सम्पर्कसे दूषित है, वह अस्वर्ग्य (नरक)को देनेवाली होती है ।'

शूद्रद्वारा लाई हुई समिधा आदि वस्तुओंका शुद्धिप्रकार

यज्ञादिमें शूद्रादि (द्विजेतर) द्वारा लाई हुई कुशा, समित् आदि वस्तुओंकी शुद्धि 'पवमान अनुवाक' के द्वारा प्रोक्षण करनेसे शुद्धि होती है, यह 'संस्कार रत्नमाला'में लिखा है ।

नवग्रहोंकी समिधा

अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः ।
औदुम्बरं शमी दूर्वा कुशाश्च समिधो नव ॥

(संस्कारगणपति)

'अर्क (मदार), पलाश, खदिर (खैर), अपामार्ग (चिचड़ा), **पीपल**, औदुम्बर (गूलर), शमी, दूर्वा और कुशा—ये ग्रहोंकी नव समिधाएँ कही गई हैं ।'

अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥

(याज्ञवल्क्यसंहिता १।३०२)

नवग्रहकी समिधा और हवन-विधि

अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधस्त्विमाः ॥

एकैकस्याष्टशतकमष्टाविंशति वा पुनः ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥
प्रादेशमात्राः समिधः सरला अपलाशिनीः ।
समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा ॥

(मत्स्यपुराण)

'आँक (आख), पलाश (टेंसू), खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये नवग्रहोंकी नौ समिधाएँ कही गई हैं। एक-एक ग्रहके लिए १०८ अथवा २८ शहद और घीसे अथवा दही-से युक्त प्रादेशमात्र (अंगूठा और तर्जनी अंगुली फैलानेसे जो नाप आवे उस नापकी) समिधाओंका हवन करना चाहिये। सदा सब कर्मोंमें बुद्धिमान् पुरुषको सीधी बिना पत्तेकी प्रादेशके बराबर (अंगूठा और तर्जनी फैलानेसे जो नाप होती है उस नाप की) समिधा बनानी चाहिये।'

यज्ञार्थ पीपलके वृक्षको काटनेसे लाभ

'यज्ञार्थं च्छेदितोऽश्वत्थः सर्वारोग्यप्रदो भवेत् ।'

(पद्मपुराण)

'यज्ञ-कार्यके लिये पीपलके वृक्षको काटनेसे मनुष्य सब प्रकारके आरोग्यको प्राप्त करता है।'

पीपलके वृक्षके नीचे हवनादि करनेसे लाभ

अश्वत्थमूलमासाद्य तपो होमः सुरार्चनम् ।
अक्षयं मुनिशार्दूल ब्रह्मणो वचनं यथा ॥

'हे मुनिवर ! पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर तप, हवन, जप और देव-पूजन करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है।'

यज्ञादिमें प्रशस्त आसन

शमी काश्मरी शल्लः कदंबो वरणस्तथा।
पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा॥
(श्राद्धकल्पलता)

'शमी, गम्भारी (खम्भारी), शोणवृक्ष, कदंब और वरुणद्रुम (खैर) इन पाँच प्रकारके वृक्षोंके आसन श्राद्ध और देवार्चनमें प्रशस्त गहे गये हैं।'

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत्॥

'रेशम, कंबल, मृगचर्म, काष्ठ और तालपत्र इनका आसन शुभ कार्योंके लिये बनाना चाहिये।'

यज्ञादिमें त्याज्य आसन

'आयसं वर्जयित्वा तु कांस्यसीसकमेव च।'
(देवीभागवत)

'यज्ञादिमें लोहेका, कांसेका और सीसेका आसन छोड़कर काष्ठ, वस्त्र आदिके आसन उपादेय हैं।'

विभिन्न आसनके विभिन्न फल

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
वंशाजिने व्याधिनाशः कम्बले दुःखमोचनम्॥
अभिचारे नीलवर्णं रक्तं वश्यादिकर्मणि।
शान्तिके कम्बलः प्रोक्तः सर्वेष्टं चित्रकम्बलम्॥
वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिसम्भवः।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे॥
तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः॥

'काले मृगचर्म पर ज्ञानसिद्धि होती है, व्याघ्र चर्म पर मुक्ति-प्राप्ति, वंशवल्कल पर व्याधिसे मुक्ति तथा कम्बल पर दुःखनिवृत्ति होती है। अभिचार कर्ममें (मारण, मोहन, उच्चाटन आदिमें) नीला आसन, किसीको वशमें करनेके लिए किये जा रहे कर्ममें लाल आसन होना चाहिये। ग्रहपीड़ा, महामारी आदिकी शान्तिके निमित्त किये जा रहे कर्ममें कम्बलका आसन कहा गया है। चित्र कम्बल समस्त कार्योंके लिये कहा गया है। बांसके आसन पर दरिद्रता, पत्थर पर व्याधि, भूमि पर दुःख, छिद्रवाले काठ पर दौर्भाग्य, तृणासन पर धन और यशका नाश तथा पल्लवासन पर चित्त-भ्रम होता है।'

आसनका परिमाण

चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तु दीर्घं काष्ठासनं मतम्।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुत्सेधे चतुरङ्गुलम्॥
पञ्चाङ्गुलं वा कुर्यात्तु नोच्छ्रितं चात्र कारयेत्।
वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम्॥
त्र्यङ्गुलं तु तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि संश्रयेत्।
सर्वेषां तैजसानां च आसनं श्रेष्ठमुच्यते॥

(कालीपुराण)

'काठके आसनका परिमाण चौबीस अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊँचा माना गया है। अथवा पाँच अंगुल ऊँचा करे। यज्ञमें इससे ऊँचा नहीं बनवाना चाहिये। वस्त्रका आसन दो हाथसे अधिक लम्बा और डेढ़ हाथसे अधिक चौड़ा नहीं होना चाहिये। पूजादि कर्ममें तीन अंगुल ऊँचा आसनका ग्रहण उचित है। पूर्वोक्त लोह, कांसा और सीसेको छोड़ करके सभी धातुओंका आसन श्रेष्ठ कहलाता है।'

यज्ञादिमें त्याज्य पदार्थ

भावदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं तथैव च।
संसर्गदुष्टं जातिदुष्टं वर्जयेद् यज्ञकर्मणि॥
(वृद्धहारीतस्मृति ११।११२)

'यज्ञ—कर्ममें भावदुष्ट, क्रियादुष्ट, कालदुष्ट, संसर्गदुष्ट तथा जातिदुष्ट—इन पदार्थोंका त्याग करना चाहिये।'

रूपतो गन्धतो वापि यच्चाभक्ष्यैः समं भवेत्।
भावदुष्टं च तत्प्रोक्तं मुनिभिर्धर्मपारगैः॥
(वृद्धहारीतस्मृति ११।१२३)

'जो पदार्थ रूपसे अथवा गन्धसे भी अभक्ष्य पदार्थोंके सदृश हो, उसे धर्मके पारङ्गत मुनियोंने 'भावदुष्ट' कहा है।'

आरनालं च मद्यं च करनिर्मथितं दधि।
हस्तदत्तं च लवणं क्षीरं घृतपयांसि च॥
हस्तेनोद्धृत्य तोयं च पीतं वक्त्रेण वैकदा।
शब्देन पीतं भुक्तं च गव्यं ताम्रेण संयुतम्।
क्षीरं च लवणोन्मिश्रं क्रियादुष्टमिहोच्यते॥
(वृद्धहारीतस्मृति ११।१२५-१२६)

'आरनाल (काञ्जिक), मद्य, हाथसे मथा हुआ दही, हाथसे या हाथमें दिया गया नमक, दूध, घी और जल, हाथसे उठाकर मुँहसे एक बार पीया हुआ जल, बोलते हुए पीया और खाया गया, तांबेके पात्रसे संयुक्त गोदुग्ध तथा नमक मिला हुआ दूध—ये सब 'क्रियादुष्ट' कहे जाते हैं।'

एकादश्यां तु यच्चान्नं यच्चान्नं राहुदर्शने।
सूतके मृतके चान्नं शुष्कं पर्युषितं तथा॥

अनिर्दशाहगोक्षीरं षष्ठ्यां तैलं तथापि च ।
नदीष्वसमुद्रगासु सिंहकर्कटयोर्जलम् ।।
निःशेषजलवाप्यादौ यत्प्रविष्टं नवोदकम् ।
नातीतपञ्चरात्रं तत्कालदुष्टमिहोच्यते ।।
(वृद्धहारीतस्मृति ११।१२७-१२९)

'एकादशीके दिन [1]अन्न (भात, रोटी, पूड़ी आदि), ग्रहणके समयमें अन्न, जननाशौच तथा मरणाशौचमें अन्न, सूखा अन्न, वासी अन्न, व्यायी गौका दश दिन बीतनेके पहलेका दूध, षष्ठी तिथिमें तेल, श्रावण और भाद्रपद महीनोंमें उन नदियोंका जल जो समुद्रगामिनी नहीं हैं। निःशेष जलवाली (सूखी) बावड़ी आदिमें प्रविष्ट नूतन जल जबतक पाँच रातें न बीते, तब तक वे सब 'कालदुष्ट' कहे जाते हैं।'

शैवपाषण्डपतितैर्विकर्मस्थैर्निरीश्वरैः ।
अवैष्णवैर्द्विजैः शूद्रैर्हरिवासरभोक्तृभिः ।
श्व—काकसूकरोष्ट्राद्यैरुदक्यासूतिकादिभिः ॥
पुंश्चलीभिश्च नारीभिर्वृषलीपतिभिस्तथा ।।
दृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च भुक्तशेषं तथैव च ।
अभक्ष्याणां च संयुक्तं संसर्गदुष्टमुच्यते ।।
(वृद्धहारीतस्मृति ११।१३०-१३२)

'शैवों (माहेश्वर आदिकों), पाखण्डियों (वेदविरुद्ध आचरण कारियों), पतित (स्वधर्मभ्रष्ट) पुरुषों, कर्मभ्रष्ट (विकर्मस्थ), ईश्वरको न माननेवाले (नास्तिक) अवैष्णव, द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों), शूद्रों और एकादशीके दिन अन्नभोजी पुरुषोंसे, कुत्ते, कौए, सूअर, ऊँट आदिसे तथा रजस्वला, सूतिका

१. 'अद्यते यत्तदन्नम् ।'

(सौरीके पञ्चगव्यके होम, प्राशन आदि द्वारा शुद्ध होकर जबतक बाहर न आवे ऐसी अवस्था), व्यभिचारिणी स्त्रियों तथा व्यभिचारी पुरुषोंसे देखा गया, छूआ गया, दिया गया तथा उनके भोजनसे बचा हुआ एवं अभक्ष्य (लसुन) आदिसे संयुक्त अन्न 'संसर्गदुष्ट' कहलाता है।'

बिम्बं शिग्रुं च कालिङ्गं तिलपिष्टं च मूलकम्।
कोशातकीमलाबुं च तथा कट्फलमेव च॥
वालिका नारिकेलादि जातिदुष्टमिहोच्यते।
एवं सर्वाण्यभक्ष्याणि तत्सङ्गान्यपि सन्त्यजेत्॥

(वृद्धहारीतस्मृति ११।१३३-१३४)

'बिम्ब (बिम्बी फल अर्थात् कुन्दरू), शिग्रु (एक प्रकारका साग या सहिजन), कालिङ्ग (भूरा (सफेद) कुम्हड़ा यानी पेठा), तिलपिष्ट (तिलकी खली), शलगम, तोरई, तुम्बा, कायफल, वालिका, नारिका (नालिका) इत्यादि 'जातिदुष्ट' कहे जाते हैं।'

इस प्रकारके सब अभक्ष्योंका एवं उनसे संसृष्ट वस्तुओंका भी त्याग करना चाहिये।

पञ्चामृत और उसका परिमाण

गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम्
एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम्।

(धन्वन्तरिः

'पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं स्मृतम्'

(हेमाद्रौ)

गोदुग्धेनैव दधिना गोघृतेन समन्वितम्।
गङ्गाजलेन मधुना युक्तं पञ्चामृतं प्रियम्॥

'गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गङ्गाजल और सहत—इन पाँचों वस्तुओंसे बना हुआ पञ्चामृत भगवान्‌को प्रिय होता है।'

शर्करा मधु दुग्धं च घृतं दधि समांशकम्।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते॥

(महानिर्माणतन्त्र)

'चीनी, सहत, दुग्ध, घृत और दधि ये सब चीजें बराबर मात्रामें एकत्रित करने पर पञ्चामृत कहा जाता है, जिसका विधान शरीर-शुद्धिके लिये कहा गया है।'

क्षीराद् दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम्।
मधुना तद्दशगुणं सितया तु ततोऽधिकम्॥

(स्कन्दपुराण)

'दुग्धसे दश गुना दधि, दधिसे दश गुना घृत, घृतसे दश गुना सहत और सहतसे दश गुना चीनी मिलानेसे पञ्चामृत होता है।'

घृतं क्षीरं तथा नीरं शर्करामधुसंयुतम्।
पञ्चामृतमिदं ख्यातं प्रत्येकं तु पलं पलम्॥

(कौलावतीनिर्णय)

'सहतसे युक्त घृत, दुग्ध, गंगाजल और चीनी—ये पाँचों वस्तुएँ एक-एक पल होनेसे पञ्चामृत कहा जाता है।'

सर्पिषा द्विगुणं क्षौद्रं क्षौद्राद् द्विगुणशर्करा।
दध्नश्च द्विगुणं दुग्धं पञ्चामृतमुदाहृतम्॥

'घृतसे द्विगुणित मधु, मधुसे द्विगुणित चीनी, चीनीसे द्विगुणित दधि और दधिसे द्विगुणित दुग्धको पञ्चामृत कहते हैं।'

'पञ्चद्रव्याणि समान्येव' इति आचारेन्दौ।

'गोदुग्ध आदि पाँचों द्रव्य समान रूपमें हों, यह आचारेन्दुमें लिखा है।'

षडङ्ग

गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि च रोचना ।
षडङ्गमेतत् परमं मङ्गल्यं सर्वदा गवाम् ॥
(विष्णुसंहिता २३।५८, ५९)

'गोमूत्र, गोबर, गोघृत, गोदुग्ध, गोदधि और गोरोचन—ये गौओंकी छः वस्तुएं षड़ङ्ग कही जाती हैं, जोकि सर्वदा परम माङ्गलिक होती हैं।'

पञ्चगव्य और उसका परिमाण

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं मुनिपुङ्गवैः ॥
(वशिष्ठः)

'गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक—यह पञ्चगव्य श्रेष्ठ मुनियोंद्वारा पवित्र कहा गया है।'

कपिलायाः पलं मूत्रमर्द्धाङ्गुष्ठञ्च गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद् दध्नश्चैव पलद्वयम् ॥
घृतमेकपलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम् ।
(अग्निपुराण १७५।२४-२५)

'पञ्चगव्यमें कपिला गौका मूत्र चार पली ...

'पञ्चगव्यमें गोबर, गोबरसे दूना गोमूत्र, उसका चौगुना गोदुग्ध, अठगुना घृत और दही देना चाहिये ।'

पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते ।
घृतं च पलमात्रं स्याद् गोमयं तोलकद्वयम् ॥
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात् पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् ।
अथवा पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥

(गौतमीये)

'गोदुग्ध चार भरी, गोमूत्र चार भरी, घृत चार भरी, गोबर दो तोला और दधि चुलुकमात्र (अर्धाञ्जलि) ये पञ्चगव्य कहे जाते हैं। अथवा गौकी पाँचो वस्तुओंको समान भागमें लेना चाहिये ।'

गोमूत्रं माषकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश ।
क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिता ॥
गोमूत्रवद् घृतस्य स्यात्तदर्धं तु कुशोदकम् ।

'आठ मासा गोमूत्र, सोलह मासा गोबर, बारह मासा दूध, दस मासा दही, गोमूत्रके बराबर घी और उसका आधा अर्थात् चार मासा कुशोदक कहा गया है ।'

पलमात्रं तु गोमूत्रमङ्गुष्ठार्धन्तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं दधि त्रिपलमीरितम् ॥
सर्पिस्त्वेकपलं देयमुदकं पलमात्रकम् ।
सर्वमेतत्ताम्रपात्रं स्थितं कुर्याद्यथाविधि ॥

'पञ्चगव्यमें चार भरी गोमूत्र, आधा अँगूठा भर गोबर, अट्ठाईस भरी दूध लेना चाहिये । दही बारह भरी कहा गया है । घी चार भरी देना चाहिये और केवल चार भरी कुशोदक देना चाहिये । इन सबको विधिपूर्वक तांबेके पात्रमें रखना चाहिये ।'

गोमूत्रं द्विगुणं क्षीरात् क्षीरार्धं दधि कथ्यते ।
तदर्धं गोमयं ज्ञेयं गोमयार्धं घृतं भवेत् ॥

'दूधसे गोमूत्र दुगुना, दूधसे दही आधा कहा गया है, दहीका आधा गोबर जानना चाहिये एवं गोबरका आधा घी होना चाहिये।'

किसी आचार्यका यह भी मत है कि—

दुग्ध १ तोला, गोमूत्र १ तोला, घृत १ तोला, गोबर २ तोला और दधि ८ तोला—इस हिसाबसे पञ्चगव्य बनाना चाहिये।

पञ्चगव्यके निर्माणकी विधि

तत्र स्नातायाः गोः गोमूत्रमष्टमाषप्रमाणम्। श्वेतगोः शकृत्षोडशमाषप्रमाणम्। पीतगोः क्षीरं द्वादशमाषप्रमाणम्। नीलगोः दधि दशमाषप्रमाणम्। कृष्णगोघृतं अष्टमाषप्रमाणम्। कुशोदकं चतुर्माषम्। अत्र माषः पञ्चगुञ्जात्मक इति धर्मसिन्धौ।

'नहलाई गई गौका गोमूत्र आठ मासा, सफेद गायका गोबर सोलह मासा, कपिला गौका दूध बारह मासा, काली गौकी दही दस मासा, कालो गौका घी आठ मासा और कुशोदक चार मासा—ये पञ्चगव्यमें पड़ता है। यहाँ पर मासा पाँच रत्तीका लेना चाहिये, ऐसा धर्मसिन्धुमें कहा गया है।'

पञ्चगव्यके देवता

गोमूत्रे वरुणो देवो हव्यवाहस्तु गोमये।
क्षीरे शशधरो देवो वायुर्दध्नि समाश्रितः॥
भानुः सर्पिषि संदिष्टो कुशे ब्रह्माधिदेवताः।
जले साक्षाद्धरिः संस्थः पवित्रं तेन नित्यशः॥

'गोमूत्रमें वरुण देवता रहते हैं, गोबरमें अग्निदेवका वास है, दूधमें चन्द्रमा स्थित हैं, दहीमें वायुदेव स्थित हैं, घीमें सूर्यदेव रहते हैं, कुशमें ब्रह्मादि देवताओंका निवास है एवं जलमें साक्षात् विष्णु रहते हैं, इसलिए जल नित्य पवित्र हैं।'

दक्षिणाका महत्त्व

'दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ।'

(ऋग्वेद १।१२५।६)

'ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेवाले मनुष्य अमरता और दीर्घायुको प्राप्त करते हैं ।'

'दक्षिणाभिर्हि यज्ञः स्तूयतेऽथो यो वै कश्चन दक्षिणां ददाति स्तूयते एव सः ।' (शतपथब्रा० ६।४।१।११)

'दक्षिणा देनेसे ही यज्ञ और यजमानकी प्रशंसा होती है ।

'एषा ह वै यज्ञस्य पुरोगवी यद्दक्षिणा ।'

'यह जो दक्षिणा है वह यज्ञकी पुरोगवी अर्थात् अग्रगण्य है ।'

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च ।
कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥

(देवीभागवत ६।४५।५०)

'दक्षिणासे युक्त यज्ञ पुत्ररूप फलके साथ कर्मियों (कर्मकर्त्ता यजमानों) को फल प्रदान करता है, ऐसा वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं ।'

दक्षिणा ही यज्ञका शुभ कर्म है

'शुभो वा एता यज्ञस्य यद्दक्षिणाः ।'

(ताण्ड्यब्राह्मण, १६।१।१४)

'यज्ञादिके अन्तमें जो दक्षिणा दी जाती है, वही यज्ञका शुभ कर्म है ।'

यज्ञादिकी दक्षिणा

चतस्रो दक्षिणाः । हिरण्यं गो वासोऽश्वः ।

(शतपथब्रा० ४।३।४।७)

'यज्ञादिमें चार प्रकारकी दक्षिणा कही गई है-सुवर्ण, गौ, वस्त्र और घोड़ा।'

वेदोपनिषदश्चैव सवकर्मसु दक्षिणाः।
सर्वक्रतुषु चोदिष्टं भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम् ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ८४।५)

'वेदों और उपनिषदोंके पाठमें, समस्त शुभ कर्मोंमें एवं सभी प्रकारके यज्ञोंमें भमि, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये।'

यज्ञादिमें दक्षिणाका विचार

दक्षिणा ह्युत्तमा मध्या चाधमेति त्रिधा मता।
तत्र *सौवर्णनिष्कानि दश साहस्रिकोत्तमा ॥ १ ॥
तदर्धं मध्यमा प्रोक्ता तृतीया त्रिसहस्रिका।
उत्तमा त्रिशती वा स्यान्मध्यमा द्विशती भवेत् ॥ २ ॥
शतमात्राधमा ज्ञेया प्रकारः कीर्त्यतेऽपरः।
उत्तमा च चतुःषष्टिस्तदर्धं मध्यमा स्मृता ॥ ३ ॥
चतुर्विंशतिरन्या स्यादथान्यो विधिरुच्यते।
सहस्रं दक्षिणा देया दशपूरुषकर्तृके ॥ ४ ॥

---

*'निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः।' (याज्ञवल्क्यः)
'चतुःसौवर्णिको निष्कः।' (मनुः)
निष्कश्च—मासाश्चत्वारिंशत्।

सुवर्ण-मुद्राको 'निष्क' कहते हैं। यह सिक्का बहुत प्राचीन कालमें प्रचलित था। इसका मान भी भिन्न-भिन्न समयोंमें भिन्न-भिन्न था। विशेष विवरणके लिये देखिए—'हिन्दी विश्वकोष'में 'निष्क' शब्द।

शतानि पंच देयानि ऋत्विक्पंचककर्तृके।
अथैककर्तृके देयं शतत्रयमिति स्थितिः ॥ ५ ॥
सर्वत्र द्विगुणां दद्यादाचार्याय तु दक्षिणाम्।
बहुपूरुषनिष्पाद्ये उत्तमा प्रतिपूरुषम् ॥ ६ ॥
अथैककर्तृके कर्तुरेकस्यैवोत्तमा मता।
राज्ञां तत्सदृशानां च दक्षिणा कथितोत्तमा ॥ ७ ॥
अन्येषां मध्यमादीनि दक्षिणादाननिर्णयः।
अनुक्तदक्षिणाकेषु प्रयोगेष्वियमीरिता ॥ ८ ॥
विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम्।
नैव तत्फलमाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥ ९ ॥

दक्षिणा उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकारकी कही गई है। उन तीन प्रकारकी दक्षिणाओंमें-सुवर्णके दस हजार निष्क (पल[1]) वाली दक्षिणा उत्तम दक्षिणा है, उसका आधा अर्थात् पाँच हजार सोनेके निष्कवाली दक्षिणा मध्यम दक्षिणा है तथा तीन हजार सोनेके निष्कवाली दक्षिणा अधम (तृतीय श्रेणीकी) दक्षिणा है।

अथवा तीन सौ निष्कों (दीनारों) की दक्षिणा उत्तम कही गई है, दो सौ की दक्षिणा मध्यम है एवं केवल सौ की दक्षिणा अधम (तीसरे दर्जेकी) जाननी चाहिये। दक्षिणाके सम्बन्धमें दूसरा भी प्रकार है, जो नीचे बतलाया जाता है—

चौसठ निष्क उत्तम दक्षिणा और उसके आधे (बत्तीस) मध्यम दक्षिणा कही गई है। चौबीस निष्क अधम दक्षिणा है। दक्षिणाके सम्बन्धमें दूसरी विधि भी शास्त्रोंमें कही जाती है—

जिस यज्ञ, याग आदि कर्ममें १० ऋत्विज कर्ता हों (१० ऋत्विजोंका वरण किया गया हो) उसमें हजार दक्षिणा देनी

१—एक निष्क या पल चार भरी का होता है।

चाहिये, यदि ५ ऋत्विज कर्ता हों (पाँच ऋत्विजोंका वरण किया गया हो, तो पाँच सौ दक्षिणा देनी चाहिये । यदि एक ही ऋत्विग् आदि कर्म करनेवाला हो तो तीन सौ दक्षिणा देनी चाहिये, ऐसी शास्त्रीय मर्यादा है । सभी यज्ञ, याग आदि कर्मोंमें आचार्यको द्विगुण (दुगुनी) दक्षिणा देनी चाहिये ।

बहुत पुरुषों (वृत ऋत्विजों) द्वारा निष्पाद्य (सम्पादन योग्य) कर्म (यज्ञ-याग आदि) में प्रत्येक पुरुष (वृत ऋत्विग् आदि) के लिए उत्तम दक्षिणा देय कही गई है और एक ही ऋत्विग् आदि द्वारा सम्पाद्य कर्म में एक ही कर्ताके लिए उत्तम दक्षिणा देय कही गई है । राजाओं के अथवा राजाओंके तुल्य वैभवशाली पुरुषोंके कर्ममें उत्तमा दक्षिणा शास्त्रों द्वारा कही गई है । औरोंके कर्ममें मध्यम आदि (अर्थात् मध्यम और अधम) दक्षिणा कही गई है । यह दक्षिणा देनेके सम्बन्धमें निर्णय किया गया है । जिन प्रयोगोंमें दक्षिणा नहीं बतलाई गई है, उन प्रयोगोंमें यह उपर्युक्त दक्षिणा कही गई है ।

जो लोभी पुरुष विभव रहते मोहवश कर्मविधिका विस्तार नहीं करता, कार्पण्य वर्तता है, उसे उस कर्मका फल नहीं ही मिलता ।

यज्ञादिमें आचार्यादिको दक्षिणा देनेका विचार

एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्याः सदक्षिणाः ।
पलान्येकादश तथा दद्याद्वित्तानुसारतः ।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥

(शातातपस्मृति २।३३-३४)

'आचार्यको ग्यारह सुवर्ण मुद्रा दक्षिणाके साथ देनी चाहिये तथा अपने विभवके अनुसार ग्यारह पल सुवर्ण यानी ४४ भरी सोना देना उचित है । अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये ।'

यज्ञादिमें दक्षिणाकी आवश्यकता

यज्ञादि अनुष्ठानोंके अन्तमें आचार्यादि ऋत्विजोंको श्रद्धासे शास्त्रोक्त विधिके अनुरूप दिये जानेवाले द्रव्यको 'दक्षिणा' कहते हैं।

दक्षिणा यज्ञका एक प्रधान अङ्ग है। दक्षिणाके बिना यज्ञका फल यज्ञ-कर्ता यजमान प्राप्त नहीं कर सकता। दक्षिणामें ही एक ऐसी अपूर्व करामात है जिसके द्वारा यजमानकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः दक्षिणाको 'फलप्रदा' कहा है—
'दक्षिणा च फलप्रदा।'

दक्षिणाके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि—यज्ञादि कर्ममें यदि यजमानसे प्रमादवश किसी प्रकारकी त्रुटि रह जाती है तो उस त्रुटिका सर्वतोभावेन परिहार दक्षिणा देनेसे ही होता है। निरुक्तमें लिखा है—

'दक्षिणा दक्षतेः समर्धयति कर्मणः वृद्धिं समर्धयतीति।'
(१।३।७)

'यज्ञ-कर्ममें प्रमादवश जो कुछ न्यूनता रह जाती है उसकी दक्षिणा वृद्धि कर पूर्ण कर देती है।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपतिखण्ड (७।२३) में महादेवजी पार्वतीसे कहते हैं—

'सर्वेषां कर्मणां देवि! सारभूता च दक्षिणा।'

अतः कल्याणेच्छुक यजमानको चाहिये कि वह यज्ञान्तमें प्रचुर मात्रामें ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदान करे।

साम्बपुराणमें यजमानके लिये आदेश भी किया गया है—

'दक्षिणाः सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता।'

'समस्त यज्ञोंमें दक्षिणा देनेकी आवश्यकता है, अतः अपने कल्याणके लिये दक्षिणा देनी चाहिये।'

स्वयम्भूपुराणमें भी लिखा है—

दानकर्मविवाहेषु देवार्चने विशेषतः ।
यज्ञे तीर्थेऽभिषेके च दक्षिणा शुद्ध्यते सदा ॥
तस्माच्च दक्षिणा देया कर्मसमाप्तकारिका ।
यावद् दक्षिणा हीनैव तावत्कर्मफलं नहि ॥
यथा यथा बहुं दद्यात्तथा तथा फलं लभेत् ।
यथा यथा स्वल्पं दद्यात्तथा तथा फलं लभेत् ॥
आयुरारोग्यकल्याणं शुभं च सुखसम्पदम् ।
सर्वत्र सर्वदा भद्रं ददाति दक्षिणा शुभा ॥

'दान, कर्म और विवाहमें, विशेष करके देवतापूजनमें, यज्ञ, तीर्थ और अभिषेकमें दक्षिणा सदा शुद्ध होती है। इसलिये कर्मकी समृद्धिकारिणी दक्षिणा देनी चाहिये। जबतक दक्षिणा हीन ही होती है तबतक कर्मफल नहीं होता। यजमान जैसी–जैसी प्रचुर दक्षिणा देता है वैसा-वैसा कर्मफल प्राप्त करता है। अच्छी (प्रचुर) दक्षिणा सर्वत्र सदा आयुष्य, आरोग्य, कल्याण, ऐहिक मङ्गल और पारलौकिक भद्र देती है।'

दक्षिणारहित यज्ञका निषेध

जिस यज्ञमें आचार्यादि ऋत्विजोंको विधिपूर्वक दक्षिणा नहीं दी जाती, उस यज्ञको *'तामस' कहते हैं। शास्त्रोंमें दक्षिणाहीन यज्ञको तामस बतलाते हुए कहा है कि दक्षिणाहीन यज्ञ व्यर्थ होते हैं। यथा—

---

* विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥
(गीता १७।१३)

'यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते ।'
(साम्बपुराण ३४।२९)

'अध्वरं दक्षिणाहीनं निष्फलं च निगद्यते ।'
'हतं यज्ञमदक्षिणम् ।' (देवीभागवत ९।४४।१५)
'हतयज्ञों ह्यदक्षिणः ।'
'मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।' (पंचतन्त्र, मित्रसम्प्राप्ति)

भागवतकी सुविख्यात वंशीधरी टीका (४।६।५०) में भी दक्षिणाहीन यज्ञके बारेमें लिखा है—

'यागोऽमन्त्रोऽदक्षिणश्च न फलं दास्यति क्वचित् ।'

'जो यज्ञ मन्त्रहीन और दक्षिणाहीन होता है, वह कभी भी फल-प्रद नहीं होता ।'

मत्स्यपुराणमें दक्षिणारहित यज्ञोंसे होनेवाली हानियोंका इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः ।
अददल्लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुते ॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ।
अन्नहीनः कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत् ॥
अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः ।
यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥
(९३।१०९—१११)

'मनुष्य कृपणताके कारण दक्षिणाहीन यज्ञ न करे, मोह और लोभसे दक्षिणाके बिना यज्ञ करनेवाला कुलक्षयको प्राप्त होता है । ऐश्वर्याभिलाषी पुरुषको यज्ञमें अन्नदान करना चाहिये, क्योंकि अन्नसे हीन यज्ञ दुर्भिक्षको उत्पन्न कर राष्ट्रका भी संहार करता है, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजोंका और दक्षिणाहीन यज्ञ यजमानका नाश

करता है। इसलिये अविधि अनुष्ठित यज्ञके सदृश दूसरा शत्रु भी और कोई नहीं है।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें दक्षिणारहित यज्ञ करनेवालेको पापी और पुण्यहीन कहा गया है—

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः।
स पापी पुण्यहीनश्च ....॥

(गणपतिखण्ड २३।३७)

'जो मूर्ख मनुष्य दक्षिणाहीन कर्म करता है वह पापी और पुण्य हीन कहा जाता हैं।'

भीष्म पितामह कहते हैं—

यज्ञाङ्गं दक्षिणा तात वेदानां परिबृंहणम्।
न यज्ञा दक्षिणाहीनास्तारयन्ति कथंचन॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ७९।११)

'तात ! दक्षिणा यज्ञोंका अङ्ग है, वही वेदोक्त यज्ञोंका विस्तार एवं उनमें न्यूनताकी पूर्ति करनेवाली है। दक्षिणाहीन यज्ञ किसी प्रकार भी यजमानका उद्धार नहीं कर सकते।'

'यज्ञोऽदक्षिणो रिष्यति तस्मादाहुर्दातव्यैव यज्ञे दक्षिणा भवत्य-प्यल्पिकापि।' (ऐतरेय ब्रा० ६।५।९)

'दक्षिणारहित यज्ञ नष्ट हो जाता है, अतः कहा गया है कि यज्ञमें थोड़ी-बहुत दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये।'

'तस्मात् नादक्षिणेन हविषा यजेत।'

(शतपथब्राह्मण १।२।३।४)

'अतः दक्षिणारहित और हवि-रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये।'

यज्ञादिमें तत्काल दक्षिणा देनेकी आवश्यकता

कृत्वा कर्म च तस्यैव तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् ।
तत्कर्म फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'हे मुने ! कर्म कराकर ब्राह्मणोंको शीघ्र दक्षिणा देनेसे ही उस कर्मका फल यजमानको प्राप्त होता है, ऐसा वेदोंमें कहा है ।'

कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् ।
तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ।।
(देवीभागवत ९।४५।५३)

'हे मुने ! कर्म कराकर ब्राह्मणोंको शीघ्र दक्षिणा देनेसे यजमान-को तत्काल फलकी प्राप्ति होती है, ऐसा वेदोंमें कहा है ।'

यज्ञादिमें तत्काल दक्षिणा न देनेसे हानि

कर्ता कर्मणि पूर्णेऽपि तत्क्षणात् यदि दक्षिणाम् ।
न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥
मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम् ।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेद्रसगुणा च सा ॥
त्रिरात्रे वै दशगुणं सप्ताहे द्विगुणा ततः ।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्द्धते ॥
संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ।
कर्म तद् यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥
स च ब्रह्मस्वापहारी न कर्माहोऽशुचिर्नरः ।
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥
तद् गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥

एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तां पावकाहुतिम्।
दाता ददाति नो दानं ग्रहीता तन्न याचते॥
उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः।
नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचितारं च दक्षिणाम्॥
भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः॥
ततो भवेत् स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः।
पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वान् वै पूर्वजन्मनः॥

:(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृतिखण्ड ४२।५४–६३)

'यज्ञादि कर्मके पूर्ण हो जानेपर भी दैववश अथवा अज्ञानवश ब्राह्मणोंको दक्षिणा न देनेसे प्रतिक्षण वह दक्षिणा द्विगुणित हो जाती है। एक रात बीत जाने पर वह छगुनी, तीन रात बीत जाने पर दशगुनी, सात दिन बीतने पर बीसगुनी, एक मास बीतने पर लाखगुनी, एक वर्ष बीतनेपर तीन करोड़ गुनी बढ़ जाती है और साथ ही यजमानका किया हुआ सम्पूर्ण कर्म भी सर्वथा निष्फल हो जाता है। वह यजमान ब्रह्मांशका चोर, सत्कर्मोंके अयोग्य, अपवित्र होकर उसी भयङ्कर पापसे दरिद्र और व्याधियुक्त हो जाता है। उसके घरसे लक्ष्मी भी कठिन शाप देकर अन्यत्र चली जाती है। पितृगण भी उसके दिये हुए श्रादध, तर्पणादिको ग्रहण नहीं करते और देवगण उसकी पूजा तथा आहुति स्वीकार नहीं करते। देनेवाला दक्षिणा न देवे और पानेवाला याचक उससे दक्षिणाका तगादा न करे, ऐसी स्थितिमें जिस प्रकार टूट जानेसे भरा हुआ घड़ा जलमें डूब जाता है उसी प्रकार दाता और ग्रहीता दोनों ही नरकको प्राप्त करते हैं। जो यजमान अपने वृत याचकके माँगनेपर भी दक्षिणा नहीं देता, वह ब्राह्मणांशका चोर होकर निश्चय ही 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें जाता है। वहाँ जाकर एक लाख वर्ष

तक यमदूतोंकी ताड़नाओंको सहता हुआ अन्तमें व्याधियुक्त, दरिद्र तथा चाण्डाल योनिमें उत्पन्न होकर अपने पूर्वकी सात पीढ़ियोंको पतित कर देता है।'

दैवं वा पैतृकं वापि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये!।
यत्कर्म दक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥
दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम्।
अथाऽन्ते दैन्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं तु न दीयते।
तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत्॥
चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत्।
मासे पञ्चशताघ्ना स्यात् षण्मासे तच्चतुर्गुणा॥
संवत्सरे व्यतीते तु कर्म तन्निष्फलं भवेत्।
दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम्॥
पुत्र-पौत्र-धनैश्वर्यं क्षयमाप्नोति पातकात्।
धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड ७।२४-२६)

दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते।
एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्॥
मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम्।
संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत्॥
वर्षाणां च सहस्रं च मूत्रकुण्डे निपत्य च।
ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्तश्च पातकी॥
दात्रा न दीयते दानं ग्रहीत्रा चेन्न गृह्यते।
उभौ तौ नरकं प्राप्तौ वर्षाणां च सहस्रकम्॥
यजमानश्च चाण्डालो ब्राह्मणस्तत्पुरोहितः।
व्याधियुक्तावुभौ तौ च पापिनौ कर्मणः फलात्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णजन्मखण्ड ८७।७१—७५)

कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम् ।
न दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥
मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम् ।
एकरात्रे व्यतीते च भवेच्छतगुणा च सा ॥
त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ॥
संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ।
कर्म तद् यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥
स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः ।
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥
तद्गृहाद् याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥
एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम् ।
दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नैव याचते ॥
उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः ।
नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचितश्चापि दक्षिणाम् ॥
भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ॥
ततो भवेत् स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ।
पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वाश्च सप्तजन्मतः ॥

(देवीभागवत ९।४५।५४-६३)

अल्प दक्षिणावाले यज्ञका निषेध

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्ते ह कथञ्चन ।
इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ।

हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥
(मनुस्मृति ११।३९।४०)

'श्रद्धावान् जितेद्रिय ब्राह्मणको चाहिये कि वह यज्ञके अतिरिक्त अन्य पुण्य-कार्योंको भी करे, किन्तु शास्त्रोक्त दक्षिणासे न्यून दक्षिणासे यज्ञोंको कभी न करे। क्योंकि स्वल्प दक्षिणाद्वारा सम्पादित यज्ञ शरीरस्थ समस्त इन्द्रिय, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्ति, प्रजा और पशुको नष्ट करता है। अतः अल्प द्रव्यसे यज्ञ नहीं करना चाहिये।'

स्वल्प दक्षिणासे यज्ञ करनेवालेके भोजन करनेका निषेध

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्त्यल्पदक्षिणैः ।
तेषामन्नं न भोक्तव्यमपाङ्क्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥
(शातातपः)

'जो मनुष्य शक्ति रहते हुए भी स्वल्प दक्षिणाद्वारा अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको करते हैं, उनके अन्नको खाना नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसे मनुष्योंको शास्त्रोंमें अपाङ्क्त अर्थात् शिष्ट पुरुषोंके मध्यमें बैठनेके अयोग्य कहा है।'

कार्यानुसार धनिक और निर्धनके दक्षिणा देनेका विचार

व्याहृतीनां सहस्रस्य होमे शुल्कं द्विजेऽर्पयेत् ।
माषमात्रं सुवर्णन्तु लक्षहोमे शतं यवाः ॥
धनिको द्विगुणं दद्यात् त्रिगुणन्तु महाधनः ।
यवार्द्धं तु दरिद्रेण दातव्यं पुण्यलब्धये ॥
दद्यान्महादरिद्रस्तु तदर्द्धं शुल्कमेव तु* ।
(वाराहपुराण)

---

* एवमर्थतारतम्येन माध्यमिकानां दक्षिणादिदाने व्यवस्था कल्पनीया ।

'एक सहस्र व्याहृतिके हवनकी दक्षिणा माषमात्र सुवर्ण और एक लक्षके हवनमें सौ यव सुवर्ण ब्राह्मणको देना चाहिये। यह नियम साधारण स्थितिवालोंके लिये है। धनिकोंके लिये इससे दूना और राजाओंके लिये तीन गुणा प्रमाण है। यदि यजमान दरिद्र हो तो उत्तरोत्तर तथोक्त प्रमाणका अद्धांश मात्रामें दक्षिणा दे।'

यज्ञादिमें आचार्यकी दक्षिणा

यज्ञ-कर्म का 'अथ' से 'इति' पर्यन्त समस्त भार 'यज्ञाचार्य' पर ही निर्भर रहता है। शास्त्रोंमें यज्ञाचार्यको अत्यन्त पूज्य कहा है। यज्ञकर्ममें सर्वत्र अन्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा आचार्यकी दक्षिणा साधारणतया द्विगुणित कही गई है।

महर्षि कात्यायनने कहा है—

'सर्वत्र द्विगुणां दद्यादाचार्याय तु दक्षिणाम्।'

'यज्ञमें अन्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा यज्ञाचार्यको सर्वत्र द्विगुणित दक्षिणा देनी चाहिये।'

'पूजयेत्तु समं सर्वानाचार्यौ द्विगुणं पुनः।'

(मत्स्यपुराण ५८।१७)

'यज्ञादिमें समस्त ऋत्विजोंकी दक्षिणा आदिके द्वारा पूजा समान-भावमें करनी चाहिये, किन्तु आचार्यकी (अन्य विद्वानोंकी अपेक्षा) द्विगुणित दक्षिणासे पूजा करनी चाहिये।'

❀ **'आचार्ये द्विगुणं दद्यात्।'** (मत्स्यपुराण ५८।२१)

ब्रह्माको दक्षिणा देनेका विचार

ब्रह्मणे दक्षिणा देया या यत्र परिकीर्तिता।
कर्मान्तेऽनूच्यमानायां पूर्णपात्रादिकं भवेत्॥

'जिस कर्ममें ब्रह्माकी जो दक्षिणा कही गई है, उसे वही दक्षिणा

❀ आर्षत्वादत्र सप्तमी। उचिता तु चतुर्थ्येव।

देनी चाहिये। कर्मके अन्तमें ब्रह्माको पूर्णपात्र देनेके लिये भी कहा है।'

आचार्यादिको दक्षिणा कब देनी चाहिये

कुछ पद्धतिकारोंने आचार्यादिको दक्षिणा देनेके पूर्व ही यजमानका अभिषेक करना चाहिये, यह लिखा है। प्रतिष्ठेन्दुमें इसका स्पष्ट निषेध लिखा है।

रुद्रकल्पद्रुममें आचार्यादिको दक्षिणा देनेके बाद यजमानका अभिषेक करना चाहिये, यह लिखा है, किन्तु रुद्रकल्पद्रुमकारका यह मत ठीक नहीं है।

मत्स्यपुराण और वासिष्ठीपद्धतिमें लिखा है कि यजमानके अभिषेक हो जानेके बाद ही आचार्यादि ऋत्विजोंको दक्षिणा देनी चाहिये। मत्स्यपुराण और वासिष्ठीका मत ठीक है।

आचार्यादिको दक्षिणा कहाँ देनी चाहिये

यज्ञादिमें आचार्यादि ऋत्विजोंको यजमानद्वारा दक्षिणा यज्ञ मण्डपमें ही देनी चाहिये।

'मण्डपमध्य एव दक्षिणां दद्यात्' इति मदनरत्नादयः।

'मण्डपके मध्यमें ही दक्षिणा देनी चाहिये, यह मदनरत्नादि आचार्योंका मत है। यही मत उचित प्रतीत होता है।

'गुर्वत्विग्भ्यो दक्षिणां मण्डपाद् बहिरीशान्यां दद्यात्' इति रूपनारायणः।

'यज्ञ-मण्डपके बाहर ईशानकोणमें गुरु (आचार्य) एवं अन्य ऋत्विजोंको दक्षिणा देनी चाहिये, यह आचार्य रूपनारायणका मत है।'

यज्ञादिमें आचार्यादिको दैनिक दक्षिणा देनी चाहिये

आचार्यो यदि तुष्टः स्यात् सर्वशान्तिर्भविष्यति।
आचार्यदक्षिणा तस्माद्दीयतां प्रतिवासरम्॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् यथाशक्ति ततः परम्।

'आचार्य यदि प्रसन्न है, तो कर्ममें सब प्रकारकी शान्ति निश्चित है। अतः आचार्यको प्रतिदिन दक्षिणा देनी चाहिये, पश्चात् अन्य ऋत्विजोंको भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।'

देवकार्योंमें रजत दक्षिणाका निषेध

'यदश्रुशीर्यत तद्रजतं हिरण्यमभवत्तस्माद्रजतं हिरण्यमदक्षिण्य-मश्रुजं हि यो बर्हिषि ददाति पुराऽस्य संवत्सराद् गृहे रुदन्ति तस्माद् बर्हिषि न देयम्।'

(तैत्तिरीयशाखा १।५।१।१।२)

'अग्निदेवके रुदन करनेसे जो अश्रुधारा गिरी, वही रजत (चाँदी) हिरण्य श्वेत कान्तिवाला द्रव्य हुआ, अतः यज्ञमें चाँदीकी दक्षिणा देना निषिद्ध है। जो यजमान अग्निकी अश्रुधारासे उत्पन्न हुई चाँदीको दक्षिणारूपमें ब्राह्मणोंको देता है, उसके घरमें एक वर्ष पर्यन्त देवता, पितर और ऋषि रुदन करते हैं। अतः रजतकी दक्षिणा नहीं देनी चाहिये।'

शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्।
अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥

(वैजवापः)

'भगवान् शङ्करजीके नेत्रसे उत्पन्न हुई चाँदी पितरोंको प्रिय है, अतः उस अमङ्गलस्वरूप चाँदीको प्रयत्नपूर्वक देवकार्योंमें परित्याग करना चाहिये।'

सुवर्णकी दक्षिणाका महत्त्व

सुवर्णकी दक्षिणाके महत्त्वके सम्बन्धमें भगवान् व्यासजी कहते हैं—

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणोच्यते ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ७४।६)

'सुवर्णका दान ही परम दान है, सुवर्णकी दक्षिणा ही विशिष्ट दक्षिणा है। अतः समस्त दानोंमें सुवर्णकी दक्षिणाका विशेष महत्त्व है।'

सुवर्णमेव सर्वासु दक्षिणासु विधीयते ।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति सर्वदास्ते भवन्त्युत ॥
देवतास्ते प्रयच्छन्ति ये सुवर्णं ददत्यथ ।
अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम् ॥
तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः सर्वाः स्म देवताः ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व ८४। ५५–५७)

'समस्त प्रकारकी दक्षिणाओंमें सुवर्णकी दक्षिणा देनेके लिये कहा है। सुवर्णकी दक्षिणा देनेवाले सभी प्रकारकी वस्तुओंको देनेवाले माने जाते हैं। जो सुवर्णकी दक्षिणा देते हैं, वे देवताओंको दक्षिणा-रूपमें प्रदान करते हैं, क्योंकि अग्नि सर्वदेवरूप है और सुवर्ण अग्नि-रूप है। अतः सुवर्णकी दक्षिणा देनेवाला समस्त देवताओंका दान देनेवाला कहा गया है।'

यज्ञमें अन्नदानको भी दक्षिणा कहते हैं

'अन्नं दक्षिणा ।' (ऐतरेयब्राह्मण ३।३)

'यज्ञमें अन्नदानको भी दक्षिणा कहा गया है।'

हवनीय द्रव्य (*शाकल्य) और उसका परिमाण

'व्रीहीन् यवान्वा हविषि' (कात्या० श्रौ० सू० १।९।१) तथा **'होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना'** (अनुष्ठानप्रकाश) इत्यादि श्रुति-स्मृति-प्रमाणोंसे तिल, यव, चावल और घृतकी ही हविर्द्रव्य संज्ञा सिद्ध होती है। हवनादिमें विशेषतया उपर्युक्त हविर्द्रव्यका ही अधिक उपयोग होता है।

हवनार्थ हवनीय द्रव्यकी आहुति देनेके विषयमें शास्त्रज्ञोंने एक नियमित व्यवस्था कर दी है। अतः याज्ञिकोंको उचित है कि जिस द्रव्यके विषयमें जो परिमाण बतलाया गया है तदनुकूल द्रव्य-योजना कर हविर्द्रव्यका व्यवहार करना चाहिये। शास्त्रानुमोदित मार्गके अनुकूल कार्य करनेसे ही उचित फल प्राप्त होता है, अन्यथा अनेक प्रकारकी हानि भोगनी पड़ती है। हविर्द्रव्यके परिमाणका विवरण शास्त्रोंमें इस प्रकार मिलता है—

तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।
यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्द्धं च घृतं स्मृतम्॥

(आनन्दरामायण)

'तिलका आधा चावल और चावलका आधा जौ देना चाहिये। जौसे आधा शर्करा कही गई है और सबसे आधा घृत कहा गया है।'

तिलार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।
तण्डुलैस्त्रिगुणं चाज्यं यथेष्टं शर्करा मता॥

'तिलके आधे चावल कहे गये हैं, चावलोंके आधे जौ और

---

* तिलाक्षतयवाश्चापि शर्कराऽऽज्यं तथैव च।
एतच्छाकल्यमित्याहुः पूर्वाचार्या महर्षयः॥

चावलोंसे तिगुना घृत कहा गया है। शर्करा जितनी इच्छा हो उतनी कही गई है।'

तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा।
अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवः समाः॥

'यवकी अपेक्षा तिलको द्विगुणित रखना चाहिये और अन्य सुगन्धित गुग्गुल इत्यादि द्रव्योंको यवके बराबर ही रखना चाहिये।'

तिलार्धं तु यवाः प्रोक्ता यवार्धं तण्डुलाः स्मृताः।
तण्डुलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यभागचतुष्टयम्॥

'तिलका आधा यव, यवका आधा चावल, चावलकी आधी चीनी और चतुर्गुण घृतसे शाकल्यका निर्माण उत्तम कहा गया है।'

तिलाधिक्ये भवेल्लक्ष्मीर्यवाधिक्ये दरिद्रता।
घृताधिक्ये भवेन्मुक्तिः सर्वसिद्धिस्तु शर्करा॥

'तिलकी अधिकतासे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और यवकी अधिकतासे दरिद्रताकी प्राप्ति होती है। घृतके आधिक्यसे मुक्ति और शर्कराके आधिक्यसे सर्वसिद्धि होती है।'

❀ आयुःक्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि॥

(त्रिकारिकायाम्)

'तिलसे यवके अधिक होने पर आयुका नाश होता है, तिलके बराबर यवके रहने पर धनका नाश होता है, अतः सर्वदा तिलकी अधिकता ही उचित है। इससे सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है।'

'तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः।' (शान्तिरत्न)

'घृतसे सने काले तिल, कुछ यवोंसे युक्त हवनीय कहे गये हैं।'

अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपि वा।
शम्भवार्येति जुहुयात्सर्वास्तानाज्यसिक्तकान्॥

(बृहत्पाराशरः)

❀ 'यवाधिक्ये प्रजानाशः' यह भी किसी आचार्यका मत है।

'अक्षत (चावल) अथवा तिल या जौ अथवा समिधोंका उन सबको घीमें बोर कर 'नमः शम्भवाय' इस मन्त्रसे आहुति देनी चाहिये ।'

इस प्रकार उपर्युक्त मत-मतान्तरोंकी आलोचनासे 'बहुवचनं प्रमाणम्' (अनेक वचन जिस विषयको कहें वही प्रमाणभूत है) इस न्यायसे यही निष्कर्ष निकलता है कि तिलकी अधिकतासे ही यजमानकी सर्वविध सिद्धियाँ होती हैं ।

कहीं-कहीं ग्रन्थ-विशेषमें **'यवार्द्धं तण्डुलाः प्रोक्ताः तण्डुलार्द्धं तथा तिलाः'** यह वचन भी मिलता है । यद्यपि यह वचन यवाधिक्य-का ही विधान सिद्ध करता है, किन्तु सहायक प्रामाणिक वचनान्तरोंकी न्यूनताके कारण यवाधिक्य सर्वथा उपेक्षणीय और त्याज्य है ।

हवनीय द्रव्यका एकादश विभाग आवश्यक है

पञ्चभागास्तिलाः प्रोक्तास्त्रिभागास्तण्डुलास्तथा ।
द्वौ भागौ च यवस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम् ॥
रुद्रभागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा ।

'पाँच हिस्सा तिल, तीन हिस्सा चावल, दो हिस्सा जौ और एक हिस्सेमें गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित द्रव्य—इस प्रकार एकादश भागोंसे संयुक्त हवनसामग्रीसे जो हवन किया जाता है, वह सर्वप्रकारकी उत्तम सिद्धिको देता है ।'

नित्य हवनमें विहित द्रव्यके अभावमें प्रतिनिधि द्रव्य

नित्य हवनमें विहित द्रव्यके अभावमें प्रतिनिधि द्रव्यसे भी कार्य हो सकता है । महर्षि कात्यायन कहते हैं—

'नित्ये सामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात् ।'

(का० श्रौ० सू० १।४।२)

घृतार्थे गोघृतं ग्राह्यं तदभावे तु माहिषम्।
आजं वा तदभावे तु साक्षात्तैलमपीष्यते॥
तैलाभावे ग्रहीतव्यं *तैलं ‡जर्तिलसम्भवम्।
तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुम्भः सर्षपोद्भवः॥
वृक्षस्नेहोऽथवा ग्राह्यः पूर्वालाभे परः परः।
तदभावे यवव्रीहिश्यामाकान्यतमोद्भवः॥
(मण्डनः)

'हवनके लिये सबसे अच्छा गोघृत होता है, उसके अभावमें बकरीका घृत, उसके अभावमें शुद्ध तेलसे हवन करना चाहिये। तेलके अभावमें जर्तिल (जंगलमें होनेवाला तिल) का तेल, उसके अभावमें तीसीका तेल, उसके अभावमें कुसुम्भ, उसके अभावमें पीली सरसों, उसके अभावमें सरसोंका तेल, उसके अभावमें गोंद ग्राह्य है। इनमें जो-जो वस्तु पहलेवाली न मिले, उसके स्थानमें उसके आगेकी लिखी हुई वस्तुसे काम चलावे। पूर्वोक्त वस्तुओंके अभावमें यव, चावल, साँवाँ—इन तीनोंमेंसे किसी एकसे काम करे।'

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद् घृतम्।
तदलाभे तु माहिष्यं आजमाविकमेव वा।
तदभावे तु तैलं स्यात्तदभावे तु जार्तिलम्।
तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम्॥
(बौधायनः)

---

* आरण्यकास्तिलास्तत्प्रभवं तैलम्।

‡ जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ता कृष्णवर्णा वनोद्भवाः।
जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादिताश्च ये॥
(सत्यव्रतः)

'जर्तिलः कथ्यते सद्भिररण्यप्रभवस्तिलः।'

'समस्त प्रकारके घृतके हवनमें गौका घृत ही उचित है। गौके घृतके अभावमें भैंसका अथवा बकरी एवं भेंड़का घृत, उसके अभावमें तेल, उसके अभावमें जंगलमें होनेवाले तिलका तेल, उसके अभावमें कुसुम्भ और उसके अभावमें सरसोंका ग्रहण उचित है।'

गव्याज्याभावतश्छागामहिष्यादेर्घृतं क्रमात्।
तदभावे गवादीनां क्रमात् क्षीरं विधीयते॥
तदभावे दधि ग्राह्यमलाभे तैलमपीष्यते।

'यदि गौके घृतका अभाव हो तो क्रमसे बकरी या भैंस आदिका घृत विहित है। यदि उसका भी अभाव हो तो उसके बदले क्रमसे गौ आदिका दुग्ध कहा गया है। यदि दही भी न मिले तो तेल भी लिया जा सकता है।'

दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तथा गुडः।
घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'दधिके अभावमें दुग्धसे, शहदके अभावमें गुड़से, घृतके अभावमें दुग्ध अथवा दधिसे काम चलावे।'

आज्य शब्दका अर्थ

घृतं वा यदि वा तैलं पयो दधि च यावकम्।
संस्कारयोगादेतेषु आज्यशब्दोऽभिधीयते॥
(यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट)

'घृत हो अथवा तेल हो, दूध हो या दही हो अथवा यावक (आधे भुने या पके हुए जौ आदि) हो संस्कार-सम्बन्ध होनेसे इन सबको आज्य शब्दसे कहा जाता है।'

घृतके उत्तम, मध्यम और अधमका निर्देश

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं माहिषीभवम् ।
अधमं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते ॥
(पिङ्गलामत)

'गोघृत सर्वोत्तम, भैंसका घृत मध्यम और बकरीका घृत अधम कहा गया है, अतः इनमें गोघृत ही प्रशस्त है ।'

घृतादिके अभावमें तिल ग्राह्य है

यत्र यत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वाचनं तथा ॥
(याज्ञ० स्मृ०, प्राय० ३०९)

'जहाँ-जहाँ घृतके अभावके कारण द्विज अपनी आत्मामें संकीर्णता (संकोच) का अनुभव करे, वहाँ-वहाँ वह तिलसे होम करे और गायत्रीका जप करे ।'

तिलका महत्त्व

तिलान् ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति ।
तिलस्नायी तिलाञ्जुह्वन् सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥
(यमस्मृति)

'जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल तिलका दान करता है, तिलका स्पर्श करता है, तिलको खाता है, तिलसे स्नान करता है और तिलसे हवन करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है ।'

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ।
शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥
(स्मृतिकौस्तुभ)

'तिल अत्यन्त पवित्र और पुण्यप्रद है तथा वह समस्त प्रकारके पापोंको दूर करनेवाला है। वह तिल सफ़ेद और काला दो प्रकारका भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है।'

हवनमें घृताक्त तिलका उपयोग उचित है

'घृताक्तं जुहुयाद्धविः।'

'घृताक्त हविसे हवन करना चाहिये।'

हवनीय द्रव्य

पायसान्नैस्त्रिमध्वाक्तैर्द्राक्षारम्भाफलादिभिः।
मातुलुङ्गैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलयुतैस्तिलैः॥
जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः।

'त्रिमधुर अथवा त्रिमधु (मिश्रित मिश्री, शहद और घृत)से, मिश्रित खीरसे, दाख, केलेके फल आदिसे, बिजौरा नीबू (चकोतरा) से, ईखके टुकड़ेसे, नारियलकी गिरीसे युक्त तिलोंसे, जातीफलसे, आमके फलसे, अन्यान्य और भी मधुर मीठी वस्तुओंसे हवन करना चाहिये।'

हवनमें विहित धान्य

***कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्।**
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः॥

(कात्यायनः)

---

* विद्वानोंको अन्नकी ये तीन संज्ञाएँ समझनी चाहिएँ—कृत, कृताकृत और अकृत। भात, सत्तू आदि कृत है, चावल आदि कृताकृत है और धान आदि अकृत है यानी जो अन्न सब संस्कार हो जानेपर सिद्ध हो चुका हो वह कृत है, जिसके कुछ संस्कार हो चुके और कुछ अवशिष्ट हों वह कृताकृत है तथा जिसके सब संस्कार शेष हों वह अकृत है।

'सत्तू आदि सिद्ध अन्न, तण्डुल (चावल) आदि सिद्ध और असिद्ध दोनों प्रकारके और व्रीहि आदि केवल असिद्ध यों विद्वानोंने होममें ये तीन प्रकारके हविर्द्रव्य कहे हैं।'

कामनाभेदसे हवनीय पदार्थका विचार

दूर्वा भव्याश्च समिधो गोघृतेन समन्विताः।
होतव्याः शान्तिके देवि शान्तिर्येन भवेत् स्फुटम् ॥
समिधो राजवृक्षोत्था होतव्याः स्तम्भकर्मणि।
मेषीघृतेन संयुक्ताः स्तम्भसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
खदिरा मारणे प्रोक्ताः कटुतैलेन संयुताः।
होतव्याः साधकेन्द्रेण मारणं येन सिद्ध्यति ॥
उच्चाटने चूतजाता कटुतैलेन संयुताः।
उच्चाटयेन्महीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ।
वश्ये चैव सदा होमः कुसुमैर्दाडिमोद्भवैः।
अजाघृतेन देवेशि वशयेत् सचराचरम् ।
विद्वेषे चैव होतव्या उन्मत्तसमिधो मताः।
अतसीतैलसंयुक्ता विद्वेषणकरं परम् ॥

(मोहशूरोत्तरे)

'हे देवि ! शान्तिक कर्ममें गोघृतसे तर दूर्वोद्भव (दूबकी) समिधाओंका हवन करना चाहिये जिससे निश्चय (निस्सन्देह) शान्ति होती है।

यदि किसीका स्तम्भन करना हो तो राजवृक्ष (धन वहेड़ा) की समिधाओंका भेड़के घीसे तरकर हवन करना चाहिये। निश्चय ही स्तम्भन कर्ममें सिद्धि होती है।

मारण कर्ममें खैरकी समिधाएँ कही गई हैं। कडुवे तेलमें भिगो

कर उनका श्रेष्ठ साधक पुरुषको हवन करना चाहिये, जिससे मारणकी सिद्धि होती है।

उच्चाटन कर्ममें कडुवे तेलसे संयुक्त आमकी समिधाएँ कही गई हैं, उनसे हवन करता हुआ साधक पुरुष और तो और पर्वत, वन, महावन सहित सारी पृथ्वीका उच्चाटन कर देता है।

हे देवेशि ! वश्य कर्ममें दाडिमके फूलोंसे बकरीके घृतके साथ सदा होम करना चाहिये, जिससे साधक चराचर जगत्‌को वशमें कर लेता है।

विद्वेष कर्ममें धत्तूर वृक्षकी समिधाओंका हवन कहा गया है, उन्हें अलसी (तीसी) के तेलमें भिगाकर हवन करनेसे परस्म विद्वेषण होता है।'

अन्यत्र भी लिखा है—

पुत्रार्थे शालिबीजेन धनार्थे बिल्वपत्रकैः।
आयुष्कामस्तु दूर्वाभिः पुष्टिकामस्तु वेतसैः॥
कन्याकामस्तु लाजाभिः पशुकामो घृतेन तु।
विद्याकामस्तु पालाशैर्दशांशेन तु होमयेत्॥
धान्यकामो यवैश्चैव गुग्गुलेन रिपुक्षये।
तिलैरारोग्यकामस्तु व्रीहिभिः सुखमश्नुते॥

'पुत्र-प्राप्तिके लिये साठीके बीजोंसे, धन प्राप्तिके लिये बिल्वके पत्रोंसे, आयुकी कामनावाला पुरुष दूर्वासे, पुष्टि चाहनेवाला पुरुष वेंतकी समिधाओंसे, कन्या चाहनेवाला पुरुष धानके लावोंसे, पशु चाहनेवाला पुरुष घृतसे और विद्या चाहनेवाला पुरुष पलाशकी समिधाओंसे दशांश* होम करे। धान्य (अन्न) चाहनेवाला

* हरिवंशादि श्रवण, श्रीसूक्त आदिका जप जो जिसके लिए शास्त्रद्वारा विहित है उसका प्रधान रूपसे अनुष्ठान कर पाठ, जप आदिके दशांशसे होम करना विहित है। पाठ, जप, होम, तर्पण, ब्राह्मणभोजन ये क्रमशः दशांश हो।

पुरुष यवोंसे, शत्रुक्षयके निमित्त गुग्गुलसे तथा आरोग्य चाहनेवाला पुरुष तिलोंसे हवन करे। व्रीहियों (धानों) से हवन करनेवाला पुरुष सुख प्राप्त करता है।'

हवनीय पदार्थके अभावमें विचार

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः॥
(ब्रह्मपुराण)

'हवनके लिये जो सामग्री कही गई है, यदि उसका अभाव हो, तो तदनुकूल वस्तु लेना चाहिये। जैसे—यवकी जगह गेहूँ और धानकी जगह साठी लेना चाहिये।'

कृमि-कीटादिसे युक्त हवनीय पदार्थका त्याग उचित है

कृमिकीटपतङ्गादि द्रव्येषु पतितं यदि।
तद् द्रव्यं वर्जयेन्नित्यं देवयागेषु सर्वतः॥
तद्दैवत्यं शतं हुत्वा चान्यद् द्रव्यं समाहरेत्।

'यज्ञादिमें प्रयुक्त होनेवाले हवनीय पदार्थोंमें यदि कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग आदि गिर जायँ, तो उस हवनीय सामग्रीका त्याग कर देना चाहिये और उस यज्ञके प्रधान देवताके निमित्त विशेष रूपसे सौ बार घृतकी आहुति देकर हवनार्थ दूसरे पवित्र द्रव्यको लाना चाहिये।'

हवनीय पदार्थकी गड़बड़ीसे यजमानकी हानि

'यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात्।'
(कपिष्ठल शा० ४८।१६)

'यज्ञाग्निमें कूड़ा, कंकर (पत्थर आदि) कीड़ी आदि जन्तुओंसे

युक्त हवनीय द्रव्यके द्वारा हवन करनेसे यजमान पुत्रादि, पशु और धनादिसे रहित हो जाता है।'

चरु

'चरति होमादिकमस्मादसौ चरुः' ओदनविशेषः।

'यह (होता) जिससे होम करता है वह चरु कहलाता है अर्थात् ओदन—विशेष (एक प्रकारका भात)।'

'चरुर्वै देवानामन्नमोदनो हि चरुः।'

'चरु देवताओंका अन्न है। ओदन (भात)को चरु कहते हैं।'

अनिर्गतोष्मा सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनश्चरुः।
न चातिशिथिलः पाच्यो न च वीतरसो भवेत्॥
(सारसंग्रह)

'जिसकी उष्णता (गर्मी) निकल न गई हो अर्थात् गर्मागर्म, जो खूब पका हो, जला न हो और कड़ा न हो वह चरु है। उसे इस तरह पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न उसका गीलापन बिलकुल चला जाय।'

अन्वर्थः श्रपितः स्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः।
न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा॥

'पकाया हुआ हो, खूब उबला हुआ अर्थात् गला हुआ हो, जला हुआ न हो, कड़ा न हो, नामके अनुरूप चरु (ओदन) शुभ माना गया है। उसे (चरुको) इस प्रकार पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न बिना रसका (सूखा) हो।'

हविष्य पदार्थ

'चरुभैक्षसक्तुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि।' (गौतमस्मृति २८)

'चरु (भात), भिक्षाका अन्न, भुने हुए जौका सत्तू कण, यावक (आधे भुने हुए जौ), गोदुग्ध, दधि, घृत, मूल, फल और जल ये खानेके योग्य हविष्यान्न हैं। इनमें आगे-आगेकी वस्तु श्रेष्ठ है।'

हविष्यान्नं तिला माषा नीवारा व्रीहयो यवाः।
इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु॥
हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः।
व्रीहीणामप्यलाभे तु दध्ना वा पयसाऽपि वा॥
यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः॥
अभावे व्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा॥
(रेणुकारिका)

'तिल, उरद, तिन्नी, भदौंह, धान, जौ, ईख, वासमती, मूँग, दूध, दही, घी और शहद ये हविष्यान्न हैं। हविष्य अन्नोंमें जौ मुख्य है, उसके बाद धानोंका स्थान कहा है। यदि धान भी न मिल सकें तो दूधसे अथवा दहीसे काम लेना चाहिये। जहाँ जो वस्तु कही कई है वह यदि न मिल सके तो उसके स्थानमें उसके अनुकल्पका (उससे मिलते जुलते गुणवाली वस्तुका) ग्रहण करना उचित है। जैसे जौके स्थानमें गेहूँ और धानोंके स्थानमें वासमती धान। इनके अभावमें धान, जौ, दधि अथवा दुग्धका ग्रहण उचित है।'

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः।
माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभे विवर्जयेत्॥
(कात्यायनस्मृति ६। १०)

'हविष्य अन्नोंमें जौ मुख्य है, उसके बाद धानोंको कहा है। यदि हविष्य कोई भी प्राप्त न हो, तो उड़द, कोदों और सरसोंका कभी भी हविष्यरूपमें उपयोग न करे।'

कर्म-विशेषमें अग्निके भिन्न-भिन्न नाम

प्रत्येक कर्मके लिये अग्निके अलग-अलग नाम हैं। अतः जिस कर्मके लिये जिस अग्निका आचार्योंने नाम-निर्देश किया है, उसी अग्निका सविधि आवाहन एवं स्थापन कर हवन करना चाहिये।

अनेक आचार्योंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें अग्निके नाम लिखे हैं, जिनमेंसे कतिपय आचार्योंके प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

आचार्य वाचस्पतिने अग्निके २७ नाम इस प्रकार बतलाये हैं—

लौकिके पावको ह्यग्निः प्रथमः परिकीर्तितः।
अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने प्रकीर्तितः॥
पुंसवे चमसो नाम शोभनः शुभकर्मसु।
सीमन्ते ह्यनलो नाम प्रगल्भो जातकर्मणि॥
पार्थिवो नामकरणे प्राशनेऽन्नस्य वै शुचिः।
सभ्यनामा तु चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः॥
गोदाने सूर्यनामा स्यात् केशान्ते याजकः स्मृतः।
वैश्वानरो विसर्गे स्याद् विवाहे ब्रह्मदः स्मृतः॥
चतुर्थीकर्मणि शिखी धृतिरग्निस्तथापरे।
आवसथ्यस्तथाधाने वैश्वदेवे तु पावकः॥
ब्रह्माग्निर्गार्हपत्यः स्याद्दक्षिणाग्निस्तथेश्वरः।
विष्णुराहवनीयः स्यादग्निहोत्रे त्रयो मताः॥
लक्षहोमेऽभीष्टदः स्यात्कोटिहोमे महाशनः।
एके घृतार्चिषं प्राहुरग्निध्यानपरायणाः॥
रुद्रादौ तु मृडो नाम शान्तिके शुभकृत्तथा।
पौष्टिके वरदश्चैव क्रोधाग्निश्चाभिचारिके॥
वश्यार्थे वशकृत्प्रोक्तो वनदाहे तु पोषकः।
उदरे जठरो नाम क्रव्यादः शवभक्षणे॥

समुद्रे वाडवो ह्यग्निर्लये संवर्तकस्तथा।
सप्तविंशतिसंख्याका अग्नयः कर्मसु स्मृताः॥

'लौकिक कर्मोंमें 'पावक' नामका, गर्भाधानमें 'मारुत' नामका, पुंसवन संस्कारमें 'चमस' नामका, विविध शुभ कर्मोंमें 'शोभन' नामका, सीमन्तोन्नयनमें 'अनल' नामका, जातकर्ममें 'प्रगल्भ' नामका, नामकरणमें 'पार्थिव' नामका, अन्न-प्राशनमें 'शुचि' नामका, चूडाकरणमें 'सभ्य' नामका, व्रतबन्धमें 'समुद्भव' नामका, गोदानाख्य संस्कार कर्ममें 'सूर्य' नामका और समावर्तनमें 'याजक' नामका अग्नि कहा गया है। विसर्गमें (साग्निक पुरुषद्वारा करणीय कर्ममें) 'वैश्वानर' नामका तथा विवाहमें 'बलद' नामका अग्नि कहा गया है। चतुर्थीकर्ममें 'शिखी' नामका, दूसरे धृति होमादिमें 'धृति' नामका, अग्न्याधानमें 'आवसथ्य' नामका, वैश्वदेवमें 'पावक' नामका तथा ब्रह्मरूप गार्हपत्याग्नि, ईश्वररूप दक्षिणाग्नि, विष्णुरूप आहवनीयाग्नि—ये तीनों अग्नि अग्निहोत्रमें कहे गये हैं। लक्षहोममें 'अभीष्ट' नामका अग्नि, कोटिहोममें 'महाशन' नामका अग्नि, अग्नि-ध्यानमें परायण (तत्पर) कोई पुरुष उसे 'घृतार्चिः' कहते हैं। रुद्र आदिमें 'मृड' नामका, शान्तिक कर्ममें 'शुभकृत' नामका, पौष्टिक कर्ममें 'वरद' नामका, आभिचारिक कर्ममें 'क्रोध' नामका, वशीकरणमें 'वशकृत्' नामका, वन जलानेमें 'पोषक' नामका, पेटमें 'जठर' नामका, शव जलानेमें 'क्रव्याद' नामका, समुद्रमें 'वाडव' नामका और प्रलयमें 'संवर्तक' नामका अग्नि शास्त्रमें अभिहित है। इस प्रकार सब कर्मोंमें सत्ताईस अग्नि कहे गये हैं।'

लौकिके पावको ह्यग्निः प्रथमः परिकीर्तितः।
अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते॥
पुंसवने चन्द्रनामा शुभकर्मणि शोभनः।
सीमन्ते मङ्गलो नाम प्रगल्भो जातकर्मणि॥

नाम्नि स्यात् पार्थिवो ह्यग्निः प्राशने च शुचिस्तथा ।
सभ्यनामाथ चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः ॥
गोदाने सूर्यनामा च केशान्ते ह्यग्निरुच्यते ।
वैश्वानरो विसर्गे तु विवाहे योजकः स्मृतः ॥
चतुर्थ्यां तु शिखी नाम धृतिरग्निस्तथापरे ।
प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु साहसः ॥
लक्षहोमे तु वह्निः स्यात् कोटिहोमे हुताशनः ।
पूर्णाहुत्यां मृडो नाम शान्तिके वरदस्तथा ॥
पौष्टिके बलदश्चैव क्रोधाग्निश्चाभिचारिके ।
वश्यर्थे शमनो नाम वरदानेऽभिदूषकः ॥
कोष्ठे तु जठरो नाम क्रव्यादो मृतभक्षणे ।
(गोभिलपुत्रकृतसंग्रहे)

'लौकिक कर्ममें 'पावक' अग्नि कहा गया है, गर्भाधानमें 'मारुत' अग्निका विधान है, पुंसवनमें 'चन्द्र' अग्नि कहा गया है, अन्यान्य शुभ कर्मोंमें 'शोभन' अग्नि कहा गया है, सीमन्तोन्नयनमें 'मङ्गल' अग्नि कहा गया है, जातकर्ममें 'प्रगल्भ' अग्नि कहा गया है, नाम-कर्ममें 'पार्थिव' अग्नि कहा गया है। अन्नप्राशनमें 'शुचि', चूड़ाकरणमें 'सभ्य', व्रतबन्ध (उपनयन) में 'समुद्भव', गोदान—संस्कारमें 'सूर्य', समावर्तन—संस्कारमें 'अग्नि', विसर्ग (साग्निक पुरुषद्वारा करणीय कर्म) में 'वैश्वानर' तथा विवाहमें 'योजक' अग्नि कहा है। चतुर्थीकर्म (विवाहके बाद चतुर्थीहोम) में 'शिखी', अपर अर्थात् धृतिहोम आदिमें 'धृति', प्रायश्चित्तमें 'विधु', पाकयज्ञमें (पाकाङ्गक होममें यानी वृषोत्सर्ग, गृहप्रतिष्ठा आदिमें) 'साहस' अग्नि अभिहित है। लक्षहोममें 'वह्नि', कोटिहोममें 'हुताशन', पूर्णाहुतिमें 'मृड', शान्तिकर्ममें 'वरद', पौष्टिक कर्ममें 'बलद', आभिचारिक कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि) में 'क्रोध', वशीकरणमें

'शमन', वरदानमें 'अविदूषक', उदरमें 'जठर' और मृत (शव) के भक्षणमें 'क्रव्याद' अग्नि शास्त्रोंमें अभिहित है।'

लौकिके पावको ह्यग्निः प्रथमः परिकीर्तितः।
अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने प्रकीर्तितः॥
पुंसवे चमसो नाम सीमन्ते मङ्गलाभिधः।
प्रगल्भो जातसंस्कारे शोभनः शुभकर्मणि॥
पार्थिवो नामकरणे प्राशनेऽन्नस्य वै शुचिः।
सभ्यनामा तु चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः॥
गोदाने सूर्यनामा स्यात् विवाहे योजकः स्मृतः।
वैश्वानरो विसर्गे स्यात् शान्तिके वरदः स्मृतः॥
चतुर्थीकर्मणि शिखी धृतिरग्निस्तथापरे।
आवसथ्यस्तथाऽऽधाने वैश्वदेवे तु पावकः॥
ब्रह्माग्निर्गार्हपत्यः स्याद्दक्षिणाग्निस्तथेश्वरः।
विष्णुराहवनीयः स्यादग्निहोत्रे त्रयोऽग्नयः॥
प्रायश्चित्ते विधिश्चैव पाकयज्ञेषु साहसः।
देवानां हव्यवाहस्तु पितॄणां कव्यवाहनः॥
लक्षहोमेऽभीष्टदः स्यात् *कोटिहोमे महाशनः।
पूर्णाहुतौ मृडो नाम पौष्टिके बलवर्द्धनः॥
मृतदाहे तु क्रव्यादः क्रोधाग्निश्चाभिचारिके।
वश्यार्थे वशकृत्प्रोक्तो वनदाहे तु पोषकः॥
(विधानपारिजात)

'लौकिकमें पावक, गर्भाधानमें मारुत, पुंसवनमें चमस, सीमन्तमें मङ्गल, जातकर्ममें प्रगल्भ, शुभकर्ममें शोभन, नामकरणमें पार्थिव, अन्नप्राशनमें शुचि, चूड़ाकरणमें सभ्य, व्रतादेशमें समुद्भव, गोदानमें

---

* 'एके घृतार्चिषं प्राहुरग्निध्यानपरायणाः।'
'अग्निमें ध्यानपरायण एक आचार्यका कहना है कि कोटिहोमकी अग्निका नाम 'घृतार्चिष्' है।'

सूर्य, विवाहमें योजक, विसर्गमें वैश्वानर, शान्तिकर्ममें वरद, चतुर्थी-कर्ममें शिखी, दूसरे धृति होमादिमें धृति, आधान (अग्न्याधान) में आवसथ्य और वैश्वदेवमें पावक अग्नि होता है। अग्निहोत्रमें तीन अग्नि प्रसिद्ध हैं—गार्हपत्याग्निमें ब्रह्मा, दक्षिणाग्निमें शिव (ईश्वर) और आहवनीयाग्निमें विष्णु। प्रायश्चित्तमें विधि, पाकयज्ञमें साहस, देवताओंका हव्यवाह, पितरोंका कव्यवाह, लक्षहोममें अभीष्टद, कोटिहोममें महाशन, पूर्णाहुतिमें मृड, पौष्टिकमें बलवर्धन, मृतदाहमें क्रव्याद, अभिचार-कर्ममें क्रोधन, वशीकरणमें वशकृत् और वनदाहमें पोषक नामका अग्नि कहा गया है।'

अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते।
पावमानः पुंसवने शृङ्गारः कर्णवेधने॥
सीमन्ते मङ्गलो नाम प्रबलो जातकर्मणि।
नाम्नि तु पार्थिवो वह्निः प्राशने तु शुचिः स्मृतः॥
सभ्यो नामाऽग्निश्चौले तु ‡व्रतादेशे समुद्भवः।
गोदाने सूर्यनामा तु विवाहे योजकः स्मृतः॥
चतुर्थ्यां शिखिनामा तु धृतिरग्निस्तथापरः।
आवसथ्ये भवो ज्ञेयो वैश्वदेवे तु पावकः॥
ब्रह्मा च गार्हपत्ये तु ईश्वरो दक्षिणस्तथा।
विष्णुश्चाऽऽहवनीये च अग्निहोत्रे त्रयोऽग्नयः॥
वह्निस्तु लक्षहोमे च कोटिहोमे हुताशनः।
पूर्णाहुत्यां *मृडो नाम शान्तिके वरदस्तथा।

---

‡व्रतमध्ये हरिर्नाम व्रतान्ते राजपुत्रकः।
गोदाने सूर्यनामा स्याद्विवाहे योजकः स्मृतः॥

*पूर्वं प्रज्वलितो वह्निर्हविर्द्रव्यं तु भोजितः।
तृप्तो निर्धूम-निर्ज्वालो मृडाग्निः परिकीर्तितः॥
(ग्रहरत्नावली)

प्रायश्चित्ते दितिर्नाम पाकयज्ञे तु साहसः।
पौष्टिके बलदो नाम क्रोधाग्निश्चाभिचारिके॥
वृष्ट्यर्थे शिखिनामाऽग्निर्वनदाहेषु सूचकः।
कुक्षौ तु जठराग्निश्च क्रव्यादो मृतभक्षिणे॥
वृषोत्सर्गे रौद्रनामा नीलोद्वाहे तथा हि सः।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः॥
समुद्रे वाडवो बह्निः क्षये सम्वर्तकस्तथा।
(वशिष्ठः)

आधाने भरतो ह्यग्निर्वरः पुंसवने स्मृताः।
सीमन्ते मङ्गलो नाम जातकर्मे स्वभूः स्मृतः॥
नामे बलः समाख्यातः प्राशने अङ्गिरा मतः।
चूडे समुद्भवो वह्निर्जयो *व्रतनिबन्धने॥
रुद्रो गोदानिको नाम विवाहे संयुगः स्मृतः।
अग्निश्च व्यालिका नाम अग्निहोत्रे विधीयते॥
आवस्थे च भवो ज्ञेयः पितॄणां विश्वदेवकः।
अनलो जाठरो ह्यग्निः कल्मषो मृतभक्षणे॥
सूर्यो बह्निर्महाहोमे जलो जलनिवेशने।
शशाङ्कः पूर्णिमाहोमे क्षये संवर्तको मतः॥
घोरः काष्ठसमुत्थश्च परान्तो वेणुसम्भवः।
समुद्रे वडवाग्निस्तु दक्षः पाकविधौ मतः॥
निधीशो वसुधारायां कामदेवोऽथ धूपजः।
तुषजः कामहा त्र्यग्नी रथ्यायां तु परान्तकः॥
विभत्सुः क्षुत्करो बह्निर्विजयो नृपगेहजः।
धूम्रो वृक्षसमुत्थस्तु दीपे कृष्णपथो मतः।
हेमन्ताद्ये भवेद्वाद्य अजितो मातृवेश्मजः॥

*उपनयनकाले।

शङ्करो म्लेच्छलोकेषु संघो वै चेष्टपाकजः।
दित्ते शुद्धिं विजानीयाज्जयः शुक्रनिवेशने ॥
(देवीपुराण १२३)

'आधानमें (गर्भाधानमें) 'भरत', पुंसवन—संस्कारमें 'वर', सीमन्तोन्नयन–संस्कारमें 'मङ्गल', जातकर्ममें 'स्वभू' और नामकर्म-संस्कारमें 'बल' अग्नि कहा गया है। अन्नप्राशन–संस्कारमें 'अङ्गिरा', चूड़ाकर्ममें 'समुद्भव', उपनयनमें 'जय', गोदान अर्थात् समावर्तन संस्कारमें 'रुद्र' और विवाहमें 'संयुग' अग्नि कहा गया है। अग्निहोत्रमें 'व्यालिक' नामक अग्नि गृह्य—कर्ममें 'भत्र' नामक अग्नि और पितृ-कर्ममें 'विश्वदेव' अग्नि जानना चाहिये। उदरकी अग्निका नाम अनल है, मृत (शव)का भक्षण करनेमें अग्निका नाम 'कल्मष' है। महाहोम-में वह्निका नाम 'सूर्य' है, जलमें प्रवाह करनेमें अग्निका नाम 'जल' है। पूर्णिमाके होममें अग्निका नाम 'शशाङ्क' है, प्रलयमें अग्निका नाम 'संवर्तक' है, काठसे उत्पन्न अग्निका नाम 'घोर' है, बाँसोंसे उठी अग्नि-का नाम 'परान्त' है, समुद्रमें रहनेवाली अग्निका 'वडवाग्नि' है, पाक (अन्नपाक) करनेमें अग्निका नाम 'दक्ष' है, वसोर्धारामें जिसमें हवन किया जाता है उस अग्निका नाम 'निधीश' है। धूपसे निकली अग्निका नाम 'कामदेव' है। धान आदिके तुष (भूसी)की अग्निका नाम 'कामहा' है। रथ्या (चत्वर चौराहे) में स्थित अग्निका नाम 'परान्तक' है। क्षुधा उत्पन्न करनेवाली अग्निका नाम 'बिभत्सु' है, राजाके घरमें उत्पन्न अग्निका नाम 'विजय' है। वृक्षोंसे उत्पन्न अग्निका नाम धूम्र' है। दीपकमें स्थित अग्निका नाम 'कृष्णपथ' है। हेमन्त आदिकी अग्निका नाम 'वाद्य' है। मातृमन्दिरसे उत्पन्न अग्निका नाम 'अजित' है। म्लेच्छ लोगोंमें जो अग्नि रहती है उसका नाम 'शङ्कर' है। ईंटोंकी भट्टीकी अग्निका नाम 'संघ' है। प्रायश्चित्तमें अथवा व्रत खण्डित होनेपर

'शुद्धि' नामक अग्नि और शुक्रके आधानमें अर्थात् वीर्याधानमें 'जय' नामक अग्नि जानना चाहिये।'

कोटिहोमादिमें अग्निके नाम

शुभो ग्रहविधौ ह्यग्निर्लक्षहोमे पराजितः।
कोटिहोमे शिवो वह्निः सर्वकामप्रदायकः॥
(देवीपुराण)

'ग्रहमें शुभ, लक्षहोममें पराजित और कोटिहोममें शिव नामक अग्नि कहा गया है, जो कि समस्त प्रकारके कार्योंकी पूर्ति करनेवाला है।'

अन्यत्र कहा है—

'लक्षहोमे तु वह्निः स्यात् कोटिहोमे हुताशनः।'

'लक्षहोममें वह्नि और कोटिहोममें हुताशन नामका अग्नि कहा गया है।'

नवग्रहोंकी अग्निके नाम

आदित्ये कपिलो नाम पिङ्गलः सोम उच्यते।
धूमकेतुस्तथा भौमे जाठरोऽग्निर्बुधे स्मृतः॥
बृहस्पतौ शिखी नाम शुक्रे भवति हाटकः।
शनैश्चरे महातेजा राहुकेत्वोर्हुताशनः॥
(संस्कारगणपति)

'सूर्यमें कपिल, चन्द्रमामें पिङ्गल, मङ्गलमें धूमकेतु, बुधमें जाठर, बृहस्पतिमें शिखी, शुक्रमें हाटक, शनिमें महातेजा और राहु तथा केतुमें हुताशन अग्नि कहा गया है।'

कपिलः पिङ्गलो धूम्रकेतुर्जाठरनामकः।
शिखी च हाटकश्चैव महातेजा हुताशनः॥
रोहितश्चैव विज्ञेया रव्यादीनां हुताशनः।

'कपिल, पिङ्गल, धूम्रकेतु, जाठर, शिखी, हाटक, महातेज, हुताशन और रोहित—ये सूर्यादि ग्रहोंकी अग्निके नाम कहे गये हैं।'

अग्निहोत्रकी अग्निके नाम

आवसथ्याहवनीयौ दक्षिणाग्निस्तथैव च।
अन्वाहार्यो गार्हपत्य इत्येते पञ्च वह्नयः॥

(शारदातिलक)

'आवसथ्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, अन्वाहार्य और गार्हपत्य ये अग्निहोत्रकी पाँच अग्नियाँ हैं।'

कर्म-विशेषकी अज्ञात अग्निमें विचार

जिस कर्म-विशेषकी अग्निका नाम न मालूम हो, उस कर्ममें 'विश्वरूप' नामक अग्निका स्मरण करना चाहिये। यह समस्त कर्मोंमें व्यवहार्य है। कहा भी है—

सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु॥

(गृह्यसंग्रह)

'जिन कर्मोंमें अग्निका प्रतिपदोक्त नाम न लिया गया हो, उन कर्मोंमें 'विश्वरूप' अग्नि समझना चाहिये। विश्वरूप अग्निके चारों तरफ हाथ, पैर, आँख, शिर और मुख रहता है।'

यज्ञादिमें उत्तम अग्नि

उत्तमोऽरणिजन्योऽग्निर्मध्यमः सूर्यकान्तजः।
उत्तमः श्रोत्रियगृहान्मध्यमः स्वगृहादिजः॥

(प्रयोगरत्न)

'अरणिसे उत्पन्न की हुई अग्नि उत्तम और सूर्यकान्तसे उत्पन्न की हुई अग्नि मध्यम कही गई है। इसी प्रकार श्रोत्रिय (वेदज्ञ)

के गृहसे लाई हुई अग्नि उत्तम और अपने घर आदिसे लाई हुई अग्नि मध्यम कही गई है।'

यज्ञादिमें त्याज्य अग्नि

चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित्।
पतिताग्निः चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः॥
(देवलः)

'चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, आशौचकी अग्नि, पतितकी अग्नि और चिताकी अग्निका व्यवहार करना शिष्ट लोगोंके लिये उचित नहीं है।'

विभिन्न अग्नियोंके धूएँका फल

यज्ञधूमोद्भवं त्वभ्रं द्विजानां च हितं सदा।
दावाग्निधूमसम्भूतमभ्रं वनहितं स्मृतम्॥
मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति।
अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः॥

'हे द्विजातिवृन्द! यज्ञधूमसे उत्पन्न मेघ द्विजातियोंके लिये (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये) सदा हितावह है। वनाग्निसे उत्पन्न मेघ वनके लिये हितकारी कहा गया है। शवके (श्मशानकी अग्निके) धूएँसे उत्पन्न मेघ अमङ्गलकारी होता है तथा अभिचारकी (मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये अनुष्ठित यज्ञ की) अग्निके धूएँसे उत्पन्न मेघ प्राणिमात्रके विनाशके लिये होता है।'

अग्निका स्वरूप जानकर ही हवन करना चाहिये

अविदित्वा तु यो ह्यग्निं होमयेदविचक्षणः।
न हुतं न च संस्कारो न स कर्मफलं लभेत्॥

ज्ञात्वा स्वरूपमाग्नेयं योऽग्नेराराधनं चरेत् ।
ऐहिकाऽऽमुष्मिकैः कामैः सारथिस्तस्य पावकः ॥
आहूयैव तु होतव्यं यो यत्र विहितो भवेत् ।
(शुभकर्मनिर्णय)

'जो मनुष्य अग्निके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान न कर हवन करता है उसका किया हुआ हवन सर्वथा निष्फल होता है, न उसका उत्तम संस्कार होता है और न वह कर्मफलको ही प्राप्त करता है। जो अग्निके स्वरूपको जानकर अग्निकी आराधना करता है उसके ऐहिक तथा पारलौकिक कार्योंमें अग्नि सारथिका कार्य करता है। अतः जिस अग्निका जहाँ विधान हो उस अग्निका उस कार्यमें आह्वान करके ही हवनादि करना चाहिये।'

अग्निका ध्यान

सप्तहस्तश्चतुःश्रृङ्गः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः ।
त्रिपात्प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः ॥
मेषारूढो जटाबद्धो गौरवर्णो महौजसः ।
धूम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः सर्वकामदः ॥
शिखाभिर्दीप्यमानाभिरूर्ध्वगाभिस्तु संयुतः ।
स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा ।
बिभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्त्रुचं स्त्रुवम् ।
तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन् ॥
आत्माभिमुखमासीन एवंरूपो हुताशनः ।

'अग्निके सात हाथ, चार सींग, सात जिह्वाएँ, दो सिर और तीन पैर हैं। वे प्रसन्न मुख और मन्दहास्ययुक्त सुखपूर्वक आसन पर विराजमान रहते हैं। वे मेष (भेड़ा) पर आरूढ़ जटाबद्ध, गौरवर्ण, महातेजस्वी, धूम्रध्वज, लाल नेत्रवाले, सात ज्वालावाले, सब

कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, देदीप्यमान, ऊर्ध्वगामी ज्वालाओंसे युक्त हैं। उनके दक्षिण भागमें स्वाहा और वाम भागमें स्वधादेवी विराजमान हैं और वे अपने दाहिने हाथोंमें शक्ति, अन्न, स्रुक्, स्रुव, तोमर, पंखा और बाएँ हाथमें घृतपात्र धारण किये हुए हैं। अपने सम्मुख उपस्थित ऐसे रूपवाले अग्निका ध्यान करना चाहिये।'

अग्निका दूसरा ध्यान इस प्रकार लिखा है—

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै-
दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जपाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
ध्यायेद् वह्निं वह्निमौलिं जटाभिः॥

(शारदातिलक ५।३४)

'जो अपनी ऊँची भुजाओंमें इष्टमुद्रा, शक्ति (आयुध-विशेष), स्वस्तिक, अभय मुद्राको धारण किये हुए, जपा-कुसुमकी तरह कान्तिवाले, सुवर्णके आभूषणोंको धारण करनेवाले, कमल पर बैठे हुए, तीन नेत्रवाले और जिनका मस्तक अग्निकी ज्वालाओंसे धधक रहा है, ऐसे अग्निदेवका ध्यान करे।'

अग्निका तीसरा ध्यान यों लिखा है—

'अग्निके दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम भागमें तीन हाथ और दक्षिण भागमें चार हाथ हैं। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति—ये सब उनके दाहिने हाथोंमें हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र और दो चँवर धारण किये हुए हैं। भेड़ (छाग) पर सवार हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्यके सदृश उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं।'

अग्निके मुख आदिका विचार

सधूमोऽग्निः शिरो ज्ञेयो निधूर्मश्चक्षुरेव च ।
*ज्वलत्कृशो भवेत्कर्णः काष्ठलग्नश्च नासिका ॥
अग्निर्ज्वालायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः ।
तन्मुखं तस्य विज्ञेयं चतुरङ्गुलमानतः ॥

(शारदातिलकटीका, ५ पटल)

'धूमसहित अग्निको अग्निका सिर जानना चाहिये, धूमरहित अग्नि अग्निका नेत्र है, जलता हुआ मन्द अग्नि अग्निका कान है, काठसे सटा हुआ अग्नि अग्निकी नासिका है, जहाँ शुद्ध स्फटिकके तुल्य अग्नि ज्वालायुक्त है (दहकता है), वहाँ नापसे चार अंगुलका वह अग्निमुख जानना चाहिये ।'

अग्निकी जिह्वाके नाम

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥

(मुण्डकोपनिषद् १।२।४)

'काली (काले रंगवाली), कराली (अत्यन्त उग्र), मनोजवा (मनकी तरह अत्यन्त चंचल), सुलोहिता (सुन्दर लाल रंगवाली), सुधूम्रवर्णा (सुन्दर धूएँके सदृश रंगवाली), स्फुलिङ्गिनी (चिनगारियोंवाली) और विश्वरुची देवी (सब ओरसे प्रकाशित) इस प्रकार ये सात प्रकारकी लपलपाती हुई अग्निकी जिह्वाएँ हैं ।'

---

* ज्वलत्कृशानुः स्यात्कर्णः ।

करालो धूमिनी श्वेता लोहिता नीललोहिता।
सुवर्णा पद्मरागा च सप्त जिह्वा विभावसोः॥
(गृह्यसंग्रह)

'करालो, धूमिनी, श्वेता, लोहिता, नीललोहिता, सुवर्णा और पद्मरागा—ये अग्निकी सात जिह्वाएँ कही गई हैं।'

हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा तदनु सुप्रभा।
बहुरूपाऽतिरिक्ता च वह्निजिह्वा च सप्त च॥
(परशुरामकारिका)

'हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता—ये अग्निकी सात जिह्वाएँ कही गई हैं।'

कर्म-भेदसे अग्निकी जिह्वाओंके नाम

विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु।
उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु॥
प्राचीना सर्वकार्येषु ह्याग्नेयी सर्वकर्मसु।
ऐशानी चोग्रकार्येषु ह्येतद् होमस्य लक्षणम्॥
(संग्रहे)

'विवाहमें वारुणी, यज्ञ कर्ममें मध्यमा, उपनयनमें उत्तरा, पितृ-कर्ममें दक्षिणा, समस्त कार्यमें प्राचीना, समस्त कर्ममें आग्नेयी और उग्र कर्ममें ऐशानी नामकी जिह्वा कही गई है। यही हवनका लक्षण है।'

अग्निको प्रज्वलित करनेका विचार

न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः।
मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत॥

पटकेन भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ।
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ॥
(देवीभाग... ११२२१५-६)

'यज्ञाग्निको न तो हाथसे दहकावे, न सूपसे और न पवित्र मृग-चर्म आदि से (आदि पदसे वस्त्रका ग्रहण है)। मुखसे ही यज्ञाग्निको धौंके, क्योंकि वह मुखसे उत्पन्न हुआ है—'मुखादग्निरजायत।'

वस्त्र (चर्म आदि) से अग्नि धौंकने पर व्याधि (रोग) होती है, सूपसे धौंकने पर धन-नाश होता है. हाथसे धौंकने पर मरण होता है, किन्तु मुखसे धौंकने पर कर्मसिद्धि होती है।'

होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ।
न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।
नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ॥
(कात्यायनस्मृति ९।१४-१५)

'हाथ, सूप, स्फ्य और लकड़ियोसे हवन करना हो और हवन किया गया हो—ऐसी यज्ञाग्निमें अग्निधमन न करे (अग्निको न धौंके) यदि धौंके तो पंखे आदि से। कुछ लोग मुखसे अग्निको धौंकते हैं, क्योंकि यह मुखसे ही उत्पन्न हुआ है। 'मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई' ऐसी श्रुति है। **'नाग्निं मुखेनोपधमेन् नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्।'** (मनु० ४।५३) यह स्मृतिवचन भी मुखसे अग्निको धौंकने-का निषेध करता है, उसकी लौकिक अग्निमें योजना करते हैं अर्थात् लौकिक अग्निको मुखसे नहीं धौंकना चाहिये, किन्तु पंखे आदिसे धौंकना चाहिये। यज्ञीय अग्निको तो मुखसे धौंकना चाहिये।'

न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद् व्यजनादिना ।
मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणुजातया ॥
(आपस्तम्बः)

'यज्ञाग्निको पंखे आदिसे कभी न धौंके, बाँसकी बनी हुई धौंकनी-के द्वारा मुखसे ही यज्ञाग्निको दहकावे।'

न कुर्यादग्निधमन पाणिशूर्पादिभिः क्वचित्।
मुखेनैव धमेदग्निं यतो वेदा विनिःसृताः॥

'यज्ञाग्निको हाथसे अथवा सूप आदिसे कदापि प्रज्वलित न करे, किन्तु मुखसे ही प्रज्वलित करे, क्योंकि मुखसे वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है।'

जुहूषंश्च हुते चैव *पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः।
‡न कुर्यादग्निधमनं कुर्याच्च व्यजनादिना॥
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽभ्यजायत॥
(कात्यायनः)

'अग्निमें हवन करनेकी इच्छा हो अथवा हवन हो चुका हो, दोनों ही अवस्थाओंमें हाथ, सूप, स्फ्य (यज्ञपात्र) तथा काष्ठ आदिसे अग्निको नहीं धौंकना चाहिये, पंखे आदिसे भी अग्निको नहीं धौंकना चाहिये। मुखसे ही अग्निको धौंकते हैं, क्योंकि यह (अग्नि) मुखसे उत्पन्न हुआ है।'

न पत्रकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखेनाग्निं समिन्धीत मुखादग्निरजायत॥
(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ५५। ८६-८७)

'मयूर आदिके पंखसे निर्मित पंखेसे, सूपसे और हाथसे अग्निको

---

*'पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः' (शुभकर्मनिर्णय)

‡'न कुर्यादग्निधमनं कुर्याच्च व्यजनादिना' इस श्लोकमें पंखेके द्वारा अग्निके प्रज्वलित करनेका जो निषेध लिखा है, वह मयूर (मोर) के पंखेके लिये कहा गया है, न कि अन्य पंखोंके लिये।

प्रज्वलित नहीं करना चाहिये। मुखसे ही अग्निको प्रज्वलित करना चाहिये, क्योंकि भगवान्‌के मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है।'

न पत्तकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत॥
(कूर्मपुराण, उत्तरार्ध १६।८८)

विभिन्न वस्तुओंसे अग्निके जलानेका विभिन्न फल

वस्त्रवाते भवेद् व्याधिः शूर्पेण च धनक्षयः।
पाणिना जायते मृत्युः कर्मसिद्धिर्मुखेन तु॥

'वस्त्रद्वारा अग्निको प्रज्वलित करनेसे रोग होता है, सूपद्वारा अग्निको प्रज्वलित करनेसे धनक्षय होता है, हस्तद्वारा अग्निको प्रज्वलित करनेसे मृत्यु होती है और मुखद्वारा अग्निको प्रज्वलित करनेसे समस्त प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होती है।'

जुह्वतश्चाथ पर्णेन पाणिशूर्पपटादिना।
न कुर्यादग्निधमनं तथा च व्यजनादिना॥
पर्णेनैव भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिना मृत्युमाप्नोति पटेन विफलं भवेत्॥
व्यजनेनातिदुःखाय आयुः पुण्यं मुखाद्धमात्।
मुखेन धमयेदग्निं मुखादग्निरजायत॥
अग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेच्च तत्।
वेणोरग्निप्रसूतित्वाद्वेणुरग्नेश्च पातनः।
तस्माद्वेणुधमन्यैव धमेदग्निं विचक्षणः॥
(देवलः)

आहुति शब्दका अर्थ

लोकमें 'आहुति' शब्द ही प्रचलित है। आङ् पूर्वक 'हु दाना-दनयोः' इस धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'आहुति' शब्द बनता है।

'आहूति' शब्दमें तो आङ्पूर्वक 'ह्वेञ्' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय होता है।

देवताओंके उद्देश्यसे वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निमें एक बार हविर्द्रव्यका जितना अंश *'स्वाहा' कह कर समर्पण किया जाय, उसे 'आहुति' कहते हैं।

'देवोद्देशेन वह्नौ मन्त्रेण हविः प्रक्षेप आहुतिः।'

'देवताके उद्देश्यसे मन्त्रद्वारा अग्निमें जो हविर्द्रव्य डाला जाता है, उसे आहुति कहते हैं।'

'ह्वयति देवाननया सा आहूतिः। जुहोति प्रक्षिपति हविरनया इति वा। आहूतयो वै नामैता यदाहुतयः, एताभिर्देवान् यजमानो ह्वयति तदाहूतीनामाहूतित्वम्।' (ऐतरेयब्राह्मण १।१।२)

'जिससे देवताओंको बुलाया जाय उसे 'आहूति' कहते हैं। अथवा जिससे हविर्द्रव्यका अग्निमें प्रक्षेप किया जाय उसे 'आहुति' कहते हैं। आहुतिको आहुतित्व इसलिये है कि इसके द्वारा यजमान देवताओंको बुलाता है।'

होम शब्दका अर्थ

देवतोद्देश्यपूर्वक मुख्यरूपसे हविर्द्रव्यके प्रक्षेपात्मक त्यागको 'होम' कहते हैं। होमका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

'उपविष्टहोमाः स्वाहाकारप्रदानाः जुहोतयः।'

(कात्यायनश्रौतसूत्र १।२।७)

'जिस कर्म-विशेषमें बैठकर स्वाहाकारपूर्वक हविर्द्रव्यका त्याग किया जाय, उसे 'होम' कहते हैं।'

---

* देवतोद्देश्यपूर्वकत्यागवाचकस्वाहाशब्दप्रयोगेण विषयीकृतत्वं स्वाहाकृतत्वम्।

हवनके मन्त्रका निर्णय

'यस्य देवस्य यो होमस्तस्य मन्त्रेण होमयेत्।'

'जो होम जिस देवताके उद्देश्यसे हो, उसका उसीके मन्त्रसे हवन करना चाहिये।'

*हवन करनेकी विधि

उत्तानेन तु हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम्।
संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः॥

'उत्तान (सीधे) हाथसे अंगूठेके अग्रभागसे हविर्द्रव्यको दबाकर हाथकी अंगुलियोंको सटाकर मौन होकर हवन करना चाहिये।'

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका
कांसादिना चेत् स्रुवमात्रपूरिका।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः
स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके॥

(कात्यायनस्मृति ९।११)

'यदि पाण्याहुति हो अर्थात् हाथसे आहुति दी जाय तो हाथकी अंगुलियोंके बारहों पर्व (पंउरियाँ) पूरे होने चाहियें। काँसेकी चम्मच आदिसे दी जाय, तो केवल स्रुवके बराबर होनी चाहिये।

---

* न मुक्तकेशो जुहुयान्नानिपातितजानुकः।
अनिपातितजानोस्तु राक्षसैर्ह्रियते हविः॥

'खुले केश (बाल) रखकर और दोंनो जानुओंको अनिपातित (प्रौढ पादादि) होकर हवन न करे। जो मनुष्य अनिपातित जानु होकर हवन करता है उसकी दी हुई हविको राक्षस हरण करते हैं।'

उस हविका सुन्दर दहकते हुए अंगारवाले तथा खूब अधिक ज्वालावाले अग्निमें दैवतीर्थ (अंगुलियोंके अग्रभाग)से हवन किया जाता है।'

आहुतिस्तु घृतादीनां स्रुवेणाधोमुखेन च।
हुनेत् तिलाद्याहुतीश्च दैवेनोत्तानपाणिना॥
(भविष्यपुराण)

'अग्निमें घृतकी आहुति देनेके लिये स्रुवाका मुख नीचे करना चाहिये और तिल आदिकी आहुति देनेके लिये अपने हाथको उत्तान (सीधा) करके देवतीर्थसे आहुति डालना चाहिये।'

आहुतिके प्रक्षेपका समय

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्॥
(देवयाज्ञिक)

'ॐकारसे पवित्र तथा स्वाहान्त मन्त्रसे स्वाहाके अवसानमें मन्त्र एवं देवताका ध्यान करता हुआ विद्वान् आहुति दे।'

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम्॥

'ॐकारपूर्वक (ॐकार है पूर्वमें जिसके) स्वाहान्त (स्वाहा है अन्तमें जिसके ऐसे) मन्त्रसे विद्वान् पुरुषको मन्त्रदेवताका ध्यान करते हुए 'स्वाहा' के बाद अग्निमें हविष्का प्रक्षेप (त्याग) करना चाहिये।'

स्वाहावसाने जुहुयात् स्वाहया सह वा हविः।
त्यागान्ते ब्रुवते केचिद् द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः॥
(कर्मकौमुदी)

'होता स्वाहाके अन्तसे हवन करे अथवा स्वाहाके साथ करे।

कुछ विद्वानोंका मत है कि हविर्द्रव्यका अग्निमें प्रक्षेप करके ही 'स्वाहा' शब्द कहना चाहिये।'

स्वाहान्ते जुहुयात् होता स्वाहया सह वा हविः।
त्यागान्ते ब्रुवते केचित् द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः॥

(परशुरामकारिका)

'होताको स्वाहाके अन्तमें हवन करना चाहिये (अग्निमें हविष्का त्याग करना चाहिये) अथवा स्वाहाके साथ ही कुछ विद्वान् हविष्के त्याग (अग्निमें प्रक्षेपण) के बाद 'स्वाहा' कहते हैं।'

स्वाहा कुर्यान्न मन्त्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः।
स्वाहाकारेण हुत्वाऽग्नौ पश्चान्मन्त्रं समापयेत्॥

(कात्यायनस्मृति १७।१४)

'मन्त्रके अन्तमें स्वाहा न करे और न हविष्का हवन करे। स्वाहाकारसे अग्निमें हवन करके बादमें मन्त्रकोसमाप्त करे।'

'आदौ द्रव्यपरित्यागः पश्चाद्धोमो विधीयते।'

(देवयाज्ञिकः)

'प्रथम द्रव्यका परित्याग कर पश्चात् हवन करना चाहिये।'

सकारे सूतकं विद्याद्धकारे मृत्युमादिशेत्।
आहुतिस्तत्र दातव्यः यत्र आकार दृश्यते॥

(दुर्गार्चनसृति)

'स्वाहामें स् व् आ और ह आ ये पाँच अक्षर हैं। सकारमें सूतक जानना चाहिये और हकारमें मृत्यु कहना चाहिये। अतः आहुति उस समय देनी चाहिये जिस समय हकारोत्तरवर्ती आकार दिखाई देता है अर्थात् स् के उच्चारणमें आहुति सूतकके दोषसे दुष्ट हो जाती है, हकारके उच्चारणमें मृत्युका भय होता है, इसलिये हकारोत्तरवर्ती आकारके उच्चारणके समय आहुतिप्रक्षेप करना चाहिये।'

कुछ आचार्योंका **'स्वेच्छया जुहुयाद्धविः'** यह भी मत है, किन्तु यह मत ठीक नहीं है। स्वेच्छाचारसे भयङ्कर अनवस्था दोष हो जाता है। अतः उपर्युक्त देवयाज्ञिक, विष्णुधर्म, कर्मकौमुदी एवं परशुरामकारिका आदिके ही मत मान्य और अनुकरणीय हैं।

आहुति देनेका विचार

प्रश्न—

अधोमुख ऊर्ध्वपादः प्राङ्मुखो हव्यवाहनः।
तिष्ठत्येव स्वभावेन आहुतिः कुत्र दीयते ?॥
(कारिका)

'अग्नि (जो हवनीय द्रव्य चरु आदिको तत्तत् देवताओंको पहुँचाता है) स्वभावतः ही अधोमुख (नीचेकी ओर मुखवाला) ऊर्ध्वपाद (ऊपरकी ओर पैरवाला) रहता है। उसका मुँह पूर्वकी ओर रहता है, ऐसी स्थितिमें आहुति कहाँ दी जाय ? ।'

उत्तर—

सपवित्राम्बुहस्तेन वह्नेः कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा बिभेति सम्मुखो भवेत् ॥
(कारिका)

'हाथमें पवित्री और जल लेकर कर्ता अग्निकी प्रदक्षिणा करे। हव्यवाहन (अग्नि) जलको देखकर डर जाता है और सम्मुख (हवनकर्ताके सामने) हो जाता है। इसलिये सामने होम करना चाहिये।'

विधिहीन अग्निमें हवन करनेसे हानि

क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमन्त्रो जुहोति यः।
अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्याज्जन्मजन्मनि॥

स्वल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्त्ते भयानके।
आर्द्रकाष्ठैश्च सम्पूर्णे फूत्कारवति पावके॥
कृष्णार्चिषि सदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्।
आहुतिर्जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम्॥
(ब्रह्मपुराण)

'जो पुरुष भूख, प्याससे व्याकुल तथा क्रोधयुक्त होकर मन्त्र-रहित, पूर्णरूपसे न सुलगी हुई (ज्वाला-माला-विहीन) अथवा धूएँसे व्याप्त अग्निमें हवन करता है, वह प्रत्येक जन्ममें अन्धा होता है। जो पुरुष स्वल्प रूखी (धूमिल वर्णकी) चिनगारियोंसे भरी, जिसकी ज्वालाएँ बाईं ओर लपक रही हों, जो देखनेमें भयानक प्रतीत होती हों, जो गीली लकड़ियोंसे भरी हों, जिसमें फुफकारका शब्द हो रहा हो, जिसकी ज्वालाएँ काली हों, जिसमेंसे दुर्गन्ध निकल रही हो तथा जो ज्वालाएँ भूमिका स्पर्श कर रही हों, ऐसी अग्निमें आहुतियाँ डालता है, उसका अवश्य नाश होता है।'

अन्धो बुधः सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुतिः॥
(बह्वृचपरिशिष्ट)

'जो विद्वान् धूमवाली अग्निमें हवन करता है, वह अन्धा होता है और जो यजमान सधूम अग्निमें हवन करता है, वह पुत्रके सहित अन्धा होता है।'

अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम्॥
(वायुपुराण ७५।६२)

'जो यजमान अग्निके ठीक-ठीक न जलने पर और धूमके रहते हुए अग्निमें हवन करता है, वह अन्धा और पुत्रहीन होता है, ऐसा हमने सुना है।'

प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना चाहिये

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥
(छन्दोगपरिशिष्ट)

'जो मनुष्य तेजहीन अग्नि तथा अङ्गारहीन अग्निमें आहुति देता है वह मन्दाग्नि इत्यादि रोगोंसे दुःखी तथा दरिद्रताको प्राप्त होता है। अतः प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना सर्वथा उचित है।'

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम् ॥
(कात्यायनस्मृति ६।१२-१३)

'जो पुरुष तेजरहित अग्नि और अङ्गार-रहित अग्निमें आहुति डालता है, वह मन्दाग्नि आदि रोगोंसे दुःखित और दरिद्रताको प्राप्त होता है। अतः आरोग्य, दीर्घायु और विशिष्टरूपमें लक्ष्मीकी प्राप्तिके इच्छुकको प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना चाहिये।'

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ॥
(मुण्डकोपनिषत्)

'जब अग्नि भलीभाँति जलायी जा चुके और उसमें ज्वाला उठने लगे, तब उसमें घी तथा हवन सामग्री आदिकी आहुतियाँ श्रद्धापूर्वक देनी चाहिये।'

किया गया हवन दारिद्र्यप्रद कहा गया है। इसलिये जिह्वाओंमें हवन करना चाहिये।

जहाँ काठ है वहाँ अग्निके कान कहे गये हैं, जहाँ धूँआ है वहाँ अग्निकी नासिका कही गई है, जहाँ अग्नि कम जलती है वहाँ अग्निके नेत्र कहे गये हैं, जहाँ भस्म है वहाँ अग्निका सिर कहा गया है और जहाँ अग्नि ज्वालायुक्त है, वहाँ अग्निकी जिह्वा कही गई है।'

अन्यत्र भी लिखा है—

यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ हुनेच्चेद् व्याधिकृन्नरः।
धूमस्थानं शिरः प्रोक्तं मनोदुःखं भवेदिह॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यजमानस्य नाशनम्।
भस्मस्थाने तु केशः स्यात् स्थाननाशो धनक्षयः॥
अङ्गारे नासिकां विद्यान्मनोदुःखं विदुर्बुधाः।
यत्र प्रज्वलनं तत्र जिह्वा चैव प्रकीर्तिता॥
गजवाजिप्रदात्री तु वह्निः शुभफलप्रदः॥

'जहाँ काठ है वहाँ कान हैं वहाँ यदि मनुष्य हवन करे तो वह हवन व्याधिकारी होता है। धूमका स्थान सिर कहा गया है वहाँ हवन करनेसे मानसिक कष्ट होता है। जहाँ अग्निका ज्वलन बहुत थोड़ा हो वहाँ नेत्र हैं वहाँ हवन करनेसे यजमानका नाश होता है। भस्मके स्थानमें अग्निके केश हैं वहाँ हवन करनेसे स्थानका नाश और धनका नाश होता है। अङ्गारमें अग्निकी नासिका जाननी चाहिये वहाँ हवन करनेसे मानस दुःख होता है। जहाँ अग्निकी ज्वाला हो वहाँ जिह्वाएँ कही गई हैं। गज और अश्वकी तरह शब्द करनेवाला वह्नि शुभ फल प्रदान करता है। जैसे हाथी चिंघाड़ता है और घोड़ा हिनहिनाता है वैसा दहकते हुए शब्द करनेवाला अग्नि शुभ फलदायक है।'

अप्रदीप्ते न होतव्यं मध्यमे नाप्यनिन्धिते ।
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ होतव्यं कर्मसिद्धये ॥
(महाकपिल पञ्चरात्र)

'अप्रदीप्त (अप्रज्वलित) अग्निमें होम नहीं करना चाहिये । कुछ-कुछ जली हुई अग्निमें भी हवन नहीं करना चाहिये । जो खूब न धधकी हो ऐसी अग्निमें भी हवन नहीं करना चाहिये । खूब प्रज्वलित धधकती हुई अग्निमें कर्मसिद्धिके लिये हवन करना चाहिये ।'

'अदीप्तेऽग्नौ हतो होमः ।' (पद्मपु०, स्वर्ग० २९।३०)

'अप्रज्वलित अग्निमें किया हुआ हवन नष्ट हो जाता है ।'

अग्निमें हवनार्थ स्थानका विचार

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तत्र होमयेत् ।
चक्षुः कर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद्देशिकोत्तमः ॥
अग्निकर्णे हुतं यस्तु कुर्याच्चेद् व्याधितो भयम् ।
नासिकायां महद्दुःखं चक्षुषोर्नाशनं भवेत् ॥
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्माज्जिह्वासु होमयेत् ।
यत्र काष्ठं तत्र श्रोत्रे यत्र धूमस्तु नासिके ॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिरः ।
यत्र च ज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वा प्रकीर्तिता ॥
(वनदुर्गाकल्प)

'समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये अग्निकी जिह्वामें होम करना चाहिये । श्रेष्ठ आचार्य चक्षु (नेत्र), कर्ण, नासिका, सिर आदिकी पहचान कर हवन करे । अग्निके कानमें यदि हवन करे तो उसे व्याधिसे भय होता है, नासिकामें हवन करे तो महादुःख होता है, नेत्रोंमें हवन करे तो विनाश होता है । केशोंमें

किया गया हवन दारिद्र्यप्रद कहा गया है। इसलिये जिह्वाओंमें हवन करना चाहिये।

जहाँ काठ है वहाँ अग्निके कान कहे गये हैं, जहाँ धूँआ है वहाँ अग्निकी नासिका कही गई है, जहाँ अग्नि कम जलती है वहाँ अग्निके नेत्र कहे गये हैं, जहाँ भस्म है वहाँ अग्निका सिर कहा गया है और जहाँ अग्नि ज्वालायुक्त है, वहाँ अग्निकी जिह्वा कही गई है।'

अन्यत्र भी लिखा है—

यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ हुनेच्चेद् व्याधिकृन्नरः।
धूमस्थानं शिरः प्रोक्तं मनोदुःखं भवेदिह॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यजमानस्य नाशनम्।
भस्मस्थाने तु केशः स्यात् स्थाननाशो धनक्षयः॥
अङ्गारे नासिकां विद्यान्मनोदुःखं विदुर्बुधाः।
यत्र प्रज्वलनं तत्र जिह्वा चैव प्रकीर्तिता॥
गजवाजिप्रदात्री तु वह्निः शुभफलप्रदः॥

'जहाँ काठ है वहाँ कान हैं वहाँ यदि मनुष्य हवन करे तो वह हवन व्याधिकारी होता है। धूमका स्थान सिर कहा गया है वहाँ हवन करनेसे मानसिक कष्ट होता है। जहाँ अग्निका ज्वलन बहुत थोड़ा हो वहाँ नेत्र हैं वहाँ हवन करनेसे यजमानका नाश होता है। भस्मके स्थानमें अग्निके केश हैं वहाँ हवन करनेसे स्थानका नाश और धनका नाश होता है। अङ्गारमें अग्निकी नासिका जाननी चाहिये वहाँ हवन करनेसे मानस दुःख होता है। जहाँ अग्निकी ज्वाला हो वहाँ जिह्वाएँ कही गई हैं। गज और अश्वकी तरह शब्द करनेवाला वह्नि शुभ फल प्रदान करता है। जैसे हाथी चिंघाड़ता है और घोड़ा हिनहिनाता है वैसा दहकते हुए शब्द करनेवाला अग्नि शुभ फलदायक है।'

वह्नेः शिरसि नासायां श्रोत्रेष्वक्षिषु वा तथा ।
जुहुयाच्चेत्तदा क्षिप्रं तदङ्गानि विनाशयेत् ॥

'अग्निके सिरमें, नासिकामें अथवा कानोंमें तथा नेत्रोंमें यदि हवन करे तो वह हवन मनुष्यके उन-उन अङ्गोंको शीघ्र विनष्ट कर देता है ।'

निष्कर्ष यह है कि हवन-कर्ताको अग्निकी जिह्वामें ही हवन करना चाहिये। जो पुरुष अग्निकी जिह्वाको छोड़कर अग्निके अन्य अङ्गोंमें हवन करता है, उसका तत्तत् अङ्ग क्षय होता है ।

*मन्त्रके वर्णका उच्चारण प्रकार

वर्णः स्पष्टतरः कार्यो नासाश्वासावधीति वा ।
मुखश्वासावधि श्रृण्वन्नभिषेकार्चनादिषु ॥

(बृहद्याज्ञवल्क्यः)

'अभिषेक, अर्चन, हवन आदिमें मन्त्रके वर्णका स्पष्ट उच्चारण इस प्रकार करना चाहिये जिसमें वह अपनेको सुनाई दे। नासिकासे श्वास छोड़नेमें अथवा मुखसे श्वास लेनेमें जितना समय लगता है उतना समय वर्णके उच्चारणमें लगना चाहिये ।'

हवनादिमें मन्त्रोंके उच्चारणका प्रकार

'शिख्यादिनाममन्त्रैस्तु स्वाहान्तैः प्रणवादिभिः ।'

(रेणुः)

'प्रणवादि (ॐकार है आदिमें जिनके) तथा स्वाहान्त ('स्वाहा' है अन्तमें जिनके) 'शिखी' आदि नाम-मन्त्रोंसे (जैसे—ॐ शिखिने स्वाहा) हवन करना चाहिये ।'

---

*'मन्त्रस्तु कर्माङ्गभूतद्रव्यदेवतास्मारकः ।'

'कर्माङ्गभूत द्रव्य और देवताके स्मारकको मन्त्र कहते हैं ।'

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तः स्वाहाशब्दसमन्वितः ।
यन्त्रपीठादिदेवानां होमे मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

'यन्त्र और पीठ आदिके देवताओंके होममें ॐकारादि (ॐकार है आदिमें जिसके), चतुर्थ्यन्त (चतुर्थी विभक्ति है अन्तमें जिसके) तथा 'स्वाहा' शब्दसे युक्त मन्त्र कहा गया है। जैसे—'ॐ अग्नये स्वाहा', 'ॐ सोमाय स्वाहा' आदि।'

होमे स्वाहान्तिमा मन्त्राः पूजान्यासे नमोऽन्तिकाः ।
तर्पणे तर्पयाम्यन्ता ऊहनीया बुधैः सदा ॥

'सदा विद्वान् पुरुषोंको होममें स्वाहान्त ('स्वाहा' है अन्तमें जिनके) मन्त्र, पूजामें नमोन्त ('नमः' है अन्तमें जिनके) मन्त्र और तर्पणमें तर्पयाम्यन्त ('तर्पयामि' है अन्तमें जिनके) मन्त्र होते हैं, ऐसा समझना चाहिये।'

हवनके समय मन्त्रान्तमें स्वाहा कहना आवश्यक है

'सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः स्वाहान्ता होमकर्मसु।'
(प्रयोगसार)

'हवनके समय सभी मन्त्रोंके अन्तमें 'स्वाहा' कहकर उच्चारण करना चाहिये।'

स्वाहाके साथ आहुति न देने पर कर्तव्य

विपर्यासो यदि भवेत् स्वाहाकारप्रदानयोः ।
तदा मनोजूतिरिति जुहुयाद्वै मनस्वतीम् ॥

'स्वाहाके साथ आहुति न देकर स्वाहाके पहले या बादमें आहुति देनेसे जो दोष होता है, उसके परिहारके लिये 'मनो जूतिः०' (शु० य० २।१३) इस मन्त्रसे आहुति देनी चाहिये।'

हवनके समय मन्त्रोंके ऋषि और छन्दादिका स्मरण अनावश्यक है

न च स्मरेत् ऋषिं छन्दः श्राद्धे वैतानिके मखे।
ब्रह्मयज्ञे च वै तद्वत्तथोङ्कारं विवर्जयेत्॥

(संस्कारभास्कर)

'श्राद्धमें, वैतानिक (अग्निहोत्र) नामक यज्ञमें और ब्रह्मयज्ञमें मन्त्रोंके ऋषि, छन्द एवं ओङ्कारका स्मरण वर्जित है।'

अग्निहोत्रे वैश्वदेवे विवाहादिविधौ तथा।
होमकाले न दृश्यन्ते प्रायश्छन्दर्षिदेवताः॥
शान्तिकादिषु कार्येषु मन्त्रपाठक्रियादिषु।
होमे नैव प्रकर्तव्याः कदाचिद्दृषिदेवताः॥

(संस्कारभास्कर)

'अग्निहोत्रमें, वैश्वदेवमें तथा विवाहादि विधिमें होमके समय प्रायः छन्द, ऋषि और देवता नहीं दिखाई देते। शान्तिक आदि कर्मोंमें, मन्त्रपाठ आदिमें तथा होममें कभी भी ऋषि और देवताका स्मरण नहीं करना चाहिये।'

ऋषिदैवतच्छन्दांसि प्रणवं ब्रह्मयज्ञके।
मन्त्रादौ नोच्चरेच्छ्राद्धे यागकालेऽपि चैव हि॥

(आश्वलायनः)

'ब्रह्मयज्ञरूप अध्यापनमें एवं मन्त्रके आदिमें ऋषि, देवता, छन्द और प्रणवका उच्चारण नहीं करना चाहिये। श्राद्ध तथा यज्ञकालमें भी यही बात जानना चाहिये।'

हवनादिमें *विनियोगका विचार

प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि।
जपकाले समस्ते वा विनियोगः पृथक् पृथक्॥

'प्रातःकाल पूजाके समयमें, होमके समयमें, जपके समयमें अथवा समस्त कर्मोंमें विनियोग अलग-अलग करना चाहिये।'

हवनके समय प्रत्येक मन्त्रमें ‡ओङ्कारोच्चारण अनावश्यक है

नोङ्कुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित्।
अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना॥

(कात्यायनस्मृति १७।१६)

'होम-मन्त्रोंके आदिमें अलग ॐकार कहीं पर भी नहीं लगाना चाहिये। आचमनादि कालसे अव्यवहित अन्य मन्त्रोंके आदिमें भी ॐकार नहीं लगाना चाहिये।'

हवनादिमें हस्तस्वरका निषेध

उपस्थाने जपे होमे दोहे च यज्ञकर्मणि।
हस्तस्वरं न कुर्वीत शेषास्तु स्वरसंयुताः॥

(श्रौतोल्लास)

'उपस्थानमें, जपमें, गोदोहन (गोदोहन-कर्म श्रौतयागमें होता है) में और यज्ञकर्ममें हस्तस्वर नहीं लगाना चाहिये। शेष कर्मोंमें स्वर लगाना चाहिये।'

---

*पुरा कल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च।
अनेनेदं तु कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते॥

‡'पुरुषसूक्त' आदिके द्वारा हवन करते समय प्रत्येक मन्त्रके आदिमें 'ॐ' के कहनेकी जरूरत नहीं है। अतः मन्त्रारम्भमें ही 'ॐ' कहना चाहिये।

जपे होमे मखे श्राद्धेऽभिषेके पितृकर्मणि।
हस्तस्वरं न कुर्वीत सन्ध्यादौ देवपूजने॥
(स्मार्तप्रभु)

'जपमें, होममें, यज्ञमें, श्राद्धमें, अभिषेकमें, पितृकर्ममें, सन्ध्यामें तथा देवपूजनमें हस्तस्वर नहीं लगाना चाहिये।'

होमादिमें कण्ठस्वर ही आवश्यक है

उपस्थाने जपे होमे मार्जने यज्ञकर्मणि।
कण्ठस्वरं प्रकुर्वीत······················॥
(स्मार्त्तप्रभु)

'उपस्थानमें, जपमें, होममें, मार्जनमें तथा यज्ञकर्ममें केवल कण्ठस्वर ही करना चाहिये।'

हवनके समय वार्तालाप करनेका निषेध

स्नातश्च वरुणस्तेजो जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत्।
भुञ्जानस्य यमस्त्वायुस्तस्मान्न व्याहरेत् त्रिषु॥
(वृद्धमनुः)

'स्नान करते समय बोलनेवालेके तेजको वरुण हरण कर लेते हैं, हवन करते समय बोलनेवालेकी श्रीको अग्निदेव हरण कर लेते हैं तथा भोजन करते समय बोलनेवालेकी आयुको यमदेव हरण कर लेते हैं। अतः उक्त तीनों कर्मोंमें मनुष्यको बोलना नहीं चाहिये।'

अन्यत्र भी लिखा है—

स्नास्यतो वरुणः कान्तिं जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत्।
भुञ्जतो मृत्युरायुष्यं तस्मान् मौनं* त्रिषु स्मृतम्॥

---

* मौनलोपे 'व्याहृत्य वैष्णवं मन्त्रं जपेत्।' (का० श्रौ० सू० २।२६) इति वचनाद् वैष्णवमन्त्रपाठः प्रायश्चित्तम्।

हवनादिके समय मध्यमें जानेका प्रायश्चित्त

होमकाले तथा दोहे स्वाध्याये दारसंग्रहे।
अन्तरेण यदा गच्छेद् द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥

'हवन करते समय, गोदोहन कर्म (श्रौतयज्ञमें होनेवाला कर्म) में, वेदका स्वाध्याय करते समय और स्त्रीसे भाषण करते समय यदि कोई ब्राह्मण इनके बीचमें चला जाय, तो उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।'

हवन करते समय अग्निमें जीवके गिरनेका प्रायश्चित्त

होममध्ये यदा कश्चिज्जीवोऽग्नौ तु विपद्यते।
तदाग्नये त्वनादिष्टं होमशेषं समापयेत्॥

'हवन करते समय यदि कोई जीवजन्तु अग्निकुण्डमें मर जाय, तो 'अग्नये स्वाहा' इससे एक सौ आठ बार अथवा एक हजार आठ बार घृतकी आहुति करे अथवा 'अनादिष्ट प्रायश्चित्त' करके अवशिष्ट हवन समाप्त करना चाहिये।'

आहुतिकी अनुक्त संख्यामें निर्णय

अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं स्मृतम्।
अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते॥

(मत्स्यपुराण)

'जिस कार्यके लिये आहुतिकी संख्याका निर्देश न किया गया हो, वहाँ १०८ अथवा २८ अथवा ८ बार अथवा यथाशक्ति आहुति डालना चाहिये।'

हवनके लिये समयका विचार

*उदितेऽनुदिते चैव समयाऽध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥
(मनु० २।१५)

'सूर्योदय हो जानेपर और सूर्योदय होनेके पूर्व तथा नक्षत्र सूर्यादिके अदर्शन-कालमें भी हवन करना चाहिये, ऐसा वेदका वचन है।'

यावत्सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः।
न च लौहित्यमापैति तावत्सायं च हूयते॥
(कात्यायनस्मृति ६।३)

'जब तक आकाशमें चारों ओर तारे भलीभाँति नहीं जगमगाते और सन्ध्याकी लालिमा नहीं हटती, तबतक सायंकालका हवन किया जाता है।'

सूर्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदाङ्गुलैः।
प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासाञ्च दर्शनात्॥
हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद् गिरिं हित्वा न गच्छति।
तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम्॥
यावत् सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः।
न च लौहित्यमापैति तावत् सायं च हूयते॥
रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ।
सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्धुतमस्य न लुप्यते॥
(कात्यायनसहिता ६।१—४)

'सूर्यके अस्ताचलमें पहुँचनेमें जब ३६ अंगुल यानी पौन गज (डेढ़ हाथ) बाकी रहे तब सदा अग्नियोंका प्रादुर्भाव करना

---

* 'उदिते जुहोति अनुदिते जुहोति' (ऐतरेयब्राह्मण ५।५।४)

चाहिये। प्रातःकालमें जब प्रकाश (उजाला) दिखाई देता है तबसे लेकर जबतक सूर्य उदय शैलका त्याग कर एक हाथ ऊपर नहीं जाते हैं उदित होम करनेवालेकी पुण्य होमविधि अतिक्रान्त नहीं होती अर्थात् उदित कालमें हवन करनेवालोंका तब तक समयका अतिक्रम नहीं होता। जबतक आकाशमें चारों ओर तारे खूब अच्छी तरह दिखाई नहीं देते और सन्ध्याकालकी लालिमा नहीं हटती तबतक सायंकालका हवन होता है। धूलिपटल (अंधड़), कुहरा, धूँआ, बादल, वृक्षोंकी चोटियोंसे सूर्यके अन्तरित होने (छिप जाने) पर सन्ध्याकालका हवन करना चाहिये। इस प्रकार हवन करनेवालेका हवन लुप्त (नष्ट) नहीं होता है।'

होमके समय *देवताभिध्यानकी आवश्यकता

देवतानामभिध्यानं न करोत्यत्र मूढधीः।
तस्य कर्म वृथैव स्यादिति वेदविदो विदुः॥
(परशुरामकारिका)

'जो मूर्ख हवनके समय देवताओंका अभिध्यान नहीं करता, उसका किया हुआ कर्म व्यर्थ ही जाता है, ऐसा वेदज्ञोंका कथन है।'

हवन-मुद्राके भेद

होमे मुद्राः स्मृतास्तिस्रो मृगी हंसी च सूकरी।
मुद्रां विना कृतो होमः सर्वो भवति निष्फलः॥
(परशुरामकारिका)

---

* द्रव्यं तृतीयया ध्यायेत् देवतां च तृतीयया।
द्रव्यदैवतरूपत्वात् कर्मणोऽतस्तदुच्यते॥
(परशुरामकारिका)

'होममें मृगी, हंसी और सूकरी यह तीन प्रकारकी मुद्रा कही गई है। मुद्राके बिना किया हुआ सब हवन निष्फल होता है।'

कामनाभेदसे मुद्राका विधान

शान्तिके तु मृगी ज्ञेया हंसी पौष्टिककर्मणि।
सूकरी त्वभिचारे तु कार्या तन्त्रविदुत्तमैः॥
(परशुरामकारिका)

'शान्ति-कर्ममें मृगी–मुद्रा, पौष्टिक कर्ममें हंसी और अभिचारात्मक (मारणात्मक) कर्ममें सूकरी–मुद्रासे होम करना चाहिये, यही उत्तम तन्त्रशास्त्रके ज्ञाताओंके लिये उचित है।'

होमे मुद्रा त्रिधा ज्ञेया मृगी हंसी च सूकरी।
यज्ञे शान्तिककल्याणे मृगी हंसी प्रकीर्तिता।
अभिचारादिके होमे सूकरी कथिता बुधैः॥
(कारिका)

'होममें मृगी, हंसी और सूकरी–यह तीन प्रकारकी मुद्रा कही गई है। यज्ञ तथा शान्तिक-कल्याण-कार्योंमें मृगी–मुद्रासे और हंसी तथा अभिचारादि कृत्योंमें सूकरी–मुद्रासे कार्य करना चाहिये, ऐसा विद्वानोंने कहा है:'

तिस्रो मुद्रास्तु सम्प्रोक्ता मृगी हंसी च सूकरो।
सूकरो करसङ्कोचाद् हंसो मुक्तकनिष्ठिका॥
कनिष्ठा तर्जनीहीना मृगोमुद्रा तिलाहुतौ।
शान्तिकर्मणि सर्वत्र मृगी हंसी शुभे उभे॥
अभिचारेषु सर्वेषु सूकरी तु प्रकीर्तिता।

'आहुतिके प्रदानमें तीन मुद्राएँ कही गई हैं—मृगी, हंसी और सूकरी। हाथके संकोचसे सूकरी—मुद्रा होती है। कनिष्ठिका अंगुली हटा देनेसे हंसी–मुद्रा होती है। कनिष्ठिका और तर्जनीरहित

(तिलाहुतिमें) जो मुद्रा है वह मृगी—मुद्रा कहलाती है। सभी शान्तिक कर्मोंमें मृगी और हंसी दोनों मुद्राएँ शुभ हैं। समस्त आभिचारिक कर्मोंमें सूकरी—मुद्रा प्रशस्त कही गई है।'

'यज्ञे शान्तिककार्येषु मृगी हंसी प्रकीर्तिता।'

(कुलतन्त्रप्रकाश)

'यज्ञमें और समस्त शान्ति-कर्ममें मृगी और हंसी—मुद्रा करनी चाहिये।'

होम-मुद्राका लक्षण

सूकरी करसङ्कोची हंसो मुक्तकनिष्ठिका।
कनिष्ठातर्जनीमुक्ता मृगीमुद्रा प्रकीर्तिता॥

(परशुरामकारिका)

'हाथके सङ्कोचसे सूकरी—मुद्रा, कनिष्ठिका अंगुली हटा देनेसे हंसी—मुद्रा तथा कनिष्ठिका और तर्जनीरहित मृगी—मुद्रा कहलाती है।'

कुण्डके ऊपरकी मेखलामें गिरे हुए हवनीय पदार्थको अग्निमें डालना चाहिये

हवनके समय कुण्डके ऊपरकी मेखलामें जो हवनीय द्रव्य गिरे, उसे अग्निमें डालना चाहिये। क्योंकि वह हविर्द्रव्य कुण्डकी परिधिके परिस्तरणान्तर्गत होनेके कारण अग्निमें डालनेके योग्य है।

कुण्डके बाहर गिरे हुए हवनीय द्रव्यका गङ्गा आदि नदीमें प्रक्षेप उचित है

ऋत्विजां जुह्वतां वह्नौ बहिः पतति यद्धविः।
स ज्ञेयो वारुणो भागः प्रक्षेप्यो विमले जले॥

(शौनकः)

'ऋत्विजोंके द्वारा अग्निमें हवन करते समय जो हविष् अग्निके बाहर गिरता है, उसे वरुणका भाग जानना चाहिये और उसे निर्मल जलमें छोड़ना चाहिये ।'

हूयमाने हविर्द्रव्ये बहिः पतति यद्धविः ।
द्रप्सश्च स्कन्दमन्त्रेण तदग्नौ निक्षिपेत् पुनः ॥
(बृहच्छौनकः)

'हवन करते समय जो हविर्द्रव्य कुण्डके बाहर गिरे, उसे 'द्रप्सश्च स्कन्द०' (शु० य० १३।५) इस मन्त्रद्वारा अग्निमें पुनः डालना चाहिये ।'

*आहुतिके हिसाबसे हविर्द्रव्यका परिमाण

प्रस्थं धान्यं चतुःषष्टिराहुतेः परिकीर्तितम् ।
तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद् घृतस्य च ॥
(बृहस्पतिः)

'यदि हविर्द्रव्य तण्डुल, यव आदि हों तो चौसठ(६४)आहुतियों-के लिये एक प्रस्थ (ऽ।।।–से कुछ कम) धान्य कहा गया है, यदि हविर्द्रव्य तिल हों तो तिलोंकी उतनी आहुतियोंके लिये उसके आधे (आधा प्रस्थ) तिल एवं घृतकी उतनी आहुतियोंके लिये उसका आधा घृत कहा गया है ।'

---

*प्राचीन मान—

५ गुंजा (रत्ती)	=१ आद्यमाषक (मासा)
१६ आद्यमाषक (मासा)	=१ अक्ष या कर्ष (भरी)
४ कर्ष या अक्ष (भरी)	=१ पल या निकुञ्च (मुट्ठी)
४ पल	=१ कुडव (१६ भरी)
४ कुडव	= प्रस्थ (६४ भरी)

नित्य हवनमें अग्न्याधानादि कर्म नहीं होता

'अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते ।'

'नित्य हवनमें अग्न्याधानादि कर्म नहीं होता है ।'

हवनमें *स्रुवाके धारणका प्रकार

मूले हानिकरं प्रोक्तं मध्ये शोककरं तथा ।
अग्रे व्याधिकरं प्रोक्तं स्रुवं धारयते कथम् ॥
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन चतुर्विंशतिकाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलं परित्यज्य अग्रे चैव †द्विरष्टकम् ॥
चतुरङ्गुलं च तन्मध्ये धारयेच्छङ्खमुद्रया ।
हीयते यजमानो वै स्रुवमूलस्य दर्शनम् ॥
तस्मात् सङ्गोपयेन्मूलं होमकाले स्रुवस्य तु ॥

(मत्स्यपुराण)

'स्रुवा यदि मूलमें पकड़ा जाय तो हानिकारक होता है, मध्यमें पकड़ा जाय तो शोककारक होता है और यदि अग्र भागमें पकड़ा जाय तो व्याधिकारक होता है, ऐसी अवस्थामें स्रुवाको कैसे पकड़ना चाहिये ? ।

कनिष्ठाका अंगुलीके मानसे (नापसे) चौबीस अंगुलका स्रुव होता है । उसके आगेके चार अंगुल और पीछे मूलकी ओर सोलह अंगुल छोड़कर चार अंगुलका उसका जो मध्य भाग शेष रहता है उसे शङ्खमुद्रासे पकड़े । स्रुवके मूलके दर्शनसे यजमानकी हानि

---

*स्रुवके दण्डका पाँच भाग करना चाहिये । पश्चात् उसका जो दूसरा भाग हो, उसी जगह स्रुवाको धारण करना चाहिये ।

†द्विरष्टकम्—षोडश ।

होती है, इसलिये होम-कालमें स्रुवके मूलको भलीभाँति छिपाये रखे।'

अग्रे धृतोऽर्थनाशः स्यान्मध्ये चैव मृतप्रजा।
मूले च म्रियते होता स्रुवस्तु कुत्र धार्यते॥
*अग्रमध्याच्च यन्मध्यं मूलमध्याच्च मध्यतः।
स्रुवं धारयते विद्वान् ज्ञातव्यं चसदा बुधैः॥
तर्जनीं च बहिः कृत्वा कनिष्ठां च बहिस्ततः।
मध्यमाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैः स्रुवं धारयते द्विजः॥

(संस्कारभास्कर)

'होमादि कर्ममें यदि स्रुवा अगले भागमें पकड़ा जाय तो धनका नाश होता है, यदि बीचमें पकड़ा जाय तो मृत सन्तान होती है और यदि पिछले भागमें पकड़ा जाय तो होताकी मृत्यु होती है। ऐसी अवस्थामें स्रुवाका धारण कहाँ पर किया जाय?।

अगले भागका मध्य तथा मूल (पिछले) भागका जो मध्य है उससे स्रुवाको विद्वान् पुरुष धारण करते हैं। इसकी विद्वानोंको सदा जानकारी रखनी चाहिये।

तर्जनी अँगुलीको तथा कनिष्ठिका अँगुलीको बाहरकर मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठसे ब्राह्मण स्रुवाको धारण करते हैं।'

अग्रे धृतो विनाशाय धृतो मध्ये प्रजाक्षयः।
मूले धृतस्तु होतुस्तु मृतिं दद्यात् स्रुवो ध्रुवम्॥

'स्रुवको यदि अग्र-भागमें पकड़ा जाय, तो यजमानका विनाश होता है, मध्य-भागमें पकड़ा जाय, तो प्रजा (सन्तति) का नाश होता है और मूल-भागमें पकड़ा जाय, तो होताकी मृत्यु होती है।'

---

*अग्रान्मध्याच्च मूले तु मूलान्मध्याच्च मध्यमः।
स्रुवः प्रधार्यो विद्वद्भिः सर्वकामार्थसिद्धये॥

अग्रे धृत्वा तु वैधव्यं मध्ये धृत्वा प्रजाक्षयः।
मूले च म्रियते होता स्रुवस्थानं कथं भवेत्॥
अग्रान्मध्यस्तु यन्मध्यं मूलान्मध्यस्तु मध्यमम्।
स्रुवं च धारयेद्विद्वानायुरारोग्यदं सदा॥
(कारिका)

'स्रुवको अगले भागमें पकड़नेसे हवन—कर्ताकी स्त्रीको वैधव्य होता है। मध्यमें पकड़नेसे सन्तानका नाश होता है और मूल भागमें पकड़नेसे होताकी मृत्यु होती है। अतः स्रुवको पकड़नेका कौन स्थान उचित है?

स्रुवके अगले भागका मध्य और मूल (पिछले) भागका जो मध्य है, उस स्थानसे स्रुवाको विद्वान् धारण करे, तो वह सदा दीर्घायु और आरोग्यको प्राप्त करता है।'

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि स्रुवको मध्य भागकी ओर चार अंगुल छोड़कर पंचम भागको शंखकी मुद्रासे पकड़ना चाहिये। स्रुवके पंचम भागमें ब्रह्मा रहते हैं, जो कि सन्ततिकी वृद्धि करते हैं। अतः स्रुवका पंचम भाग उत्तम कहा गया है।

स्रुवका पाँच विभाग करनेपर उसका जो दूसरा भाग निकले, वहींसे स्रुवाको पकड़ना चाहिये।

स्रुवमें रहनेवाले देवताओंका और स्रुव धारणका विचार

स्रुवोऽन्तश्चतुर्विंशः स्यात् षड्देवास्तत्र संस्थिताः।
अग्निरुद्रौ यमश्चैव विष्णुः शक्रः प्रजापतिः॥
मूले चतुरङ्गुलेऽग्निर्द्वितीये रुद्रदैवतम्।
तृतीये यमनो देवश्चतुर्थे विष्णुदेवता॥
पञ्चमे शक्रदेवः स्यात्षष्ठे चैव प्रजापतिः।
यममग्निं परित्यज्य शक्रं रुद्रं प्रजापतिम्॥
विष्णुस्थेन च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम्।

'स्रुवके भीतर चौबीस अंगुलमें अग्नि, रुद्र, यम, विष्णु, इन्द्र और ब्रह्मा—ये छः देवता निवास करते हैं। स्रुवके मूलमें चार अंगुलपर अग्नि, द्वितीय भागके चार अंगुलपर रुद्र, तृतीय भागके चार अंगुलपर यम, चतुर्थ भागके चार अंगुलपर विष्णु, पञ्चम भागके चार अंगुलपर इन्द्र और षष्ठ भागके चार अंगुल पर प्रजापति रहते हैं। यम, अग्नि, इन्द्र, रुद्र और प्रजापतिके स्थानको छोड़कर विष्णुके स्थानको पकड़कर हवन करनेसे कर्म शुभप्रद होता है।'

स्रुवमें रहनेवाले देवताओंके नाम

अग्निं सोमं च सूर्यं च रुद्रं चैव प्रजापतिम्।
षष्ठं च यमदैवत्यं देवताश्च स्रुवे सदा॥

'अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, रुद्र, प्रजापति (ब्रह्मा) और यम—ये छः देवता स्रुवमें (स्रुवके चार-चार अंगुलकी दूरीमें) सर्वदा निवास करते हैं।'

स्रुवके धारणका विभिन्न फल

स्रुवमें रहनेवाले देवता स्रुव धारण करनेवालेको अलग-अलग फल देते हैं। जैसे—

अग्निस्थाने न्यसेत्तापं चन्द्रेण क्लेशमेव च।
सूर्येण पशुनाशस्तु रुद्रं रौद्रं भयं भवेत्॥
प्रजास्थाने प्रजावृद्धिर्यमे मृत्युः प्रकीर्तितः।

'स्रुवके अग्निके स्थानको पकड़नेसे ताप, चन्द्रमाके स्थानको पकड़नेसे क्लेश, सूर्यके स्थानको पकड़नेसे पशुओंका नाश, शिवके स्थानको पकड़नेसे भयङ्कर भय, ब्रह्माके स्थानको पकड़नेसे प्रजा (सन्तति) की वृद्धि और यमके स्थानको पकड़नेसे मृत्यु होती है।'

अग्निः सूर्यश्च सोमश्च विरिञ्चिरनिलो यमः ।
एते वै षड् देवाश्च चतुरङ्गुलभागिनः ॥
अग्निभागेऽर्थनाशाय सूर्ये व्याधिकरो भवेत् ।
सोमे च निष्फलो धर्मो विरिञ्चिः सर्वकामदः ॥
अनिले रोगमाप्नोति यमे मृत्युः प्रजायते ।
(कारिका)

'अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, अनिल (वायु) और यम—ये छः देवता स्रुवामें चार-चार अङ्गुलकी दूरी पर रहते हैं। स्रुवाके अग्निके स्थानको धारण करनेसे द्रव्यकी हानि, सूर्यके स्थानको धारण करनेसे व्याधिकारक, सोमके स्थानको धारण करनेसे धर्मकी निष्फलता, ब्रह्माके स्थानको धारण करनेसे समस्त कामनाओं-की प्राप्ति, वायुके स्थानको धारण करनेसे रोगकी प्राप्ति और यमके स्थानको धारण करनेसे मृत्यु होती है।'

स्रुवके भेद और उनका विभिन्न फल

सौवर्णो राजतस्ताम्रः खादिरो वा स्रुवो भवेत् ।
आद्यमैश्वर्यसिद्ध्यर्थं राजतं कीर्तिवर्धनम् ॥
ताम्रं शान्तिकरं प्रोक्तं खादिरं वसुवर्धनम् ।

'स्रुवा सोनेका, चांदीका, तांबेका अथवा खैरका होता है। सोनेका स्रुवा ऐश्वर्यसिद्धिके लिये और चांदीका कीर्ति बढ़ानेके लिये होता है। तांबेका स्रुवा शान्तिकारी और खैरका धनवर्द्धक कहा गया है।'

स्रुवकी उपयोगिताका विचार

होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः ।
पाणिनैवेतरस्मिंस्तु स्रुवा चात्र न हूयते ॥
(छन्दोगपरिशिष्ट)

'जहाँ पर हवन-पात्रका निर्देश न हो, वहाँ यदि तरल द्रव्यसे हवन करना हो, तो हवन-पात्रको ही स्रुवा कहा गया है। यदि हवनीय द्रव्य तरल पदार्थ न हो तो हाथसे ही हवन होता है, ऐसी जगह स्रुवासे हवन नहीं होता।'

गङ्गा आदि नदीके किनारे कुण्ड-मण्डप निर्माणार्थं दिक्साधन अनावश्यक है

यज्ञादि अनुष्ठानको साङ्गोपाङ्ग सफलीभूत बनानेके लिये सर्वप्रथम कुण्ड-मण्डपकी आवश्यकता होती है। कुण्डमण्डप बनानेके पूर्व मण्डपार्थ भूमिका परीक्षण तथा दिक्साधन सर्वत्र परमावश्यक है। दिक्साधन किये बिना कुण्डमण्डप शुद्ध और शुभप्रद नहीं होता। ऐसी स्थितिमें भी शास्त्रोंने गङ्गा आदि पवित्र नदीके *तीरमें तथा पर्वतादिमें दिक्साधनको अनावश्यक कहा है। यथा—

स्थण्डिले पर्वताग्रे च नदीकूले गृहेऽपि च।
न प्राचीसाधनं कुर्यान्मण्डपादिषु कर्मसु॥

(दानकल्पलता)

'स्थण्डिलमें, पर्वतीय भूमिमें, नदीके किनारे, घरमें और मण्डपादि कर्ममें दिक्साधनादि क्रिया नहीं करना चाहिये।'

---

*"भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्।
तावद्गर्भं विजानीयात्तदन्यत्तीरमुच्यते॥"

(वर्षक्रियाकौमुदी)

'सार्द्धहस्तशतं यावत् गर्भतस्तीरमुच्यते।'

(ब्रह्माण्डपुराण)

स्थण्डिले पर्वताग्रे च नदीकूले गृहेऽपि च।
न प्राचीसाधनं कुर्यान्मण्डपादिषु कर्मसु॥
*गृहादौ तु गृहप्राची स्थूलसूक्ष्मा भवेद्यदि।
सैव प्राची परिग्राह्या मण्डपादिषु कर्मसु॥
पर्वतादौ नदीतीरे गृहमध्ये विशेषतः।
रुद्रायतनभूमौ वा न दिक्साधनमिष्यते॥
(रुद्रकल्पद्रुम)

'यागके लिये परिष्कृत अनिम्नोन्नत अर्थात् सम भूमिका नाम स्थण्डिल या चत्वर है। स्थण्डिलमें, पर्वतके शिखरमें, नदीके तटमें और घरमें भी मण्डप आदि कर्मोंमें प्राचीसाधन (दिक्साधन) नहीं करना चाहिये। किन्तु गृहादिमें यदि स्थूल अथवा सूक्ष्म गृहप्राची हो, तो मण्डप आदि कर्मोंमें उसी प्राचीका ग्रहण करना चाहिये।

पर्वत आदिमें, नदीके तटपर, घरके भीतर, विशेषरूपसे शिवजीके मन्दिरकी भूमिमें दिक्साधन नहीं किया जाता।'

‡कुण्डका स्वरूप

प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू कोणे व्यवस्थितौ।
ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते॥

---

* गृहादौ तु गृहप्राच्येव प्राची ज्ञेया।

‡ कुण्डमध्ये ऋतुमतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत्।
कुण्डलक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥
सा योनिः सर्वभूतानां विद्यामन्त्रगणस्य च।
विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा च मुक्तिदः॥
(अग्निपुराण ३४।३४–३५)

उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिर्योनिर्विधीयते ।
(अग्निपुराण ३४।३६-३७)

'कुण्ड (कुण्डलक्ष्मी) का पूर्व दिशामें सिर कहा गया है, ईशान और अग्निकोणमें उसकी दो भुजाएँ कही गई हैं, वायव्य और नैर्ऋत्य कोणमें दो जङ्घाएँ कही गई हैं, कुण्ड उसका उदर (पेट) कहा गया है और कुडकी योनि उसकी योनि कही जाती है ।'

कुण्डस्वरूपं जानीयात् परमं प्रकृतेर्वपुः ।
प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः ॥
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ।
(शारदातिलक ३।६०–६१)

'कुण्डके स्वरूपको प्रकृतिका परम शरीर जानना चाहिये । पूर्व दिशामें उसका सिर कहा गया है, दक्षिण और उत्तरमें उसके दो बाहू कहे गये हैं, कुण्ड उदर कहा गया है, योनि और पैर पश्चिममें कहे गये हैं ।'

कुण्डादिके विधिहीन निर्माणसे हानि

खाताधिके भवेद् रोगो हीने धेनुधनक्षयः ।
वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ॥
मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः ।
भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डं योन्या विना कृतम् ॥
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम् ।
(परशुरामः)

'खातकी अधिकतामें रोग, खातकी हीनतामें धेनु और धनका क्षय, कुण्डके टेढ़े होने पर सन्ताप, मेखलाके छिन्न-भिन्न होनेपर मरण, मेखलाकी हीनतामें शोक, मेखलाकी अधिकतामें धनकी हानि,

योनिके बिना कुण्ड बनानेसे पत्नीका विनाश और कण्ठरहित कुण्ड बनानेसे पुत्रका विनाश होता है ।'

मानहीने महाव्याधिर्रधिके शत्रुवर्धनम् ।
योनिहीने त्वपस्मारो वाग्दण्डः कण्ठवर्जिते ॥

(सिद्धान्तशेखर)

'यदि कुण्ड शास्त्रोक्त परिमाणसे हीन (कम) हो तो महाव्याधि होती है, यदि उक्त परिणामसे अधिक हो तो शत्रुओंकी अभिवृद्धि होती है । कुण्डमें योनिकी हीनतासे मृगी-रोग होता है और कण्ठके न होनेसे वाणीसम्बन्धी रोग होता है ।'

अनेकदोषदं कुण्डं यत्र न्यूनाधिकं यदि ।
तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥

(वसिष्ठसंहिता १८।३१)

'जहाँ कुण्डके परिमाणमें यदि न्यूनता अथवा आधिक्य हो, तो वह कुण्ड अनेक दोष-प्रदायक होता है । इसलिये अपना भला चाहनेवाले पुरुषको भलीभाँति परीक्षा करके कुण्डका निर्माण करना चाहिये ।'

न्यूनाधिकप्रमाणं यत् कुण्डं कुर्युरमेखलाम् ।
शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत् ॥

(क्रियासार)

'कुण्ड प्रमाणसे छोटा या बड़ा हो, मेखलारहित हो और शृङ्गार-रहित हो, तो वह यजमानके लिये विनाशकारी होता है ।'

शृङ्गाररहितं यच्च कुण्डं जर्जरमेखलम् ।
यजमानविनाशाय प्रोद्घातः स्फुटिते भवेत् ॥
सूत्राधिके सुहृद्द्वेषः सूत्रहीने दरिद्रता ।

(मेरुतन्त्र)

'जो यज्ञकुण्ड शृङ्गार-रहित हो (भलीभाँति सजाया न गया हो), जिसकी मेखला जर्जरित हो (छिन्न-भिन्न हो) वह कुण्ड यजमानके लिये विनाशकारी होता है। यदि कुण्डमें दरार पड़ गई हो तो मरण होता है। यदि कुण्ड परिमाण-सूत्रसे बड़ा हो तो मित्रोंसे द्वेष होता है और यदि वह परिमाण-सूत्रसे छोटा हो तो दारिद्र्य होता है।'

शान्तिक-पौष्टिक हवनमें अनेक कुण्ड हो सकते हैं

महारुद्र, विष्णुयज्ञादिमें तथा शान्तिक-पौष्टिक हवनमें अनेक कुण्डोंका विधान कहा गया है।

'पवमान पद्धति' में पाँच कुण्डोंके निर्माणके लिये लिखा है—

शान्तिके पौष्टिके होमे कुर्यात् कुण्डानि पञ्च च।
एकमेव भवेत् कुण्डमित्याहुरथ केचन॥

'शान्तिक तथा पौष्टिक होममें पाँच कुण्ड बनानेका विधान है, परन्तु किसी आचार्यने एक कुण्ड बनानेके लिये भी कहा है।'

यज्ञ-मण्डपके मध्यमें कुण्ड न होनेसे हानि

'मध्ये विहीनं यत्कुण्डं प्रजाक्षयकरं विदुः।'

'यज्ञ-मण्डपके मध्यमें कुण्ड न होनेसे यजमानके सन्तानकी हानि होती है।'

कुण्डकी अग्निके नष्ट होनेपर कर्तव्य

यदि होमार्थमानीतो नश्येद् वह्निरकारणात्।
विपदस्तस्य जायन्ते साधकस्य न संशयः॥
विसृजेद् विष्णुलिङ्गं वा दुर्गन्धं वा हुताशनम्।

निर्मन्थ्य चाग्निं होमार्थमविनाशेन धारयेत् ॥
तस्मिन् विनष्टे भूयोऽपि मन्थनेनैव धारयेत् ।

'यदि होमके लिये लायी गयी अग्नि किसी कारणवश बुझ जाय, तो उस यजमान साधकपर बड़ी विपत्ति आती है, इसमें सन्देह नहीं। यदि विष्णुलिंग (शालग्रामकी प्रतिमा) नष्ट हो जाय अथवा अग्निमें दुर्गन्धि आ जाय, तो अग्निमन्थनद्वारा अग्नि तैयार करके होमार्थ धारण करे। यदि वह अग्नि नष्ट हो जाय, तो पुनः अग्नि-मन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करना चाहिये।'

वैश्वदेव कुण्डके निर्माणकी विधि

वैश्वदेवे प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम् ।
मेखलात्रयसंयुक्तं द्विमेखलमथापि वा ॥
स्यादेकमेखलं वापि चतुरस्रं समन्ततः ।
अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः ॥

चतुरस्रं च सुश्लक्ष्णं तुल्यं सूत्रेण साधयेत् ।
समं वेदाङ्गुलोच्छ्रायं प्रागुदक् प्रवणं भवेत् ॥
अधिकं वेषुमात्रं वा कुर्याद् होमानुसारतः ।

'वैश्वदेव-कर्ममें अठारह अङ्गुलका कुण्ड बनाना चाहिये। उसमें तीन मेखलाएँ हों अथवा दो मेखलाएँ हों अथवा एक ही मेखलासे युक्त हो और वह चारों ओर चौकोर हो। विद्वानोंने इस कर्ममें तांबेका कुण्ड भी कहा है। उसे चौकोर मनोहर समानभुज सूतसे नाप कर बनावे। वह चार अङ्गुल ऊँचा और पूर्व तथा उत्तरकी ओर ढालू हो। उसको होमके अनुसार अधिक ऊँचा अथवा बाणके बराबर ऊँचा बनावे।'

कुण्डके खोदनेके स्थानका विचार

ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथाशास्त्रविधानतः।
त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रं च शिरोदेशं प्रयत्नतः॥
शिरोघाते भवेन्मृत्युः पिण्डे च पितृघातनम्।
पृष्ठे च दुःखसम्भूतिः क्रोडे सर्वार्थसाधनम्॥

'मन्त्रविद् ब्राह्मण शास्त्रानुसार कुण्ड-निर्माण कराये। भूमिरूप सर्पमें शिरोभागको छोड़कर भूमि खोदनी चाहिये। शिर कट जाय तो कर्त्ता की मृत्यु और पिण्ड कट जाय तो पितरोंकी हानि होती है। पृष्ठ भागमें खोदनेसे दुःख एवं कष्ट होता है। अतः उदर भागमें ही कुण्ड खोदना चाहिये।'

यज्ञ-मण्डपके लिये योग्य भूमि

नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा।
सुभगे भूमिभागे च देवता संस्थितेर्नृणाम्॥
ऋत्विग्भिर्गुरुणा चैव सार्द्धं भूमिं परीक्षयेत्।
(ईश्वरसंहिता)

'यजमान (यज्ञ-मण्डपके लिये) नदियोंके संगम में, देवताओंके आगे अर्थात् देवमन्दिरके सामने, देवताओंकी स्थितिसे और मनुष्योंकी स्थितिसे सुन्दर (मनोरम) भूमिमें गुरुके साथ ऋत्विजोंके द्वारा भूमिकी परीक्षा करावे।'

यज्ञ-मण्डपके लिये अयोग्य भूमि

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्तुरायुर्धनापहा॥
ईशकोणे प्लवा सा च कर्तुः श्रीराशु निश्चितम्।

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरप्लवा।
शेषकोष्ठा प्लवा भूमिर्धनायुर्गृहनाशिनी॥
(पञ्चरात्र)

'स्फुटिता (फटी हुई) अर्थात् जिसमें दरार पड़ी हो, शल्य (शाहीका काँटा) से युक्त, जिसमें बांबी निकलती हो, ऐसी भूमिका दूरसे परित्याग कर देना चाहिये। क्योंकि वह यजमानकी आयु और धन-सम्पत्तिकी विनाशक होती है। यदि वह ईशानकोणकी ओर ढालू हो तो यजमानको शीघ्र धनदायिका होती है, पूर्वकी ओर ढालू हो तो वंशवृद्धि करनेवाली होती है, उत्तरकी ओर ढालू हो तो वरदायिनी होती है, अन्य कोणोंमें ढाल भूमि हो, तो वह धन, आयु और गृहनाशिनी होती है।'

मण्डपकी आवश्यकता

विवाहोत्सवयज्ञेषु मण्डपं कल्पयेत् सुधीः।
सर्वविघ्नविनाशाय सर्वेषां चित्तशुद्धये॥

'समस्त विघ्नोंके विनाशके लिये और समस्त प्राणियोंकी चित्त-शुद्धिके लिये विवाह, उत्सव और यज्ञमें बुद्धिमान पुरुषको मण्डप अवश्य बनवाना चाहिये।'

कर्म-विशेषमें मण्डपके नाम

घनो घोषो विरामश्च काञ्चनः कामराजकः।
सुघोषो घर्घरो दत्तो गहनो नवमण्डपाः॥
विवाहे चतुर्भिः स्तम्भैर्घनो नामेति मण्डपः।
स्तम्भैरेवाष्टभिर्ज्ञेयो घोषश्च ग्रहशान्तिके॥
सोमयागे महारुद्रे विरामः षोडशान्वितः।
काञ्चनो विंशतिस्तम्भैर्लक्षहोमे च भोजने॥

अतिरुद्रे [1]तुलाभारे मण्डपः कामराजकः।
चतुर्विंशतिभिः स्तम्भैर्धेनुदाने तथैव च॥
अष्टाविंशतिभिः स्तम्भैः सुघोषः [2]प्रयुते न्यसेत्।
हस्तराममितस्तम्भैः सम्राजि घर्घरः स्मृतः॥
दक्षश्च कोटिहोमे च रसाग्निस्तम्भनिर्मितः।
गहनो दशकोट्यां च खवेदस्तम्भनिर्मितः॥
विस्तारे तु यथाशोभमपरा अपि धारकाः।

यज्ञ-मण्डपके नाम

पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः।
कौशल्यो बुद्धिसङ्कीर्णो गजभद्रो जयावहः॥
श्रीवत्सो विजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिञ्जयः।
यज्ञभद्रो विशालश्च सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः॥
भगपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः।
सुग्रीवो हरितश्चैव कर्णिकारः शतर्धिकः॥
सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च।

(मत्स्यपुराण)

'पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन, कौशल्य, विजय, बुद्धि-संकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, वास्तुकीर्त्ति, श्रुतिञ्जय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भगपंच, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र और सुभद्र—ये यज्ञ-मण्डपके नाम हैं।'

देवताके अनुसार मण्डपके नाम

मण्डपावीक्षणं कुर्याद्दिव्यदृष्ट्या यथाविधि।
पुष्पविक्षेपणं कृत्वा प्रविशेत्पश्चिमाननम्॥

---

[1] तुलादानादि षोडशमहादानेष्वित्यर्थः। [2] दशलक्षे।

प्रागुक्तमण्डपं कृत्वा नामानि शृणु नारद।
शैवे कृत्येश्वरं नाम श्रीमाँश्च वैष्णवव्रते॥
ब्राह्मे च ज्योतिरूपश्च शाक्तेये शक्तिवर्द्धनम्।
तड़ागादौ सुवीर्याख्यमारामे च मनोरमम्॥
प्रजापतिर्ग्रहे यज्ञे तेजस्वी भास्करव्रते।
लक्षहोमादिके दिव्यं कोटिहोमे महायशाः॥
साधारणे व्रते चान्ये विवाहे सर्वमङ्गलम्।
मण्डपानां तु नामानि कथितानि पुरागमे॥

(प्रतिष्ठातिलक)

'दिव्य दृष्टिसे विधिपूर्वक मण्डपका चारों ओर निरीक्षण करे, फूलोंकी वृष्टि कर पश्चिम द्वारसे मण्डपमें प्रवेश करना उचित है। हे नारद ! पूर्वोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न मण्डपका निर्माणकर उनका जो-जो नाम रखना शास्त्रसम्मत है उन नामोंको तुम सुनो। शिवयज्ञमें ईश्वर नामका मण्डप, वैष्णवयज्ञमें श्रीमान् नामका, ब्रह्मयज्ञमें ज्योतिरूप नामका, शक्ति-सम्बन्धी कृत्यमें शक्तिवद्र्धन नामका, तडाग आदिकी प्रतिष्ठामें सुवीर्य नामका, बाग-बगीचेसे सम्बन्ध रखनेवाले कृत्यमें मनोरम नामका, ग्रह-सम्बन्धी यज्ञमें प्रजापति नामका, सूर्य-कर्ममें तेजस्वी नामका, लक्षहोम आदिमें दिव्य नामका, कोटिहोममें महायश (महाकीर्ति) नामका, साधारण व्रतोंमें तथा विवाहमें सर्वमङ्गल नामका मण्डप होता है। इस प्रकार पुराणोंमें मण्डपोंके नाम कहे गये हैं।'

स्तम्भ-भेदसे यज्ञ-मण्डपके नाम

स्तम्भा यत्र चतुष्षष्टिः पुष्पकः स उदाहृतः।
द्वाषष्टि पुष्पभद्रस्तु षष्टिः सुव्रत उच्यते॥

अष्टपञ्चाशकस्तद्वत् कथ्यते धृतमन्दरः।
कौशल्यः षट्पञ्चाशच्चतुःपञ्चाशता पुनः॥
नाम्ना च बुद्धिसङ्कीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः।
जयावहस्तु पञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तद् द्विहीनकः॥
विजयस्तद्द्विहीनः स्याद् वास्तुकीर्तिस्तथैव च।
द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिधरोऽपरः॥
चत्वारिंशद् यज्ञभद्रस्तद् द्विहीनो विशालकः।
षट् त्रिंशश्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः॥
द्वात्रिंशद्भागपञ्चस्तु त्रिंशद्भिर्नन्दनः स्मृतः।
अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः॥
चतुर्विंशस्तु सुग्रीवो द्वाविंशो हरितो मतः।
विंशतिः कर्णिकाकारः स्यादष्टादशपरर्द्धिकः॥
सिंहो भवेद् द्विहीनः स्यात्कामभद्रो द्विहीनकः।
सुभद्रस्तु तथा प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः॥
मण्डपाः कथिता अत्र यथावल्लक्षणान्विताः।

(राजकौस्तुभ)

'जिस यज्ञमण्डपमें चौसठ (६४) स्तम्भ हों वह 'पुष्पक' कहा गया है। बासठ स्तम्भवाला मण्डप 'भद्रपुष्प' तथा साठ स्तम्भवाला 'सुव्रत' कहा जाता है। अट्ठावन स्तम्भवाला मण्डप 'धृतमन्दर' कहा जाता है, छप्पन स्तम्भवाला 'कौशल्य' और चौवन स्तम्भोंवाले यज्ञमण्डपका नाम 'बुद्धिसंकीर्ण' है। उससे दो कम अर्थात् बावन स्तम्भवाला 'जयावह' नामका यज्ञमण्डप होता है। पचास स्तम्भों-वाला 'श्रीवत्स' उससे दो कम अर्थात् अड़तालीस स्तम्भोंवाला 'विजय', उससे दो कम अर्थात् छियालीस स्तम्भोंवाला 'वास्तुकीर्ति' कहलाता है। उससे दो स्तम्भ अर्थात् चौवालीस स्तम्भोंवाला यज्ञमण्डप 'श्रुतिधर', चालीस स्तम्भोंवाला 'यज्ञभद्र', उससे दो कम

अर्थात् अड़तीस स्तम्भोंवाला यज्ञमण्डप 'विशालक', छत्तीस स्तम्भोंवाला 'सुश्लिष्ट', उससे दो कम अर्थात् चौंतीस स्तम्भोंवाला 'शत्रुमर्दन', बत्तीस स्तम्भोंवाला 'भागपञ्च' तथा तीस स्तम्भोंवाला 'नन्दन' कहा गया है। अठाईस स्तम्भवाला 'मानव', उससे दो कम अर्थात् छब्बीस स्तम्भोंवाला 'मानभद्र', चौबीस स्तम्भोंवाला 'सुग्रीव' और बाईस स्तम्भोंवाला 'हरित' कहा गया है। बीस स्तम्भोंवाला 'कर्णिकाकार', अठारह स्तम्भोंवाला 'पर्द्धिक', उससे दो कम अर्थात् सोलह स्तम्भोंवाला 'सिंह' होता है, उससे दो कम अर्थात् चौदह स्तम्भवाला यज्ञ-मण्डप 'कामभद्र' और बारह स्तम्भोंसे युक्त यज्ञमण्डप 'सुभद्र' कहा गया है। इस प्रकार यथायोग्य लक्षणोंसे युक्त मण्डपके नाम कहे गये हैं।'

यज्ञ-मण्डपके सोलह स्तम्भोंके नाम

शुभदं विजयं कृष्णं श्रीमन्तं मङ्गलं गुरुम्।
जयं धनदकल्याणी शुभं शान्तं मनोहरम्॥
ऋद्धिं सिद्धिं विचित्रं च दिव्यरूपमनुक्रमात्।
मण्डपस्तम्भनामानि षोडशैतान्यसंशयः॥

'शुभद, विजय, कृष्ण, श्रीमान्, मंगल, गुरु, जय, धनद, कल्याणी, शुभ, शान्त, मनोहर, ऋद्धि, सिद्धि, विचित्र और दिव्य-रूप—ये यज्ञमण्डपके सोलह स्तम्भोंके नाम कहे गये हैं।'

यज्ञ-मण्डपके सोलह स्तम्भोंके देवताओंके नाम

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्रभानुगजाननाः।
यमश्च सर्पसेनान्यौ पृषदश्वा निशापतिः॥
प्रचेता वसुधनदौ वाक्पतिस्त्वष्टृनन्दनः।
एते देवाः समाख्याताः स्तम्भकर्मणि सूरिभिः॥

'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, सर्प (नाग),

सेनानी (स्कन्द), पृषदश्व (वायु), चन्द्रमा, प्रचेता, अष्ट वसु, धनद (कुवेर), बृहस्पति और त्वष्टृनन्दन (विश्वकर्मा)—ये यज्ञमण्डपके सोलह स्तम्भोंके देवता कहे गये हैं।'

यज्ञ-मण्डपके विधिहीन निर्माणसे यजमानकी हानि

अनुक्तसाधनैः क्लृप्तो यदि वा कुटिलाकृतिः।
मानाधिकोऽथवा न्यूनो मण्डपः कर्तृनाशनः॥
आख्यातसाधनैः क्लृप्तः सरलः स्तम्भमानकः।
मनोज्ञो मण्डपो योऽसौ कर्मकर्तुः शुभावहः॥
(सिद्धान्तशेखर)

'यदि यज्ञमण्डप शास्त्रद्वारा न कहे गये साधनों (सामग्रियों) से रचा गया हो अथवा यदि उसका आकार टेढ़ा-मेढ़ा हो अथवा परिमाणसे बड़ा हो या न्यून हो, तो वह यजमानका विनाशक होता है। शास्त्रोक्त साधनोंके द्वारा रचा गया, सीधे स्तम्भ और परिमाणवाला मनोहर जो यज्ञमण्डप है वह कर्मकर्ता (यज्ञकर्ता) के लिये कल्याणकारक होता है।'

यज्ञ-मण्डपके निर्माणकर्ताका विचार

सत्यवादी सदाचारी विवेकी स्थिरसाहसः।
शास्त्रज्ञोऽथ विनीतश्च ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥
ब्राह्मणोऽथ सुशिल्पी च ये चाऽन्ये त्वप्रमादयः।
परीक्ष्य च कारयेत्कर्म तत्सर्वं सफलं भवेत्॥
(परशुरामकारिका)

'सत्यवादी, सदाचारी, ज्ञानी, दृढ़-साहसी, शास्त्रज्ञ, विनीत, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, ब्राह्मण, शिल्पशास्त्रविशारद तथा प्रमाद आदि दोषोंसे रहित मनुष्यकी परीक्षा करके मण्डपका निर्माण कराया जाय, तो सब कार्य सफल होते हैं।'

यज्ञ-मण्डपमें विघ्न होनेपर विचार

मण्डपस्य तथा भित्तिश्चूडादेवकुलस्य च।
अकस्मान्निपतेद्यत्र कम्पते वाऽनिमित्ततः॥
दधिक्षौद्रघृताक्तानामवश्यं समिधां ततः।
जुहुयादष्टशतमिमारुद्रायेति मन्त्रवित्॥
धेनुश्च दक्षिणां दद्यात्तिलपात्रं सकाञ्चनम्।

'जहाँ कहीं यज्ञमण्डपकी दीवार तथा देव-परिवारका मुकुट यदि बिना किसी निमित्तके अकस्मात् गिर जाय अथवा हिल जाय, तो मन्त्रज्ञ पुरुष दही, शहद, घृतसे मिश्रित समिधाओंका 'इमा रुद्राय' (शु० य० १६।४८) इस मन्त्रसे एक सौ आठ (१०८) बार अवश्य हवन करे और धेनु दक्षिणामें दे तथा सुवर्णयुक्त तिलपात्र प्रदान करे।'

यज्ञमण्डपमें ध्वजाकी आवश्यकता

चिन्तयन्त्यसुराः श्रेष्ठाः ध्वजहीनं सुरालयम्।
ध्वजेन रहितं ब्रह्मन् मण्डपं तु वृथा भवेत्॥
पूजाहोमादिकं सर्वं जपाद्यं यत्कृतं बुधैः।
रक्षणेन विना यद्वत्क्षेत्रं नश्यन्ति क्षेत्रिणः॥
ध्वजं विना देवगृहं तथा नश्येत सर्वथा।
विष्णुपारिषदाः क्रूराः कूष्माण्डाद्यास्तु ये स्मृताः॥
पूजादिकं तु गृह्णन्ति देवं दृष्ट्वा न रक्षितम्।
दृष्ट्वा ध्वजांस्तु देवस्य मण्डलं ज्वलनप्रभान्॥
नश्यन्ति सर्वे ते चार्करश्मिक्षिप्तं तमो यथा।

(हयशीर्षपञ्चरात्र)

'हे ब्रह्मन्, श्रेष्ठ असुर ध्वजासे विहीन देवालयको सुरालय

समझते हैं, इसलिये ध्वजसे रहित मण्डप वृथा हो जाता है। विद्वानों-के द्वारा पूजा, होम आदि, जप आदि जो कुछ किया गया वह सब रक्षाके बिना वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे खेतवालेका खेत बिना रखवालीके सर्वथा नष्ट हो जाता है और ध्वजके बिना देवमन्दिर भी वैसे ही सर्वथा नष्ट हो जाता है। विष्णु भगवान्के कूष्माण्ड आदि जो क्रूर पार्षद कहे गये हैं वे देवताको बिना रखवालीका देखकर पूजादि स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। मण्डपमें अग्निके तुल्य चमकनेवाले देवताओंके ध्वजोंको देखकर वे सब वैसे ही विनष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्यकी किरणोंसे भगाया गया अन्धकार विनष्ट हो जाता है।'

ध्वजाओंके देवता

कुमुदः कुमुदाक्षोऽथ पुण्डरीकोऽथ वामनः।
शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः॥
ध्वजानां देवता ह्येते सर्वे पूज्याः क्रमेण तु।
(अग्निपुराण ६६।६)

'कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये आठ ध्वजाओंके देवता हैं और ये सभी क्रमशः पूज्य हैं।'

ध्वजकी प्रदक्षिणाका फल

यावन्तस्तन्तवस्तस्य ध्वजस्य वरवर्णिनि।
तावद्वर्षसहस्राणि कर्ता स्वर्गे महीयते॥
यावत्पदानि कुरुते ध्वजे प्राणी प्रदक्षिणाम्।
तावद्वर्षसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम्॥

'हे सुन्दरी, उस ध्वजके जितने तन्तु रहते हैं, उतने हजार वर्षों तक ध्वज (अथवा मन्दिर) का कर्ता स्वर्गमें पूजित होता है। प्राणी

ध्वजकी जितने पैर (पग) प्रदक्षिणा करता है उतने हजार वर्षों तक उत्तम भोग भोगनेवाले निर्माताको फल प्राप्त होता है।'

यज्ञमण्डपमें तोरणद्वारसे लाभ

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
विघ्नविध्वंसनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च॥
(महाकपिल पञ्चरात्र)

'यज्ञ-मण्डपमें देवता तोरणरूपमें विघ्नोंके निवारणके लिये और यज्ञकी रक्षाके लिये रहते हैं।'

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
सर्वविघ्नविनाशाय रक्षां कुर्वन्ति चाध्वरे॥
पूर्वे कृतयुगं विद्यात् त्रेतां विद्याच्च दक्षिणे।
द्वापरं पश्चिमे विद्यात् कलिं विद्यात्तथोत्तरे॥
(प्रतिष्ठातिलक)

'यज्ञ-मण्डपमें देवगण तोरणरूपसे स्थित रहते हैं और वे यज्ञमें समस्त प्रकारके विघ्नोंका विनाश करते हैं तथा यज्ञमें सब प्रकारसे रक्षा करते हैं। पूर्व दिशामें सत्ययुग, दक्षिण दिशामें त्रेतायुग, पश्चिम दिशामें द्वापरयुग और उत्तर दिशामें कलियुग समझना चाहिये।'

प्रत्येक तोरणके पास कलशस्थापनकी आवश्यकता

'प्रतितोरणमेकैकं कलशं स्थापयेद् बुधः।'
(शारदातिलक टीका, २ पटल)

'बुद्धिमान् पुरुष यज्ञादिमें प्रत्येक तोरणके पास एक-एक कलश स्थापित करे।'

तोरणमें शंख, चक्र, आयुधादिके निर्माणका विचार

जिस प्रकार विष्णुयागमें तोरणों पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मका निर्माण होता है, उसी प्रकार नवग्रहयज्ञ, रामयज्ञ आदि यज्ञोंमें भी शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मका निर्माण करना उचित है।

देवताओंमें विष्णु प्रधान हैं, अतः सभी प्रकारके यज्ञोंमें विष्णु भगवान्के आयुध शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदिका निर्माण करना चाहिये।

'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'

(विष्णुसहस्रनामावली)

जिस प्रकार सभी कार्योंमें 'सर्वतोभद्र' का विशेष विधान है, उसी प्रकार सभी यज्ञोंमें तोरणों पर विष्णुयागकी तरह शंख, चक्र, गदा और पद्मका निर्माण करना चाहिये।

भगवान् सूर्यका विशेषतः: विष्णुरूप ही कहा गया है, अतः सूर्ययागमें विष्णुयागकी तरह शंख, चक्र, गदा और पद्म यही तोरणोंमें लगना चाहिये। देवी और गणेश ये दोनों शिवजीसे सम्बन्धित हैं, अतः देवी और गणेशयागमें रुद्रयज्ञकी तरह तोरणोंमें त्रिशूलका निर्माण करना चाहिये।

तोरण और मण्डपस्तम्भ आदिके मध्यमें आने-जानेका निषेध

तोरणस्तम्भयोर्मध्ये उच्छिष्टद्वयमध्यतः।
पापिनोर्मध्यभागे च न गन्तव्यं द्विजातिभिः॥

(शिवरत्नाकर)

'तोरण और स्तम्भके बीचमें, भोजन करते हुए दो व्यक्तियोंके बीचमें और दो पापियोंके बीचमें द्विजातियोंको नहीं जाना चाहिये।'

यज्ञादिमें सर्वतोभद्रकी प्रधानता

रुद्रयाग, विष्णुयाग आदिमें सर्वत्र 'सर्वतोभद्रं' ही बनाना चाहिये, क्योंकि मयूख आदिमें 'सर्वतोभद्र' का ही प्रतिपादन किया गया है। सम्प्रदायके अनुरोधसे शिवप्रतिष्ठामें अथवा रुद्रयागमें 'लिङ्गतोभद्र' बनाने पर भी उस पर 'सर्वतोभद्रं' के देवताओंका ही आवाहन करना चाहिये। क्योंकि मयूख आदिमें उन्हींके आवाहनका प्रतिपादन है, अन्य देवताओंका प्रतिपादन नहीं किया गया है। अतएव रुद्रकल्पद्रुममें रुद्रयागमें 'द्वादशलिङ्गतोभद्र' न बनाकर वहाँ पर 'सर्वतोभद्र' और उसके देवताओंका ही प्रतिपादन किया गया है।

खण्डदीक्षितकृत 'रुद्रपद्धति' में तथा 'प्रतिष्ठासरणि' में भी 'लिङ्गतोभद्र' में अष्ट भैरवोंका आवाहन कहा गया है, किन्तु वह मण्डलके बाहर पूर्वादि क्रमसे ऐन्द्री आदि आठ शक्तियोंके समीपमें ही करना चाहिये। किन्तु 'अष्टलिङ्गतोभद्र' में वह आठों लिङ्गोंमें किया जा सकता है, इसलिये वहाँ भी करना चाहिये। ऋग्वेदादिका स्थापन तथा अन्य देवताओंका स्थापन उद्योत, पूर्तकमलाकर, मयूख, कौमुदी आदिमें उक्त (कथित) न होनेके कारण नहीं करना चाहिये, ऐसा नहीं लिखा है। इससे 'सर्वतोभद्र' में ५६ देवता और 'लिङ्गतोभद्र' में ६४ देवता होते हैं, यह निश्चित है। उनके आवाहन स्थापन यों हैं—मध्यमें अष्टदल पद्मपर ब्रह्माकी स्थापना करनी चाहिये। तदनन्तर उत्तर आदिके क्रमसे (उत्तरसे आरम्भ कर) आठ दिशाओंमें सोम, ईशान, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण और वायु इन लोकपालोंकी स्थापना होती है। वहाँ चार लोकपालोंकी दिशाओंमें और चार लोकपालोंकी विदिशाओंमें स्थापना होती है। दिशाओंमें वापी या लिङ्ग अथवा अन्य

जो कुछ भी हो उसी पर सोम आदिकी स्थापना होती है। उत्तरमें वापी पर अथवा लिङ्गपर अग्निकोणमें खण्डेन्दुपर इत्यादि उक्ति सर्वतोभद्रपरक है अर्थात् सर्वतोभद्रसे सम्बन्ध रखती है, क्योंकि उसमें वापी है। अतएव रुद्रकल्पद्रुम आदिमें वापीमें, लिङ्गमें, भद्रमें इत्यादि नहीं कहा है। तदुपरान्त वायु और सोमके बीचमें, सोम और ईशानके बीचमें तथा ईशान और इन्द्रके बीचमें, इस प्रकार वायु, सोम, ईशान आदिके मध्यवर्ती आठ स्थानोंमें भद्र अथवा लिङ्ग या अन्य रज (बुकनी) से पूर्ण जो कोई कोष्ठ (कोठे) हो वहाँ अष्ट वसु आदि आठकी स्थापना की जाती है। वहाँ पर भी वायु सोमके बीचमें भद्र अथवा लिङ्गमें 'भद्रे लिङ्गे' यह उक्ति जहाँ 'सर्वतोभद्र' अथवा 'लिङ्गतोभद्र'में भद्रों अथवा लिङ्गोंका सम्भव हो, वहींके लिये है। वास्तवमें तो सोम और ईशानके अन्तरालमें वसु आदिकी स्थापना होती है। तदनन्तर ब्रह्मा और सोमके अन्तरालमें, ब्रह्मा और ईशानके अन्तरालमें, ब्रह्मा और इन्द्रके अन्तरालमें, ब्रह्मा और अग्निके अन्तरालमें इत्यादि अष्ट वसुओंके अन्तरालोंमें दिशाओंमें वापियाँ अथवा लिङ्ग या अन्य रञ्जित कोष्ठ हों वहाँ पर स्कन्द आदिका आवाहन होता है। तदनन्तर ब्रह्माके पादमूलमें और ऊपर इत्यादिमें भी। तदनन्तर मण्डलसे बाहर ही आयुधोंका, गौतमादिकोंका और शक्तियोंका स्थापन होता है। लिङ्गतोभद्रमें तो मण्डलसे बाहर ही पूर्वादि आठ दिशाओंमें अष्ट भैरवोंकी स्थापना होती है, यह विशेष है। इससे सर्वत्र मण्डलमात्रमें रामभद्र, देवीभद्र आदिमें भी इन देवताओंकी स्थापना निर्विवाद और अविरुद्ध है। इनसे अतिरिक्त देवताओंकी 'रुद्रकल्पद्रुम' आदि समस्त निबन्धोंमें एवं 'भद्रमार्तण्ड' आदिमें भी कहीं उपलब्धि न होने तथा शिष्ट सम्प्रदायसे अनुमत न होनेसे भी उनकी स्थापना नहीं होती, यह निर्विवाद है। 'हरिहरमण्डल'में भी 'द्वादशलिङ्गतोभद्र' नामक इन्हीं देवताओंका आवाहन होता है।

हरिहरके गर्भरहित होने पर भी 'द्वादशलिङ्गतोभद्र' में रुद्रकल्पद्रुम आदिने सर्वतोभद्रके देवताओंकी ही स्थापनाका विधान किया है। इसलिये रुद्रकल्पद्रुम, नारायण भट्ट आदिके मतानुसार लिङ्गतोभद्रमें भी ५६ अथवा ५७ सर्वतोभद्रके देवताओंका ही आवाहन होता है, उनसे अधिक देवताओंका आवाहन नहीं होता।

भद्रमार्तण्डमें सर्वतोभद्रके देवताओंसे अधिक जो 'द्वादशलिङ्गतोभद्र' के मण्डलदेवता कहे गये हैं, वे भी स्कन्दपुराणोक्त रुद्रयन्त्रके आवरण देवताओंसे अभिन्न ही हैं। अतः भद्रमार्तण्डमें कथित उन देवताओंका रुद्रयन्त्रमें ही आवाहन होता है, न कि द्वादशलिङ्गतोभद्र-मण्डलमें। अतएव सर्वत्र महारुद्रादि पद्धतियोंमें रुद्रयन्त्रमें आवरण-देवताओंके रूपसे स्कन्दपुराण तथा भद्रमार्तण्डमें उक्त देवताओंका आवाहन कहा गया है, न कि लिङ्गतोभद्र-मण्डलमें। भद्र-मार्तण्ड तथा प्रतिष्ठाप्रकाश आदिमें जो लिङ्गतोभद्रमें उनका आवाहन कहा गया है, वह प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि स्कन्दपुराणमें यन्त्रपूजामें आवरण-देवताके रूपमें उनका विधान है। इसलिये सर्वतोभद्र आदि सभी मण्डलोंमें रुद्रकल्पद्रुम आदिके मतानुसार सत्तावन ही देवताओंका आवाहन करना चाहिये। लिङ्गतोभद्रमें ६५ देवताओंका आवाहन होता है, यह आधुनिक सम्प्रदाय है। इससे अधिक देवताओंकी स्थापना सर्वथा अप्रामाणिक है।

वास्तु-क्षेत्रपालादि वेदियोंके स्थापनका क्रम

आग्नेय्यां मातृकावेदी वास्तुवेदी च नैर्ऋते।
क्षेत्रपालस्य वायव्यामैशान्यां च नवग्रहाः॥
(मत्स्यपुराण)

'अग्निकोणमें मातृकावेदी (योगिनीवेदी) और नैर्ऋत्यकोणमें

वास्तुवेदी, वायव्यकोणमें क्षेत्रपालवेदी और ईशानकोणमें नवग्रहवेदी होती है।'

अन्यत्र भी कहा है—

> आग्नेय्यां योगिनीवेदी वास्तुवेदी च नैर्ऋते।
> वायव्ये क्षेत्रपालानां ईशाने ग्रहवेदिका॥

'अग्निकोणमें योगिनी, नैऋत्यकोणमें वास्तु, वायव्यकोणमें क्षेत्रपाल और ईशानकोणमें नवग्रहवेदीकी स्थापना होती है।'

नवग्रहके स्थापनका क्रम

> पद्ममध्ये रविं रक्तं प्राङ्मुखं वर्तुलं सदा।
> अग्निकोणे सितं चन्द्रं चन्द्रार्धसदृशं शिवम्॥
> दक्षिणे मङ्गलं विद्यात् त्रिकोणं लोहितं शुभम्।
> ऐशान्यां धनुराकारं पीतवर्णं तु सोमजम्॥
> उत्तरे पीतवर्णं च पद्माकारं बृहस्पतिम्।
> चतुरस्रं तु पूर्वस्यां शुक्लवर्णं तु भार्गवम्॥
> पश्चिमे कृष्णवर्णं तु दण्डाकारं शनैश्चरम्।
> नैर्ऋत्यां मकराकारं कृष्णाङ्गं रविमर्दनम्॥
> धूम्रवर्णास्तु वायव्ये केतवः खड्गसन्निभाः॥

(संस्कारगणपति)

'पद्मके मध्यमें पूर्वाभिमुख लाल और गोलाकार रविकी सदा स्थापना करनी चाहिये। अग्निकोणमें सफेद, अद्र्धचन्द्राकार चन्द्रकी स्थापना शुभदायक है। दक्षिणमें त्रिकोणाकार, रक्तवर्ण मङ्गलको शुभ जानना चाहिये। ईशानकोणमें धनुषाकार पीले वर्ण बुधको जानना चाहिये। उत्तरमें पद्माकार (कमलाकृति) पीतवर्ण बृहस्पतिको जानना चाहिये। पूर्व दिशामें चौकोर और शुक्लवर्ण भार्गव (शुक्र)को

जानना चाहिये। पश्चिम दिशामें दण्डाकार और कृष्णवर्ण शनैश्चर-को जानना चाहिये। नैर्ऋत्यकोणमें मगरकी तरह आकृतिवाले कृष्णदेह रविमर्दन (राहु) को जानना चाहिये। वायव्यकोणमें खड्गाकार (खड्गके सदृश) और धूम्रवर्ण केतुकी स्थापना करनी चाहिये।'

अन्यत्र कहा है—

मध्ये स्थाप्यो रवी रक्तः सोमः श्वेतोऽग्निकोणके।
दक्षिणेऽङ्गारको रक्तः पीत ईशानके बुधः॥
बृहस्पतिरुदक् पीतः शुक्रः श्वेतस्तु पूर्वके।
पश्चिमे तु शनिः कृष्णो राहुः कालश्च नैर्ऋते॥
वायव्ये केतवो धूम्रा एतच्च ग्रहवर्णकम्॥
राहुमन्ददिनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम्।
गणेशदुर्गावायूंश्च राहुकेत्वोश्च दक्षिणे॥
आकाशमश्विनौ देवौ स्थापयित्वा क्रमेण तु।
वास्तोष्पतिं क्षेत्रपालं स्थापयेत्तु गुरूत्तरे॥
एताः सदैव संस्थाप्याः कर्मसाद्गुण्यदेवताः।
इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्या वरुणो वायुरेव च॥
कुबेरेशानावित्यष्टौ प्रागादिमदिशाधिपाः।
ब्रह्माणं च ततः स्थाप्य पूर्वेशान्योस्तु मध्यमे॥
प्रतीचीनैर्ऋतीमध्ये अनन्तं स्थापयेदिति।

'मध्यमें रक्तवर्ण रविकी स्थापना करनी चाहिये। अग्निकोणमें श्वेतवर्ण चन्द्रकी स्थापना करनी चाहिये। दक्षिणमें रक्तवर्ण भौमकी, ईशानकोणमें पीतवर्ण बुधकी, उत्तरमें पीतवर्ण बृहस्पतिकी, पूर्वमें शुक्लवर्ण शुक्रकी, पश्चिममें कृष्णवर्ण शनिकी, नैऋत्यकोणमें काले रंगके राहुकी और वायव्यकोणमें धूम्रवर्णके केतुकी स्थापना करनी चाहिये। ये ग्रहोंके वर्ण हैं।

राहु, शनि और सूर्यके उत्तरमें क्रमसे गणेश, दुर्गा और वायुकी स्थापना, राहु और केतुके दक्षिणमें आकाश और अश्विनीकुमारोंकी क्रमसे स्थापना कर वास्तोष्पति और क्षेत्रपालकी गुरुके उत्तरमें स्थापना करनी चाहिये । इन कर्मको सद्गुण बनानेवाले देवताओंकी सदा स्थापना करनी चाहिये । इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान—ये आठ देवता पूर्व आदि आठ दिशाओंके अधिपति हैं । तदुपरान्त पूर्व और ईशानके मध्यमें ब्रह्माकी स्थापना कर पश्चिम और नैर्ऋत्यके मध्यमें अनन्तकी स्थापना करनी चाहिये ।'

यज्ञके कलशोंपर नारिकेलके स्थापनका क्रम

अधोमुखं शत्रुविवर्धनाय ऊर्ध्वस्य वक्त्रं बहुरोगवृद्ध्यै ।
प्राचीमुखं वित्तविनाशनाय तस्माच्छुभं सम्मुखनारिकेलम् ॥

'यदि नारिकेल (नारियल) अधोमुख रखा जाय, तो उससे शत्रुओंकी वृद्धि होती है, यदि ऊपरको मुख करके रखा जाय, तो उससे बहुतसे रोगोंकी वृद्धि होती है तथा यदि पूर्वकी ओर मुख करके रखा जाय, तो उससे धननाश होता है । इसलिये नारियलको सम्मुख रखना शुभ है ।'

ब्रह्माका आसन दक्षिण दिशामें क्यों होता है ?

प्रश्न—

उत्तरे सर्वपात्राणि उत्तरे सर्वदेवताः ।
उत्तरेऽपां प्रणयनं किमर्थं ब्रह्म दक्षिणे ॥

'उत्तर दिशामें समस्त यज्ञपात्र रखे जाते हैं, उत्तर दिशामें समस्त देवता रहते हैं और उत्तर दिशामें जलका प्रणयन

होता है, तो ब्रह्माका आसन दक्षिण दिशामें किसलिये रक्खा जाता है ? ।'

उत्तर—

यमो वैवस्वतो राजा वसते दक्षिणा दिशि।
तस्य संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे॥

'दक्षिण दिशामें यम और वैवस्वत नामक राजा रहते हैं, अतः उनके रक्षार्थ ब्रह्मा दक्षिण दिशामें रहते हैं।'

और भी कहा है—

दक्षिणे दानवाः प्रोक्ताः पिशाचोरगराक्षसाः।
तेभ्यः संरक्षणार्थाय ब्रह्मा स्थाप्यस्तु दक्षिणे॥
(कारिका)

'दक्षिण दिशामें समस्त दानव, पिशाच, नाग और राक्षसादि रहते हैं, अतः उनसे सुरक्षित रखनेके लिये ही ब्रह्माको दक्षिण दिशामें स्थापित करना चाहिये।'

ब्रह्मा, आचार्य और प्रणीताके लिये तीन कुशाका आसन उचित है

ब्रह्माऽऽचार्यप्रणीतानामासनं च त्रिभिः कुशैः।
न द्वाभ्यां नैकदर्भेण ऋषयो बहवो विदुः॥

'अनेक ऋषियोंका मत है कि ब्रह्मा, आचार्य और प्रणीतापात्रके लिये तीन कुशाओंका आसन देना चाहिये। एक अथवा दो कुशाका आसन नहीं देना चाहिये।'

वेदोक्त मन्त्रोंसे ही देवपूजन आवश्यक है

'वेदोक्तेनैव मन्त्रेण सम्पूज्या देवताः क्रमात्।
(विश्वकर्मा)

'वेदोक्त मन्त्रसे ही देवताओंका क्रमसे पूजन करना चाहिये।'

नाम-मन्त्रसे भी देवस्थापना और पूजा हो सकती है

नाममन्त्रेण वा स्थाप्याः पूज्याश्चैव यथाक्रमम् ।
भूर्भुवःस्वेति मन्त्रेण प्रणवाद्येन सर्वदा ॥

'अथवा नाममन्त्रसे, जिसके आदिमें 'भूर्भुवः स्वः' यह मन्त्र और प्रणव (ॐकार) लगा हो, यथाक्रम देवताओंकी स्थापना और पूजा करनी चाहिये ।'

देवपूजनमें वेदमन्त्र और नाममन्त्र दोनों ही ग्राह्य हैं

'मन्त्रा वैदिका नाममन्त्रा वा ग्राह्याः' इति नारसिंहे ।

'देवपूजनमें वेदमन्त्र और नाम-मन्त्र दोनों ही ग्राह्य हैं, ऐसा नरसिंहपुराणमें लिखा है ।'

नाम-मन्त्रसे भी हवन हो सकता है

नाम-मन्त्रसे भी हवन हो सकता है, यह मत्स्यपुराण, प्रतिष्ठा-सरणि और दिनकरमें लिखा है ।

यज्ञादिमें सुवर्णकी मूर्तिकी आवश्यकता

स्थापनं यस्य देवस्य क्रियते पद्मलोचन ।
कृत्वा तस्य तनुं हैमीं मण्डले सम्प्रपूजयेत् ॥

(ब्रह्मयामल)

'हे कमलनयन ! जिस देवताकी स्थापना करनी हो, उसकी सुवर्णकी मूर्ति बनाकर सर्वतोभद्रादिकी प्रधान पीठपर स्थापित कर उसकी पूजा करनी चाहिये ।'

सुवर्णकी मूर्तिके अभावमें पूजाका विचार

'फलेष्वक्षतपुञ्जेषु प्रतिमासु तथार्चनम् ।'

(भविष्यपुराण)

'सुपारी आदि फलोंमें अथवा चावलोंके पुञ्जमें ही प्रतिमाकी कल्पना कर उसकी पूजा करनी चाहिये।'

यज्ञादिमें सुवर्णकी रुद्र, दुर्गा और वृषभ (नन्दी) की प्रतिमाका विचार

पञ्चास्यां प्रतिमां रौद्रीं निष्कमात्रसुवर्णतः।
तदर्धार्धेन वा कुर्यात् वित्तशाठ्यविवर्जितः॥
*महारुद्रस्य मानार्धं राजतं कारयेद् वृषम्।
रुद्रस्यार्धेन दुर्गां च सौवर्णं कारयेद् वुधः॥
(अगस्त्यसंहिता)

'चार भरी (चालीस मासा) सुवर्णकी भगवान् शङ्करकी पाँच मुखवाली प्रतिमा बनानी चाहिये या अपनी शक्तिके अनुसार कृपणताका परित्याग कर दो भरीकी अथवा एक भरीकी बनानी चाहिये। महारुद्रकी प्रतिमा जितनी परिमाणकी हो, उससे आधे परिमाणका चाँदीका वृषभ (नन्दी) बनवाना उचित है। विद्वान्को शिवकी प्रतिमाके परिमाणसे आधे परिमाणकी दुर्गाकी प्रतिमा बनवानी चाहिये।'

स्वर्णैकादशभिर्वल्लैर्माषैर्निष्कैश्च कर्षकैः।
पलैश्चैकादिरुद्रेषु पञ्चसु प्रतिमा स्मृता॥
बल्लो माषश्च निष्कश्च कर्षश्च पलसंज्ञकः।
बल्लाद्धि पलपर्यन्ताः पूर्वपूर्वाश्चतुर्गुणाः॥

---

*'सशक्तिकं महारुद्रं द्विगुणं राजतं वृषात्' के अनुसार चांदीकी शक्ति (दुर्गा) के सहित महारुद्रकी प्रतिमाको वृषभसे द्विगुणित बनाना चाहिये।

सशक्तिकं महारुद्रं द्विगुणं राजतं वृषात् ।
महारुद्रस्य मानार्द्धाद्राजतं कारयेद् वृषम् ॥
रुद्रस्यार्द्धेन दुर्गां च............................. ।

(तन्त्रसार)

'सुवर्णके ११ *वल्लोंसे (तैंतीस रत्तियोंसे), ११ मासोंसे, ११ निष्कोंसे, ११ कर्षोंसे और ११ पलोंसे क्रमशः रुद्र आदि पाँच प्रकारके रुद्रयज्ञोंमें प्रतिमाका निर्माण करना कहा है ।

वल्ल, माष (मासा), निष्क, कर्ष और पल नामके ये वल्लसे लेकर पल-पर्यन्त पूर्व-पूर्व उत्तरोत्तर क्रमसे चतुर्गुण फलप्रद होते हैं ।

रजतके वृषभसे शक्ति (दुर्गा) और महारुद्रकी प्रतिमा दूनी बनानी चाहिये । महारुद्रके प्रमाणसे आधे प्रमाणका रजतका वृषभ बनाना चाहिये । रुद्रकी प्रतिमासे आधे प्रमाणकी प्रतिमा दुर्गाकी बनानी चाहिये ।'

सहस्रचण्डीमें दुर्गाकी प्रतिमाका विचार

पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या वाऽर्धमानतः ।
अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता ॥

(रुद्रयामल)

'पाँच निष्क (बीस भरी) की अथवा अढाई निष्क (दस भरी) की सुवर्णकी अठारह भुजावाली समस्त आयुधों (शस्त्रास्त्रों) से विभूषित दुर्गादेवीकी मूर्ति बनानी चाहिये ।'

आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः ।
अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्त्यवधिका स्मृता ॥

(भविष्यपुराण)

---

*'वल्लस्त्रिगुञ्जप्रमाणकः' वल्ल=३ रत्ती ।

'यज्ञादि करनेवाले पुरुषोंको कृपणताका परित्याग कर पाँच रत्तीसे लेकर एक पल (चार भरी) तककी सुवर्णकी प्रतिमा बनानी चाहिये। अंगूठेके पहले परूवे (पौर) से लेकर बित्ते भर लंबाई उसका परिमाण कहा गया है।'

देव-प्रतिमाके भेद

शैली दारुमयी †लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता॥
(भागवत ११।२७।१२)

'पत्थरकी, लकड़ीकी, धातुकी, चन्दनादिलेपकी, चित्रित (चित्रमयी) मिट्टी या बालुकामयी, मनोमयी और मणिमयी—इस प्रकार भगवान्की आठ प्रकारकी प्रतिमाएँ कही गई हैं।'

रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा।
रैतिकी× वा तथा लौहो शैलजा द्रुमजा तथा॥
अधमाधमा च विज्ञेया मृन्मयी प्रतिमा च या।
(स्कन्दपुराण)

'रत्नकी, सुवर्णकी, चाँदीकी, ताम्रकी, पीतलकी, लोहेकी, पत्थरकी, काष्ठकी और मृत्तिकाकी—इस प्रकार नव प्रकारकी प्रतिमाएँ कही गई हैं। इन प्रतिमाओंमें मृत्तिकाकी प्रतिमा अधमसे भी अधम कही गई है।'

मृन्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा।
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी सप्तधा स्मृता॥
(हयशीर्षपञ्चरात्र)

---

† सुवर्णं रजतं ताम्रं रीतिः कांस्य तथा त्रपु।
सीसं कालायसं चैवमष्टौ लोहाः प्रकीर्तिताः॥

× रैतिकी—पित्तलजा।

'मिट्टीकी, काष्ठकी, लोहेकी, रत्नकी, पत्थरकी, गन्धककी, और पुष्पकी—ये सात प्रकारकी प्रतिमाएँ कही कई हैं।'

शैलजा लोहजा वापि रत्नजा वाथ दारुजा।
मृन्मयी चेति पञ्चैताः प्रतिमाः परिकीर्तिताः॥

(महाकपिलपञ्चरात्र)

'पाषाणकी, लोहेकी, रत्नकी, लकड़ीकी और मिट्टीकी—ये पाँच प्रकारकी प्रतिमाएँ कही गई हैं।'

सुवर्णकी पवित्रीका परिमाण

माषाणां षोडशादूर्ध्वं कुर्याद्धेमपवित्रकम्।
तेभ्यः स्वल्पतरं न्यूनं न कुर्वीत कदाचन॥

'सोलह मासेसे अधिक परिमाणकी सुवर्णकी पवित्री बनानी चाहिये। सोलह मासेसे थोड़ी भी न्यून कभी नहीं बनानी चाहिये।'

यज्ञादिमें प्रमाणहीन देवप्रतिमा एवं कुण्ड-मण्डपादिके निर्माण करानेका निषध

प्रतिमां *पिण्डिकां वापि कुण्डं मण्डपमेव च।
तोरणं च ध्वजं चैव गुणाढ्यं पात्रमेव च॥
मानहीनं न कर्त्तव्यं फलप्राप्त्यर्थिभिः सदा।

'यज्ञके यथार्थ फलकी प्राप्तिके इच्छुकको देवप्रतिमा, देव-स्थापनशिला, यज्ञकुण्ड, यज्ञमण्डप, तोरण, ध्वजा और यज्ञके योग्य यज्ञपात्र (कलश आदि)—इन सब वस्तुओंको प्रमाणहीन नहीं बनवाना चाहिये।'

---

* पिण्डिका—देवस्थापनशिला।

नवग्रहकी प्रतिमा

ताम्रेण कारयेद् भानुं रजतेन निशाकरम्।
कुज-ज्ञ-जीवरूपाणि सुवर्णेन तु कारयेत्॥
रजतेन ततः शुक्रं कृष्णलोहेन सूर्यजम्।
सीसेन कारयेद्राहुं केतुं कांस्येन कारयेत् * ॥
(ब्रह्मयामल)

'सूर्यकी प्रतिमा तांबेकी और चन्द्रमाकी प्रतिमा चान्दीकी बनावे। मङ्गल, बुध और बृहस्पतिकी प्रतिमा सुवर्णकी बनावे। शुक्रकी प्रतिमा चान्दीकी और शनिकी प्रतिमा काले लोहेकी बनावे। राहुकी प्रतिमा सीसेकी और केतुकी प्रतिमा काँसेकी बनावे।'

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजोवसितार्कजाः।
राहुकेतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकसुखावहाः† ॥
एषां ‡हिरण्यरूपाणि कारयित्वा यथाविधि।
††त्रि-निष्केणाथवा कुर्याद् यथाशक्त्या पृथक् पृथक्॥
(दानमयूख)

---

*ताम्रकात् स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ।
रजतादयसः सीसात् कांस्यात्कार्या ग्रहाः क्रमात्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचा० २९७)

†सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः॥
(मत्स्यपुराण)

‡हिरण्यरूपाणि हिरण्यप्रतिमेत्यर्थः।

†† एक निष्कका ४० मासा सुवर्ण होता है। अतः तीन निष्कका १२० मासा सुवर्ण होता है।

'सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नवग्रह संसारके लिये सुखप्रद कहे गये हैं। इन ग्रहोंकी सुवर्णकी प्रतिमा यथाविधि तीन निष्ककी अथवा यथाशक्ति अलग-अलग बनाना चाहिये।'

यज्ञादिमें नवग्रहोंके आकारका प्रमाण

मण्डलव्यासः कथितः सूर्यस्य द्वादशाङ्गुलः।
चतुरङ्गुलः सोमस्य त्र्यङ्गुलो लोहितस्य च॥
चतुरङ्गुलः सौम्यस्य गुरोश्चैव षडङ्गुलः।
नवाङ्गुलस्तु शुक्रस्य अर्कपुत्रस्य द्व्यङ्गुलः॥
द्वादशाङ्गुलो राहोश्च केतोश्चैव षडङ्गुलः।
(ग्रहरत्नावली)

'सूर्यके मण्डलका व्यास (विस्तार) बारह अंगुलका, चन्द्रमाके मण्डलका विस्तार चार अंगुलका, मङ्गलके मण्डलका विस्तार तीन अंगुलका, बुधके मण्डलका विस्तार चार अंगुलका, गुरुके मण्डलका विस्तार छः अंगुलका, शुक्रके मण्डलका विस्तार नौ अंगुलका, अर्कपुत्र (शनैश्चर) के मण्डलका विस्तार दो अंगुलका, राहुके मण्डलका विस्तार बारह अंगुलका और केतुके मण्डलका विस्तार छह अंगुलका कहा गया है।'

मन्दिरके लिये नवग्रहकी मूर्तियोंकी लंबाईका विचार

सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः।
स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा॥
(मत्स्यपुराण)

'संसारका हित करनेवाले समस्त ग्रहोंकी मूर्तियोंको मुकुटयुक्त बनाना चाहिये और इनकी लम्बाई (ऊँचाई) अपने हाथों

अंगुलसे एक सौ आठ अंगुल यानी साढ़े चार हाथकी ऊँची मूर्ति बनानी चाहिये ।'

प्रतिमाके सर्वोत्तम, अधम और उत्तमका निर्देश

अधमोत्तमा च विज्ञेया मृन्मयी प्रतिमा च या ।
सर्वकामप्रदा चैव रत्नजा चोत्तमोत्तमा ॥
(स्कन्दपुराण)

'मिट्टीकी प्रतिमाको अधम और उत्तम कहा गया है । रत्नमयी प्रतिमाको सर्वोत्तम कहा गया है, जो कि समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती है ।'

मिट्टी आदिकी प्रतिमाओंका उत्तरोत्तर महत्त्व

मृन्मयाद् दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकाभवे ।
इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमादेरधिकं फलम् ॥
(अग्निपुराण ३८।३२–३३)

'मिट्टीकी मूर्तिसे लकड़ीकी मूर्तिका, लकड़ीकी मूर्तिसे ईंट, सिमेंटकी मूर्तिका, ईंट-सिमेंटकी मूर्तिसे पाषाणकी मूर्तिका और पाषाणकी मूर्तिसे अधिक सुवर्ण आदि धातुओंकी मूर्तियोंका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व कहा गया है ।'

विभिन्न प्रतिमाके विभिन्न फल

कौसुमी गन्धजा चैव मृन्मयी प्रतिमा हिता ।
तत्कालपूजिताश्चैताः सर्वकामफलप्रदाः ॥
(हयशीर्षपञ्चरात्र)

'पुष्पमयी, गन्धमयी और मृन्मयी प्रतिमा कल्याणकारिणी

होती हैं। ये पूजित होने पर तत्काल समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती हैं।'

सर्वेषामेव देवानां महानीला यशःप्रदा।
दारुजा कामदा प्रोक्ता सौवर्णी भुक्ति-मुक्तिदा॥
राजती स्वर्गफलदा ताम्री ह्यायुर्विवर्द्धिनी।
कांस्या बह्वापदं हन्ति रैतिकी शत्रुनाशिनी॥
सर्वभोगप्रदा शैली स्फाटिकी दीप्तिकारिका।
महाभोगप्रदा ख्याता मृन्मयी खलु शोभना॥

(महाकपिल पञ्चरात्र)

'समस्त देवताओंकी महानीला प्रतिमा यशको देनेवाली, काष्ठकी प्रतिमा कामप्रदायिनी, सुवर्णकी प्रतिमा भुक्ति और मुक्तिको देनेवाली, चाँदीकी प्रतिमा स्वर्गका फल देनेवाली, ताम्रकी प्रतिमा आयुको बढ़ानेवाली, काँसेकी प्रतिमा अनेक प्रकारकी आपत्तियोंको नष्ट करनेवाली, पीतलकी प्रतिमा शत्रुओंका नाश करनेवाली, पाषाणकी प्रतिमा समस्त प्रकारके भोगोंको देनेवाली, स्फटिककी प्रतिमा तेजको बढ़ानेवाली और मिट्टीकी प्रतिमा बड़े-बड़े सुख-भोगको देनेवाली और कल्याणकारिणी होती है।'

मृन्मयादिकी मूर्तियोंके आवाहन और विसर्जनका विचार

कुर्यादावाहनं मूर्तौ मृन्मय्यां सर्वदैव हि।
प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहनविसर्जने॥

(वाचस्पत्ये)

'मृन्मयी (मिट्टीकी बनी) मूर्तिमें सर्वदा ही आवाहन करना चाहिये। प्रतिमामें, जलमें और वह्नि (अग्नि) में आवाहन और विसर्जन नहीं होता है।'

प्रतिमाके नित्य स्नान करानेका विचार

प्रतिमा[1] पट्टयन्त्राणां[2] नित्यं स्नानं न कारयेत् ।
कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥
(प्रयोगपारिजात)

'पट्टमें अथवा यन्त्रमें लिखी हुई प्रतिमाको प्रतिदिन स्नान नहीं कराना चाहिये, किन्तु पर्वके दिन अथवा जब मूर्ति मलिन हो जाय, तब उसे स्नान कराना चाहिये ।'

यन्त्रपूजनकी आवश्यकता

सोऽभयस्यास्य देवस्य विग्रहो यन्त्रकल्पना ।
विना यन्त्रेण चेत्पूजा देवता न प्रसीदति ॥
यन्त्रं मन्त्रमयं प्राहुर्देवता मन्त्ररूपिणी ।
यन्त्रेणापूजितो देवः सहसा न प्रसीदति ॥
सर्वेषामपि मन्त्राणां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते ।
(रामपूर्वतापनीये)

'जो यन्त्रकी कल्पना (निर्माण) है वह इस निर्भय देदीप्यमान भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका श्रीविग्रह है । यन्त्रके बिना पूजा की जाय तो देवता प्रसन्न नहीं होते । विद्वान् पुरुष यन्त्रको मन्त्रमय और देवताको मन्त्ररूपी बताते हैं । यन्त्रके द्वारा न पूजे गये देवता शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं । सभी मन्त्रोंकी पूजाकी अपेक्षा यन्त्रपूजा अधिक प्रशस्त कही गई है ।'

१—यह नियम छः अंगुलसे बड़ी प्रतिमाके लिये है । जो प्रतिमा छः अंगुलसे छोटी हो, उसको प्रतिदिन स्नान कराना चाहिये और जो प्रतिमा छः अंगुलसे बड़ी हो, उसको प्रतिदिन स्नान करानेकी आवश्यकता नहीं है ।

२—प्रतिमाको पहनाये हुए वस्त्रोंका तथा देवीयन्त्र एवं मङ्गलयन्त्र आदिका नित्य स्नान कराना अनावश्यक है ।

यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा देवतेति च।
यन्त्रं विना कृता पूजा देवता न प्रसीदति॥
(लिङ्गपुराण)

'यन्त्र मन्त्रमय कहा गया है और देवता भी मन्त्रात्मा कहा गया है। अतः यन्त्रके बिना यदि पूजा की गई तो देवता प्रसन्न नहीं होते हैं।'

एक-पीठमें यन्त्रके बिना विभिन्न देवताओंकी पूजाका निषेध

एकपीठे पृथक् पूजां विना यन्त्रं करोति यः।
देवताशापमाप्नोति रौरवं नरकं व्रजेत्॥
(शक्तिसङ्गमतन्त्र)

'जो पुरुष एक पीठमें यन्त्रके बिना भिन्न-भिन्न देवताओंकी पूजा करता है, उसे देवता शाप देते हैं और वह रौरव नरकमें जाता है।'

एक-पीठमें यन्त्रके बिना देवताओंके पृथक् पूजाका निषेध

एकपीठे पृथक् पूजां विना यन्त्रं करोति यः।
तन्त्रेण पूजयेद्यन्त्रं स दैवं शापमाप्नुयात्॥
(पुरश्चर्यार्णव ६ तरङ्ग)

'जो व्यक्ति एक पीठमें बिना यन्त्रके देवताओंकी अलग-अलग पूजा करता है वह देवताके शापको प्राप्त होता है। अतः समस्त देवताओंका पूजन तन्त्रतासे अर्थात् एक साथ करना चाहिये।'

एक देवताका आवाहन कर दूसरे देवताके पूजनका निषेध

आवाह्य देवतामेकामर्चयेच्चान्यदेवताम्।
अन्ययन्त्रेण पूजां वा देवता शापकारिणी॥
(पुरश्चर्यार्णव ६ तरङ्ग)

'जो व्यक्ति किसी एक देवताका आवाहन करके अन्य देवताका पूजन अथवा अन्य यन्त्रसे पूजन करता है, तो वह देवता शाप देता है।'

एक-पीठमें बहुत मूर्तियोंका पूजन तन्त्रतासे करना चाहिये

पूजनं बहुमूर्तीनामेकपीठे भवेद्यदि।
पृथक् चन्दन-पुष्पाणि धूपदीपादि तन्त्रतः॥
(पुरश्चर्यार्णव ६ तरङ्ग)

'यदि एक पीठमें बहुत मूर्तियोंका पूजन करना हो तो सभी देवताओंको पृथक्-पृथक् चन्दन और पुष्प चढ़ावे और धूप, दीप आदिको तन्त्रतासे अर्थात् एक साथ निवेदन करे।'

स्थापित यन्त्रके नष्ट होने पर कर्तव्य

यदि प्रतिष्ठितं यन्त्रं दैवाद्देवि विनश्यति।
उपोषणमहोरात्रमादरेण समाचरेत्॥
येन स्वर्णादिना यन्त्रं द्रव्येण परिनिर्मितम्।
विलिख्य यन्त्रं तत्पात्रे देवतां परिपूजयेत्॥
उपचारैः षोडशभिः शक्तितः सुसमाहितः।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पूजयित्वा यथाविधि॥
मन्त्री विलोड्य तत्तोयं पीत्वा भक्षणमाचरेत्।
तावत्कालं ब्रह्मचर्यं यावद्यन्त्रं समाहरेत्॥
पुनर्यन्त्रं नवं चान्यदाहरेत् श्रद्धयान्वितः।
आहृत्य तु पुनर्यन्त्रं प्रतिष्ठां च समाचरेत्॥
(नवरत्नेश्वरः)

'हे देवि ! यदि प्रतिष्ठित (स्थापित) यन्त्रका दैवात् विनाश हो जाय, तो अहोरात्र (एक दिन और रात) आदरपूर्वक उपवास

करना चाहिये। जिस सुवर्ण आदि द्रव्यसे यन्त्र बनाया गया हो, उसी द्रव्यसे निर्मित यन्त्रको बनाकर फिर उसे पात्रमें रखकर यन्त्रदेवताकी षोडशोपचारसे यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये। विधिपूर्वक पूजा कर एकाग्र मनसे मन्त्रका दश हजार जप करना उचित है। मन्त्रका जप करनेवाला पुरुष अभिमन्त्रित किये यन्त्रके जलको पीकर भोजन करे और वह तबतक ब्रह्मचारी रहे, जबतक दूसरे यन्त्रको न लावे। अतः दूसरे नूतन यन्त्रको श्रद्धापूर्वक लाकर पुनः उसकी प्रतिष्ठा करे।'

विविध प्रकारके यन्त्रोंका विविध फल

सुवर्णरचितं यन्त्रं सर्वराजवशंकरम्।
रजतेन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकामदम्॥
ताम्रेण रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम्।
क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम्॥
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं महत्।

'सुवर्णसे बनाया गया यन्त्र सब राजाओंको वशमें करता है। चाँदीसे बनाया गया यन्त्र आयुष्य, आरोग्य और अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। तांबेमें बनाया गया यन्त्र सकल ऐश्वर्य प्रदायक माना गया है। मरकत मणिमें बनाया गया यन्त्र सब शत्रुओंका विनाश करता है। त्रिलोहोत्पन्न चाँदी, सोना और तांबा इन तीन धातुओंसे बनाया गया यन्त्र सब महासिद्धियोंका प्रदायक है।'

यज्ञादिमें वरण-सामग्री

यज्ञानुष्ठानादिमें आचार्यादि समस्त ऋत्विजोंको वरणमें कौन-कौन सामग्री देना चाहिये, इस विषयमें लिखा है कि—

भाजनं भाजनाधारश्छत्रोपानत् कमण्डलु।
आसनं वसनं मुद्रा कर्णभूषोपवीतकम्॥

एतद्दशविधं देयं पदं वरणसिद्धये।
पदाभावे त्रयं देयं पात्रवस्त्राङ्गुलीयकम्॥
तदभावेऽथ ताम्बूलं दत्त्वा किञ्चित्प्रकल्पयेत्।
वरणाङ्गोपहाराणां पात्राङ्गुलीयवाससाम्॥
सर्वेषां निष्क्रयद्रव्यं यथोपपन्नमृत्विजे।
(परशुरामकारिका)

'लोटा, गिलास आदि, चौकी आदि, छाता, जूता (स्वदेशी जूता अथवा खड़ाऊँ), कमण्डलु, कुशासन अथवा ऊर्णासन, वस्त्र (धोती, दुपट्टा, अंगोछा आदि), द्रव्य, कानोंका आभूषण और यज्ञोपवीत—यह दश प्रकारका (वरणसामान) ब्राह्मणोंको देना चाहिये। पदके अभावमें पात्र, वस्त्र और सुवर्णकी अंगूठी—ये तीन प्रकारकी वस्तु देनी चाहिये और इनके अभावमें ताम्बूल (पान) देकर ही वरणका सङ्कल्प करना चाहिये। यदि समस्त वरण-सामग्री प्रस्तुत न हो, तो उपस्थित ऋत्विजोंको वरणका मूल्य देना चाहिये।'

वस्त्रयुग्मं* महावस्त्रं केयूरं कर्णभूषणम्।
अङ्गुलीयं ततश्चैव मणिबन्धस्य भूषणम्॥
कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः।
पुरोहिताय दत्त्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्चापि दापयेत्॥
(लिङ्गपुराण)

'दो वस्त्र (धोती और दुपट्टा) दुशाला अथवा रेशमी आदि उत्तम वस्त्र, केयूर, कानका आभूषण, अँगूठी, हाथका कड़ा वगैरह गलेका हार या सिकड़ी, धर्म-कर्मके प्रारम्भमें पुरोहितको देकर ऋत्विजको भी देवे।'

---

*'दुशाला' पदाभिधेयं काश्मीरं वा, किञ्चिदौर्णं विशिष्टं वास इति तात्पर्यम्।

यज्ञादिमें पात्र, वस्त्र आदिके बिना हानि

बिना पात्रेण यः कुर्यात्प्रतिष्ठां याज्ञिकीं क्रियाम् ।
विफला जायते सर्वा वाहनादिधनापहा ॥
बलिहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने त्वभाग्यता ।
धूपहीने तथोद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयम् ॥
छत्रहीने हरेच्छत्रं वितानेन बको भवेत् ।
वेदिहीने प्रजानाशः नगरस्य पुरस्य च ॥
कलशं बन्धुनाशश्च भवेद्वै गिरिकन्यके ।
तोरणानामभावे तु हन्याज्ज्ञातीन् सबान्धवान् ॥
दक्षिणारहिते सर्वं व्यर्थं स्यान्न च संशयः ।
मन्त्र–विद्याविहीने तु सम्पूर्णमपि नश्यति ॥
पात्रमन्त्रसमायुक्तं सर्वदोषापहं भवेत् ।

'जो यजमान पूजोपयोगी पात्रोंके बिना तड़ाग, देव-मन्दिर आदि-की प्रतिष्ठा अथवा यज्ञादि क्रिया करता है, उसकी वह सारी क्रिया निष्फल जाती है और वह केवल स्वयं निष्फल ही नहीं होती, वरन् वाहन (घोड़े, हाथी आदि) आदि धनका भी विनाश करती है। यज्ञादि क्रियामें यदि शास्त्रोक्त बलि न दी जाय तो दुर्भिक्ष होता है, चन्दनका अभाव हो तो दौर्भाग्य होता है, धूपका अभाव हो तो उद्वेग होता है, वस्त्रका अभाव हो तो धनका नाश होता है, छत्रका अभाव हो तो छत्रका विनाश होता है, चँदवाका अभाव हो तो यजमान बगुला होता है और वेदीका अभाव हो तो नगरकी प्रजाका नाश होता है। हे पार्वती, कलशको न होनेसे बन्धुका नाश होता है, तोरणके अभावमें अपने जातिवाले बान्धवोंका नाश होता है और दक्षिणासे रहित होनेपर सब व्यर्थ हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। मन्त्र एवं विद्यासे हीन होनेपर सब

नष्ट हो जाता है, पात्र और मन्त्रसे युक्त होनेपर किया गया समस्त कर्म दोषोंको दूर करनेवाला होता है।'

वस्त्रके बिना यज्ञादि कर्म पूर्ण नहीं हो सकते

'वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च।'

(ब्रह्मपुराण २२०।१३९)

'वस्त्रके बिना यज्ञ, वेदाध्ययन और तप आदि कर्म पूर्ण नहीं होते।'

यज्ञादिमें नूतन वस्तुका ही उपयोग श्रेष्ठ है

यज्ञादि अनुष्ठानोंमें उपयुक्त होनेवाली समस्त सामग्री नूतन होनी चाहिये। यज्ञादिमें पुरानी वस्तुओंका व्यवहार सर्वथा त्याज्य कहा गया है।

यज्ञे देवप्रतिष्ठादौ नूतनान्येव शक्तितः।
वासो भाण्डादिद्रव्याणि सर्वाणि विनियोजयेत्॥

'यज्ञमें तथा देव-प्रतिष्ठादि शुभ कार्योंमें अपनी शक्तिके अनुसार वस्त्र, बर्त्तन आदि सभी वस्तुओंका नवीन ही उपयोग करना चाहिये।'

विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेऽहनि।
नवभाण्डानि कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः॥

(यमः)

'विवाहमें, प्रेतकार्यमें तथा माता-पिताके मरण-कार्यमें और विशेषकर यज्ञके समय नवीन भाण्डों (बर्त्तनों) का ही व्यवहार करना चाहिये।'

यज्ञादिमें वाद्य आवश्यक है

समस्त शुभ कर्मोंमें मङ्गलसूचक वाद्यका उपयोग आवश्यक है। प्रायः देखा जाता है कि विवाहादि संस्कारोंमें हिन्दू-जाति ही

नहीं, किन्तु यवनादि भी वाद्य (बाजे) को माङ्गलिक जानकर इसका सदुपयोग करते हैं। ऐसी स्थितिमें यज्ञादि कार्य तो बहुत बड़े माङ्गलिक कार्य हैं, अतः इनमें वाद्यका उपयोग अवश्य करना चाहिये।

समस्त यज्ञपद्धतियोंमें लिखा है कि यजमान अपनी पत्नी, पुत्र-पौत्रादि तथा आचार्य एवं ऋत्विजोंके सहित माङ्गलिक वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण तथा दुन्दुभि (भेरी) आदि अनेक बाजोंके साथ यज्ञमण्डपके पश्चिम द्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे—

यजमानः सपत्नीकः पुत्र-पौत्रसमन्वितः।
पश्चिमद्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम्॥
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड २७।२१)

'ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।'

(मत्स्यपुराण ५८।२१)

'नृत्यमङ्गलवाद्येन' (मत्स्यपुराण २९२।३४)

अतः स्पष्ट है कि यज्ञादि धार्मिक कार्योंमें माङ्गलिक वाद्यका उपयोग आवश्यक है।

यज्ञादिमें तांबूल आदिके भक्षणमें दोष नहीं है

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ५२।३०)

'मधुपर्क और सोमयागमें ताम्बूल-भक्षण, कन्द, मूल, फल-भक्षण, तथा इक्षु (ईख) का चूसना दोषप्रद नहीं है, ऐसा मनु भगवान्ने कहा है।'

अन्यत्र भी कहा है—

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फले मूलेक्षुदण्डे च न दोषं प्राह वै मनुः॥
(कूर्मपुराण, उत्तरार्ध १३।२६)

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूलेक्षुदण्डे च न दोष उशनाब्रवीत्॥
(उशनःसंहिता २।२०–२१)

ताम्बूलेक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने।
मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः॥
(पाराशरस्मृति ७।३५)

यज्ञमण्डपमें यजमान और हवनीय पदार्थादिके प्रवेशार्थ द्वार-विशेषका विचार

यजमानः सपत्नीकः पुत्र–पौत्रसमन्वितः।
पश्चिमद्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम्॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड २७।२०)

'यजमान अपनी पत्नी, पुत्र, पौत्रादि एवं परिवारके सहित यज्ञ-मण्डपके पश्चिम द्वारसे यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे।'

जानुभ्यां धरिणीं नत्वा मण्डपं प्रविशेत्ततः।
द्वारेण पश्चिमेनैव प्रविशेन्नेतरेण तु॥
होमद्रव्यं तु पूर्वेण दानार्थं ❀दक्षिणेन तु।
प्रतिष्ठार्थांश्च सम्भारानुत्तरेण प्रवेशयेत्॥
(प्रतिष्ठेन्दु)

'घुटनोंके बल पृथिवीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। यज्ञमण्डपमें पश्चिम द्वारसे ही प्रवेश करना

❀ 'दक्षिणद्वारेण यजमानपत्नी मण्डपं प्रविशेत्' इति महामहोपाध्याय पण्डितश्रीप्रभुदत्तशास्त्रिसम्पादितरुद्रयागपद्धतौ।

उचित है, अन्य द्वारोंसे नहीं। हवनीय पदार्थको यज्ञशालामें पूर्व द्वारसे ले जाना उचित है, दान देनेकी धनादि सामग्रीको दक्षिण दरवाजेसे और प्रतिष्ठाकी सामग्रियोंको उत्तर दरवाजेसे ले जाना उचित है।'

यज्ञादिमें यजमानके द्वारा ऋत्विजोंको कर्तव्य निर्देश

गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः।
पठध्वमिति तान् ब्रूयात् आचार्यमभिपूजयेत्॥
बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणे तु यजुर्विदौ।
सामगौ पश्चिमे तद्वत् उत्तरेण त्वथर्वणौ॥
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्।
यजध्वमिति तान् ब्रूयात् हौत्रिकान् पुर एव तु॥
उत्कृष्टान् मन्त्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान्।
(मत्स्यपुराण ५८।२७–३०)

'यजमान गन्ध और पुष्पादिसे चारों दिशाओंमें द्वारपालोंको अलंकृत कर 'पढ़िये' ऐसा संकेत कर आचार्यका पूजन करे। पूर्वमें बह्वृच ऋग्वेदियोंको, दक्षिणमें यजुर्वेदियोंको, पश्चिममें सामवेदियोंको और उत्तरमें अथर्ववेदियोंको बैठाकर उत्तरमुख होकर दक्षिणकी ओर बैठे। अनन्तर वह होताओंसे कहे कि 'यजन करो', मन्त्र जपनेवालोंसे कहे कि 'मन्त्रका जप निरन्तर करते रहो'।'

पद्मपुराणमें भी लिखा है—

पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान्समन्ततः॥
यजध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यमभिपूजयेत्।
बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ॥
सामगौ पश्चिमे स्थाप्यावुत्तरेणाप्यथर्वणौ।
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्॥

यजध्वमिति तान् ब्रूयाद्याजकान् पुनरेव तान्।
उत्कृष्टमन्त्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान्॥
(सृष्टिखण्ड २७।२७–३०)

यज्ञादिमें मधुपर्कद्वारा ऋत्विजोंका पूजन आवश्यक है

यज्ञादि अनुष्ठानको साङ्गोपाङ्ग सविधि समाप्त करनेका श्रेय आचार्य आदि ऋत्विजोंको होता है। ऋत्विज ही यज्ञके आधार हैं, अतः यज्ञकर्ममें मधुपर्कके द्वारा ऋत्विजोंका पूजन आवश्यक है।

कुछ लोग स्मार्त-कर्ममें मधुपर्ककी आवश्यकता नहीं समझते, यह अनुचित है। पारस्करगृह्यसूत्रमें मधुपर्क करनेके लिये स्पष्ट लिखा है।

सम्पूज्य *मधुपर्केण ऋत्विजः कर्म कारयेत्।
अपूज्य कारयन्कर्म किल्विषेणैव युज्यते॥
(विश्वामित्रः)

'ऋत्विजोंका मधुपर्कसे पूजन करके ही यज्ञादि कर्म करना चाहिये। जो लोग ऋत्विजोंके पूजन किये बिना यज्ञादि कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वे पापके भागी होते हैं।'

मधुपर्कके निर्माणकी विधि

सर्पिरेकगुणं प्रोक्तं शोधितं द्विगुणं मधु।
मधुपर्कविधौ प्रोक्तं सर्पिषा च समं दधि॥
(आपस्तम्बः, पाराशरश्च)

---

* दधि-मधु-घृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन, एकस्मिन् कांस्यभाजने कृतं दधि, मधु, घृतम्, अपरेण कांस्यभाजनेनाऽऽच्छादितं मधुपर्कशब्देनोच्यते।
(पार० गृ० सू०, 'विवृति' टीका १।३।५)

अन्यत्र—

संशोधितं दधि मधु कांस्यपात्रे स्थितं घृतम्।
कांस्येनान्येन सञ्छन्नं मधुपर्क इतीर्यते॥

'मधुपर्क विधिमें घीका एक भाग, शुद्ध किया हुआ शहद उससे दूना और घीके बराबर दही कहा गया है।'

अन्यत्र—

आज्यमेकपलं ग्राह्यं दध्नस्त्रिपलमेव च।
मधुनः पलमेकं तु द्विपलं मधु कीर्तितम्॥

'मधुपर्ककी विधिमें घी चार भरी लेना चाहिये, दही बारह भरी और शहद चार भरी अथवा आठ भरी कहा गया है।'

सर्पिश्च पलमेकं तु द्विपलं मधु कीर्तितम्।
पलमेकं दधि प्रोक्तं मधुपर्कविधौ बुधैः॥

'विद्वानोंने मधुपर्ककी विधिमें घृत चार भरी (एक पल) और शहद दो पल (आठ भरी) कहा है और दही एक पल (चार भर) कहा है।'

नान्दीश्राद्ध करनेके लिये समयका निर्णय

गर्भाधानादिसंस्कारेष्विष्टापूर्त्ते क्रतुष्वपि।
वृद्धिश्राद्धं पुरः कार्यं कर्मादौ स्वस्तिवाचनम्॥

कुछ लोग उपर्युक्त वचनके अनुसार गर्भाधानादि संस्कारोंमें, इष्टापूर्तमें और यज्ञोंमें प्रथम वृद्धिश्राद्ध (नान्दीश्राद्ध) करके, अनन्तर 'स्वस्तिवाचन' आदि करते हैं, किन्तु यह क्रम ठीक नहीं है। क्योंकि **'गर्भाधानादिसंस्कारेषु'** इस श्लोकमें दूसरी बार **'कर्मादौ'** लिखनेका अभिप्राय यह है कि वृद्धिश्राद्धसहित कर्मके प्रारम्भमें ही स्वस्तिवाचन करना चाहिये। अतः सर्वप्रथम स्वस्तिवाचन करके अनन्तर वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये। यही क्रम उचित है।

लिखा भी है—

आदौ प्रधानसङ्कल्पस्ततः पुण्याहवाचनम्।
मातृपूजा ततः कार्या वृद्धिश्राद्धं ततः परम्॥

(संस्कारचिन्तामणि)

'यज्ञादि शुभ कार्योंमें सर्वप्रथम प्रधान सङ्कल्प, पुण्याहवाचन और मातृकापूजन करके, पश्चात् वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये ।'

कर्म-विशेषमें नान्दीश्राद्ध करनेके लिये समयका निर्देश

एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः ।
त्रिषट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥
(निर्णयसिन्धु)

'आवश्यकतावश यज्ञमें २१ दिन पूर्व, विवाहमें १० दिन पूर्व, चूड़ाकर्म और उपनयनमें १८ दिन पूर्व भी नान्दीश्राद्ध किया जा सकता है ।'

नान्दीश्राद्ध किस-किस कार्यमें करना चाहिये

यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ।
पुत्रजन्म-वृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥
(विष्णुपुराण)

'यज्ञ, विवाह, प्रतिष्ठा, उपनयन, समावर्त्तन, पुत्रजन्म और वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध (नान्दीश्राद्ध) करना चाहिये ।'

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेषु च वेश्मनः ।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही ॥
(विष्णुपुराण ३।१३।५,६)

'कन्या और पुत्रके विवाहमें, गृहप्रवेशमें, बालकोंके नामकरणमें और चूड़ाकर्म आदि संस्कारोंमें, सीमन्तोन्नयनमें तथा पुत्र आदिके मुख देखनेमें गृहस्थ पुरुष पवित्र होकर एकाग्र मनसे नान्दीमुख श्राद्धद्वारा अपने पितरोंका पजन करे ।'

नान्दीश्राद्धकी दक्षिणा

द्राक्षामलकमूलानि यवांश्चापि निवेदयेत्।
तान्येव दक्षिणां चैव दद्याद् विप्रेषु सर्वदा॥
(ब्रह्मपुराण)

'द्राक्षा (मुनक्का), आँवला और मूल तथा जौ भी नान्दीश्राद्धमें निवेदित करे, उन्हींको (द्राक्षा, आँवला, मूल आदिको) और द्रव्य दक्षिणाको ब्राह्मणोंके लिये सदा दे।'

यज्ञादिमें कुशकण्डिका आवश्यक है

'एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः।' (पा० गृ० सू० १।१।२७) इस सूत्रसे कुशकण्डिकाविधि (अग्निमुख) गार्ह्य, स्मार्त्त, तान्त्रिक और लौकिक हवन-कर्ममें सर्वत्र आवश्यक है।

'उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम्।' (पा० गृ० सू० १।६।१)

'अत्र समिदाधानम्।' (पा० गृ० सू० २।४।१)

'ब्रह्मा प्रायश्चित्तानि जुहुयादनादिष्टानि।' (का०श्रौ०सू० २५।१४।३५)

—इत्यादि सूत्रों द्वारा जहाँ पर विशेष विधि प्राप्त है, वहाँ उपयमनकुशादानप्रभृति कर्मोंका ही अनुष्ठान होता है, न कि समस्त कुशकण्डिकाका। पञ्चमहायज्ञमें स्वाहाकारसे होमकी प्राप्ति होने पर भी पुनः **'स्वाहाकारैर्जुहुयात्'** (पा० गृ० सू० २।६।२) इस सूत्रमें उपात्त **'स्वाहाकारैः'** पदसे कुशकण्डिकाका निषेध सिद्ध होता है, तथापि अन्य सभी शान्तिक, पौष्टिक तथा प्रायश्चित्तादि कर्मोंमें कुशकण्डिका करनी ही चाहिये।

यज्ञादिमें कुश धारणकी आवश्यकता

स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि।
करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने ॥
(प्रयोगपारिजात)

'स्नानमें, हवनमें, जपमें, दानमें, स्वाध्यायमें, पितृकर्ममें, सन्ध्योपासनमें और अभिवादनमें दोनों हाथोंमें कुश धारण करने चाहिये।'

कुशादिके बिना कोई भी कर्म पूर्ण नहीं होता

कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया।
उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया ॥
आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते।

'कुशके बिना जो पूजा होती है, वह निष्फल कही गई है। जलके बिना जो पूजा है, कुशके बिना जो यज्ञादि क्रिया है और घृतके बिना जो होम है, वह कदापि फलप्रद नहीं होता।'

विना दर्भेण यत्स्नानं यच्च दानं विनोदकम्।
असंख्यातं च यज्जप्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
(प्रयोगपारिजात)

'कुशके बिना किया हुआ स्नान, जलके बिना किया हुआ दान और संख्याके बिना किया हुआ जप—यह सभी निष्फल होता है।'

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्भवेत्सर्वंनामुत्रेह फलप्रदम् ॥
(कूर्मपुराण, उत्तरार्ध १८।५०)

'कुश और यज्ञोपवीतके बिना किया हुआ समस्त कर्म राक्षस कहलाता है और वह इहलोकमें फलप्रद नहीं होता।'

कुशमें त्रिदेवका निवास

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः।
कुशाग्रे शङ्करो देवः त्रयो देवाः कुशे स्थिताः॥

'कुशके मूलमें ब्रह्मा, कुशके मध्यमें जनार्दन (विष्णु) और कुशके अग्रभागमें भगवान् शङ्कर—ये तीनों देवता कुशमें निवास करते हैं।'

कुशके अभावमें दूर्वा ग्राह्य है

'कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये।'
(हेमाद्रौ)

'माङ्गलिक कार्योंकी अभिवृद्धिके लिये कुशके स्थानमें दूर्वा ग्राह्य है।'

कुशके भेद

कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः।
बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ४६।३४,३५)

'कुश, काश, दूर्वा, जौका पत्ता, धानका पत्ता, बल्वज और कमल—ये सात प्रकारके कुश* कहे गये हैं।'

सुवर्णके पवित्रकी श्रेष्ठता

अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च।
हेमात्मकपवित्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(हेमाद्रौ)

---

*सात प्रकारके कुशोंमें क्रमशः पूर्व-पूर्व कथित कुश अधिक पवित्र माने गये हैं।

'कुश और दूर्वाके तथा और भी अन्य वस्तुओंके निर्मित पवित्र कहे गये हैं, किन्तु वे सुवर्णकी पवित्रकी सोलहवीं कलाको भी प्राप्त नहीं होते हैं।'

कुशके पवित्रकी महत्ता

जपहोमहरा ह्येते असुरा दैत्यरूपिणः।
पवित्रकृतहस्तस्य विद्रवन्ति दिशो दश॥
यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा।
त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य ब्राह्मणस्य पवित्रकम्॥
(हारीतः)

'जप और होमके फलको हरण करनेवाले दैत्यरूपी असुर हाथमें पवित्र धारण किये हुए ब्राह्मणको देखकर दशों दिशाओंमें भाग जाते हैं। जैसे इन्द्रका वज्र, विष्णुका चक्र और शिवका त्रिशूल शस्त्र कहा गया है, वैसे ही ब्राह्मणका रक्षक शस्त्र पवित्र कहा गया है।'

पवित्रमें दर्भकी संख्याका विचार

चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम्।
एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम्॥
सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं नवम्।
चतुर्भिः शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा॥
पैतृके तु त्रिदर्भाश्च द्वौ दर्भौ नित्यकर्मणि।
(मार्कण्डेयः)

'ब्राह्मणके लिये चार कुशोंका पवित्र कहा है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके लिये क्रमसे एक-एक कुश कम कर देना चाहिये। अथवा सभी वर्णके लिये नूतन और ग्रन्थियुत दो कुशोंका पवित्र

होना चाहिये। शान्तिक कर्ममें चार कुशोंका, पौष्टिक कर्ममें पाँच कुशोंका, पितृकर्ममें तीन कुशोंका और नित्यकर्ममें दो कुशोंका पवित्र बनाना चाहिये।'

पवित्र धारणका स्थान

द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद् बुधः।
अनामिकाग्रपर्वे तु निसर्गेण पवित्रकम्॥
नोच्छिष्टं तत्पवित्रं स्याद् भुक्तोच्छिष्टं विवर्जयेत्।
(रत्नावली, आचारमीमांसा)

'विद्वान् पुरुष अनामिका अंगुलीके दो पोरोंके बीचमें पवित्र धारण करें। अनामिकाके आगेके पोरमें स्वभावतः पवित्र रहता है। पवित्र उच्छिष्ट नहीं होता। भोजन करनेसे उच्छिष्ट हुए पवित्रका त्याग कर देना चाहिये।'

हाथसे पवित्र और जपमालाके गिरने पर कर्तव्य

पवित्रे पतिते ज्ञाते तथा जपमणावपि।
प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नात्वा विप्रोऽघमर्षणम्॥

'हाथसे पवित्र और जपमालाके गिर जाने पर ज्ञात होनेसे ब्राह्मण स्नान कर तीन प्राणायाम कर अघमर्षण करे।'

जपादि करते समय हाथसे मालाके गिरने अथवा टूट जाने पर प्रायश्चित्त

माला यदि पतेद्धस्तात्तथा चैव विनश्यति।
सहस्रं तत्र सञ्जप्यं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥
भोजनं ब्राह्मणानां तु सर्वानिष्टस्य नाशनम्।
गायत्रीं वा जपेत्साष्टशतं भक्त्या समाहितः॥

ततोऽपरां नवां मालां तज्जातीयां वरानने।
गृह्णीयात्तु कृते चैवं न विघ्नैरभिभूयते॥

'यदि जप करते समय माला हाथसे गिर जाय तथा टूट जाय तो एक हजार बार मन्त्रका जप करे और ब्राह्मणभोजन करावे। ब्राह्मणोंको भोजन कराना सकल अरिष्टोंका विनाशक है। अथवा एकाग्र होकर भक्तिसे अष्टोत्तरशत (१०८) गायत्रीका जप करे। हे सुन्दरी, तदनन्तर दूसरी वैसी ही नई माला ग्रहण करे। ऐसा करनेसे पुरुषको विघ्न क्लेश नहीं देते।'

'प्रमादात्पतिता हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत्।'
(वैशम्पायनसंहिता)

'जप करते समय यदि प्रमादसे माला हाथसे गिर जाय तो एक सौ आठ बार (१०८) गायत्रीका जप करे।'

जप-गणनार्थ विहित वस्तु

लाक्षा कुसीदं* सिन्दूरं गोमयं च करीषकम्†।
एभिर्न्निर्माय गुटिकां जपसंख्यां तु कारयेत्॥
(यामले)

'लाख, लालचन्दन, सिन्दूर, गोबर और सूखा गोबर—इनकी गुटिका बनाकर जपकी गणना करे।'

जप-गणनार्थ निषिद्ध वस्तु

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः।
न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्यां तु कारयेत्॥
(यामले)

---

*कुसीदम्—रक्तचन्दनम्। †करीषकम्—शुष्कगोमयम्।

'अक्षतसे, हाथके पर्वसे, धान्यसे, पुष्पसे, चन्दनसे और मृत्तिकासे जपकी गणना न करे।'

रुद्राक्षके एक-मुख आदिके नाम और उनका फल

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च॥
द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद् गोवधाद्यघनाशकृत्।
त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत्॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति।
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत्॥
षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत्।
सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात् स्वर्णस्तेयादिपापहृत्॥
विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात् सर्वानृतविनाशकृत्।
भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः।
दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः॥
एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः।
द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः॥
त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः।
चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः॥
(शिवरहस्य)

'एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् 'शिव' है, जो ब्रह्महत्याको दूर करता है और समस्त स्रोतोंको अवध्य तथा अग्निको रोकता है। दो मुखवाला रुद्राक्ष 'हरगौरी' (शिव-पार्वती) है, जो गोहत्या आदि पापोंको दूर करता है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष 'अग्निजन्मा' है, जो पाप-समूहोंको दूर करता है। चार मुखवाला रुद्राक्ष 'ब्रह्मा'

है, जो मनुष्यकी हत्याके पापको नष्ट करता है। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष 'कालाग्नि' है, जो अगम्य स्त्रीके साथ गमन तथा अभोज्यके भोजन करनेके पापको नष्ट करता है। छः मुखवाला रुद्राक्ष 'गुह' है, जो भ्रूण-हत्याके पापको नष्ट करता है। सात मुखवाला रुद्राक्ष 'अनन्त' है, जो सुवर्णकी चोरीके पापको नष्ट करता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष 'विनायक' है, जो समस्त प्रकारके असत्योंका नाश करता है। नौ मुखवाला रुद्राक्ष 'भैरव' है, जो शिवसायुज्य (मोक्ष) को देता है। दश मुखवाला रुद्राक्ष 'विष्णु' है, जो भूत एवं प्रेतके भयको हरण करता है। ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष 'रुद्र' है, जो अनेक प्रकारके यज्ञोंके फलको देता है। बारह मुखवाला रुद्राक्ष 'आदित्य' है, जो समस्त प्रकारके रोगोंको दूर करता है। तेरह मुखवाला रुद्राक्ष 'काम' है, जो समस्त कर्मोंमें सफलता देता है और चौदह मुखवाला रुद्राक्ष 'श्रीकण्ठ' है, जो वंशका उद्धार करता है।'

रुद्राक्षकी मालाके दानेकी संख्याका विचार

अष्टोत्तरशतं कार्या चतुःपञ्चाशदेव वा।
सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाऽधमा स्मृता॥

'एक सौ आठ दानेकी माला अथवा चौवन दानेकी माला अथवा सताईस दानेकी माला बनानी चाहिये। इससे कम दानेकी माला अधम कही गई है।'

कामना-भेदसे रुद्राक्षकी मालाके दानेके धारणका विचार

मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत्।
पुत्रार्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारिके॥
सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया।
यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥
(प्रजापतिः)

'मोक्षका अभिलाषी पचीस दानेकी रुद्राक्षकी मालासे, धनका अभिलाषी तीस दानेकी मालासे, पुत्रका अभिलाषी पचीस दानेकी मालासे और किसीके मारनेका अभिलाषी पन्द्रह दानेकी मालासे जप करे। जो मनुष्य सताईस दानेकी मालाको धारण करके देवपूजन करता है, उसको करोड़ गुना अधिक फल होता है।'

यज्ञादिमें आशौचकी प्राप्तिपर विचार

यज्ञमें मधुपर्कके बाद, व्रत और सत्र (बहुत दिनोंमें होनेवाला जप-यज्ञादि) में सङ्कल्पके बाद, विवाहमें नान्दीश्राद्धके बाद, श्राद्धमें पाकारम्भ होनेपर आशौच (जननाशौच और मरणाशौच) की प्रवृत्ति तत्तत्कर्मके लिये नहीं होती, किन्तु व्यवहारमें अस्पृश्यत्व और कर्मान्तिरमें अनधिकार होता है।

व्रत-यज्ञ-विवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥

(लघुविष्णुः)

'व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजन और जपका आरम्भ होनेपर सूतक नहीं लगता, यदि इनका आरम्भ न हुआ हो तो सूतक लगता है। वरण होनेपर यज्ञका आरम्भ है, व्रत और सत्र (बहुत दिनोंमें पूर्ण होनेवाले जप-यज्ञादि) संकल्प होनेपर आरम्भ माना जाता है, विवाह आदिमें नान्दीश्राद्ध (आभ्युदयिक श्राद्ध) आरम्भ माना जाता है और श्राद्धमें पाकप्रक्रिया आरम्भ है।'

गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः।
पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः॥
(ब्रह्मपुराण)

'यजमानके द्वारा ऋत्विक् यदि मधुपर्क ग्रहण कर ले, तो आशौच उपस्थित होनेपर उसे आशौचजन्य दोष नहीं लगता, यह निश्चित है।'

ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम्।
सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा॥
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि हि कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति, प्राय० २८,२९)

'ऋत्विज, यज्ञमें दीक्षित, यज्ञिय कर्म करनेवाले, दीर्घ सत्रका अनुष्ठान करनेवाले, कृच्छ्र, चान्द्रायण प्रभृति व्रतमें तत्पर रहनेवाले, ब्रह्मचारी, दानी और ब्रह्मज्ञानी—ये तत्काल शुद्ध हो जाते हैं। दानमें, विवाहमें, यज्ञमें, संग्राममें, देश—विप्लवमें और बहुत बड़ी आपत्ति आनेपर सद्यः शौचसे शुद्धि हो जाती है।'

ऋत्विजां यजमानस्य तत्पत्न्या देशिकस्य च।
कर्ममध्ये तु नाशौचमन्त एव तु तद्भवेत्॥

'ऋत्विजोंको, यजमानको, यजमानकी स्त्रीको और आचार्यको कर्मके मध्यमें जनन अथवा मरणका आशौच नहीं लगता, किन्तु कर्मकी पूर्ति होनेपर ही उन्हें आशौच लगता है।'

यज्ञे विवाहकाले च सद्यःशौचं विधीयते।
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके॥
पूर्वसङ्कल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत्।
(अत्रिसंहिता ९५,९६)

'यज्ञमें और विवाहके अवसरमें तत्काल शुद्धि होती है। विवाहोत्सव तथा यज्ञ आदिके मध्यमें यदि जननाशौच या मरणाशौचका प्रसंग आ जाय, तो पूर्व संकल्पित यज्ञादिमें कोई विघ्न नहीं उपस्थित होता, ऐसा अत्रि मुनिजीका कथन है।'

यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च।
सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे वाप्युपद्रवे॥
(उशनःसंहिता ६।५८)

'यज्ञ, विवाह, देवयाग, दुर्भिक्ष तथा उपद्रव–विशेषमें यदि आशौच उपस्थित हो जाय, तो तत्काल शुद्धि हो जाती है।'

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा।
पूर्वसङ्कल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते॥
यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च।
हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम्॥
(दक्षस्मृति ६।१९,२०)

'यज्ञ हो रहा हो ऐसे प्रसंगमें यदि जननाशौच अथवा मरणाशौच हो जाय, तो पूर्व संकल्पित यज्ञादि कर्ममें कोई दोष नहीं होता। जब यज्ञकृत्य हो रहा हो, विवाह हो रहा हो और देवयाग हो रहा हो तथा अग्निमें आहुतियाँ गिर रही हों, ऐसे अवसर पर न तो जननाशौच होता है और न मरणाशौच ही होता है।'

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके।
सद्यःशुद्धिं विजानीयात् पूर्वसङ्कल्पितं चरेत्॥
देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रततेषु च।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके॥

(आपस्तम्बस्मृति १०।१५, १६)

'विवाह, उत्सव और यज्ञमें यदि मरण निमित्त आशौच और

जनन (जन्म) निमित्त सूतक हो जाय, तो तत्काल शुद्धि हो जाती है, अतः पूर्व सङ्कल्पित कर्म करना चाहिये। देवद्रोण (तीर्थ अथवा प्याऊ), विवाह और बड़े यज्ञोंमें निर्मित अन्नादिमें मरण एवं जनननिमित्त आशौच नहीं लगता है।'

नित्यमन्नप्रदस्यापि कृच्छ्चान्द्रायणादिषु।
निर्वृत्ते कृच्छ्रहोमादौ ब्राह्मणादिषु भोजने॥
गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित्।
निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि॥
निमन्त्रितस्य विप्रस्य स्वाध्यायादि-रतस्य च।
देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृतौ (३।२८,२९) मिताक्षरायाम्)

'नित्य अन्नदानमें, कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत करनेमें, कृच्छ्र-होमादि कर्मके निष्पन्न होने पर ब्राह्मणादिके भोजन करानेमें एवं किसी भी नियमके ग्रहण करनेमें तथा अन्य किसी नियम-विशेषके ग्रहण करनेमें, ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेमें, श्राद्धकर्मके प्रारम्भ करनेमें, ब्राह्मणोंके वेदादिके स्वाध्यायके निरत होनेमें और पितृकार्यमें निरत रहनेमें आशौच नहीं लगता है।'

विवाह–दुर्ग–यज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि।
न तत्र सूतकं तद्वत् कर्म यज्ञादि कारयेत्।

(पैठीनसीस्मृति)

'विवाह, भयस्थान, यज्ञ, यात्रा और तीर्थयात्रामें सूतक नहीं लगता। अतः इनमें यज्ञादि कर्म कराना चाहिये।'

'न देवप्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेषु न देशविभ्रमे नापद्यपि च कष्टायामाशौचम्।' (विष्णुस्मृति)

'देवताकी प्रतिष्ठा, तडागोत्सर्ग एवं वृषोत्सर्गादिमें और विवाह तथा देशविप्लव, आपत्ति और रोगादिमें आशौच नहीं लगता है।'

'न राज्ञां राजकर्मणि, न व्रतिनां व्रते, न सत्रिणां सत्रे, न कारूणां कारुकर्मणि' इति। (विष्णुः)

'राजाओंको राजकर्ममें, व्रत करनेवालोंको व्रतमें, बहुत दिनोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञोंके करनेवालोंके यज्ञमें और वर्णसङ्कर (उच्च वर्णकी स्त्रीमें हीनवर्णसे उत्पन्न होनेवाले) को आशौच नहीं लगता है।'

निष्कर्ष यह है कि यज्ञादिमें वृत ब्राह्मणोंके लिये आशौचका अभाव केवल नियत कर्म-विशेषमें ही होता है, न कि कर्ममात्रमें। अतः आशौचमें यज्ञादि कार्योंको छोड़कर अन्य धार्मिक कार्य करनेका अधिकार वृत ब्राह्मणोंको नहीं है।

यज्ञादिमें स्पर्शास्पर्शका दोष नहीं होता

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते॥

(अत्रिस्मृति २४६)

'देवयात्रा, विवाह, यज्ञक्रिया तथा सभी प्रकारके उत्सवोंमें स्पर्शास्पर्शका विचार नहीं होता है।'

तीर्थयात्राविवाहेषु संग्रामे देवतालये।
उपनीतोत्सर्जनेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते॥

(व्याघ्रपादस्मृति २२८)

'तीर्थयात्रा, विवाह, संग्राम, देवमन्दिर, उपनयन और तड़ागादिके उत्सर्गमें स्पर्शास्पर्शका दोष नहीं होता है।'

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे।
नगरे ग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते॥

'तीर्थ, विवाह, यात्रा, संग्राम, देशविप्लव, नगर और ग्राम-दाहमें स्पर्शास्पर्शका दोष नहीं होता है।'

कुण्डे मञ्चे शिलापृष्ठे नौकायां गजवृक्षयोः।
संग्रामे संक्रमे चैव स्पर्शदोषो न विद्यते॥
(आचारपल्लव)

'जलकुण्ड, मञ्च (सभा-मण्डप), शिलापृष्ठ, नौका, हाथी, वृक्ष, संग्राम और संक्रममें स्पर्शास्पर्शका दोष नहीं होता है।'

दीर्घकाष्ठे शिलापृष्ठे नौकायां शकटे तटे।
विवाहे बहुसम्पर्के स्पर्शदोषो न विद्यते॥
(भरद्वाजः)

'विशाल काष्ठ, शिलापृष्ठ, नौका, गाड़ी, गङ्गा आदि नदीके तट, विवाह और बहुत लोगोंके समुदायमें स्पर्शास्पर्शका दोष नहीं होता है।'

आशौचादिमें देवताका स्पर्श होनेपर विचार

सङ्कल्पितव्रतापूर्तौ देवनिर्माल्यलङ्घने।
अशुचौ देवतास्पर्शे गायत्रीजपमाचरेत्॥
(महानिर्वाणतन्त्र)

'पूर्व सङ्कल्पित व्रतकी अपूर्तिमें, देवताके निर्माल्यके लांघनेमें और जनन एवं मरणके आशौचमें देवताका स्पर्श हो जाय, तो उस दोषके निवारणार्थ यथाशक्ति गायत्रीका जप करना चाहिये।'

यज्ञादि कर्मके समय अपवित्र जीव-जन्तुओं और मनुष्योंका स्पर्श होनेपर विचार

यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान करते समय यदि मूषक (चूहा), पल्ली (भिस्तुइया), सरट (गिरगिट), गोधा (गोह), वायस (कौवा) और सच्छूद्र आदिके स्पर्श होनेपर स्नान

करनेसे शुद्धि होती है और इनको देखनेमें तीन बार आचमन करना चाहिये। मार्जार (बिल्ली) की पूँछका स्पर्श होनेपर तो स्नान करना चाहिये और उसके अन्य अङ्गोंका स्पर्श होनेपर आचमन करना चाहिये। रजस्वला स्त्री, चाण्डाल और असच्छूद्र आदिसे वार्ता करनेमें और इनको देखनेमें तीन बार आचमन करना चाहिये। स्त्री और शूद्रोंको मन्त्ररहित प्राणायाम करना चाहिये। कहा भी है--

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान् मन्त्रान् यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः॥
(मनुस्मृति ५।८६)

'देवपूजन अथवा श्राद्ध करनेवाला मनुष्य चाण्डाल आदि पुरुषोंको देख ले, तो आचमन करके पवित्र होनेपर 'ॐ उदुत्यं जातवेदसम्' इत्यादि सूर्यके मन्त्र और 'ॐ पुनन्तु मा देवजनाः' इत्यादि पवित्र मन्त्रोंको उत्साहपूर्वक शक्तिके अनुसार जपे।'

कर्म-विशेषमें पतिके समीप पत्नीके बैठनेका निर्णय

जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि।
तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे॥
गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा।
वधूप्रवेशने चैव पुनःसन्धान एव च॥
प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च।
कर्मस्वेतेषु भार्यां वै दक्षिणे तूपवेशयेत्॥
(धर्मप्रवृत्तौ)

'जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन और निष्क्रमण संस्कारमें पतिके दक्षिण भागमें पत्नी और पुत्र बैठे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, वधू-प्रवेश, पुनःसन्धान, मधुपर्क-प्रदान और कन्यादान—इन कर्मोंमें पत्नीको पतिके दक्षिण भागमें बैठावे।'

व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थी-सहभोजने।
व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥
सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा।
अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥

'व्रतबन्ध (उपनयन)में, विवाहमें, चतुर्थीकर्ममें, सहभोजनमें, व्रतमें, दानमें, यज्ञमें और श्राद्धमें पत्नीको पतिके दक्षिण भागमें बैठना चाहिये। समस्त धार्मिक कार्योंमें पत्नीका दक्षिण भागमें बैठना शुभ कहा गया है, किन्तु पति-पत्नीके अभिषेकमें और ब्राह्मणोंके पैर धोनेमें पत्नीको वाम भागमें बैठना चाहिये।'

सीमन्ते च विवाहे च तथा चातुर्थकर्मणि।
मखे दाने व्रते श्राद्धे पत्नी दक्षिणतो भवेत्॥

'सीमन्तोन्नयनमें, विवाहमें, चतुर्थीकर्ममें, यज्ञमें, दानमें, व्रतमें और श्राद्धमें पत्नीको अपने पतिके दाहिनी ओर बैठना चाहिये।'

'श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः शुभा।'

(अत्रिसंहिता १।१३८)

'श्राद्ध, यज्ञ और विवाहमें अपने पतिके दक्षिण भागमें पत्नीका बैठना शुभप्रद कहा गया है।'

'श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा।'

(अत्रिस्मृति १३६)

'श्राद्ध, यज्ञ और विवाहमें पत्नीको सर्वदा अपने पतिके दक्षिण भागमें रहना चाहिये।'

सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा।
अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥
वामे पत्नी त्रिषु स्थाने पितॄणां पादशौचने।
रथारोहणकाले च ऋतुकाले सदा भवेत्॥

(संस्कारकौस्तुभ)

'समस्त धार्मिक कृत्योंमें पत्नीको सर्वदा अपने पतिके दक्षिण भागमें रहना चाहिये, किन्तु ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालनके समय और ब्राह्मणोंके द्वारा अभिषेक करनेके समय अपने पतिके वाम भागमें रहना चाहिये।

पितृ-कार्यमें ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालनमें, रथमें बैठनेके समयमें और ऋतुकालमें—इन तीनों अवसरोंमें पत्नीको सर्वदा अपने पतिके वाम भागमें रहना चाहिये।'

सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा।
अभिषेके *विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥
वामे पत्नी त्रिषु स्थाने पितॄणां पादशौचने।
रथारोहणकाले च ऋतुकाले सदा भवेत्॥
वामे सिन्दूरदाने च वामे चैव द्विरागमे।
वामेऽशनैकशय्यायां भवेज्जाया प्रियार्थिनी॥

(संस्कारगणपति)

'समस्त धार्मिक कार्योंमें पत्नीके लिये अपने पतिके दक्षिण भागमें बैठना शुभ कहा गया है, किन्तु अभिषेक और ब्राह्मणोंके पादप्रक्षालनमें पत्नीको अपने पतिके वाम भागमें ही रहना चाहिये।

पितृकर्ममें ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालनके समय, रथमें बैठनेके समय और ऋतुकालके समय—इन तीनों अवसरोंपर पत्नीको सर्वदा अपने पतिके वाम भागमें रहना चाहिये।

विवाहके समय सिन्दूर-दानमें, द्विरागमनमें, पतिके साथ बैठकर भोजन करते समय और पतिके साथ शयन करते समय पत्नीको सर्वदा अपने पतिके वाम भागमें ही रहना चाहिये।'

---

* ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालनके लिये जो कहा गया है, वह पितृकर्मसे तात्पर्य रखता है।

आशीर्वादेऽभिषेके च पादप्रक्षालने तथा।
शयने भोजने चैव पत्नी तूत्तरतो भवेत्॥
(धर्मप्रवृत्तौ)

'ब्राह्मणोंके द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करनेके समय, अभिषेकके समय, ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालनके समय, शयनके समय और पतिके साथ भोजन करते समय पत्नीको सर्वदा अपने पतिसे उत्तर अर्थात् वाम भागमें बैठना चाहिये।'

'पश्चादग्नेरुपविशतो दक्षिणतः पत्नी।'
(का० श्रौ० सू० ४।७।१६)

शान्तिकेषु च सर्वेषु प्रतिष्ठोद्यापनादिषु।
वामे ह्युपविशेत्पत्नी व्याघ्रस्य वचनं यथा॥

तथा—

'पत्नी वामे सदा प्रोक्ता मूलाश्लेषाविधानयोः।'

उपर्युक्त **'शान्तिकेषु च सर्वेषु'** और **'पत्नी वामे सदा प्रोक्ता'** ये दोनों श्लोक निर्मूल और निराधार हैं। इसलिये इन दोनों श्लोकोंके द्वारा जिन कार्योंमें पत्नीको पतिके वाम भागमें बैठनेके लिये कहा है, वह सर्वथा अप्रामाणिक है।

यज्ञादिमें *प्रौढपाद बैठनेका निषेध

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥
(अत्रिसंहिता ३१८)

'स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवपूजन, वेदका स्वाध्याय

---

*आसनारूढपादस्तु जान्वोर्वा जङ्घयोस्तथा।
कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते॥ (शाट्यायनः)

और पितृतर्पणमें प्रौढपाद (जांघपर पैर रखकर) होकर नहीं बैठना चाहिये ।'

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥

(शाट्यायनः)

'दान, आचमन, होम, भोजन, देवपूजन, स्वाध्याय और पितृतर्पणमें प्रौढपाद होकर नहीं बैठना चाहिये ।'

शुभ-कर्ममें कर्ताके अङ्गका विचार

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते ।
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

(कात्यायनस्मृति १ । ८)

'जिस कर्म-विशेषमें कर्ता (यजमान) के लिये किसी अङ्ग-विशेषका उल्लेख न किया गया हो, वहाँ उसका दाहिना हाथ ही समझना चाहिये, जो कि समस्त कर्मोंको पूर्ण करनेवाला कहा गया है ।'

शुभ-कर्मके समय अधमाङ्गोंके स्पर्शका निषेध

'कर्मयुक्तो नरो नाभेरधः स्पर्शं विवर्जयेत् ।'

(बौधायनः)

'शुभ कर्मको करते समय मनुष्य अपनी नाभिके नीचेकी इन्द्रियोंका स्पर्श न करे, क्योंकि ये अधम अङ्ग कहे जाते हैं ।'

दिशाके अनिर्देशमें दिशाका विचार

यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री[1] सौम्या[2]ऽपराजिता[3] ॥

(कात्यायनसंहिता १।६)

---

१ ऐन्द्री—पूर्वा । २ सौम्या—उदीची । ३ अपराजिता—ऐशानी ।

'जिन जप, होम आदि कर्मोंमें दिशाका नियम नहीं है अर्थात् अमुक दिशाकी ओर मुख कर यह कर्म करना चाहिये, ऐसा निर्देश न हो वहाँ पूर्व, उत्तर और ऐशानी—ये तीन दिशाएँ कही गई हैं ।'

संस्कारभास्करमें भी लिखा है—

यत्र दिङ्नियमो नास्ति जपादिषु कथञ्चन ।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्याऽपराजिताः ॥

शुभ-कर्ममें पाखण्डी आदिके सान्निध्यसे हानि

पाखण्डिनश्च पतिता ये च वै नास्तिका द्विजाः ।
पुण्यकर्मणि तेषां वै सन्निधिर्नेष्यते क्वचित् ॥
(स्कन्दपुराण)

'जो द्विज पाखण्डी, पतित एवं नास्तिक हों, उनका पुण्य कर्ममें निश्चित ही साथ रहना उचित नहीं है ।'

यज्ञादिमें अपूज्य ब्राह्मणोंकी उपस्थितिमें ब्रह्मा आदि ऋत्विजोंको प्रायश्चित्त

अनर्हाणामध्वरेषु ये ब्रह्माद्याश्च ऋत्विजः ।
तेषां पापविशुद्ध्यर्थं षडब्दं व्रतमीरितम् ॥
(कूर्मपुराण)

'यज्ञादिमें अपूज्य ब्राह्मणोंके मध्यमें ब्रह्मा आदि जो ऋत्विज हैं, उनकी दोषनिवृत्तिके लिये महर्षियोंने 'षडब्द व्रत' का विधान कहा है ।'

यज्ञादि कर्म यथार्थ समयमें ही करना चाहिये

काले कर्म प्रकुर्वीत काले तिष्ठन्ति देवताः ।
वरमेकाहुतिः काले नाकाले कोटिसंख्यया ॥

अकाले कुरुते कर्म काले प्राप्ते न कारयेत्।
कालातीतं तु तत्कर्म अकृतं तद् बिनिर्दिशेत्॥
(व्याघ्रपादस्मृति १६४,१६५)

'समय पर कर्म करना चाहिये, क्योंकि समय पर देवता रहते हैं। समय पर दी गई एक आहुति श्रेष्ठ है, असमय पर दी गई करोड़ों आहुतियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं, फलदायक नहीं हैं।

जो अनवसर पर कर्म करता है और अवसर प्राप्त होनेपर कर्म नहीं करता, उसका कर्म कालातीत है, उसे अकृत अर्थात् न किया हुआ कहना चाहिये।'

मशीनोंकी गड़गड़ाहटमें और पतित आदिकी उपस्थितिमें शुभ-कर्म करनेका निषेध

पेषणादिकयन्त्रेषु शब्दो यावत्प्रवर्त्तते।
पतितान्त्यजचाण्डालादीनां यावच्च शब्दकः॥
तावत्कर्म न कर्तव्यं तथा सन्ध्याद्वयेऽपि च।
(याज्ञवल्क्य:)

'जिस स्थानमें आँटा आदि पीसनेकी चक्कियों (यन्त्रों) का भयङ्कर शब्द जबतक सुनाई पड़ता हो और पतित, अन्त्यज तथा चाण्डाल आदिके द्वारा उच्चरित शब्द जबतक सुनाई देता हो, तबतक उस स्थानमें कोई भी शुभ-कर्म नहीं करना चाहिये। और दोनों सन्ध्याके समय (सन्धिके समय) में भी शुभ-कर्म नहीं करना चाहिये।'

किसी भी कर्मको विपरीत रूपसे करनेसे हानि

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथञ्चन।
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत्॥
(गृह्यपरिशिष्ट)

'यदि कोई मनुष्य मोहवश किसी कर्ममें विपरीत ढंगसे प्रवृत्त होकर करता है, तो उसका किया हुआ वह कर्म व्यर्थ हो जाता है। अतः प्रत्येक कर्मको यथाविधि प्रारम्भ करे और यथाविधि समाप्त करे।'

विपरीत रूपसे किये हुए कर्मका ज्ञान होपर कर्तव्य

समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम्।
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः॥
(गृह्यपरिशिष्ट)

'कार्यकी समाप्ति पर यदि मालूम हो जाय कि मैंने जो कार्य किया है, वह ठीक नहीं हुआ है, तो पुनः उतना ही कर्म करे, न कि सभी कर्म करे।'

यज्ञ करनेवालेके धनकी प्रशंसा

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद् विदुर्बुधाः।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं निगद्यते॥
(मनुस्मृति ११।२०)

'विद्वानोंने यज्ञ करनेवालोंके धनको 'देवधन' कहा है और जो यज्ञ करनेवाले नहीं हैं, उनके धनको 'राक्षसधन' कहा है।'

धनका सदुपयोग करना चाहिये

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा
यज्ञोद्दिष्टः पुरुषो रक्षिता च।
तस्मात् सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं
धनं ततोऽनन्तर एव कामः॥
(महाभारत, शान्तिपर्व २०।१०)

'ब्रह्माने यज्ञके लिये ही धनकी सृष्टि की है तथा यज्ञके उद्देश्यसे ही उसकी रक्षा करनेवाले पुरुषको उत्पन्न किया है, इसलिये यज्ञमें ही सम्पूर्ण धनका उपयोग करना चाहिये। फिर शीघ्र ही (यज्ञद्वारा) यजमानके समस्त कामनाओंकी सिद्धि हो जाती है।'

यज्ञैरिन्द्रो विविधै रत्नवद्भि-
र्देवान् सर्वानभ्ययाद् भूरितेजाः।
तेनेन्द्रत्वं प्राप्य विभ्राजतेऽसौ
तस्माद् यज्ञे सर्वमेवोपयोज्यम्॥
(महाभारत, शान्तिपर्व २०।११)

'महातेजस्वी इन्द्र धन—रत्नोंसे सम्पन्न अनेक प्रकारके यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुषका यजन करके समस्त देवताओंसे अधिक उत्कर्षशाली हो गये, इसलिये इन्द्रका पद पाकर वे स्वर्गलोकमें प्रकाशित हो रहे हैं। अतः यज्ञमें ही सम्पूर्ण धनका उपयोग करना चाहिये।'

महादेवः सर्वयज्ञे महात्मा
हुत्वाऽत्मानं देवदेवो बभूव।
विश्वाँल्लोकान् व्याप्य विष्टभ्य कीर्त्या
विराजते द्युतिमान् कृत्तिवासाः॥
(महाभारत, शान्तिपर्व २०।१२)

'गजासुरके चर्मको वस्त्रकी भाँति धारण करनेवाले महात्मा महादेवजी सर्वस्व-समर्पणरूप यज्ञमें अपने आपको होमकर देवताओंके भी देवता हो गये। वे अपनी उत्तम कीर्तिसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके तेजस्वी रूपसे प्रकाशित हो रहे हैं।'

आविक्षितः पार्थिवोऽसौ मरुत्तो
वृद्ध्या शक्रं योऽजयद् देवराजम्।
यज्ञे यस्य श्रीः स्वयं सन्निविष्टा
यस्मिन् भाण्डं काञ्चनं सर्वमासीत्॥
(महाभारत, शान्तिपर्व २०।१३)

'अविक्षित्के पुत्र सुप्रसिद्ध मरुतने अपनी समृद्धिके द्वारा देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया, उनके यज्ञमें लक्ष्मीदेवी स्वयं ही पधारी थीं। उस यज्ञके उपयोगमें आये हुए सारे पात्र सुवर्णके बने हुए थे।'

हरिश्चन्द्रः पार्थिवेन्द्रः श्रुतस्ते
यज्ञैरिष्ट्वा पुण्यभाग् वीतशोकः।
ऋद्ध्या शक्रं योऽजयन्मानुषः सं-
स्तस्माद् यज्ञे सर्वमेवोपयोज्यम्॥
(महाभारत, शान्ति० २०। १४)

'राजाधिराज हरिश्चन्द्रका नाम तुमने सुना होगा, जिन्होंने मनुष्य होकर भी अपनी धन-सम्पत्तिके द्वारा इन्द्रको भी परास्त कर दिया था, वे भी अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके पुण्यके भागी एवं शोकशून्य हो गये थे। अतः यज्ञमें ही सारा धन लगा देना चाहिये।'

धर्मोपार्जित धनको यज्ञमें लगाना चाहिये

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः।
शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतामियात्॥
(भागवत ७। १४। १४)

'कर्मसे उपार्जित धनसे यज्ञ करे और यज्ञसे अवशिष्ट धनसे ही मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करे। और यज्ञसे बचे हुए धनपर भी अपना स्वत्व न रखते हुए जो अपना जीवन व्यतीत करता है, वह श्रेष्ठ पदको प्राप्त करता है।'

देवानृषीन् नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम्।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक्॥
(भागवत ७। १४। १५)

'अपनी वंशपरम्परागत वृत्तिसे प्राप्त किये हुए द्रव्य-द्वारा देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, नृयज्ञ, भूतयज्ञ और पितृयज्ञ करे और अपनी आत्माको सन्तुष्ट रखे एवं सर्वान्तर्यामी यज्ञपुरुष भगवान्का यजन (पूजन) करे।'

यज्ञार्थ माँगे हुए धनको यज्ञमें न लगानेसे हानि

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥

(मनुस्मृति ११। २५)

'जो मनुष्य यज्ञके निमित्त माँगे हुए (चन्देके रूपमें प्राप्त किये हुए) समस्त धनको यज्ञमें नहीं लगाता, वह सौ वर्ष तक मुर्गा या कौवेकी योनिको प्राप्त करता है।'

'यज्ञार्थं लब्धमददद् भासः काकोऽपि वा भवेत्।'

(या० स्मृ०, आ० १२७)

'जो मनुष्य यज्ञके निमित्त लोगोंसे चन्देके रूपमें प्राप्त किये हुए द्रव्यको यज्ञमें नहीं लगाता, वह सौ वर्ष पर्यन्त मुर्गा अथवा कौवेकी योनिको अलंकृत करता है।'

यज्ञार्थ [1]शूद्रसे द्रव्य माँगनेसे हानि

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो* भिक्षेत कर्हिचित्।
यजमानो हि भिक्षित्वा चाण्डालः प्रेत्य जायते॥

(मनुस्मृति ११।२४)

'ब्राह्मणको चाहिये वह यज्ञके निमित्त शूद्रसे कभी भी धनकी भिक्षा न माँगे, क्योंकि शूद्रसे माँगे हुए धनसे जो ब्राह्मण यज्ञ करता है वह मरनेपर चाण्डाल होता है।'

---

१ 'शूद्रभिक्षो हतो यागः।' (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १२५। १२)

* यहाँ 'विप्र' पदेन त्रैवर्णिक समझना चाहिये।

'चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ।'

(याज्ञवल्क्यस्मृति, आ० १२७)

'यज्ञार्थ शूद्रसे भिक्षा (धन) लेकर जो व्यक्ति यज्ञ करता है, वह चाण्डाल होता है ।'

'न हि यज्ञेषु शूद्रस्य किञ्चिदस्ति परिग्रहः ।'

(महाभारत, शान्तिपर्व १६५।८)

'यज्ञोंमें शूद्रका कुछ भी परिग्रह (ग्रहण) करना नहीं कहा गया है ।'

भगवती श्रुति भी आदेश करती है—

'न यज्ञार्थं शूद्राद् धनं भिक्षेत ।'

यज्ञकी पूर्णताके लिये सभीका धन लिया जा सकता है

यज्ञश्चेत् प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥
यो वैश्यः स्याद् बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद् यज्ञसिद्धये ॥

(मनु० ११।११, १२)

'जो यज्ञ करनेवालेका और विशेषतः ब्राह्मणका यज्ञ केवल एक अङ्गसे पूर्ण होनेसे रह जाय और राजा धार्मिक हो, तो जिस वैश्यके यहाँ बहुतसे पशु हों और वह यदि यज्ञसे हीन हो तथा सोमयाग न करता हो, तो उसके परिवारसे यज्ञको पूर्ण करनेके लिये उसके द्रव्यको ले आवे ।'

आहरेत् त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥

(मनु० ११ । १३)

'शूद्रके यहाँसे (घरसे) यज्ञके तीन अथवा दो अङ्गोंके पूर्ण करनेके लिये यथेच्छ धनको ले आवे, क्योंकि अधिकारकी दृष्टिसे शूद्रका यज्ञोंमें कोई सम्बन्ध नहीं होता।'

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन्॥
(मनु० ११ । १४)

'जो मनुष्य अपने यहाँ सौ गौ होनेपर भी अग्निहोत्र न करता हो और जो हजार गौ होनेपर भी यज्ञ न करता हो, इन दोनों प्रकारके परिवारवालोंसे भी यज्ञके तीन अथवा दो अङ्गोंको पूर्ण करनेके लिये बिना विचार किये ही धन ग्रहण करना चाहिये।'

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते॥
(मनु० ११ । १५)

'जिस मनुष्यका धन यज्ञार्थ ग्रहण किया जा सकता है, ऐसा मनुष्य यज्ञके लिये यदि माँगने पर भी द्रव्यका दान न करे, तो उसके यहाँसे प्रयत्नपूर्वक यज्ञके दो अथवा तीन अङ्गोंको पूर्ण करनेके लिये द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। ऐसे मनुष्यसे द्रव्य ग्रहण करनेसे यश प्राप्त होता है और धर्मकी वृद्धि होती है।'

*शूद्रको वैदिक यज्ञ करानेवालेकी हानि

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः।
तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम्॥
(मनुस्मृति ३।१७८)

'शूद्रको वैदिक यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण जितने ब्राह्मणोंको

* 'शूद्र' शब्दसे सर्वत्र असच्छूद्र समझना चाहिये।

स्पर्श करता है उतने ही ब्राह्मणोंके दानका पूर्ण फल देनेवालेको नहीं होता है।'

शूद्रको यज्ञ करानेवाले व्यक्तिका दान लेनेसे हानि

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात् कृत्वा प्रतिग्रहम्।
विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि॥

(मनुस्मृति ३।१७९)

'वेदज्ञ ब्राह्मण भी यदि लोभवश शूद्रके यहाँ यज्ञ करानेवालेका दान ग्रहण करता है, तो वह उसी प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाता है जिस प्रकार जलमें मिट्टीका कच्चा पात्र शीघ्र नष्ट हो जाता है।'

दुर्जन व्यक्तिके किये हुए यज्ञादि फलप्रद नहीं होते

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

(मनुस्मृति २।९७)

'दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यके वेद, दान, यज्ञ, नियम और तप—ये कभी भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते हैं।'

राजाको यज्ञ करनेका आदेश

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद् भोगान्धनानि च॥

(मनुस्मृति ७।७९)

'राजाको चाहिये वह सर्वदा प्रचुर दक्षिणासहित अनेक यज्ञोंको करे और ब्राह्मणोंको धर्मार्थ अनेक भोग्य वस्तु तथा धन प्रदान करे।'

यज्ञके दर्शनार्थ अनाहूतको भी जाना चाहिये

शास्त्रकारोंकी आज्ञा है कि यज्ञ भगवान्‌के दर्शनार्थ मनुष्यको अनाहूत (बिना बुलाये) होकर भी जाना चाहिए—**'अनाहूतोऽध्वरं व्रजेत् ।'**

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।५८) में लिखा है—

'अनिमन्त्रितो न गच्छेत्तु यज्ञं गच्छेत्तु दर्शकः ।'

'मनुष्य बिना निमन्त्रणके कहीं भी न जाय, किन्तु यज्ञ भगवान्‌के दर्शनार्थ निमन्त्रणके वगैर भी जाय ।'

महाभारतमें भी कहा है—

'अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः ।'

(अनुशासनपर्व १०४ । १४२)

*विधिहीन यज्ञसे यजमान आदिकी हानि

यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म है । इस श्रेष्ठ कर्ममें जो यजमान और ऋत्विक् शास्त्रविधिके विपरीत आचरण करते हैं, उनके लिये यज्ञ शुभ फल देनेके वजाय अशुभ फल देते हैं, जिससे यजमान, ऋत्विक् एवं राष्ट्रका संहार होता है । इस विषयमें मत्स्यपुराणका कहना है—

न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः ।
अददल्लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुते ॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ।
अन्नहीनः कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत् ॥

---

*'विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति ।'

(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड)

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।
यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपुः* ॥
(६३।१०९-१११)

'मनुष्य कृपणताके कारण दक्षिणाहीन यज्ञ न करे। मोह, लोभ और दक्षिणाहीन यज्ञका करनेवाला कुलक्षयको प्राप्त होता है। ऐश्वर्याभिलाषी पुरुषको यज्ञमें अन्नदान करना चाहिये, क्योंकि अन्नसे हीन यज्ञ दुर्भिक्षको उत्पन्न कर राष्ट्रका संहार करता है, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजोंका और दक्षिणाहीन यज्ञ यजमानका नाश करता है। अतः अविधि अनुष्ठित यज्ञके सदृश और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।'

अन्यत्र भी लिखा है--

अग्निहीनमनावृष्टिः मन्त्रहीनं तु ऋत्विजः।
आज्यहीनं कुलं हन्ति स्वरहीनं तु पत्नयः॥
यजमानं दक्षिणाहीनं मन्त्रहीनं तु राष्ट्रकम्।
सर्वहीनं सदस्यानां नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥

'अग्निहीन यज्ञ अनावृष्टिको देता है। मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजोंका, घृतहीन यज्ञ कुलका, स्वरहीन यज्ञ पत्नियोंका, दक्षिणाहीन यज्ञ यजमानका, मन्त्रहीन यज्ञ राष्ट्रका और सभी वस्तुओंकी कमीमें सदस्योंका नाश होता है। अतः अविधि अनुष्ठित यज्ञके सदृश और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।'

यज्ञके यजमानका कर्तव्य

सुशुद्धैर्यजमानस्य ऋत्विग्भिश्च यथाविधि।
शुद्धद्रव्योपकरणैर्यष्टव्यमिति निश्चयः ॥

---

*अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥
(चाणक्यनीति)

तथा कृतेषु यज्ञेषु देवानां तोषणं भवेत्।
श्रेष्ठः स्याद्देवसंघेषु यज्वा यज्ञफलं लभेत्॥
(महाभारत)

'यजमानको श्रेष्ठ सुयोग्य ऋत्विजोंके द्वारा यथाविधि शुद्ध यज्ञ-सामग्रीसे यज्ञ करना चाहिये। यथाविधि यज्ञोंके सुसम्पन्न होनेसे ही देवगण सन्तुष्ट होते हैं। देवगणके सन्तुष्ट होनेपर यजमान देवसमूहमें अच्छे सम्मानको प्राप्त होकर यथोचित यज्ञ-फलकी प्राप्ति करता है।'

यज्ञादिमें यज्ञोपवीत धारणकी आवश्यकता

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥
(कात्यायनस्मृति १।४)

'द्विजको सर्वदा यज्ञोपवीती होकर और शिखा बाँधकर रहना चाहिये। शिखा और यज्ञोपवीतके बिना वह जो कुछ कर्म करता है, वह न किये हुएके सदृश ही होता है।'

विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥
(स्मृतिमुक्ताफल)

'शिखा और यज्ञोपवीतके बिना किये हुए कर्मको राक्षसी-कर्म समझना चाहिये। शिखा यज्ञोपवीतके बिना समस्त की हुई क्रियाएँ निष्फल होती हैं।'

यज्ञोपवीतवाले द्विजके किये हुए यज्ञका महत्त्व

"प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञोऽप्रसृतोऽनुपवीतिनो यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्। तस्माद्यज्ञोपवीत्येवाधीयीत याजयेद्यजेत वा यज्ञस्य प्रसृत्यै" इति।

'यज्ञोपवीतसे युक्त द्विजके द्वारा जो यज्ञ किया जाता है, वह गुणोंकी अधिकतासे प्रकृष्ट गुणवाला होता है और जो यज्ञ अनुपवीत (यज्ञोपवीतसे रहित) के द्वारा किया जाता है, वह गुणहीन होनेके कारण निकृष्ट फलवाला होता है। अतः यज्ञोपवीत-धारी ब्राह्मण जो कुछ अध्ययन करता है, वह सब यज्ञानुष्ठान करनेके सदृश ही होता है। इसलिये यज्ञमें प्रकृष्ट गुणकी प्राप्तिके लिये यज्ञोपवीती होकर ही अध्ययन करे, यज्ञ करावे और यज्ञ करे।'

देवपूजन किये बिना भोजन करनेसे हानि

यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरेष्वभिजायते॥

(कूर्मपुराण)

'जो मनुष्य मोह अथवा आलस्यवश देवपूजन किये बिना ही भोजन करता है, वह नरकको प्राप्त कर सूकरकी योनिको प्राप्त होता है।'

स्नान-सन्ध्यादि कर्म उपवासपूर्वक करना उचित है

स्नानसन्ध्यातर्पणादि जपहोमसुरार्चनम्।
उपवासवता कार्यं सायं सन्ध्याहुतिस्तथा॥

(वाराहपुराण)

'स्नान, सन्ध्या, तर्पण, जप, हवन, देवपूजन और सायंसन्ध्या एवं आहुति—ये सभी उपवासपूर्वक ही करना चाहिये।'

यज्ञादिमें मण्डप और मण्डपका समस्त सामान आचार्यका होता है

यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम्।
यच्चान्यदपि तद्गेहे* तदाचार्याय दापयेत्॥

(मत्स्यपुराण २६१।३०)

* यहाँ पर गेहपदेन 'मण्डप' समझना चाहिये।

'यज्ञमें चढ़े हुए या पूजनमें लगे हुए बर्त्तन आदि, मण्डपको सजानेकी सामग्री, लकड़ी, बांस वगैरह तथा मण्डपके समस्त उपस्करादि सङ्कल्प करके आचार्यको देना चाहिये।'

'कुम्भोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत्।'

(सनत्कुमारसंहिता)

'कुम्भादि समस्त मण्डप-सामग्री आचार्यको देनी चाहिये।'

यज्ञमें यजमानके अभिषेकके बाद यज्ञके आचार्यको वस्त्र, आभूषण, गौ, भूमि और सुवर्ण प्रत्यक्षरूपमें अथवा इनका मूल्य देकर वास्तुपीठ, ग्रहपीठ, प्रधानपीठ आदि एवं ध्वजा, पताकादि तथा यज्ञपात्र सहित यज्ञ-मण्डपको प्रदान करना चाहिये, यह 'प्रतिष्ठेन्दु'में लिखा है।

ब्रह्मा केवल पूर्णपात्रका अधिकारी है

एक कुण्डके यज्ञमें अथवा पांच एवं नव कुण्डादिके यज्ञमें ब्रह्माको केवल पूर्णपात्र लेनेका अधिकार है, अन्य किसी वस्तुको लेनेका अधिकार नहीं है।

आज्यस्थाली, चरुस्थाली, कड़छी, सड़सी, अभिषेकपात्र तथा यज्ञपात्रादि—यह सभी वस्तु आचार्यकी होती हैं।

उपनयन एवं विवाहादि संस्कारोंमें भी केवल 'पूर्णपात्र' ब्रह्माका होता है, बाकी समस्त सामान आचार्यका होता है। उपनयनपद्धति, विवाहपद्धति आदि समस्त यज्ञ–पद्धतियोंमें ब्रह्माके लिये **'ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्'** यही लिखा है। ऐसी स्थितिमें भी जो लोग पूर्णपात्रातिरिक्त अन्य वस्तुओंके प्राप्त्यर्थ लोभ करते हैं, वह सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है।

देवताके द्रव्यमें विभाग करनेसे हानि

देवद्रव्यविभागेन ब्रह्मस्व-हरणेन च।
कुलान्याशु विनश्यन्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४०।१६)

'देव-द्रव्यके बँटवारेसे (उसे आपसमें बाँट लेनेसे), ब्राह्मणका धन हरनेसे तथा ब्राह्मणोंका पूजन, अर्चन सत्कार न करनेसे शीघ्र कुल नष्ट हो जाते हैं।'

गोदान आदिमें विभाग नहीं होता

बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः।
विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति हि॥
एका ह्येव प्रदातव्या न बहुभ्यः कदाचन॥
(अङ्गिरा)

'गऊ, घर, शय्या और स्त्रियोंको बहुतोंको नहीं देनी चाहिये यानी एक गाय एक घर, एक शय्या आदि बहुतोंको दक्षिणारूपमें नहीं देनी चाहिये। उक्त प्रत्येक वस्तु एकके लिये पृथक्-पृथक् दक्षिणारूपमें ही ये दाताका उद्धार करती हैं। इसलिये ये एक-एकके लिये ही देनी चाहिये बहुतोंके लिये सम्मिलितरूपमें कदापि नहीं देनी चाहिये।'

'बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः।'
(मत्स्यपुराण २०९।२८)

'गाय, गृह, शय्या और स्त्रियोंको बहुत ब्राह्मणोंको परस्पर बाट लेनेके लिये नहीं देनी चाहिये।'

कन्या शय्या गृहं चैव देयं यद् गोस्त्रियादिकम्।
तदेकस्मै प्रदातव्यं न बहुभ्यः कथञ्चन॥
(कात्यायनः)

'कन्या, शय्या, मकान, गौ और स्त्री—ये एकको ही देना चाहिये, बहुतोंको बाँटकर नहीं देना चाहिये।'

गो-कन्या-प्रतिमा-शय्या एकैकस्य प्रदापयेत्।
विभज्य विधिना दाता न तत्फलमवाप्नुयात्॥

'गौ, कन्या, देवताकी प्रतिमा (सुवर्ण की बनाई हुई मूर्ति) और शय्या—ये सब एक व्यक्तिको देना चाहिये। इन वस्तुओंका विभाग कर देनेवाला यथार्थ फलको प्राप्त नहीं करता है।'

गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः।
सा हि तारयते पूर्वान् सप्त सप्त च सप्त च॥
(अङ्गिरा)

'गौ केवल एक ही व्यक्तिको देनी चाहिये, विशेषतः श्रोत्रिय (वेदपाठी) को देना उत्तम है। गौ दाताकी एक्कीस पीढ़ीके पूर्वजोंका उद्धार करती है।'

यज्ञादिके अन्तमें गोदान आवश्यक है

'गां दद्यात् यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससो तथा।'
(कात्यायनस्मृति ८ । १०)

'यज्ञ करनेवाला ब्राह्मणको गौ और वस्त्र दे।'

'गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभ्यः पयस्विनी।'
(याज्ञवल्क्यसंहिता ३ । ३०५)

'यज्ञादि कर्मकी समाप्ति पर पृथक्रूपसे ब्राह्मणको दुग्धवाली गौ देनी चाहिये।'

'आचार्याय च गां दद्यात्सवत्सां हेमसंयुताम्।'
(विश्वकर्मप्रकाश)

'सुवर्ण और बछियाके सहित गौ आचार्यको देनी चाहिये।'

यज्ञादिमें गोदान लेनेसे प्रायश्चित्त नहीं होता

यज्ञकर्मणि या धेनुर्व्रतधेनुस्तथैव च।
मधुपर्के च या धेनुर्या धेनुः कर्मसिद्धये॥
एतत्प्रतिग्रहे विप्र ! प्रायश्चित्तं न विद्यते।

'यज्ञ-कर्ममें, व्रतमें, मधुपर्कमें तथा कर्मकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये दी जानेवाली गौको लेनेवाला ब्राह्मण प्रायश्चित्ती (दोषी) नहीं होता है।'

यज्ञार्थ गौके दोहनसे पुण्य होता है

यज्ञमें गोदुग्ध और गोघृतकी विशेष आवश्यकता होती है। गोदुग्ध और गोघृतके बिना यज्ञ नहीं हो सकते। विशेषकर यज्ञार्थ गोदोहनका विशेष महत्त्व कहा गया है।

महर्षि वसिष्ठ जी कहते हैं—

यज्ञसंरक्षणार्थाय गवां दोहे महत्फलम्।
अन्यथा दोहने गां वै वत्साघातनपातकम्॥

'यज्ञके लिये गौको दूहनेका विशेष फल कहा गया गया है, अन्य कार्योंके लिये गोदुग्ध निकालनेसे गौके बछड़ेके वध करनेके सदृश पाप होता है।'

'गोदोहने महत्पुण्यं केवलं यज्ञहेतवे।'
(वसिष्ठः)

'केवल यज्ञके लिये गौके दूहनेमें महान् पुण्य कहा गया है।'

हवनके अयोग्य गोदुग्ध

ऊनस्तनी चाधिका वा या च स्वस्तनपायिनो।
तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत्॥
(अत्रिस्मृति १। २९९)

'जिस गौके चारसे कम थन हो अथवा जिसके चारसे अधिक थन हो और जो अपना थन स्वयं पीती हो, ऐसी गौके दूधका हवन नहीं करना चाहिये। यदि प्रमादसे उसका हवन किया जाय, तो वह निष्फल जाता है।'

यज्ञान्तमें पञ्चमहर्त्विजोंको प्रदेय वस्तुका विचार

'यज्ञान्ते आचार्याय गाम्, ब्रह्मणे वृषभम्, सदस्याय अश्वम्, गाणपत्याय रथम्, उपद्रष्ट्रे च गन्त्रीं दद्यात्। ऋत्विग्भ्यः सुवर्णं दद्यात्।'

'यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद आचार्यको गौ, ब्रह्माको बैल, सदस्यको घोड़ा, गाणपत्यको रथ और उपद्रष्टाको गाड़ी देना चाहिये। ऋत्विजोंको सुवर्ण देना चाहिये।'

यज्ञान्तमें ऋत्विजोंको आभूषण आदि देना चाहिये

भूषणानि च वस्त्राणि हैमानि कटकानि च।
स्वर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तिमान्॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कुर्वीत भूतिमिच्छुकः।

'शक्तिसम्पन्न मनुष्यको यज्ञके अन्तमें आचार्य आदि ऋत्विजोंको आभूषण, वस्त्र, सुवर्णके कटक (बलय), अंगूठी, पवित्री और गलेकी सिकड़ी देना चाहिये। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवालेको यथाशक्ति अन्नदान करना चाहिये।'

कर्मके अन्तमें यजमानको आशीर्वाद देना चाहिये

सर्वत्र कर्मणामन्ते मन्त्राशिषमनुत्तमाम्।
दद्युर्विप्राः स्वशाखोक्तामादौ तत्कर्मशाखिनः॥
(संग्रहे)

'सर्वत्र कर्मोंके अन्तमें ब्राह्मण ऋत्विजोंको अपनी-अपनी शाखामें

उक्त उत्तमोत्तम मन्त्रोंके द्वारा आशीर्वाद देना चाहिये। किन्तु सबसे पहले उस कर्मकी शाखावाले ब्राह्मण ऋत्विजोंको मन्त्राशीर्वाद देना चाहिये।'

विधिपूर्वक वस्तुके देने और लेनेसे लाभ

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च।
तावुभो गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये॥
(मनु० ४। २३५)

'जो दाता जिसको आदरपूर्वक देता है और जो आदरसे दिये हुएको लेता है वे दोनों ही स्वर्गमें जाते हैं और इससे विपरीत करनेसे अर्थात् निरादरसे देनेवाले और निरादरसे लेनेवाले दोनों ही नरकमें जाते हैं।'

कूर्मपुराणमें भी लिखा है—

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव वा।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये॥
(उत्तरार्ध २७।६६)

पूर्णपात्र देनेका महत्त्व

योऽश्रद्धया प्रदत्तेन पूर्णपात्रं प्रदापयेत्।
अधनोऽसौ कुलद्वेषो कुष्ठरोगी भवेत्कुधीः॥
तस्माच्च श्रद्धया भक्त्या पूर्णपात्रं प्रदापयेत्।
पूर्णपात्रप्रदानेन गृहे लक्ष्मीः सुनिश्चिता॥
आरोग्यं सुखकल्याणं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्।
इति मत्वा च मानुष्यः पूर्णपात्रं प्रदापयेत्॥
पूर्णपात्रप्रदानस्य फलसंख्या न विद्यते।

'जो मनुष्य अश्रद्धासे पूर्णपात्रका दान करता है, वह निर्धनी,

कुलद्वेषी, कुष्ठरोगी एवं कुबुद्धिवाला हो जाता है। इसलिये श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूर्णपात्रका दान करना चाहिये। पूर्णपात्रके दान करनेसे घरमें लक्ष्मीका सर्वदा निवास होता है और आरोग्य, सुख, कल्याण तथा पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि होती है, ऐसा समझकर मनुष्योंको पूर्णपात्र प्रदान करना चाहिये। पूर्णपात्रके दान करनेके फलकी संख्या नहीं है।'

यज्ञादिमें प्राप्त हुई सुवर्णकी प्रतिमाके विक्रयादिका विचार

सुबाहुका प्रश्न—

> देवानां प्रतिमां विप्र गृहीत्वा ब्राह्मणः स्वयम्।
> आत्मोपयोगं कुरुते क्रीत्वा वा प्रविभज्य च ॥
> तिलधेन्वाद्यश्चैव कथं भव्या विजानता ?।
>
> (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'हे ब्राह्मण! दानके रूपमें प्राप्त होनेवाली सुवर्णकी देव-प्रतिमा, तिल और सुवर्णकी गौ आदिका यदि कोई ब्राह्मण स्वयं क्रय-विक्रय करे अथवा विभाजन कर उनको अपने उपयोगमें लावे, तो क्या यह कार्य श्रेष्ठ कहा जायगा ?।'

विश्वामित्रका उत्तर—

> दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम्।
> धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः॥
> विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः।
>
> (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'दानके समयमें देवताओंकी प्रतिमाओंमें 'देवत्व' और सुवर्णकी गौओंकी मूर्तियोंमें 'धेनुत्व' रहता है, बादमें नहीं रहता, ऐसा वेदमें कहा है। किन्तु दानमें प्राप्त हुई देवताकी प्रतिमा एवं सुवर्णकी

गौको जब ब्राह्मण विक्रय करता है, तो उस समय देव-प्रतिमा तथा गौकी 'द्रव्य' के रूपमें गणना होती है।'

पूर्णाहुतिकी विधि

घृतेनापूर्य स्रुग्गर्त्तमूर्ध्ववक्त्रस्रुचि स्रुवम्।
निधायाधोमुखं न्यस्येत् स्रुवाग्रे कुसुमाक्षतम्॥
पश्चाद् वामपुरोदक्षकराभ्यां शङ्खमुद्रया।
गृहीत्वा स्रुक्स्रुवौ मन्त्री स्रुवाग्रन्यस्तलोचनः॥
ऋजुकायः प्रसन्नात्मा समपादः समुत्थितः।
स्थिरधीर्जुहुयादग्नौ यवप्रमितधारया॥
पूर्णाहुतिरियं प्रोक्ता सर्वकामप्रपूरणी।
(संग्रहे)

'घृतसे स्रुक्के गड्ढेको भरकर ऊपरको मुखवाले स्रुक्के ऊपर अधोमुख स्रुवाको रखकर स्रुवाके अग्रभागमें फूल और अक्षत चढ़ावे। तदुपरान्त बाएं और दाहिने हाथों द्वारा (दाहिना हाथ आगे रहे) शङ्खमुद्रासे स्रुक् और स्रुवा दोनोंको पकड़कर स्रुवाके अग्रभागमें दृष्टि लगाया हुआ प्रसन्नवदन मन्त्रज्ञ आचार्य सीधा शरीर और पैरोंसे खड़ा होकर स्थिर बुद्धिसे अग्निमें जौके बराबर घृतकी धारासे हवन करे। यह सब अभिलाषों (मनोरथों) को पूर्ण करनेवाली पूर्णाहुति कही गयी।'

अन्यद्दार्ढ्यं समानीयाधिश्रिते स्रुक्स्रुवावुभौ।
तौ प्रतप्य च संमार्गैः कुशैः सम्मृज्य सिञ्चयेत्॥
पुनः प्रतप्यमाज्यं च निदध्यात्तत्र स्रुक्स्रुवौ।
आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्यापद्रव्यानिष्कृतिः॥
चतुर्गृहीतमाज्यं तद् गृहीत्वा स्रुचिमध्यतः।
वस्त्रताम्बूलपूगादिफलपुष्पसमन्विताम्॥

अधोमुखस्रुवच्छन्नां गन्धमाल्यैरलङ्कृताम् ।
पूर्वं दक्षिणहस्तेन पश्चाद् वामेन पाणिना ॥
गृहीत्वाथ स्रुवं कर्ता शङ्खसन्निभमुद्रया ।
(प्रयोगदर्पण)

'दूसरे दृढ़ अधिश्रित (तपाये हुए) स्रुक और स्रुवा को लेकर उन्हें तपाकर संमार्जन कुशोंसे उनका संमार्जन कर उनपर सिञ्चन करे। फिर उन्हें तपाकर उनमें घृतका उद्वासन (एक प्रकारका संस्कार) कर गलाकर देखकर अपद्रव्य (निकृष्ट पदार्थ) हटाकर चार बार ग्रहण किये गये उस घृतको स्रुक्में लेकर वस्त्र, पान, सुपारी आदि फल और पुष्पसे युक्त अधोमुख स्रुवसे आच्छादित गन्ध,चन्दन, अक्षत, माला आदिसे विभूषित स्रुक् पहले दाहिने हाथसे फिर बाएँ हाथसे शंखमुद्राके द्वारा स्रुवको पकड़ कर यजमान पूर्णाहुति करे।'

आज्यं द्वादशकृत्वस्तु गृहीत्वा पूरयेत् स्रुचम् ।
तथा चाज्याहुतिः कार्या सा पूर्णाहुतिरिष्यते ॥
स्रुवपूर्णाहुतिर्वा स्यादित्येके याज्ञिका विदुः ।
(विधानपारिजात)

'घृतको बारह बार लेकर स्रुक्को भरके आज्याहुति करनी चाहिये, वह पूर्णाहुति कही जाती है। कोई याज्ञिक यह स्रुवकी पूर्णाहुति होती है, ऐसा कहते हैं।'

पूर्णाहुतिके पूजनका श्लोक

कल्याणदात्रीं कल्याणीं सर्वकामप्रपूरणीम् ।
हवनस्य फलप्राप्त्यै पूर्णाहुत्यै नमो नमः ॥

'मैं समस्त कार्योंको पूर्ण करनेवाला और सभीका कल्याण करनेवाली कल्याणस्वरूपिणी पूर्णाहुति देवीको हवनके फलकी प्राप्तिके लिये प्रणाम करता हूं।'

पूर्णाहुति खड़े होकर ही करना चाहिये

मूर्धानं दिवमन्त्रेण संस्रुवेण च धारयेत्।
दद्यादुत्थाय पूर्णां तु नोपविश्य कदाचन॥
(अग्निपुराण)

'मूर्धानं दिव:०' (शु० य० ७।२४) इस मन्त्रके द्वारा स्रुवसे घृतकी धाराको खड़े होकर पूर्णाहुति करना चाहिये, बैठकर नहीं।'

पूर्णाहुतिका महत्त्व

'पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति।'

'पूर्णाहुतिसे मनुष्य समस्त कामनाओंको प्राप्त करता है।'

पूर्णाहुति कहाँ—कहाँ नहीं करना चाहिये

विवाहे व्रतबन्धे च शालायां चौलकर्मणि।
गर्भाधानादिसंस्कारे पूर्णाहुतिं न कारयेत्॥

'विवाह, यज्ञोपवीत, शाला, चूड़ाकर्म और गर्भाधानादि संस्कारोंमें पूर्णाहुति नहीं करना चाहिये।'

विवाहादिक्रियायां च शालायां वास्तुपूजने।
नित्यहोमे वृषोत्सर्गे न पूर्णाहुतिमाचरेत्॥
(मदनरत्ने)

गर्भाधानादिसंस्कारे विवाहे व्रतबन्धके।
नित्यहोमे वृषोत्सर्गे न पूर्णाहुतिरिष्यते॥

वसोर्द्धारापूजनके श्लोक

दिव्यवस्त्रा दिव्यदेहा नानालङ्कारभूषिताः।
वसोर्द्धारा महाभागा वरदाः सन्तु मे सदा॥

शुद्धस्फटिकसंकाशा दिव्यायुधकरावृताः ।
एकभोगाः साक्षसूत्राः वसोर्धारा नता वयम् ॥

'दिव्य वस्त्र धारणकी हुई, दिव्य देहधारिणी और विविध प्रकारके अलङ्कारोंसे विभूषित महाभागा वसोर्धारा सदा मेरे लिये वरदायिनी हो। शुद्ध स्फटिकके सदृश (तुल्य), दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त, करोंसे आवृत, रुद्राक्षमालासे युक्त हे वसोर्धाराओ ! हम आपके लिये प्रणत हैं।'

यजमानके †अभिषेककी विधि

यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत् ।
प्राङ्मुखेनोपविष्टस्य यजमानस्य तत्र च ॥
अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यो ब्राह्मणैः सह ।
(मत्स्यपुराण)

'यज्ञमण्डपमें प्रधानवेदीके उत्तरकी ओर यजमानके अभिषेकके लिये भद्रासन बिछावे। तदनन्तर आचार्य अन्य ब्राह्मणों (ऋत्विजों) के साथ वहाँ पूर्वकी ओर मुखकर बैठे हुए यजमानका अभिषेक करे।'

देवकुम्भैस्ततः कुर्याद्यजमानाभिषेचनम् ।
चतुर्भिरष्टभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥
सपञ्चरत्नकनकैः सितवस्त्रादिवेष्टितैः ।
देवस्यत्वेति मन्त्रेण साम्ना चाथर्वणेन च ॥
(मत्स्यपुराण)

'तदनन्तर आचार्य तत्-तत् देवताओंके समीप स्थापित चार अथवा आठ या दो कलशोंसे अथवा एक ही कलशसे 'देवस्य त्वा' इत्यादि शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्रद्वारा एवं सामवेद और अथर्ववेदके

---

† वेदीके उत्तर यजमानका अभिषेक करना चाहिये, यह पूर्तकमलाकरका मत है।

मन्त्रोंसे यजमानका अभिषेक करे। वे कलश पञ्चरत्न और सुवर्णयुक्त हों अर्थात् उनमें पञ्चरत्न और सुवर्ण डाला गया हो और वे सफेद वस्त्रसे वेष्टित हों।'

अवभृथस्नानका महत्त्व

'महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात्।'
(भागवत १०।७५।२१)

'यज्ञान्तमें अवभृथस्नान करनेसे महापातकी मनुष्य भी पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

यज्ञादिमें जलयात्राकी आवश्यकता

शान्तिकं पौष्टिकं वापि जलयात्रां विना बुधः।
कुरुते यदि वा मोहात्कर्म तस्य च निष्फलम्॥
तडागादिप्रतिष्ठासु देवतायतनादिषु।
लक्षहोमे कोटिहोमेऽयुतहोमे तथैव च॥
*व्रतोत्सर्गे महादाने यज्ञे वा वितते शुभे।
जलयात्रां पुरा कृत्वा श्रेष्ठं कर्म समाचरेत्॥

'यदि कोई विचारशील पुरुष भूलसे शान्तिक (शान्तिके लिये किया गया) अथवा पौष्टिक (पुष्टिके लिये किया गया) यज्ञादि कर्म जलयात्राके बिना करता है, तो उसका वह कर्म निष्फल जाता है।

तड़ाग (तालाव) आदिकी प्रतिष्ठा करनी हो, देवमन्दिर आदिकी स्थापना करनी हो, लक्षहोम, कोटिहोम तथा अयुत (दश हजार) हवन करना हो, एकादशी आदि व्रतका उद्यापन करना हो, सुवर्णका तुलादान, भूमिदान आदि महादान करना

---

* व्रतोत्सर्गे—व्रतोद्यापने इत्यर्थः।

हो एवं मङ्गलमय महायज्ञ करना हो, तो पहले जलयात्रा करके तदुपरान्त श्रेष्ठ (शुभ) कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये।'

जलयात्राकी विधि

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जलयात्राविधिं शुभम्।
यज्ञशालामतिक्रम्य ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सदा॥
यजमानः सपत्नीकः सुहृद्बन्धुजनैर्युतः।
अश्वारूढो गजारूढो वस्त्रालङ्कारभूषितः॥
गृहीत्वोपस्करं सर्वं गन्धपुष्पाक्षतादिकम्।
जलाशयं ततो गच्छेद् गीतवादित्रनिस्वनैः॥
हृद्यं जलाशयं गच्छेन्नदीं वाथ समुद्रगाम्।
सुवासिन्योऽग्रतः कृत्वा सर्वालङ्कारभूषिताः॥
हैम-राजत-ताम्रान्वा मृन्मयान् कलशान् शुभान्।
गृहीत्वा गन्धपुष्पाद्यैरर्चितान् सुदृढान् नवान्॥
जलाशयं समासाद्य तीरे गोमयलेपिते।
चतुरस्रे कृते क्षेत्रे तत्र स्वस्तिकमालिखेत्॥
यवैर्वा तण्डुलैर्वापि पद्ममष्टदलं लिखेत्।
चत्वारः कलशाः स्थाप्याः कोणेषु च समाहितैः॥
तत्र सम्पूजयेद्देवं वरुणं यादसां पतिम्।
*जलमातॄस्तु सम्पूज्य †जीवमातॄस्तथैव च॥

---

*मत्सी कूर्मी च वाराही दर्दुरी मकरी तथा।
जलूकी तन्तुकी चैव सप्तैता जलमातरः॥
(रुद्रकल्पद्रुम)

†कुमारी धनदा नन्दा विमला मङ्गलाऽचला।
पद्मा चेति सुविख्याताः सप्तैता जीवमातरः॥
(रुद्रकल्पद्रुम)

कलशाग्नेयकोणे तु स्वस्तिकादिकमण्डले।
❀ स्थलमातृश्च सम्पूज्य दिक्पालान् दिक्षु चार्चयेत्॥
दीपान् समन्ताद् प्रज्वाल्य देवतानां विसर्जनम्।
घृतेन वाथ दध्ना वा जले दद्यात् ततो बलिम्॥
अद्भ्यः सम्भृतेत्यादि-मन्त्रैर्द्वादश स्रुवेण तु।
गृहीत्वा तु ततः कुम्भान् पञ्चपल्लवसंयुतान्॥
कृत्वा सुवासिनीश्चाग्रे गीतवादित्रनिस्वनैः।
यागभूमिं समागच्छन् मध्यमार्गे बलिं हरेत्॥
उपलिप्य तथा भूमिं श्रृतेनामेन वाऽथवा।
यज्ञमण्डपद्वारे च कुर्यान्नीराजनां पुनः॥
यज्ञमण्डपमध्येऽत्र स्थापयेत् (कुम्भान्) वेदिकोपरि।
द्वारेण पश्चिमेनैव प्रवेशो नेतरेण तु॥

'अब मैं मङ्गलमय जलयात्राकी विधिका वर्णन करूँगा। सपत्नीक यजमान घोड़े अथवा हाथी पर सवार होकर वस्त्र आभूषणोंसे सजधज कर ऋत्विक् (होम करनेवाले) ब्राह्मणोंके साथ तथा अपने इष्टमित्रोंके साथ गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि सब पूजासामग्री लेकर यज्ञशालासे तालाव, नदी आदि जलस्थानमें गीत, गाजे-बाजेकी मांगलिक ध्वनिके साथ जाय।

जलाशय (तालाव) या तो निर्दोष हो या समुद्रमें मिलनेवाली नदी हो। सब आभूषणोंसे विभूषित सौभाग्यवती स्त्रियोंको आगे कर सोनेके, चांदीके, तांबेके अथवा मिट्टीके सुन्दर सुदृढ नवीन मांगलिक कलशोंको, जो चन्दन, फूलमाला आदिसे सुपूजित हों, उन्हें लेकर जलाशयमें जावे। जलाशयमें पहुँच कर गोबरसे लीपे हुए

❀ ऊर्मी लक्ष्मो महामाया पानदेवी तथैव च।
वारुणी नर्मदा गोधा सप्तैताः स्थलमातरः॥ (रुद्रकल्पद्रुम)

तटप्रदेशमें चौकोर बनाये हुए स्थानपर स्वस्तिक लिखे। यवोंसे अथवा अक्षतोंसे अष्टदल कमल बनावे। उसके कोनोंमें सावधानीसे चार कलशोंकी स्थापना करे। उनमें जलके अधिपति वरुणदेवका पूजन करे। मत्सी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी आदि सात जलमातृकाओं-की तथा कुमारी, धनदा, नन्दा, विमला, मंगला आदि सात जीवमातृकाओंकी सविधि पूजा कर तथा कलशके आग्नेय कोणमें स्थित स्वस्तिकादि मण्डलमें ऊर्मी, लक्ष्मी, महामाया, पानदेवी आदि सात स्थलमातृकाओंकी पूजा कर तदुपरान्त दसों दिशाओंमें दस दिक्पालोंकी पूजा करे।

चारों ओर दीपक जलाकर आवाहित देवताओंका विसर्जन करे। तदुपरान्त घृतसे अथवा दहीसे 'अद्भ्यः सम्भृत:'० (शु० य० ३१।१७) इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा स्रुवासे जलमें बीस बार बलि (आहुति) दे। तदनन्तर पञ्चपल्लवोंसे सुशोभित कलशोंको लेकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको आगे कर गीत, वाद्य आदिकी मांगलिक ध्वनियोंके साथ यज्ञशालामें आते हुए मध्य मार्गमें भूमिको लीपकर पकाये हुए अथवा कच्चे अन्नसे बलि दे।

यज्ञमण्डपके द्वारपर नारी नीराजन करे और यज्ञमण्डपके बीचमें वेदीके ऊपर कलशोंकी स्थापना करे।

यज्ञमण्डपमें पश्चिम द्वारसे ही प्रवेश करना चाहिये, अन्य (पूर्व, दक्षिण, उत्तर) द्वारोंसे प्रवेश नहीं करना चाहिये।'

यज्ञादिमें ब्राह्मणभोजनकी संख्या

गर्भाधानादिसंस्कारे ब्राह्मणान् भोजयेद्दश।
शतं विवाहसंस्कारे पञ्चाशन्मेखलाविधौ॥
आवसथ्ये त्रयस्त्रिंशच्छ्रौताऽऽधाने शतात्परम्।
अष्टकं भोजयेद् भक्त्या तत्तत्संस्कारसिद्धये॥

†सहस्रं भोजयेत् सोमे ब्राह्मणानां शतं पशो।
चातुर्मास्येषु चत्वारि शतं पञ्च सुराग्रहे॥
अयुतं वाजपेये च ह्यश्वमेधे चतुर्गुणम्।
(यज्ञपार्श्वे)

'गर्भाधानादि संस्कारमें कमसे कम दश ब्राह्मणोंको, विवाहमें सौ ब्राह्मणोंको, उपनयनमें पचास ब्राह्मणोंको, आवसथ्यमें तेंतीस ब्राह्मणोंको, श्रौताधानमें सौसे भी अधिक ब्राह्मणोंको और प्रत्येक संस्कारकी निर्विघ्न पूर्त्तिके लिये आठ-आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।

सोमयागमें एक हजार ब्राह्मणोंको, पशुयागमें सौ ब्राह्मणोंको, चातुर्मास्य यागमें चार सौ ब्राह्मणोंको, देवाराधनादि विशेष कर्ममें पाँच सौ ब्राह्मणोंको, वाजपेयमें दश हजार और अश्वमेधमें चालीस हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।'

लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र यज्ञमें ब्राह्मण भोजनकी संख्या

'लघुरुद्रे एकादश, महारुद्रे एकविंशत्युत्तरशतम्, अतिरुद्रे त्रयोदश शतान्येकत्रिंशच्चेति ब्राह्मणानां भोजनं कार्यम्।'
(रुद्रकल्पद्रुम)

'लघुरुद्रमें ग्यारह ब्राह्मणोंको, महारुद्रमें एक सौ इक्कीस ब्राह्मणोंको और अतिरुद्रमें तेरह सौ इकतीस ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।'

---

†सहस्रं भोजयेत् सोमे ब्राह्मणांस्तु शतं पशौ।
चातुर्मास्यासु सर्वासु शतं पर्वणि पर्वणि॥
(प्रतिष्ठादर्पण)

पान, पक्वान्न, ऋतुफल, सुपारी आदिसे की जानेवाली पूर्णाहुतिमें ब्राह्मण-भोजनकी संख्याका विचार

कुछ लोगोंका कहना है कि जिस यज्ञानुष्ठानादिकी पूर्णाहुति पान, पक्वान्न और सुपारी आदिसे की जाय, उसमें ब्राह्मणभोजन इस प्रकार कराना चाहिए—

> **नागवल्ली इषुप्रोक्ता पक्वान्नं च दश स्मृता।**
> **ऋतुफलञ्च विंशतिः पूगीफलमेकविंशतिः॥**
> **श्रीफले चैकपञ्चाशत् शतं वाऽधिकभोजने।**
> **सौभाग्ये घृतच्छिन्ना द्विशतं पञ्चशतानि च॥**
>
> (बृहस्पतिसंहिता)

'जिस अनुष्ठानमें नागवल्ली (पान) से पूर्णाहुति की जाय, उसमें पाँच ब्राह्मणोंको, जिस अनुष्ठानमें पक्वान्नसे पूर्णाहुति की जाय, उसमें दश ब्राह्मणोंको, जिस अनुष्ठानमें ऋतुफलसे पूर्णाहुति की जाय, उसमें बीस ब्राह्मणोंको, जिस अनुष्ठानमें सुपारीसे पूर्णाहुति की जाय, उसमें इक्कीस ब्राह्मणोंको, जिस अनुष्ठानमें श्रीफल (नारियल) से पूर्णाहुति की जाय, उसमें इक्यावन ब्राह्मणोंको अथवा सौ ब्राह्मणोंको अथवा इससे भी अधिक ब्राह्मणोंको और जिस अनुष्ठानमें घृतकी धारासे पूर्णाहुति की जाय, उसमें दो सौ ब्राह्मणोंको अथवा पाँच सौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।'

उपर्युक्त **'नागवल्ली इषुप्रोक्ता'** ये दोनों श्लोक बृहस्पतिसंहितामें नहीं हैं। अतः **'नागवल्ली इषुप्रोक्ता'** के आधारपर ब्राह्मण-भोजनकी संख्याका निर्णय करना सर्वथा शास्त्रविरुद्ध और अप्रामाणिक है।

यज्ञादिमें बलिका विचार

> **बलिस्तु त्रिविधो ज्ञेयस्तान्त्रिकः स्मार्त एव च।**
> **वैदिकश्चेति...॥**

वैदिकं तु बलिं दद्यादोदनं स्विन्नमाषवत् ।
सरोचनमतिक्रूरदैवते वटकान्वितम् ॥

'बलि तीन प्रकारकी होती है—तान्त्रिक, स्मार्त्त और वैदिक। पकाये हुए माष (उड़द)से युक्त ओदन (भात) वैदिक बलि कही जाती है। अतिक्रूर देवताके लिये सिन्दूर और वटक (बड़ा) से युक्त ओदनकी बलि देनी चाहिये।'

यज्ञके कतिपय पात्रोंका परिचय

यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानोंमें यज्ञपात्रोंकी विशेषरूपसे आवश्यकता होती है। यज्ञादिमें उपयुक्त होनेवाले प्रत्येक यज्ञपात्रकी अलग-अलग लकड़ी और भिन्न-भिन्न माप शास्त्रोंमें निर्देश किया गया है। अतः यज्ञादिमें शास्त्रनिर्दिष्ट यज्ञपात्रोंका उपयोग करना आवश्यक है। शास्त्रनिर्दिष्ट यज्ञपात्रोंके उपयोग करनेसे ही यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान सफल होते हैं।

*स्रुव

खादिरस्य स्रुवः कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः ।
अंगुष्ठपर्वखातं स्यात् सर्वकामार्थसिद्धये ॥

'एक हाथ लंबा (चौबीस अंगुलका) खैरकी लकड़ीका स्रुव

---

* खादिरादेः स्रुवः कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः ।
अङ्गुष्ठपर्वखातं तत् त्रिभागं दीर्घपुष्करम् ॥
(संस्कारभास्कर)

अङ्गुष्ठपर्ववृत्तः स्यादरत्निमात्रः स्रुवो भवेत् ।
पुष्करादर्धं भवेत्खातं पिण्डकादर्धं (मुष्टयर्धम्) स्रुवस्तथा ॥
(रेणुः)

बनाना चाहिये। वह अंगुष्ठके पर्वके सदृश गहरा (अंगूठेके पोरुवेके सदृश गहरा) होता है, जो समस्त कामनाकी सिद्धिके लिये कहा गया है।'

†प्रणीता

प्रणीता वारणा ग्राह्या द्वादशांगुलसम्मिता।
खातेन हस्ततलवदाकृत्या पद्मपत्रवत्॥

'वारण (वरनेकी लकड़ी) काष्ठका बारह अंगुलका 'प्रणीता-पात्र' होता है। वह हथैलीके सदश खुदा हुआ कमलके पत्रकी तरह होता है।'

प्रोक्षणी

वारणं पाणिमात्रं च द्वादशांगुलविस्तृतम्।
पद्मपत्राकृतिर्वापि प्रोक्षणीपात्रमीरितम्॥
(कर्मप्रदीप)

'वारण काष्ठका हथैलीके सदृश बारह अंगुल चौड़ा और कमलके पत्रके आकारका 'प्रोक्षणी पात्र' कहा गया है।'

स्फ्य

खड्गाकारोऽरत्निमात्रः खादिरः स्फ्यः प्रकीर्तितः।
असुराणां विनाशाय वज्ररूपो मखे स्मृतः॥

'तलवारके आकारका अरत्निमात्र (चौबीस अंगुलका) खैरकी लकड़ीका 'स्फ्य' कहा गया है, जो कि असुरोंके विनाशके लिये वज्ररूपमें यज्ञमें उपयुक्त होता है।'

---

† द्वादशाङ्गुलदीर्घेण चतुरस्त्रः सगर्तकः।
प्रस्थमात्रोदकग्राही प्रणीताचमसो भवेत्॥
(कर्मप्रदीप)

*स्रुची

पाणिप्रमाणवदना , हंसास्यैकप्रणालिका ।
बिलान्विता मूलदण्डा बाहुमात्रा शुभप्रदा ॥

'हथेलीके सदृश मुख हो, हँसके मुखकी तरह नाली हो, छिद्रसे युक्त हो, मूलदण्डवाली अर्थात् अग्रमुखवाली और बाहुमात्र (३६ अंगुल की) स्रुची यज्ञमें शुभप्रद कही गयी है।'

अरणि, मन्था आदि यज्ञपात्रोंका परिचय

‡ अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।
तस्य या प्राङ्मुखी शाखा उदीची चोर्ध्वगापि वा ॥
अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मध्ये चोत्तरारणिः ।
सारवद्दारवं चात्रमोविली च प्रशस्यते ॥
संसक्तमूलो यः शम्या स शमीगर्भ उच्यते ।
अलाभे त्वशमीगर्भादाहरेदविलम्बितः ॥
चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ।
चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥

---

* पलाशादिकाष्ठनिर्मिता बाहुप्रमाणाः पाणिप्रमाणमुखास्त्वक्प्रदेशे बिलवत्यो हंसमुखसदृशैकप्रणालिका मूलदण्डा (अग्रमुखा) भवन्ति ।

षट्त्रिंशांगुलां स्रुचं कारयेत् खादिरादिभिः ।
कर्दमे गोपदाकारं पुष्करं तद्वदेव हि ॥
पुष्कराग्रं षडंशं तु खातं द्व्यङ्गुलविस्तृतम् ।
अङ्गुष्ठैकं स्थूलतरं दण्डे तस्य च कङ्कणम् ॥
(शौनकः)

‡ शमीवृक्षमध्ये उत्पन्नोऽश्वत्थः शमीगर्भ इत्युच्यते । शम्या गर्भः शमीगर्भः ।

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद् द्वादशाङ्गुलम् ।
ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम् ॥
अङ्गुष्ठाङ्गुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ।
तत्र तत्र बृहत्पर्वग्रन्थिभिर्मिनुयात् सदा ॥
गोवालैः शणसम्मिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ।
व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात् प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥
मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुलं वक्ष उच्यते ॥
अङ्गुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यङ्गुष्ठमुदरं स्मृतम् ।
एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ बस्ती द्वौ च गुह्यकम् ॥
ऊरू जङ्घे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् ।
अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥
यत्तद् गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते ।
अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥

'श्रेष्ठ भूमिमें उत्पन्न होनेवाले शमीगर्भमें (शमीवृक्षके मध्यमें) जो पीपल उगा हो, उस पीपलकी पूर्व अथवा उत्तर अथवा ऊपरकी ओर जानेवाली शाखा (डाली) की अरणि बनती है और उसी लकड़ीके मध्य भागकी लकड़ीकी उत्तरारणि बनती है। सारवाले काष्ठकी ओविली बनती है। शमीके मूलमें उत्पन्न पीपलके काष्ठको 'शमीगर्भ' कहते हैं। यदि शमीगर्भ पीपल प्राप्त न हो तो साधारण पीपलके ही काष्ठसे अरणिका निर्माण करे। अरणि चौबीस अंगुल (अंगुष्ठ) लंबी, छः अंगुल चौड़ी और चार अंगुल ऊँची होती है। प्रमन्थ अठारह अंगुल लंबा होता है। चात्र बारह अंगुलका होता है। ओविली बारह अंगुलकी होती है। इस प्रकार 'मन्थनयन्त्र' बनता है। जहाँ-जहाँ अंगुष्ठके अंगुलका मान (प्रमाण) कहा गया है, वहाँ-वहाँ बड़े पोरुवेकी ग्रन्थिका प्रमाण

समझना चाहिये। गोवाल (गौका बाल) और सन इन दोनोंको मिलाकर तीन लड़की रस्सी बनानी चाहिये। यह रस्सी व्याम-मात्र (दोनों भुजाओंको मिलाकर जो घेरा बनता है उसे 'व्याम' कहते हैं) बड़ी होनी चाहिये। इस रस्सीसे अग्निमन्थन होता है। शिर, नेत्र, कान, मुख और कन्धा यह सब एक अंगुष्ठका, छाती दो अंगुलकी, हृदय एक अंगुष्ठका, उदर तीन अंगुष्ठका, कटि एक अंगुष्ठकी, बस्ती दो अगुष्ठकी, गुह्य दो अंगुष्ठका, ऊरु चार अंगुष्ठका, जंघा तीन अंगुष्ठका और पैर एक अंगुष्ठका —इस प्रकार अरणिके समस्त अवयव यज्ञके ज्ञाताओंने कहे हैं। अरणिका जो गुह्य है, वही देवयोनि है। देवयोनिसे जो अग्नि उत्पन्न होता है वह कल्याण-कारक कहा गया है।'

यज्ञपात्रोंका शुद्धि-प्रकार

यज्ञादिमें काममें आनेवाले यज्ञपात्रोंकी शुद्धि जलके प्रक्षालन-मात्रसे ही हो जाती है।

उष्णेन वारिणा शुद्धिर्यथा स्रुक्-स्रुवयोरपि।
तथैव यज्ञपात्राणां मुसलोलूखलस्य च॥

(लिङ्गपुराण, पूर्वार्ध ८९। ६१–६२)

'जिस प्रकार गरम जलके द्वारा धोनेसे स्रुची और स्रुवाकी शुद्धि होती है, उसी प्रकार गरम जलसे अन्य यज्ञपात्रोंकी और मुसल तथा उलूखलकी शुद्धि होती है।'

मार्जनाद् यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।
उष्णाम्भसा तथा शुद्धि सस्नेहानां विनिर्दिशेत्॥

(शङ्खस्मृति १६। ६)

'यज्ञकर्ममें यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि दाहिने हाथसे जलके द्वारा

मार्जन करनेसे होती है और चिकने यज्ञपात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे धोनेसे होती है।'

'मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।'

(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय १८५)

'यज्ञकर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि दाहिने हाथसे जलके द्वारा मार्जन करनेसे होती है।'

'मार्जनाद् यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।'

(अग्निपुराण १५६ । ४)

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु॥
चरूणां स्रुक्-स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा।
स्फ्य-शूर्प-शकटानां च मुसलोलूखलस्य च॥

(मनुस्मृति ५ । ११६-११७)

'यज्ञ-कर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि हस्तद्वारा मार्जन करनेसे और चमस तथा ग्रह नामके पात्रोंकी शुद्धि जलके धोनेसे होती है। चरुस्थाली, स्रुक् और स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे और स्फ्य, शूर्प, शकट, मुसल और ओखलीकी शुद्धि जलके प्रक्षालनसे होती है।'

दारवाणां सुपात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते॥
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च॥
चरूणां स्रुक्-स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा।
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति॥

(पाराशरस्मृति ७।१-३)

'काठके पात्रोंकी शुद्धि तत्काल करना चाहिये। यज्ञकर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि हाथसे जलके द्वारा धोनेसे होती है। सोमयागके

चमसों और ग्रहोंकी शुद्धि जलके द्वारा धोनेसे होती है। चरुस्थाली, स्रुची, स्रुवा—इनकी शुद्धि गरमजलसे, कांसेके पात्रोंकी भस्मसे और तांबेके पात्रोंकी शुद्धि खटाईसे माँजनेपर होती है।'

यज्ञपात्र कभी दूषित नहीं होते

'यज्ञपात्राणि सर्वाणि न दुष्यन्ति बुधाः क्वचित्।'
(काशीखण्ड)

'हे विद्वानो! सभी यज्ञपात्र किसीके स्पर्श आदिसे तथा लेप आदिसे कभी दूषित नहीं होते।'

यज्ञपात्र निर्माण-कर्त्ताका विचार

यज्ञादिमें यज्ञपात्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। यज्ञपात्रोंके बिना यज्ञकार्य सम्पादन नहीं हो सकता। जिन यज्ञपात्रोंका यज्ञ जैसे महत्त्वपूर्ण पवित्र कर्ममें सदुपयोग होता है उन पात्रोंका निर्माण-कर्त्ता शास्त्रके कथनानुकूल ही होना चाहिये। यज्ञपात्र निर्माण करनेवाले कौन-कौन त्याज्य हैं, इस विषयमें कहा गया है कि—

मृतभार्यो ह्यभार्यश्च अपुत्रो मृतपुत्रकः।
शूद्रसंस्कारकश्चैव कृपणो गणयाजकः॥
प्रायश्चित्तगृहीतश्च राजयाजकपैशुनौ।
शूद्रगेहनिवासी च शूद्रप्रेरक एव च॥
स्वल्पकण्ठो वामनश्च वृषलीपतिरेव च।
बन्धुद्वेषी गुरुद्वेषी भार्याद्वेषी तथैव च॥
हीनाङ्गश्चैव वृद्धाङ्गो भग्नदन्तश्च दाम्भिकः।
प्रतिग्राही च कुनखः पारदारिक एव च॥
श्वित्री कुष्ठिकुलोद्भूतो निद्रालुर्व्यसनार्थकः।

अदीक्षितः कदर्यश्च चण्डरोगी गलद्व्रणः ॥
महाव्रणी च उदरी यज्ञपात्रं न कारयेत् ।
(भविष्यपुराण)

'जिसकी स्त्री मर गई हो, जिसका विवाह न हुआ हो, जिसको पुत्र न हुआ हो, जिसका पुत्र मर गया हो, जो शूद्रोंको विवाहादि संस्कार कराता हो, कृपण, नीचोंको यज्ञ करानेवाला, प्रायश्चित्तमें गृहीत, राजाको यज्ञ करानेवाला, पिशुन (चुगलखोर अथवा खल), शूद्रके घरमें निवास करनेवाला, शूद्रोंको ज्ञान देनेवाला, लघु कण्ठ-वाला, बौना, शूद्रासे सम्बन्ध रखनेवाला, बन्धुओंसे द्वेष रखनेवाला, गुरुसे द्वेष रखनेवाला, अपनी स्त्रीसे द्वेष रखनेवाला, किसी अङ्गसे हीन अथवा जिसका कोई अङ्ग बढ़ गया हो, जिसके दाँत टूट गये हों, पाखण्डी, असत्-प्रतिग्रह लेनेवाला, खराब नाखूनोंवाला, परस्त्रीसे गमन करनेवाला, सफेद कुष्ठवाला, कुष्ठी कुलमें उत्पन्न होनेवाला, अधिक सोनेवाला, व्यसनी, जिसने दीक्षा न लिया हो, जन-समाजमें निन्दित, भयङ्कर रोगवाला, जिसके शरीरमें कोई घाव गलता हो, बड़े फोड़ेवाला एवं उदररोगवाला—इन लक्षणोंसे युक्त पुरुषसे यज्ञपात्रोंका निर्माण नहीं कराना चाहिये ।'

यज्ञादिमें दशदानका विवरण

गो-भू-तिल-हिरण्याज्य-वासो-धान्य-गुडानि च ।
रौप्यं लवणमित्येवं दशदानं प्रकीर्तितम् ॥
(हेमाद्रौ–प्रायश्चित्तप्रकरणे)

'गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, चावल (बिना कूटा हुआ धान) गुड़, चाँदी और नमक—ये दश वस्तु दानके लिये कही गई हैं ।'

दशदानकी वस्तुओंका परिमाण

गौके निष्क्रयका परिमाण—

'षष्ट्युत्तरत्रिशतम् (३६०), अशीत्यधिकशतम् (१८०),

विंशत्युत्तरशतम् (१२०), नवतिः (९०), पञ्चचत्वारिंशत् (४५), त्रिंशद् (३०) वा गोमूल्यं दद्यात् ।'

'यज्ञादिमें गौका मूल्य तीन सौ साठ रुपया अथवा एक सौ अस्सी रुपया अथवा एक सौ बीस रुपया अथवा नब्बे रुपया अथवा पैंतालीस रुपया अथवा तीस रुपया दे ।'

भूमिका परिमाण—

'उत्तम-मध्यम-अधमरूपेण भूमिपरिमाणे त्रयः पक्षाः । तत्रोत्तमपक्षे गोचर्मप्रमाणा भूमिः । मध्यमपक्षे समन्ततो दशहस्ता भूमिः । अधमपक्षे समन्ततः पञ्चहस्ता भूमिः । भूमिदानं साक्षादथवा तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'उत्तम, मध्यम और अधमरूपसे भूमिके परिमाणके विषयमें तीन पक्ष हैं । उनमें उत्तम पक्षमें 'गोचर्म' के परिमाणकी भूमि कही गयी है । मध्यम पक्षमें चारों ओर (क्षेत्रफल) दस हाथकी भूमि कही गई है । अधम पक्षमें चारों ओर पाँच हाथकी भमि कही गई है । भूमि साक्षात् दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

तिलका परिमाण—

'द्रोणद्वयमितान् (एकादशपलाधिकपञ्चविंशतिसेटकमितान्), द्रोणपरिमितान् (पलाधिकपादोनत्रयोदशसेटकमितान्), यथाशक्ति वा तिलान् तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'दो द्रोण अर्थात् पचीस सेर नव छटांक अथवा एक द्रोण अर्थात् पौने तेरह सेर चार भरी अथवा यथाशक्ति तिल दे अथवा तिलका मूल्य दे ।'

× दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम् ।
दश तान्येव गोचर्म..............॥

सुवर्णका परिमाण—

'कर्षमात्रं यथाशक्ति वा सुवर्णं तन्मूल्यं वा दद्यात्। सुवर्ण-मेकस्तोलक इत्यपि शिष्टा वदन्ति।'

'कर्षमात्र अर्थात् ८० गुञ्जा अर्थात् ८० रत्ती अथवा एक भरी सुवर्ण दे अथवा उसका मूल्य दे। सुवर्ण एक तोला होता है, ऐसा भी शिष्ट पुरुषोंका कहना है।'

घृतका परिमाण—

'सेटकचतुष्टयमितम्, सार्धसेटकद्वयमितम्, पादोनसेटकमात्रं वा आज्यं तन्मूल्यं वा दद्यात्।'

'चार सेर अथवा अढ़ाई सेर अथवा तीन पाव घृत दे अथवा उसका मूल्य दे।'

वस्त्रका परिमाण—

'अष्टहस्तायतं हस्तद्वयादन्यूनविशालं प्रान्तयोरच्छिन्नं नूतनं वस्त्रद्वयं तन्मूल्यं वा दद्यात्।'

'वस्त्र आठ हाथका लम्बा हो और वह दो हाथसे कम चौड़ा न हो, वह वस्त्र कोनोंमें कटा न हो, ऐसा नूतन दो वस्त्र दे अथवा उसका मूल्य दे।'

धान्यका परिमाण—

'षष्ट्युत्तरसेटकमितम् (१६०), अष्टाविंशत्युत्तरशतसेटक-मितम् (१२८), अशीतिसेटकमितम् (८०), चतुःषष्टि-सेटकमितम् (६४) व्रीह्यादिरूपं धान्यं यथाशक्ति वा तन्मूल्यं वा दद्यात्।'

'एक सौ साठ सेर अथवा एक सौ अठाईस सेर अथवा अस्सी सेर

अथवा चौंसठ सेर अथवा यथाशक्ति व्रीह्यादिके रूपमें धान्य (बिना-कूटा हुआ छिलकेदार चावल) दे अथवा उसका मूल्य दे।'

गुडका परिमाण—

'अष्टसेटकमितम्, सेटकत्रयमितम्, यथाशक्ति वा गुडं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'आठ सेर अथवा तीन सेर अथवा यथाशक्ति गुड़ दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

चाँदीका परिमाण—

'पलत्रयमितं यथाशक्ति वा रजतं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'तीन पल अर्थात् बारह भरी अथवा यथाशक्ति चाँदी दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

लवणका परिमाण—

'षोडशपलाधिकषट्सप्ततिसेटकमितम्, सेटकचतुष्टयमितं यथाशक्ति वा लवणं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'छियत्तर सेर सोलह पल (चौंसठ भरी) अथवा चार सेर अथवा यथाशक्ति नमक दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

गोदानका महत्त्व

गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः ।
सा हि तारयते पूर्वान् सप्त सप्त च सप्त च ॥

(अङ्गिरा)

'गौ केवल एक ही ब्राह्मणको देनी चाहिये। श्रोत्रिय (वेदपाठी) को देना विशेष उत्तम है। प्रदान की हुई गौ इक्कीस पीढ़ीके पूर्वजोंका निस्तार करती है ।'

'गोप्रदानं तारयते सप्त पूर्वान् परांस्तथा ।'

(वसिष्ठः)

अथवा चौंसठ सेर अथवा यथाशक्ति व्रीह्यादिके रूपमें धान्य (बिना-कूटा हुआ छिलकेदार चावल) दे अथवा उसका मूल्य दे।'

गुडका परिमाण—

'अष्टसेटकमितम्, सेटकत्रयमितम्, यथाशक्ति वा गुडं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'आठ सेर अथवा तीन सेर अथवा यथाशक्ति गुड़ दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

चाँदीका परिमाण—

'पलत्रयमितं यथाशक्ति वा रजतं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'तीन पल अर्थात् बारह भरी अथवा यथाशक्ति चाँदी दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

लवणका परिमाण—

'षोडशपलाधिकषट्सप्ततिसेटकमितम्, सेटकचतुष्टयमितं यथाशक्ति वा लवणं तन्मूल्यं वा दद्यात् ।'

'छियत्तर सेर सोलह पल (चौंसठ भरी) अथवा चार सेर अथवा यथाशक्ति नमक दे अथवा उसका मूल्य दे ।'

गोदानका महत्त्व

गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः ।
सा हि तारयते पूर्वान् सप्त सप्त च सप्त च ॥

(अङ्गिरा)

'गौ केवल एक ही ब्राह्मणको देनी चाहिये। श्रोत्रिय (वेदपाठी) को देना विशेष उत्तम है। प्रदान की हुई गौ इक्कीस पीढ़ीके पूर्वजोंका निस्तार करती है ।'

'गोप्रदानं तारयते सप्त पूर्वान् परांस्तथा ।'

(वसिष्ठः)

'गोदान सात पीढ़ीके पूर्वजों तथा सात पीढ़ीके आगे होने-वाले वंशजोंका निस्तार करती है।'

यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥
(याज्ञवल्क्यः)

'सोनेके सींग और चाँदीके खुर आदिसे परिपूर्ण गौका देना संभव न हो, तो यथासंभव दूधार गौ हो अथवा दूध देनेवाली न भी हो, किन्तु वह रोगी न हो, अत्यन्त दुबली न हो—ऐसी गौको देकर दाता स्वर्गमें पूजा-सत्कार पाता है।'

होमार्थमग्निहोत्रस्य यो गां दद्यादयाचिताम्।
त्रिर्वित्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥
(जाबालः)

'जो दाता अग्निहोत्रके होमके लिये बिना माँगे गौ (अग्निहोत्रीको) देता है, उसे तीन वार धन-धान्यपूर्ण पृथिवीके दानके समान पुण्य होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।'

भूमिदानका महत्त्व

षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः।
उच्छेत्ता चानुमन्ता च तावन्ति नरके वसेत् ॥
(बृहस्पतिः)

'भूमिदान करनेवाला पुरुष साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है और जो दी हुई भूमि हरण करता है या हरण करनेकी सलाह देता है, वह उतने ही वर्ष नरकमें रहता है।'

प्रादेशमात्रां भूमिं तु यो दद्यादनुपस्कृताम्।
न स सीदति कृच्छ्रेण न च दुर्गाण्युपाश्नुते ॥

मुदितो राजते प्राज्ञः शक्रेण सह नन्दति।
यावन्ति लाङ्गलमुखेन रजांसि भूमे-
र्भासां पतेदुंहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत्
भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः॥

(महाभारत)

'जो बिना साज-सामग्रीके बित्ताभर भी भूमिका दान करता है, उसे न तो कभी क्लेश होता है और न नरकोंकी ही प्राप्ति होती है। वह बुद्धिमान् प्रसन्नमुख होकर शोभा पाता है और इन्द्रके साथ विहार करता है।

जो मनुष्य इस लोकमें भूमिदान करता है वह उतने युगोंतक शिवलोकमें रहता है जितने कि हलके फालसे भूमिकी धूलियाँ उड़ती हैं और जितने कि सूर्यकी पुत्रीके शरीरमें रोएँ होते हैं।'

गोचर्ममात्रां यः पृथ्वीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
सर्वदः स तु विज्ञेयः शक्रवद्दिवि मोदते॥
ग्रामं वा नगरं वापि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
क्षेत्रं वा सस्यसम्पन्नं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(विश्वामित्रः)

'जो केवल गऊके चामके बराबर भूमि ब्राह्मणको देता है उसको सब कुछ देनेवाला कहते हैं अर्थात् उसने सब कुछ दे डाला। वह इन्द्रके समान स्वर्गमें आनन्द लूटता है।

जो ब्राह्मणोंको गाँव अथवा नगर या लहलहाता हुआ अन्नका खेत देता है, उसके सब पाप कट जाते हैं।'

यत्किञ्चित्कुरुते पापं जन्मप्रभृति मानवः।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति॥

(वृद्धवसिष्ठः)

'मनुष्य जन्मसे लेकर जो कुछ भी पाप करता है उसकी

निवृत्तिके लिये यदि वह गायके चामके बराबर भी भूमिदान करे, तो वह शुद्ध हो जाता है।'

यज्ञमें दान करनेका महत्त्व

राजानो धर्मशीलाश्च महायज्ञैर्यजन्ति ते।
सर्वदानानि दीयन्ते यज्ञेषु नृपनन्दन॥
आदावन्नं तु यज्ञेषु वस्त्रं ताम्बूलमेव च।
काञ्चनं भूमिदानं च गोदानं प्रददन्ति च॥
सुयज्ञैर्वैष्णवं लोकं ते प्रयान्ति नरोत्तमाः।
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।२४–२६)

'हे राजन्! धर्मात्मा राजा लोग बड़े-बड़े महायज्ञ करते हैं और वे यज्ञोंमें सब प्रकारका दान करते हैं। यज्ञोंमें प्रारम्भमें अन्न, वस्त्र, पान, सुवर्ण, गौ और भूमिका दान किया जाता है। जो मनुष्य यज्ञोंमें दान करते हैं, वे यज्ञके प्रतापसे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं।'

रात्रिमें दान करनेका निषेध

रात्रौ दानं न कर्तव्यं कदाचिदपि केनचित्।
हरन्ति राक्षसा यस्मात्तस्माद्दातुर्भयावहम्॥

'किसीको कभी रात्रिमें दान नहीं करना चाहिये। क्योंकि रात्रिमें किये गये दानको राक्षस हर लेते हैं, अतः वह दान दाताके लिये भयावह होता है।'

अन्यत्र लिखा है—

रात्रौ स्नानं न कर्तव्यं दानं चैव विशेषतः।
नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु॥

'रात्रिमें स्नान और विशेषतः दान नहीं करना चाहिये। ग्रहण आदिके निमित्तसे प्राप्त स्नान और दान तो रात्रिमें भी करना उचित है।'

यज्ञादिमें वह्निवासका मुहूर्त

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता
शेषे गुणे३ ऽभ्रे० भुवि वह्निवासः।
सौख्याय होमे शशि१ युग्म२ शेषे
प्राणार्थनाशो दिवि भूतले च॥

(मुहूर्तचिन्तामणि)

"[1]शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे तिथिकी संख्या गिनकर (जिस दिन वह्निवास [अग्निस्थापन] का मुहूर्त प्राप्त होता हो, वहाँ तककी तिथिकी संख्या गिनकर) उसे जोड़ दे। फिर उसमें रवि आदिकी वर्तमान संख्याको जोड़ दे। जो जोड़ आवे, उसमें एक और जोड़ दे, फिर उसमें चारका भाग दे। चारका भाग देनेसे यदि तीन और शून्य (०) शेष रहे, तो अग्निका वास भूमिमें रहता है, जिसमें हवन करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है। यदि एक शेष रहे, तो अग्निका वास स्वर्गमें रहता है और दो शेष रहे, तो अग्निका वास

१—यह स्मरण रखना चाहिये कि शुक्ल पक्षमें अग्निस्थापन करना हो, तो शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे इष्टदिन (जिस दिन अग्निस्थापन करना हो) पर्यन्तकी तिथि ही वर्तमान तिथि होती है और कृष्ण पक्षमें अग्निस्थापन करना हो, तो वर्तमान तिथिमें शुक्ल पक्षकी १५ तिथि और जोड़ देनेसे वर्तमान तिथिकी संख्या होती है।

उदाहरण—जैसे संवत् २०२३ चैत्र कृष्ण पञ्चमी गुरुवारको अग्निस्थापन करना हो, तो कृष्ण पक्षकी तिथिसंख्या ५ में शुक्ल पक्षकी १५ तिथिसंख्या जोड़ देनेसे वर्तमान तिथिसंख्या २० हुई। इसमें वार संख्या ५ जोड़नेसे २५ हुआ, फिर इसमें संख्या १ और जोड़नेसे २६ हुआ, फिर इसमें ४ का भाग देनेसे २ शेष बचा। अतः उस दिन अग्निवास पातालमें रहेगा, जो कि शुभप्रद नहीं है।

पातालमें रहता है। अतः उस समय हवन करनेसे कर्ताका मरण और धनका नाश होता है।'

> शुक्लादितः सैकतिथिर्दिनाढ्या
> वेदै४र्हृता चेद् गुण ३ शून्य० शेषे।
> अग्नेर्निवासो भुवि सौख्यकारी
> शशि १ द्वि २ शेषे न सुखस्य लेशः॥
> (मुहूर्तकल्पद्रुम)

'शुक्ल आदि पक्षमे वह तिथि जिसमें कर्म हो उसकी संख्या ५ या १० जो भी हो उसमें वर्तमान वारकी संख्या जोड़कर १ संख्या और जोड़ देनी चाहिये। फिर ४ से भाग देने पर यदि ३ या शून्य (०) शेष रहे, तो अग्निका वास भूमिमें होता है और वह सुखकारी होता है। यदि १ या २ शेष रहे, तो सुखका लेश भी नहीं होता।'

यज्ञादिमें वह्निवासका विचार आवश्यक है

> अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा।
> आहुतिर्वह्निवासश्च विलोक्यौ शान्तिकर्मणि॥

'अग्निकी स्थापनाके समय अथवा पूर्णाहुतिके अवसर पर तथा शान्तिकर्ममें होमाहुति और अग्निवासका विचार अवश्य करना चाहिये।'

कतिपय कार्योंमें वह्निवासका विचार अनावश्यक है

> दुर्गाहोमविधौ विवाहसमये सीमन्तपुत्रोत्सवे
> गर्भाधानविधौ च वास्तुसमये विष्णोः प्रतिष्ठादिषु।
> मौञ्जीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके
> होमे नित्यभवे न दोषकथनं चक्रस्य वह्नेरपि॥
> (संस्कारभास्कर)

'दुर्गाहोममें, विवाहके अवसर पर, सीमन्तोत्सव और पुत्रोत्सवके अवसरमें, गर्भाधानके समयमें, वास्तुशान्तिके समयमें, भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा आदिके समयमें, व्रतबन्धमें, वैश्वदेवमें, संस्कार-निमित्तक होममें, नित्य होममें, अग्निके स्वर्ग तथा भूतल-वासजनित दोष और दुष्ट ग्रहोंके मुँहमें होमाहुतिनिपातका दोष नहीं होता है।'

विवाहयात्राव्रतगोचरेषु,
चूडोपनीतग्रहणादिकेषु।
दुर्गाविधानेषु सुतप्रसूतौ
नैवाग्निचक्रं परिचिन्तनीयम्॥

आभिचारिकहोमेषु दुर्गाहोमे च गोचरे।
क्षुद्रहोमे तथोत्पाते नाग्निचक्रं विचिन्तयेत्॥
गर्भाधानादिसंस्काराद् यावच्च पितृमेधकम्।
अग्निचक्रं च नालोक्यं प्राप्तकाले यथोचितम्॥
नवरात्रादिहोमेषु तथा शान्त्यादिहोमसु।
वास्तुहोमे तथान्येषु प्राप्तकाले चरेत्सुधीः॥

मखे यागहोमे महारुद्रकुण्डे
शते चण्डिका-लक्षकोटिश्च होमे।
गृहे शान्तिके पौष्टिके स्थण्डिले न
विलोक्यं बुधैरग्निचक्रं मुनीन्द्रैः॥

लक्षकोटिहवने मखेऽखिले
चातिरुद्रकरणे महाविधौ।
वापी-कूप-भवने सुरालये
देवखात-सुरपूजनंकुण्डके॥

सम्प्रदिष्टकरणादिकचण्ड्यां
मन्त्रजाप्यविधिशान्तिकपौष्टे।

ग्रामवेशनकृते नृणां तथा
न वह्निचक्रमवलोकयेत् सुधीः ॥
(ज्योतिर्निबन्ध)

'विवाह, यात्रा तथा व्रतके सम्बन्धमें, चूड़ाकर्म, उपनयन, ग्रहण आदिमें, दुर्गाविधिमें और पुत्रोत्पत्तिमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये।

आभिचारिक सब होमोंमें, दुर्गाहोममें, ग्रहगोचरमें, छोटे-बड़े होममें तथा उत्पातमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये।

गर्भाधानादि संस्कारोंसे लेकर पितृमेध-कर्म तकमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये। जिसका जब काल प्राप्त हो तब यथोचित कर्म करना चाहिये।

बुद्धिमान् पुरुष नवरात्र आदिके होमोंमें, शान्ति आदिके निमित्त किये गये होमोंमें, वास्तुहोममें तथा अन्य होमोंमें अग्निचक्रका विचार न करे। प्राप्त कालमें यथाविधि तत्सम्बन्धी हवनादि कार्य करे।

शतचण्डीहोममें, लक्षहोम तथा कोटिहोममें, ग्रहशान्तिक होममें, पौष्टिक कर्ममें और स्थण्डिल होममें विद्वान् मुनिश्रेष्ठोंको अग्निचक्र नहीं देखना चाहिये।

लक्षहोम तथा कोटिहोममें, समस्त मखोंमें, अतिरुद्र महायागमें, बावड़ी, कूप, भवन, देवमन्दिर, तालाव और देवपूजनके कुण्डके विषयमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये।

जिसके करने आदि (साधन आदि) का आदेश हो चुका (राजा, गुरु आदि द्वारा) ऐसी शतचण्डी आदिमें, शान्तिक या पौष्टिक मन्त्र-जपकी विधिमें एवं मनुष्योंके ग्रामप्रवेशके विषयमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये।'

नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचिन्तयेत्।
ग्रहणोद्वाहगएडान्ते तथा दुर्गोत्सवेऽपि च ॥

Scanned by CamScanner

तदाग्निचक्रं नालोक्यं ग्रहशान्तौ विचारयेत् ॥
व्रतबन्धे विवाहे च नवरात्रे च नित्यके ।
कुलदेवार्चने धीमान् न कुर्यादग्निचिन्तनम् ॥
विवाहचूडाव्रतबन्धगोचरे
उत्पातशान्तिग्रहणे युगादौ ।
दुर्गाविधाने सततं प्रसूतौ
नैवाग्निचक्रं परिशोधनीयम् ॥
विवाहे व्रतबन्धे च यजने मधुसूदने ।
दुर्गायां पुत्रजन्मादौ अग्निचक्रं न दृश्यते ॥
दुर्गभङ्गे गृहे चापि विवादे शत्रुविग्रहे ।
शान्तिके च नृपक्रोधे चक्रं नात्रावलोकयेत् ॥
(निर्णयसिन्धु)

'नित्य और नैमित्तिक दुर्गाहोम आदिमें, ग्रहणमें, विवाहमें गण्डान्तमें एवं दुर्गोत्सवमें भी अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये ।

बुद्धिमान् पुरुष व्रतबन्धमें (उपनयनमें),विवाहमें, नित्य नवरात्र-विधिमें और कुलदेवताके पूजनमें अग्निचक्रका विचार न करे ।

विवाहमें, चूड़ाकरणमें, व्रतबन्धके विषयमें, उत्पात-शान्ति और ग्रहणमें, युगादिमें, दुर्गाविधानमें और पुत्रोत्पत्तिमें अग्निचक्रका कदापि परिशोधन नहीं करना चाहिये ।

विवाहमें, उपनयनमें, भगवान् विष्णुके पूजनमें (यज्ञमें), दुर्गाविधिमें और पुत्रजन्ममें अग्निचक्र नहीं देखा जाता है ।

दुर्ग-भङ्ग होने (किला ढहने) पर, घर गिरने पर, विवाद होने पर, शत्रुके साथ युद्ध होने पर, शान्तिक कर्ममें और राजाका कोप होनेपर अग्निचक्र नहीं देखना चाहिये ।'

आधाने सोमपाने च कोटिहोमे तथायुते।
रुद्रादिशतचण्ड्यां च नाग्निचक्रं विधीयते॥
नित्ये नैमित्तिके चैव शान्त्याख्ये वास्तुकर्मणि।
काम्यहोमेषु सर्वेषु नाग्निचक्रं विलोकयेत्॥

'आधानमें (गर्भाधान या अग्न्याधानमें), सोमपान (सोमयाग) में, कोटिहोममें, अयुत (दशसहस्र) होममें, रुद्र, महारुद्र, अतिरुद्र आदिमें तथा शतचण्डीमें अग्निचक्रका विचार नहीं किया जाता।

नित्य, नैमित्तिक कर्मोंमें, शान्तिक-कर्ममें, वास्तुकर्ममें एवं समस्त काम्य होमोंमें अग्निचक्र नहीं देखना चाहिये।'

'नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत्।'
(शारदातिलक, ३य पटल)

'नित्य और नैमित्तिक दुर्गाहोम आदिमें अग्निचक्रका विचार नहीं करना चाहिये।'

संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे।
नित्ये नैमित्तिके कार्ये न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः॥
(शान्तिसार)

'वह्निवासका विचार गर्भाधानादि संस्कारोंमें और विष्णु-यागादिमें नहीं करना चाहिये। नित्य, नैमित्तिक कर्मोंमें तथा वर्षगाँठमें मुनियोंने वह्निवासका विचार नहीं कहा है।'

नाग्निचक्रविचारस्तु कार्यः सर्वत्र धीमता।
प्रधानो यत्र होमः स्यात्तत्रैव तु सुनिश्चितः॥
वास्तुशान्त्यां प्रतिष्ठायां शिलान्यासे तथैव च।
प्रायश्चित्ते तुलादौ च वह्निचक्रं न चिन्तयेत्॥
आधाने च वृषोत्सर्गे व्रतस्योद्यापने तथा।
नित्ये नैमित्तिके चैव वह्निचक्रं न चिन्तयेत्॥

व्रतबन्धे विवाहे च यजने मधुसूदने।
दुर्गाहोमे तथा नित्ये वह्निचक्रं न चिन्तयेत॥
वापीकूपतडागेषु प्रतिष्ठोद्यापने तथा।
आरामे च वृषोत्सर्गे वह्निचक्रं न चिन्तयेत्॥

'बुद्धिमान् पुरुषको सर्वत्र अग्निवासका विचार नहीं करना चाहिये। जहाँ प्रधान देवताका होम हो, वहाँ ही वह्निवासका विचार करना आवश्यक है।

वास्तुशान्तिमें, प्रतिष्ठामें, शिलान्यासमें, प्रायश्चित्तमें और तुलादान आदिमें वह्निवासका विचार अनावश्यक है।

आधानमें, वृषोत्सर्गमें, व्रतके उद्यापनमें, नित्य एवं नैमित्तिक कार्यमें वह्निवासका विचार अनावश्यक है।

व्रतबन्धमें, विवाहमें, विष्णुके यज्ञमें, दुर्गाके होममें और नित्यकर्ममें वह्निवासका विचार अनावश्यक है।

वापी, कूप, तालाव आदिके उत्सर्गमें, प्रतिष्ठामें और उद्यापनमें एवं बगीचा और वृषोत्सर्गमें वह्निवासका विचार अनावश्यक है।'

निष्काम यज्ञके लिये मुहूर्तका विचार अनावश्यक है

सकाम यज्ञके लिये तो मुहूर्तादिके विचारकी आवश्यकता होती है, किन्तु निष्काम-भाव (भगवत्प्रीत्यर्थ) से किये जानेवाले यज्ञके लिये मुहूर्तादिके विचारकी विशेष आवश्यकता नहीं होती है।

'न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।'
(शतपथ ब्रा० २।१।३।९)

'मैं इस कार्यको कल करूँगा, फिर कभी करूँगा, ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि कोई मनुष्य कलतक जीवित रहेगा, इसको कौन जानता है।'

अतः मनुष्यको नाशवान् शरीरका तनिक भी विश्वास न करते हुए सर्वदा यज्ञ करना चाहिये।

लिखा भी है—

यदैव जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।
तदैव पुण्यकालोऽयं यतोऽनियतजीवितम्॥
अतः सर्वेषु कालेषु यज्ञारम्भः शुभप्रदः।
(परशुरामः)

'जभी धन हो और चित्त श्रद्धायुक्त हो तभी यह पुण्यकाल है, क्योंकि जीवन सदा रहनेवाला नहीं है। इसलिये सब समयोंपर यज्ञका आरम्भ शुभप्रद है।'

ईश्वराराधनार्थं च सर्वपापापनुत्तये।
यदि रुद्राद्यनुष्ठानं न मुहूर्तादि चिन्तयेत्॥
(दीपिका)

'ईश्वरके आराधनके लिये तथा समस्त पापोंकी निवृत्तिके लिये यदि कोई रुद्र (रुद्रयागादि)का अनुष्ठान करे,तो उसके लिये मुहूर्तके विचारकी आवश्यकता नहीं है।'

यज्ञमें ब्राह्मणोंकी संख्याका और शुभाशुभ समयका विचार अनावश्यक है

यथालाभस्थितैर्विप्रैर्ज्ञानशीलैर्विचक्षणैः।
न संख्यानियमश्चात्र ब्राह्मणानां नरोत्तम॥
न कालनियमश्चैव स्वेच्छया यज्ञ उच्यते।
अतः सर्वेषु कालेषु यज्ञं कुर्याद् द्विजोत्तमः॥

'यज्ञमें जितने भी ज्ञानवान् ब्राह्मण प्राप्त हो जायँ,उतने ही यज्ञमें प्रविष्ट कर लेना चाहिये। क्योंकि यज्ञमें ब्राह्मणोंकी संख्याके लिये

और शुभाशुभ समयके लिये कोई खास विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। यज्ञमें यजमानकी श्रद्धा-भक्ति ही प्रधान है। अतः उत्तम द्विज सभी समयमें यज्ञ करे।'

प्रत्येक शुभावसरपर विष्णुयाग हो सकता है

द्वादश्यामिष्टिकाले तु संक्रान्तौ श्राद्धवासरे।
अयनेषु विवाहादौ व्रतबन्धे च सद्मनि॥
वापी-कूप-तडागादौ प्रपारामप्ररोपणे।
नवान्ने जन्मदिवसे विष्णुयागं समारभेत्॥
दोलायां चोत्सवे प्राप्ते शयन्यां बोधवासरे।
परिवर्त्ये उपाकर्म-गोदाने दानकर्मणि॥
यात्रादौ ग्रहणे चैव प्रायश्चित्ते विशेषतः।
प्रतिष्ठायां हरेर्दोलारोहणे विजयोत्सवे॥
कार्तिके मार्गशीर्षे च मकरे मेषभास्करे।
मलिम्लुचे सिनीवाल्यां युगमन्वादिवासरे॥
रथयात्रादमनकपवित्रारोपणेषु च।
अवतारजयन्तीषु वैष्णवानां समागमे॥
एवं होमं विधायाथ वैष्णवं वैष्णवोत्तमः।
नैमित्तिकं ततः कुर्यादाज्ञेयं परमात्मनः॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा घृतेन मुनिसत्तमाः।
जलेन विधिना सम्यक् परिषिच्य समन्ततः॥
ततः पूर्णाहुतिं दद्याद् वैष्णवैर्ब्राह्मणैः सह।

'द्वादशी तिथिमें, इष्टिकालमें (दर्शपौर्णमासेष्टिमें), अमावास्या और पौर्णमासीमें, संक्रान्तिके दिन, श्राद्धके दिन, विवाह आदिमें, उपनयनमें, गृहप्रवेशके अवसरपर, बावड़ी, कूप, तालाव आदिके निर्माण करनेपर, पौसरा (प्याऊ) बैठाने और बगीचा

लगानेके समयमें, नवान्न ग्रहण करनेके समयमें (चैत्र और आश्विनमें) और जन्मदिनमें (वर्षगांठके अवसरमें) विष्णुयागका आरंभ करना चाहिये। दीक्षा लेनेके समय, कोई उत्सव प्राप्त होनेपर, शयनी एकादशीपर, बोधिनी एकादशीपर, पार्श्ववर्तिनी एकादशी पर, श्रावणीप्रयोग, समावर्तन, भूमिदान आदि दानोंके समय, यात्रा आदिमें, ग्रहणके समयमें, प्रायश्चित्त करनेके समयमें, विशेषरूपसे प्रतिमा या मन्दिरकी प्रतिष्ठामें, भगवान् श्रीहरिके झूलनोत्सवमें, विजयोत्सवमें, कार्तिकमें, मार्गशीर्षमें, मकर या मेषके सूर्यमें (माघ अथवा वैशाखमें), मलमासमें, उस अमावास्यामें, जिसमें चन्द्रकला दिखलाई देती है। युगादिमें, मन्वादि तिथियोंमें, रथयात्रामें, दमनकमें, पवित्रारोपणमें, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि अवतार जयन्तियोंमें तथा वैष्णवोंके समागममें वैष्णवश्रेष्ठ पुरुष वैष्णव (विष्णुके निमित्तका) होम कर तदनन्तर नैमित्तिक कर्म करें, ऐसी परमात्माकी आज्ञा है। उसके बाद हे मुनीश्वरो, घीसे स्विष्टकृत् होमकर चारों ओर जलका भलीभाँति सिंचन (छिड़काव) कर वैष्णव ब्राह्मणोंके साथ पूर्णाहुति देनी चाहिये।'

विष्णुयाग दो पक्षमें भी हो सकता है

'शुक्लपक्षमारभ्य कृष्णपक्षतृतीयभागपर्यन्तं वैष्णवयागं (विष्णुयागं) कुर्यात्।' (नृसिंहपुराण)

'शुक्ल पक्षसे लेकर कृष्ण पक्षके तृतीय भाग अर्थात् कृष्ण पक्षकी पञ्चमी-पर्यन्त विष्णुयाग करे।'

विष्णुयागका मुहूर्त

(मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र और योगादिका विचार)

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघमासेऽपि कर्तव्यो विष्णुयागः शुभावहः॥
शुक्लपक्षे द्वितीयायां तृतीयायां तथैव च।
पञ्चम्यामथ सप्तम्यां दशम्यां च विशेषतः॥
त्रयोदश्यां च कर्तव्यो द्वादश्यां च विशेषतः।
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'चैत्रमें या फाल्गुनमें अथवा ज्येष्ठमें या वैशाखमें तथा माघमें विष्णुयाग करना चाहिये। इन मासोंमें किया गया विष्णुयाग मङ्गलकारी होता है।

शुक्ल पक्षकी द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी तथा द्वादशीको विष्णुयाग करना चाहिये। इन तिथियोंमें दशमी, त्रयोदशी और द्वादशीमें विष्णुयाग करना विशेष उत्तम होता है।'

कार्तिके मार्गशीर्षे वा श्रावणे माधवे तथा।
विष्णुयागः प्रकर्तव्यः सर्वपापापनुत्तये॥
उत्तरायणशुक्ले वाऽथवा श्रद्धा यदा भवेत्†।

'समस्त पापोंकी निवृत्तिके लिये कार्तिकमें, मार्गशीर्षमें, श्रावणमें और वैशाख मासमें विष्णुयाग करना चाहिये। अथवा उत्तरायणमें शुक्ल पक्षमें यज्ञ करे अथवा जब श्रद्धा उत्पन्न हो तब यज्ञ करे।'

फाल्गुने वाऽथ चैत्रे वा माघ-वैशाखयोरपि।
ज्येष्ठमासे तथा पौषे विष्णुयागः प्रशस्यते॥

---

† 'अधिकमासेऽपि विष्णुयागः कार्यः' इति केषाञ्चिन्मतम्।

'अधिकमासमें भी विष्णुयाग करना चाहिये, ऐसा कुछ आचार्योंका मत है।

द्वितीया-पंचमी-षष्ठी-सप्तमी-नवमी तथा ।
द्वादश्येकादशी ग्राह्या विष्णुयागाख्यकर्मणि ॥
आर्द्राशतभिषास्वातीरोहिणीश्रवणं मृगः ।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा ज्येष्ठाश्लेषा च रेवती ॥
चित्रा हस्तो धनिष्ठा स्यादनुराधा च सिद्धिदा ।
पुनर्वसुगुरोर्वारे द्वादश्यां श्रवणे तथा ॥
मृगशीर्षे तदा योगे विष्णुः सर्वार्थसाधकः ।

(नारदसंहिता)

'फाल्गुन अथवा चैत्र या माघ, वैशाख या ज्येष्ठ और पौषमें भी विष्णुयागका अनुष्ठान प्रशंसनीय होता है ।

विष्णुयागके अनुष्ठानमें द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, नवमी, द्वादशी तथा एकादशी तिथियाँ ग्राह्य कही गई हैं ।

आर्द्रा, शतभिषा, स्वाती, रोहिणी, श्रवण, मृगशिरा पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, चित्रा, हस्त और धनिष्ठा नक्षत्रोंमें विष्णुयागका अनुष्ठान किया जाय, तो सिद्धि प्राप्त होती है ।

गुरुवारको पुनर्वसु नक्षत्र हो, द्वादशीको श्रवण तथा मृगशिरा नक्षत्र पड़े, तो ऐसे योगमें किया गया विष्णुयाग सब मनोरथोंको पूर्ण करता है ।'

द्वादश्यां विष्णुयजनमिष्टसम्पत्करं विदुः ।
श्रावणे विष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदं भवेत् ॥

'द्वादशी तिथिमें जो विष्णुयाग किया जाता है, वह अभिलषित सम्पत्तिकारक कहा जाता है और श्रावणमें जो विष्णुयाग किया जाता है वह अभीष्ट आरोग्यको देता है ।'

उत्तरासु च सर्वासु रोहिण्यां श्रवणे तथा।
आर्द्रा ज्येष्ठा च मूलं च आषाढा पुष्य एव च ॥
(नारदपञ्चरात्र)

'सब उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरा भाद्रपदा) रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा तथा पुष्य—ये नक्षत्र विष्णुयागके लिये उत्तम कहे गये हैं।'

सौभाग्यः शोभनायुष्मान् सिद्धिः साध्यः शुभः शिवः।
वृद्धिः प्रीतिर्धृतिः सिद्धिर्ध्रुवः शुक्लस्तु शोभनः ॥
सोमो बृहस्पतिश्चैव भार्गवोऽथ बुधस्तथा।
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'सौभाग्य, शोभन, आयुष्मान्, सिद्धि, साध्य, शुभ, शिव, वृद्धि, प्रीति, धृति, सिद्धि, ध्रुव, शुक्ल और शोभन योग तथा सोम, बृहस्पति, शुक्र और बुधवार—ये विष्णुयागके लिये उत्तम कहे गये हैं।'

पुत्रप्राप्त्यर्थ विष्णुयागका मुहूर्त

शुक्लपक्षे शुभे वारे सुनक्षत्रे सुगोचरे।
द्वादश्यां पुत्रकामाय चरुं कुर्वीत वैष्णवम् ॥
दम्पत्योरुपवासः स्यादेकादश्यां सुरालये।
प्राप्नुयाद् वैष्णवं पुत्रमचिरात् सन्ततिक्षमम् ॥
(ऋग्विधान)

'पुत्रकी प्राप्तिके लिये शुक्ल पक्षमें, शुभ वारमें, शुभ नक्षत्रमें, द्वादशी तिथिमें जब कि समस्त ग्रह शुभ स्थानमें हों तब विष्णुयाग करना चाहिये। दम्पति (पति और पत्नी) को एकादशी तिथिमें किसी देवमन्दिरमें उपवास करना चाहिये। ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र सुयोग्य विष्णुभक्त पुत्रकी प्राप्ति होती है।'

रुद्रयागका मुहूर्त

(मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र और योगादिका विचार)

दास्रे पौष्णे ध्रुवे रौद्रे हस्तपश्चादिति द्वये।
दिनेऽर्के भौमवारे च रुद्रारम्भः प्रशस्यते ॥

'अश्विनी, रेवती, आर्द्रा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य तथा ध्रुव नक्षत्रोंमें रविवार तथा मङ्गलवारको रुद्रयागका प्रारम्भ उत्तम होता है।'

सौम्यायने दूषणमुक्तवासरेऽ-
निशं महाहोमविधिं समाचरेत्।
पूर्णां जयानन्दवतीनसद्दिने
सुगोचरे वैकृतकाल (कुयोगरहिते) वर्जिते ॥
हुताशनाधानहितर्क्षवर्जे शैव (आर्द्रा) श्रवाजांघ्रि
(श्रवणरोहिणि पूर्वाभाद्रपद) शया (हस्त) न्वितेऽस्मिन्।
विदुर्महारुद्रमुखाननेकान्
होमानभिज्ञा हि सुयोगयोगे ॥
(ज्योतिर्विदाभरण)

'जब कि सूर्य उत्तरायणमें हों, दोषोंसे रहित दिन हो, शुभ ग्रहोंका गोचर हो, कुयोग न हो अथवा जया[1], या नन्दा[2], पूर्णा[3] तिथियाँ हों तथा सूर्यप्रभृति शुभ ग्रहोंके दिन हों, तब महारुद्रहोमकी विधि करना श्रेष्ठ है।

---

१ जया-तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीको 'जया' कहते हैं।
२ नन्दा-प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीको 'नन्दा' कहते हैं।
३ पूर्णा-पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमाको 'पूर्णा' कहते हैं।

विद्वान् पुरुष आर्द्रा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त आदि अग्न्याधानमें शुभकारक नक्षत्रसमूहसे युक्त इस शुभ मुहूर्तमें महारुद्र आदि अनेक होमोंका प्रतिपादन करते हैं।'

वैशाखे श्रावणे मासे चाश्विने मार्गशीर्षके।
माघ-फाल्गुनयोर्वापि सिते पक्षे शुभे दिने॥
रुद्रारम्भः प्रकर्तव्यः पुत्र-पौत्रादिवृद्धये।

(पाराशरः)

'वैशाख, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्ष एवं शुभ दिनमें पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धिके लिये रुद्रयाग करना चाहिये†।'

अनध्यायतिथिं रिक्तां तथा षष्ठीं विहाय च।
इतरासु च कर्तव्यो रुद्रारम्भः शुभप्रदः॥

(संग्रहे)

'अनध्याय तिथि, रिक्ता तिथि तथा षष्ठी तिथिको छोड़कर अन्य तिथियोंमें रुद्रयज्ञका प्रारम्भ शुभप्रद होता है।'

अम्बायज्ञका मुहूर्त

कर्कटे सोमवारे च नवम्यां मृगशीर्षके।
अम्बां यजेत् भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम्॥

(विद्येश्वरसंहिता १६)

'कर्क लग्नमें, सोमवारमें, नवमीमें और मृगशिरामें ऐश्वर्याभिलाषी समस्त भोग और फलको देनेवाली अम्बाका यजन (पूजन) करे।

---

† 'कार्तिके स्वर्णलाभः स्यात्' इति केचिद् वदन्ति। कार्तिक मासमें रुद्रयज्ञ करनेसे सुवर्णकी प्राप्ति होती है, ऐसा कुछ लोगोंका कहना है।

यज्ञादिमें विहित नक्षत्र और योग

'हस्तमैत्रमृगपुष्यत्र्युत्तरा अश्विपौष्णशुभयोगसौख्यदाः ।'

(मुहूर्तसंग्रह)

'अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, अनुराधा और रेवतीनक्षत्र एवं प्रीति, सिद्धि, साध्य, शुभ, शोभन और आयुष्मान् योग हों, तो ये सब प्रकारका सुख देते हैं ।'

यज्ञादिमें विहित वार

'सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।'

(रत्नमाला)

'यज्ञादि शुभ-कर्मोंमें सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार ये सिद्धिप्रद कहे गये हैं ।'

गुरु और शुक्रके अस्तमें शान्तिक* पौष्टिक‡ कर्म करनेका विचार

शान्तिकर्माणि कुर्वीत रोगे नैमित्तिके तथा ।
गुरु-भार्गवमौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते ॥

(दीपिका)

'रोग तथा अन्यान्य निमित्तोंके उपस्थित होनेपर गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर भी शान्तिकर्म करना उचित है, ऐसा करनेमें कोई दोष नहीं होता ।'

अन्यत्र लिखा है—

चरध्रुवदितिप्रमघाविशाखाग्न्यन्तेषु शान्तिः सह पौष्टिकेन ।
विधौ सुखेऽर्के दशमे गुरौ च तनौ सदा स्यात्सति कारणे च ॥

---

* ग्रहपीठोत्पातादिशान्तये यद् होमादिकं तच्छान्तिकम् ।

‡ आयुर्द्रव्यादिवृद्ध्यर्थं यत्कर्म तत्पौष्टिकम् ।

'चर (पुनर्वसु आदि), ध्रुव (रोहिणी आदि) तथा क्षिप्र एवं मघा, विशाखा, कृत्तिका नक्षत्रोंमें पुष्ट्यर्थ किये गये यज्ञ-यागके साथ शान्तिके लिये याग होता है जब कि चन्द्रमा सुखस्थान (चतुर्थ स्थान) में, सूर्य दशम स्थानमें तथा बृहस्पति लग्नमें हों।'

प्रत्येक ऋतुमें लक्ष्मीनारायण यज्ञ करनेका भिन्न-भिन्न फल

वसन्ते लभते पुत्रं ग्रीष्मे सम्पत्तिमुत्तमाम्।
वर्षायां च महत्सौख्यं शारदे धनवर्द्धनम्॥
हेमन्ते लभते सर्वं शिशिरे च परां गतिम्।
(प्रयोगसार)

'लक्ष्मीनारायण यज्ञको वसन्त ऋतुमें करनेसे पुत्रकी प्राप्ति, ग्रीष्म ऋतुमें करनेसे उत्तम सम्पत्तिकी प्राप्ति, वर्षा ऋतुमें करनेसे महान् सुख, शरद् ऋतुमें करनेसे धनकी वृद्धि, हेमन्त ऋतुमें करनेसे समस्त वस्तुओंकी प्राप्ति और शिशिर ऋतुमें करनेसे परम श्रेष्ठ गति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।'

‡ विष्णुयज्ञका महत्त्व

वेदोंमें लिखा है कि यज्ञ ही विष्णु है और विष्णु ही यज्ञ है—

‡ विष्णुयज्ञको 'परब्रह्मयज्ञ' भी कहा जा सकता है। क्योंकि विष्णुसहस्रनाममें भगवान् विष्णुको 'परब्रह्म' कहा गया है। अतः विष्णु ही परब्रह्म हैं। परब्रह्म पदसे तो वेदान्तप्रतिपाद्य मुक्तोपसृप्य, निर्गुण, निराकार, स्वप्रकाश, अद्वितीय, सर्वविधपरिच्छेदशून्य और सर्वव्यापक तत्त्व प्रतीत होता है, जो कि समस्त कर्मोंका फलभोक्ता और तत्त्वतः सर्वान्तरात्मा होनेके कारण 'परब्रह्म' ही है। इसीलिये प्रत्येक कर्मके अन्तमें 'ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु' कहकर परमेश्वरको प्रत्येक कर्म अर्पण किया जाता है। यह बात श्रीमद्भगवद्गीताके ॐ तत्सदिति निर्देशः' (१७। २३-२८) आदि वचनोंमें कही गई है।

यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयब्रा० १।२।५।४०)
यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३।८।५२)
यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयब्रा० १।४।३)
यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयब्रा० १।८।२।२)
यज्ञो वै विष्णुः। (ऐतरेयब्रा० १।१५)
यज्ञो वै विष्णुः। (ऐतरेयब्रा० ३।४)
यज्ञो वै विष्णुः। (शतपथब्रा० १।१।१।२)
यज्ञो वै विष्णुः। (शतपथब्रा० १।१।२।१३)
यज्ञो वै विष्णुः। (शतपथब्रा० ५।४।५।१६)
यज्ञो वै विष्णुः। (शाङ्खायनब्रा० ४। २)
यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्तिरीयसंहिता १।७।४)
यज्ञो वै विष्णुः। (तैत्ति० शा० २।५।७।३)
यज्ञो ह वै विष्णुः। (शतपथब्रा० १६।१।१)
विष्णुर्वै यज्ञः। (ऐतरेयब्रा० १।१५)
विष्णुर्वै यज्ञः। (कपि० शा० ३५।६)
विष्णुर्वै यज्ञः। (तैत्ति० शा० ६।२।८।७)
विष्णुर्वै यज्ञः। (मै० शा० ४।६।२)
यो वै विष्णुः स यज्ञः। (शतपथब्रा० ५।२।३।६)

भागवत आदि पुराणोंमें तो सभी यज्ञोंको विष्णुपरक ही स्वीकार किया है—

वासुदेवपरा मखाः। (भागवत १।२।२८)
नारायणपरा मखाः। (भागवत २।५।१५)
नारायणपरा यज्ञाः। (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ८०।६२)
नारायणपरा यज्ञाः। (ब्रह्मपुराण ६०।२६)
नारायणपरो यज्ञः। (मत्स्यपुराण २४७।३६)

विष्णुयागसमो यागो जगत्स्वपि न विद्यते।
अनेनाराधितो विष्णुः प्रसीदत्येव सत्वरम्॥ १॥
सर्वकामार्थसिद्धिश्च सर्वफलवितानकः।
सच्चिदानन्दरूपस्य श्रीविष्णोस्तोषकृत्सदा॥ २॥
यागेषु चैव सर्वेषु कर्तव्येषु च पुत्रक।
नैतादृशो भवेत्तात सर्वाशुभविनाशकः॥ ३॥
सर्वपापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यासमानि च।
नेदृशं मुनिशार्दूल पावनं सर्वदेहिनाम्॥ ४॥
कृत्वा कोटिसहस्राणि पापानि सुबहून्यपि।
निमेषार्द्धेन यागस्य करणेनैव नश्यति॥ ५॥
विष्णुतोषणकृच्चात्र कर्त्ता चैव सदोच्यते।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः॥ ६॥
तिष्ठन्ति यागभूमौ च यज्ञरक्षणतत्पराः।
नात्र विघ्नो न हिंसा च विद्यते च कदाचन॥ ७॥
सर्वोपद्रवनाशाय कर्तव्यो हितमिच्छता।
अनेनैव तु यागेन भूमिशुद्धिः प्रजायते॥ ८॥
विष्णोरायतने चैव विष्णुयागः प्रशस्यते॥ ९॥
स्वगृहे मण्डपे चैव विष्णुयागः प्रशस्यते।
विष्णुरुचिकरो लोके विष्णुसायुज्यकारणम्॥ १०॥
विष्णुयागसमं नान्यत् साधनं ब्रह्मगोलके।
विद्यते सर्वथा ब्रह्मन् तस्मात्कार्यो मखोत्तमः॥ ११॥

(विष्णुसिद्धान्त)

'विष्णुयागके समान श्रेष्ठ याग तीनों लोकोंमें और कोई [नहीं

है। यदि विष्णुयागद्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना की जाय तो भगवान् श्रीविष्णु अवश्यमेव शीघ्र प्रसन्न होते हैं॥१॥

विष्णुयागसे समस्त कामनाओं तथा सकल पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। यह याग सकल मनोवाञ्छित फलोंका विस्तार करनेवाला है। यह सच्चिदानन्दरूप भगवान् श्रीविष्णुको सदा प्रसन्न करनेवाला है॥ २॥

हे वत्स, करने योग्य जितने याग हैं उन सब यागोंमें इस प्रकारका (विष्णुयागके सदृश) सब अरिष्टों (अमङ्गलों) का निवारक कोई दूसरा याग नहीं है (यही केवल सब अमङ्गलोंका विनाशक है) ॥ ३ ॥

हे मुनिनायक, विष्णुयागके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्याके समान महान् पाप कट जाते हैं। इस प्रकारका सब प्राणियोंको पवित्र करनेवाला दूसरा याग नहीं है ॥ ४ ॥

कोटि सहस्र ही नहीं, असंख्य पाप करके भी एकमात्र विष्णुयागके अनुष्ठानसे ही मनुष्य आधे निमेष (पलक) में विशुद्ध हो जाता है और उसके सब पाप कट जाते हैं ॥ ५ ॥

विष्णुयाग करनेवाला यजमान सदा विष्णु भगवान्की तुष्टि (प्रसन्नता) करनेवाला कहा जाता है यानी विष्णुयागकर्ताकी सन्तोषकारीके रूपमें सब लोग प्रशंसा करते हैं।

विष्णुयागमें ब्रह्मा आदि देवगण और महायशस्वी ऋषिगण यज्ञकी रक्षामें कटिबद्ध होकर यज्ञशालामें उपस्थित होते हैं। अतएव इस यज्ञमें न तो कोई विघ्न ही उपस्थित होता है और न कभी किसी जीवकी हिंसा ही होती है ॥६—७॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सकल उपद्रवोंकी निवत्तिके

लिये विष्णुयागका अनुष्ठान करना चाहिये। एकमात्र इसी यागसे ही भूमिकी शुद्धि होती है ॥८॥

भगवान् श्रीविष्णुके मन्दिरमें विष्णुयाग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

अपने घरमें और मण्डपमें (यज्ञशाला में) भी विष्णुयागका अनुष्ठान प्रशंसनीय है। यह विष्णुयाग भगवान् विष्णुको अत्यन्त रुचिकर है और विष्णु भगवान्की सायुज्य मुक्ति इससे प्राप्त होती है। अतः केवल इसी लोकमें क्या, सारे ब्रह्माण्डमें विष्णुयागके सदृश दूसरा कल्याणका साधन (उपाय) नहीं है। इसलिये हे ब्रह्मन्, इस सर्वश्रेष्ठ यागका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ १०—११ ॥

'य इमं विष्णुयागं करोति सः परमं वैकुण्ठाख्यं पदं प्राप्नोति, सः पाप्मानं तरति, स भ्रूणहत्यां तरति, सः मृत्युं तरति, सः संसारं तरति, सोऽमृतत्वं गच्छति, ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यतामाप्नोति।'

(विष्णुसिद्धान्त)

'जो इस विष्णुयागका अनुष्ठान करता है वह वैकुण्ठ नामक परम पदको प्राप्त होता है, वह पापसे छुटकारा पाता है, वह भ्रूणहत्याके पापसे मुक्त होता है, वह संसारके आवागमनसे मुक्ति पाता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है, वह ब्रह्मसायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है और वह सालोक्य मुक्तिको प्राप्त होता है।'

विष्णुयज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि।
ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासम्भारसंयुतः॥
विष्णुयज्ञस्तथा वत्स यज्ञेषु च महानिति।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड २७। १२५)

'हे सुन्दरि, विष्णुयज्ञ सब यज्ञोंमें प्रधान यज्ञ है। ब्रह्माजीने पहले प्रचुर साज—सामग्रीसे युक्त यह यज्ञ किया था। हे वत्स— जैसे देवताओंमें विष्णु महान् हैं वैसे ही विष्णुयज्ञ सब यज्ञोंमें महान् है।'

वाजपेयादियागेभ्यो विष्णुयागो विशिष्यते।
विष्णुयागसमं पुण्यं चीयते न कदाचन॥
यद्विनश्यत्फलास्ते वै न तुल्या विष्णुयागतः।
विष्णुयागं न कुर्वन्ति जना मायाविमोहिताः॥
अवैष्णवास्ते विज्ञेया विष्णुदीक्षापरा अपि।
वैष्णवा ब्राह्मणाः सर्वे विष्णोरंशभवा यतः॥
सर्वथैव प्रकर्तव्यो विष्णुयागो द्विजोत्तमैः।
कास-श्वासादिरोगाणां क्षयादेश्चापनुत्तये॥
विष्णुयागः प्रकर्तव्यः ... ...।

'वाजपेय आदि यज्ञोंकी अपेक्षा विष्णुयाग श्रेष्ठ है। विष्णुयाग करनेसे उत्पन्न हुआ पुण्य कभी नष्ट नहीं होता है। विनाशी फल (पुण्य) वाले जो यज्ञयाग हैं वे विष्णुयागके तुल्य नहीं हैं। मायामोहित होकर जो लोग विष्णुयाग नहीं करते, उन्हें वैष्णवी-दीक्षा होने पर भी अवैष्णव ही जानना चाहिये। क्योंकि सब वैष्णव ब्राह्मण विष्णके अंशसे उत्पन्न हैं, इसलिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विष्णु-याग सर्वथा करना ही चाहिये। कास (खांसी), श्वास (दमा) आदि रोगोंके तथा राजयक्ष्मा आदि अचिकित्स्य (जिसका इलाज न हो सके) रोगोंके शमनके लिये विष्णुयाग प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।'

चकार विष्णुयज्ञं च पुरा दक्षप्रजापतिः।
विष्णुयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥
बहुकल्पान्तजीवो च जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।

'प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने विष्णुयाग किया था। विष्णुयज्ञसे बढ़कर फल प्रदान करनेवाला और कोई यज्ञ वेदमें नहीं है। विष्णु-यज्ञके प्रभावसे विष्णुयागकर्ता बहुत कल्पान्तों तक जीवित रहता है और जीवन्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है।'

'नास्ति विष्णोः परो मखः।'

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१।३११)

'विष्णुयज्ञसे बढ़कर और कोई दूसरा यज्ञ नहीं है।'

महाभारत (वनपर्व २५५। ६–१२) में लिखा है कि महाराज युधिष्ठिरके महत्त्वपूर्ण 'राजसूय यज्ञ' सुसम्पन्न होनेके बाद दुर्योधनने कर्णसे 'राजसूय यज्ञ' करनेकी इच्छा प्रकट की। कर्णने कहा—'तुम अपने वेदपारङ्गत कुलपुरोहितसे सविधि 'राजसूय यज्ञ' कराओ।' दुर्योधनने अपने कुलपुरोहितसे कहा—

राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं समाप्तवरदक्षिणम्।
आहर त्वं मम कृते यथान्यायं यथाक्रमम्॥

(महाभारत, वनपर्व २५५। १२)

'हे पुरोहित, तुम मेरी ओरसे उचित क्रमसे और उचित रीतिसे 'राजसूय' नामक यज्ञ करो, उसके पूर्ण होने पर मैं तुम्हें श्रेष्ठ दक्षिणा दूंगा।'

यह सुनकर कुलपुरोहितने दुर्योधनसे कहा—

स एवमुक्तो नृपतिमुवाच द्विजसत्तमः।
न स शक्यः क्रतुश्रेष्ठो जीवमाने युधिष्ठिरे॥
आहर्तुं कौरवश्रेष्ठ कुले तव नृपोत्तम।
दीर्घायुर्जीवति च ते धृतराष्ट्रः पिता नृप॥

अतश्चापि विरुद्धस्ते क्रतुरेष नृपोत्तम।
अस्ति त्वन्यन्महत्सत्रं राजसूयसमं प्रभो॥
(महाभारत, वनपर्व २५५।१३–१५)

'हे कौरवश्रेष्ठ! जबतक महाराजा युधिष्ठिर जीवित हैं तबतक तुम राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। उसी प्रकार हे श्रेष्ठ राजन्! जबतक तुम्हारे कुलमें दीर्घायु तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र जीवित हैं तबतक हे नृपोत्तम! तुम राजसूययज्ञ नहीं कर सकते, किन्तु हे प्रभो! राजसूय यज्ञके सदृश ही एक दूसरा महायज्ञ है।'

एष ते वैष्णवो नाम यज्ञः सत्पुरुषोचितः॥
एतेन नेष्टवान् कश्चिद्दते विष्णुं पुरातनम्।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं स्पर्द्धत्येष महाक्रतुः॥
अस्माकं रोचते चैव श्रेयश्च तव भारत।
निर्विघ्नश्च भवत्येष सफला स्यात् स्पृहा तव॥
(महाभारत, वनपर्व २५५।१९-२१)

'यह वैष्णवयज्ञ (विष्णुयाग) सत्पुरुषोंके करनेके योग्य है। इस यज्ञको केवल भगवान् विष्णुके अतिरिक्त अन्य किसीने भी नहीं किया है। यह विष्णुयज्ञ समस्त यज्ञोंमें श्रेष्ठ है, जो कि राजसूय यज्ञसे स्पर्धा करता है। हे भरतवंशी राजन्! मुझे यह यज्ञ विशेष रुचिकर प्रतीत होता है और इस यज्ञमें तुम्हारा कल्याण निहित है, इसलिये तुम इस यज्ञको करो। यह विष्णुयज्ञ निर्विघ्न परिपूर्ण होगा और इस यज्ञको करनेसे तुम्हारी अभिलाषाएं सफल होंगी।'

'विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवो यजमानः। विष्णुनैव यज्ञेनात्मानमुभयतः सयुजं कुरुते।' (कपिष्ठलशाखा ३५६)

'विष्णु ही यज्ञ है और यज्ञकर्ता यजमान ही वैष्णव है।

विष्णुयज्ञके द्वारा यजमान स्वयं ही इहलोक और परलोक दोनों लोकोंके सायुज्य सम्बन्धसे सम्बन्धित हो जाता है।'

'विष्णुर्यज्ञस्तद् यज्ञस्यैवैष आरम्भः।'

(मैत्रायणीशाखा ४।३।७)

'यज्ञका जो आरम्भ है, वही यज्ञ विष्णुयज्ञ कहा गया है।'

'वैष्णव्या ऋचा विष्णुर्वै यज्ञः।'

'विष्णु ही यज्ञ है, जो कि वैष्णव-मन्त्रोंसे सम्पन्न होता है।'

'विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवा वनस्पतयः।'

(तैत्तिरीयशाखा ६ २।८।७)

'विष्णु ही यज्ञ है और वैष्णवगण ही ऋतु, हवि आदि वनस्पति पदार्थ हैं।'

'वैष्णवो हि यूपः।' (मैत्रायणीशाखा ३।९।३)

'वैष्णव ही यज्ञमण्डपके स्तम्भ हैं।'

विष्णुयागो द्विजातीनां विशिष्ट इति कथ्यते।
तस्मात्तु विष्णयागस्य यजमानो भवेद् बुधः॥

(समूर्चनाधिकरण)

'द्विजातियोंके लिये विष्णुयागको विशिष्ट कहा है, अतः विद्वान् यजमानको प्रयत्नपूर्वक विष्णुयागका यजमान बनना चाहिये।'

रुद्रयज्ञका महत्त्व

अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथैव च।
मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि॥
ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव।
उपद्रुतानां धर्मज्ञमाधितानां तथैव च॥

मरणे समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये।
रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च॥
रुद्राणां च तथा जप्यं सर्वाघविनिकृन्तनम्।
सर्वकामपरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'हे भार्गव, बकरी, भेड़, घोड़ा, हाथी, मनुष्य, राजा, बालक, स्त्री, ग्राम, नगर और देशोंके उपद्रवसे आक्रान्त होने पर, मानसिक क्लेशमें फँसने पर, मृत्युके मुँहमें पड़ने पर और शत्रुभय उपस्थित होने पर खीरसे अथवा घृतसे रुद्रहोम करना शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। तथा रुद्रोंका मन्त्रजप सकल पापोंका निवारण करनेवाला है। रुद्रहोम समस्त मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला और सर्वत्र शान्ति प्रदान करनेवाला है।'

रुद्राणां च तथा जप्यं सर्वाघविनिषूदनम्।
सर्वकामपरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः॥
अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम्।
मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि॥
ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव।
उपद्रुतानां धर्मज्ञ! व्याधितानां तथैव च॥
मरणे समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये।
रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च॥

(अग्निपुराण २६०।२५-२८)

'हे भार्गव! रुद्रोंका मन्त्र-जप समस्त पापोंका निवारण करने-वाला है। रुद्रहोम सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और सर्वत्र

शान्तिप्रदान करनेवाला है। बकरी, भेड़, अश्व, हाथी, मनुष्य, राजा, बालक, स्त्री, ग्राम, नगर और देशोंके उपद्रवसे आक्रान्त होने पर, मानसिक क्लेशमें फँसने पर, मृत्युके मुंहमें पड़ने पर और शत्रुभय उपस्थित होने पर खीरसे अथवा घृतसे रुद्रहोम शान्तिके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय है।'

'भोक्ता स सर्वयज्ञानां शङ्करः परमार्थतः।'

(सौरपुराण ७।१४)

'वस्तुतः भगवान् शङ्कर समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं।'

'इज्यते सर्वयज्ञेषु' (सौरपुराण ७।३६)

'समस्त यज्ञोंमें भगवान् शङ्करकी पूजा होती है।'

भगवान् शङ्कर कहते हैं—

इज्यया चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये।
न तेषां भयमस्तीति भवं रुद्रं यजन्ति यत्॥

(मत्स्यपुराण १८२।४३)

'यज्ञ और वेदमन्त्रसे जो मेरा ही पूजन करते हैं और जो मेरा ही यजन करते हैं, वे सर्वप्रकारके भयसे मुक्त हो जाते हैं।'

अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥

(मत्स्यपुराण १८२।२४)

'जो भक्त दृढ़ निश्चय होकर मुक्तिके लिये यज्ञद्वारा मेरा यजन करते हैं, उनकी सैकड़ों, करोड़ों, कल्पोंतक संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती।'

भगवान् शङ्करका जप और यज्ञद्वारा यजन करनेवालोंके सम्बन्धमें ब्रह्माने महामायाको इस प्रकार आदेश किया है—

महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय।
ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम्॥

(कूर्मपुराण, पूर्वार्ध २।१६)

'जो देवाधिदेव महेश्वरका जप और यज्ञसे यजन करते हैं, उन ब्राह्मणोंको अर्थात् महेश्वरके महायज्ञमें संल्लग्न ब्राह्मणोंको तुम दूरसे ही त्याग कर दो अर्थात् उन्हें किसी प्रकार भी दुःख न दो।'

ब्रह्माजीने ऋषियोंको भगवान् शिवजीके प्रसन्न करनेका उपाय 'यज्ञ' ही बतलाया है—

तस्मादीशप्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवं द्विजाः।
दीर्घसत्रं समाकुध्वं यूयं वर्षसहस्रकम्॥

(शिवपुराण, विष्णुसंहिता १।४)

'अतः हे ऋषिगणो! तुमलोग पृथ्वीमें जाकर एक हजार वर्ष-पर्यन्त दीर्घकालीन विशाल यज्ञ करो।'

लक्ष्मीनारायण यज्ञका महत्त्व

लक्ष्मीनारायणं यागं पुत्र-पौत्रविवर्धनम्।
सर्वारिष्टहरं पुण्यमेतदुक्तं मनीषिभिः॥

(कर्मविपाक)

'विचारशील लोगोंने लक्ष्मीनारायण यागको परम पवित्र एवं पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाला और समस्त अरिष्टोंको दूर भगाने-वाला कहा है।'

वासुदेवयज्ञका महत्त्व

मनुने पुत्रकी प्राप्तिके लिये भगवान् वासुदेवका यज्ञ (विष्णुयज्ञ) किया था, जिससे उन्हें १० पुत्र हुए (भागवत ६।२)। अतः पुत्रके प्राप्त्यर्थ 'वासुदेव यज्ञ' करना चाहिये।

गणेशयज्ञका महत्त्व

कलौ गणाधिपः श्रेष्ठस्तेनानन्तफलप्रदः।
पूजयेद्देवदेवेशं सर्वविघ्नोपशान्तये॥
अन्ते च परमं धाम दद्याद् भक्तेषु पावनम्।

'कलियुगमें गणेशजी सर्वश्रेष्ठ देव कहे गये हैं, इससे वे अनन्त फलके दाता हैं। मनुष्यको सकल विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये देवाधिदेव गणेशजीका पूजन करना चाहिये। भगवान् गणेशजी इस लोकमें धन-धान्य आदिसे पूर्ण करते हैं और इस शरीरके छूटने पर अपने भक्तोंको परम पावन दिव्य धाम देते हैं।'

*सूर्ययागका महत्त्व

सूर्ययागं प्रकर्तव्यं सर्वपापपनुत्तये।

---

*सूर्ययागकी दक्षिणा—'अयुते एका गौः सालङ्कारा सवत्सा देया। तदसम्भवे सौवर्णनिष्कं दद्यात्। तस्याप्यसम्भवे तदर्धं दद्यात्। अन्यथा निष्फलं भवेत्।'

'दश हजारकी आहुतिवाले सूर्ययागमें अलङ्कार और वत्सके सहित एक गौ देनी चाहिये। यदि यज्ञकर्ता गौ देनेमें असमर्थ हो, तो वह सुवर्णका निष्क दे और उसके देनेमें भी असमर्थ हो, तो आधा निष्क सुवर्ण दे। अन्यथा यज्ञका उचित फल प्राप्त नहीं होता है।'

नृणां रोगहरं सर्वं सर्वेषामीप्सितप्रदम् ॥

महारोगोपशमनं दद्रुकण्ड्वादिनाशनम् ।
शिरोरोगं नेत्ररोगं रोगं चोदरसम्भवम् ॥

विधानं नाशयत्याशु ज्वरं शूलं तथा क्षयम् ।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥

(महानिबन्धे)

'समस्त पापोंकी निवृत्तिके लिये सूर्ययाग करना चाहिये। यह याग मनुष्योंके सकल रोगोंको मिटाता है, सब मनोवाञ्छित फलोंको देता है।

सूर्ययागके अनुष्ठानसे कुष्ठ, क्षय आदि महारोगोंकी शान्ति होती है, दाद, खाज-खजुली, फोड़े, फुँसी सब नष्ट हो जाते हैं, सिरके समस्त रोग, नेत्र रोग और पेटके सारे रोग दूर हो जाते हैं।

सूर्ययागके अनुष्ठानसे ज्वर, शूल तथा क्षय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं एवं अन्य सभी प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।'

रामयज्ञका महत्त्व

यज्ञः श्रीरामचन्द्रस्य साधकानां च साधकः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकस्तुष्टिपुष्टिदः ॥

महासिद्धिकरः पुण्यः सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वारिष्टहरः क्षिप्रं सर्वोपद्रवनाशकः ॥

आधिव्याधिप्रहरणो वाञ्छासिद्धिकरः परः ।
पुत्रपौत्रादिसुखदो बलवीर्यविवर्धनः ॥

राज्यदो नष्टराज्यानां निर्धनानां धनप्रदः।
दुर्भिक्षे वृष्टिजनको महोत्पातनिवारणः॥
मुक्तिदश्च मुमुक्षूणामगतीनां गतिप्रदः।
महासङ्कटसन्तप्तचेतसां सुखवर्धनः॥
अन्यानि यानि कार्याणि साधनानि बहूनि च।
तानि सर्वाणि सिध्यन्ति रामयज्ञप्रभावतः॥
शास्त्रेषु विहिता येऽन्ये यज्ञा विधिविधानतः।
तानकृत्वाऽपि मर्त्योऽत्र रामयज्ञेन मुच्यते॥
रामयज्ञसमं कर्म रामयज्ञसमा गतिः।
रामयज्ञसमं पुण्यं नास्ति लोकेषु किञ्चन॥
अगत्वा सर्वतीर्थान्यसोढ्वा कृच्छ्राणि यत्नतः।
स्वाध्यायमनधीत्यापि लोकव्याधिनिपीड़ितः॥
यदीच्छसि मनोऽभीष्टसाधनं शत्रुबाधनम्।
रामयज्ञमुपाश्रित्य साधयार्थमसंशयम्॥
कर्मणामथ सर्वेषां यज्ञकर्म विशिष्यते।
यज्ञेषु रामयज्ञस्य फलं सर्वाधिकं मतम्॥

'श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञ सब साधकोंका साधक है अर्थात् सब साधनोंमें श्रेष्ठतम साधन (उपाय) है, इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं और मानसिक सन्तुष्टि तथा शारीरिक पुष्टि मिलती है। यह महासिद्धियाँ करनेवाला पुण्यरूप है, सब कामनारूप फल प्रदान करता है। तुरन्त सर्व प्रकारके अरिष्टोंको हरनेवाला और सब उपद्रवोंको विनष्ट करनेवाला है, मानसिक व्यथा तथा शारीरिक व्याधिको हरनेवाला तथा वाञ्छित सिद्धि करनेमें सर्वश्रेष्ठ है। यह पुत्र-पौत्रादिका सुख देनेवाला और बलवीर्यकी अभिवृद्धि करनेवाला यज्ञ है।

यह यज्ञ जिनका राज्य नष्ट हो चुका हो उन्हें राज्य प्रदान

करनेवाला, निर्धन पुरुषोंको धनप्रदान करनेवाला, अकाल पड़नेपर वृष्टि करानेवाला, बड़े-बड़े उत्पातोंका निवारण करनेवाला, मुमुक्षु पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला एवं अगतिक (गतिविहीन) पुरुषोंको गति देनेवाला है। यह बड़े-बड़े संकट आनेसे अति संतप्त चित्तवाले पुरुषोंको सुखी बनाता है। और भी जो बहुतसे कार्य तथा साधन हैं वे सब रामयज्ञके प्रभावसे सिद्ध हो जाते हैं। शास्त्रोंमें जो अन्यान्य बहुतसे यज्ञ—याग विधि-विधानसे कहे गये हैं उनका अनुष्ठान न करके भी मनुष्य एकमात्र रामयज्ञके द्वारा मुक्ति पा जाता है। तीनों लोकोंमें रामयज्ञके समान कर्म, रामयज्ञके समान गति एवं रामयज्ञके समान पुण्य कुछ नहीं है। संसाररूपी व्याधिसे दुःखित तुम सब तीर्थोंमें यात्रा किये बिना, प्रयत्नपूर्वक सब कृच्छ्रव्रतोंके क्लेशको सहे बिना, वेदोंका अध्ययन किये बिना भी यदि मनचाही सिद्धि चाहते हो और यदि शत्रुओंका विनाश चाहते हो तो रामयज्ञका आश्रय लेकर निस्सन्देह अपनी कार्यसिद्धि करो। सब कर्मोंमें यज्ञकर्म उत्तम है। यज्ञोंमें भी रामयज्ञका फल सर्वाधिक माना गया है।'

'न हि रामात्परो मखः।' (पद्मपुराण, पातालखण्ड ३५।४६)

'रामयज्ञसे बढ़कर और कोई दूसरा यज्ञ नहीं है।'

प्रजापतियज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) का महत्त्व

दशावरान् दशापरान् तारयेद् ब्रह्मयागतः।
आधिर्व्याधिश्च सकलः सद्य एव विनश्यति॥
इष्टान् भोगान् स वै भुक्त्वा परं निर्वाणमाप्नुयात्।
अतः प्रजापतियागस्य महत्त्वमुच्यते बुधैः॥

'प्रजापति यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) करनेवाले मनुष्यकी दश पीढ़ी पूर्वकी और दश पीढ़ी आगेकी तर जाती है और उसकी समस्त आधि-व्याधियोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है। प्रजापतियज्ञके प्रभावसे

मनुष्य समस्त अभीष्ट भोगोंको भोगकर श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त करता है। अतः विद्वानोंने प्रजापतियागका विशेष महत्त्व कहा है।'

वेदोंमें कहा है कि—यज्ञ ही प्रजापति है और प्रजापति ही यज्ञ है—

यज्ञः प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ११।६।३।६)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३।१०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३०।१०।६५)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० ३।३।७।४०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (शाङ्खायनब्रा० १०।१)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० १।१।१।१)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ५।४।५।१६)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ११।१।८।३)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (गोपथब्रा० पूर्व० २।१८)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (ऐतरेयब्रा०।१६।५)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (शाङ्खायनब्रा० १३।१)
एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ४।३।४।३)

*हरिहर-महायज्ञका महत्त्व

शृणु देवि महाभागे यागं हरिहरात्मकम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति पुत्र-पौत्रप्रदायकम्॥

'हे देवि, हे महाभागे, सुनो पुत्र—पौत्रप्रदायक हरिहरात्मक यागका अनुष्ठान करता हुआ पुरुष सिद्धिको प्राप्त होता है।'

---

* हरिहरमहायज्ञके विशेष परिज्ञानके लिये 'महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधर गौड स्मारकग्रन्थ' के द्वितीय खण्डमें महामहोपाध्यायजीके 'हरिहयाग-मीमांसा' लेखको पढ़ना चाहिये।

मृत्युञ्जय-यज्ञका महत्त्व

ग्रहपीडासु सर्वासु महागदनिपीडने ।
वियोगे बान्धवानां च जनमार उपस्थिते ॥
राज्यभङ्गे धनग्लानौ क्षिप्रमृत्युविनाशने ।
अभियोगे समुत्पन्ने मनोधर्मविपर्यये ॥
मृत्युञ्जयस्य यज्ञस्य विधानं क्रियते बुधैः ।
राष्ट्रभङ्गे जनक्लेशे महारोगनिपीडने ॥
मृत्युञ्जयस्य देवस्य होमं कुर्याद् विशेषतः ।

(विधानमाला)

'समस्त ग्रहजनित पीड़ाओंमें, यक्ष्मा, अर्श (बवासीर) आदि महारोगोंकी विशेष पीड़ामें, बन्धु-बान्धवोंके वियोग होनेपर, जननाशकारी रोगोंके उपस्थित होनेपर, राज्यभङ्ग होनेपर, धनहानि होनेपर, अल्पमृत्युके विनाशनमें, अभियोग उपस्थित होनेपर और मनुद्वारा स्थापित धर्मका विपर्यय (उलट-पलट) होनेपर विद्वानोंने मृत्युञ्जय यज्ञका विधान किया है। राष्ट्रभङ्ग होनेपर, जनक्लेश होनेपर और महारोगोंके द्वारा पीड़ा होनेपर मृत्युञ्जय-देवका होम विशेषरूपसे करना चाहिये।'

नवग्रह-यज्ञका महत्त्व

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि ॥
याऽनपत्या भवेन्नारी दुर्भगा वापि या भवेत् ।
बालका वा प्रमीयन्ते या च कन्या वरार्थिनी ॥
राज्यभ्रष्टो नृपो यश्च दीर्घरोगी च यो भवेत् ।
ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः ॥

(शान्तिचिन्तामणि)

'धनकी कामनावाले अथवा ग्रहपीड़ाकी शान्ति चाहनेवाले पुरुषको ग्रहयज्ञ करना चाहिये। वृष्टि, आयुष्य और पुष्टि तथा आभिचारिक कर्म (मारण आदि) करता हुआ पुरुष भी ग्रहयज्ञ करे। जो स्त्री निःसन्तान हो या जो दुर्भगा (अभागिन) हो, अथवा जिस स्त्रीके बालक हो-होकर मर जाते हों और जो वरार्थिनी कन्या हो, जो राजा राज्यच्युत हो और जो दीर्घरोगी हो—इन सब स्त्री और पुरुषोंके लिये विद्वानोंने ग्रहयज्ञका विधान किया है।'

आयुश्च विद्यां च तथा सुखं च
धर्मार्थकामान् बहुपुत्रतां च ।
शत्रुक्षयं राजसु पूज्यतां च
तुष्टा ग्रहाः सर्वमेतद् दिशन्ति ॥
(शान्तिचिन्तामणि)

'प्रसन्न हुए नवग्रह आयु, विद्या और सुख प्रदान करते हैं। धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) देते हैं। बहुत पुत्र प्रदान करते हैं। शत्रुओंका नाश करते हैं। अनेक राजाओंमें पूज्यता—यह सबकुछ देते हैं।'

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च ।
ग्रहैर्व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

'ग्रह राज्य प्रदान करते हैं और ग्रह ही राज्यको हरते हैं। यह सारा चराचर त्रैलोक्य ग्रहोंसे व्याप्त है।'

तोषितास्तु ग्रहाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्ति सर्वदा ।
द्विपदे चतुष्पदे वापि शरीरे वाहने गृहे ॥

'प्रसन्न किये गये समस्त ग्रह सदा शान्ति करते हैं, अतः उनकी प्रसन्नतासे मनुष्योंमें, चौपायोंमें, शरीरमें, वाहनमें अथवा घरमें सर्वत्र शान्ति विराजती है।'

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावराः।
सृष्टिसंरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः॥

'सारा जगत् ग्रहोंके अधीन है, नर और उनसे निम्नकोटिके सब जीव ग्रहाधीन हैं। सृष्टि, पालन और संहार—ये सब भी ग्रहोंके अनुगामी हैं।'

(१) ग्रहात्मक लक्षहोमसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह आठ सौ (८००) कल्पतक वसु, आदित्य, मरुद्गण आदिके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है। पश्चात् वह 'मोक्ष' पदको प्राप्त करता है।

(२) लक्ष्मी तथा शान्ति चाहनेवालेको 'नवग्रह यज्ञ' करना चाहिये। (अग्निपुराण १४१।२)

(३) चक्षुकी दृष्टि, दीर्घ आयु और शरीरकी पुष्टि चाहनेवालेको ग्रहयज्ञ (नवग्रहयज्ञ) करना चाहिये। (अग्निपुराण १४१।२)

लक्ष्मीयज्ञका महत्त्व

ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापञ्च अपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा॥
(अथर्वपरिशिष्ट)

'लक्ष्मीयाग (अम्बायाग) से मेरे ऋण, रोग आदि दरिद्रता, पाप, अपमृत्यु, भय, शोक और मानसिक क्लेश—ये सभी सदा नष्ट हो जायं।'

गायत्रीयज्ञका महत्त्व

गायत्रीके जपसे अथवा गायत्रीके पुरश्चरणसे अथवा गायत्रीके

यज्ञसे ग्रहोंकी प्रतिकूलता दूर होती है। अतः ग्रहोंकी प्रतिकूलताके निवारणार्थ गायत्री यज्ञ (सावित्री यज्ञ) का अनुष्ठान आवश्यक है।

महाभारतमें लिखा है—

ये चास्य दारुणाः केचिद् ग्रहाः सूर्यादयो दिवि।
ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवाः शिवतराः सदा॥

(वनपर्व २००।८५)

'गायत्रीका जप करनेवालेके ऊपर आकाशचारी सूर्य आदि ग्रह विपरीत हों, तो वे भी गायत्रीके जापकके ऊपर सर्वदा शान्त होकर उसको महान् सुख देते हैं।'

महाशान्ति-यज्ञका महत्त्व

महाशान्तिं प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषिताम्।
पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम्॥
दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे।
जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाऽष्टमे तथा॥
यदा स्युर्गुरुमन्दाऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः॥
आरोग्यमर्थं पुत्रांश्च अनुमित्रं तथैव च।
सौभाग्यं च समृद्धिं च महाशान्तिः प्रयच्छति॥

'अब मैं भूलोकवासी लोगोंके हितके लिये श्रीमहादेवजीकी कही हुई महाशान्तिका (महाशान्तिनामक यज्ञका) वर्णन करूँगा। उक्त यज्ञ महादुस्तर विपत्तियोंसे मनुष्यको बचानेवाला है। दुःस्वप्न, अपशकुन, ग्रहोंके विपरीत होनेपर जब कि विशेषतः बृहस्पति, शनि, मङ्गल और सूर्य जन्मराशिमें, बारहवें, चौथे और अष्टममें हों, उस समय किया गया महाशान्तियज्ञ आरोग्य, धनसम्पत्ति, पुत्र (सन्तति), मित्र, सौभाग्य और समृद्धिको देता है।'

अन्यत्र कहा है—

शान्तियज्ञं तु मतिमान् कुर्यात्तद्दोषशान्तये।
शान्तियज्ञं च तत्कुर्याद् वर्षे वर्षे तु फाल्गुने॥
एव कृतेन यज्ञेन दोषशान्तिमवाप्नुयात्।

'बुद्धिमान् पुरुषको उसके (पुरुषके) दोषकी शान्तिके लिये शान्तियज्ञ करना चाहिये। उस शान्तियज्ञको प्रतिवर्ष फाल्गुन महीनेमें करे। इस प्रकार किये गये शान्तियज्ञसे मनुष्यको दोषशान्ति प्राप्त हो जाती है।'

कोटिहोम-महायज्ञका महत्त्व

आयुर्वृद्ध्यै तथा शान्त्यै कोटिहोमं चरेन्नृप।
कोटिहोमात्परं नास्ति कर्मारिष्टविनाशने॥
न तत्तुल्यं तथा राज्ञां महोत्पातविनाशनम्।
कोटिहोमे यथाशक्तिर्लक्षे वाऽप्ययुते तथा॥
प्रतिवर्षं प्रकर्तव्यं हवनं पुष्टिवर्धनम्।

'हे राजन्! आयुकी वृद्धि तथा ग्रह आदिकी शान्तिके लिये कोटिहोम करना उचित है। सभी प्रकारके अनिष्टोंको दूर करनेमें कोटिहोमसे बढ़कर अथवा उसके सदृश और दूसरा कोई कर्म नहीं है। यह कोटिहोम राजाओंके महान् उत्पातोंको विनष्ट करता है। अतः अपनी शक्ति—सामर्थ्यके अनुसार पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला कोटिहोम, लक्षहोम अथवा अयुतहोम प्रतिवर्ष करना चाहिये।'

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम्॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते नित्यं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम्॥

निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः॥
ग्रहयज्ञव्रतं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति।
न तत्र पीडा पापानां न रोगो न च बन्धनम्॥
अशेषयज्ञफलदमशेषाघौघनाशनम्।
कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा मुक्ति-भुक्तिफलप्रदम्॥
(कोटिहोमपद्धतिः)

'पुत्रोंकी अभिलाषावाला पुरुष पुत्रोंको प्राप्त करता है, धन चाहनेवाला धन पाता है, भार्यार्थी (स्त्री चाहनेवाला) पुरुष सुन्दर भार्याको, कुमारी सुन्दर पतिको, भ्रष्टराज्य (जिसका राज्य हाथसे निकल गया है ऐसा) पुरुष राज्यको और लक्ष्मीकी कामनावाला लक्ष्मीको प्राप्त करता है। जो पुरुष जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है उसे वह वस्तु प्रचुरमात्रामें प्राप्त होती है। जो पुरुष निष्काम होकर कोटिहोम करता है वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। कोटिहोमकर्ताको न ग्रहोंकी पीड़ा होती है और न उसके बन्धुजनोंका क्षय होता है। जिस घरमें लिखा हुआ ग्रहयज्ञरूप व्रत रहता है वहाँ पीड़ा नहीं होती है, न रोग होता है और न बन्धन होता है। कोटिहोम समस्त यज्ञोंका फल प्रदान करता है, समस्त प्रकारके पापराशियोंका विनाश करता है, भोग और मोक्षरूप फलदायक है, ऐसा प्राज्ञ पुरुष जानते हैं।'

एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम्।
तस्यारोग्यं वित्त-पुत्र-राष्ट्रवृद्धिस्तथैव च॥
सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम।
अनावृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च॥
दुर्भिक्षं ग्रहपीडा च प्रशमं यान्ति भूतले।
एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम्॥

सर्वोपसर्गशमनं भवनाशनं वा
ये कारयन्ति मनुजा नृप कोटिहोमम् ।
भोगानवाप्य मनसोऽभिमतान् प्रकामं
ते यान्ति शक्रसदनं भुवि शुद्धसत्त्वाः ॥

'इस प्रकार जो सविधि शुभप्रद कोटिहोमको पूर्ण करता है, उसको आरोग्य, धन और पुत्रकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार राष्ट्रकी अभिवृद्धि होती है। हे राजशिरोमणि, जो इस कोटिहोमको करता है, उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है। यह कोटि-होम पृथ्वीमें होनेवाले अनावृष्टिके भयको, अनेक प्रकारके उत्पातोंके भयको, दुर्भिक्षके भयको और ग्रहपीड़ाके भयको शमन करता है। अतः यह कोटिहोम पुण्यको देनेवाला, पापका हरनेवाला और समस्त अभिलषित फलको देनेवाला है।

राजन्, जो समस्त अरिष्टोंका शमन करनेवाले और मोक्षको देनेवाले कोटिहोमको करते हैं, वे इस लोकमें मनोभिलषित उत्तम भोगोंको प्राप्तकर शुद्धान्तःकरण होकर इन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं।'

दुर्गायज्ञका महत्त्व

'स्वर्गापवर्गसंसिद्धिर्दुर्गायागात्प्रजायते ।'
(देवीपुराण)

'दुर्गायज्ञसे स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)की सिद्धि प्राप्त होती है।'

शतचण्डीका महत्त्व

सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा ।
जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेऽप्यायुषो नाश आगते ॥

वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये।
तथैव विविधोत्पाते तथा चैवोपपातके॥
कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्।
श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथा परा॥
मनसा चिन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात्।
सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥
भुक्त्वा मनोरथान् कामान्नरो मोक्षमवाप्नुयात्।
चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः॥
(वाराहीतन्त्र)

'संकटकी उपस्थितिमें चिकित्सासे ठीक न होनेवाले रोगमें, जातिभ्रष्टतामें, वंशके नाशमें, आयुके नष्ट होनेमें, शत्रुकी वृद्धिमें, रोगकी वृद्धिमें, धनके नाशमें, क्षयके रोगमें, विविध उत्पातमें और उपपातकमें यत्नपूर्वक शतचण्डी करनेसे शुभ होता है। शतचण्डीके करानेसे (दुर्गाके सौ पाठके करानेसे) कल्याणकी और राज्यकी वृद्धि होती है। हे देवि! दुर्गाके सौ पाठसे मनोभिलषित कामनाएँ पूर्ण होती हैं। दुर्गाके सहस्र पाठसे स्वयं लक्ष्मी आकर स्थिर रूपमें निवास करती हैं, जिनकी कृपासे मनुष्य समस्त मनोरथों और कामनाओंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होता है। दुर्गाकी शतावृत्तिसे समस्त सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं।'

सर्वोपद्रवनाशार्थे शतचण्डीं समारभेत्॥
सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे।
परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते॥
राजवादादिकार्येषु आपत्सु सुतजन्मनि।
महोपघातनाशाय पञ्चविंशतियोजने॥
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमिमां जपेत्।
(रुद्रयामल)

'समस्त प्रकारके उपद्रवोंके नाश करनेके लिये शतचण्डीका प्रारम्भ करना चाहिये। घोर अनावृष्टिके समय, कठिन भूकम्पके समय, दूसरे राजाओंके भय उपस्थित होनेके समय, क्षयरोगके होनेके समय, राज-विद्रोहके समय, आपत्तिके समय, पुत्रके अभावमें अर्थात् पुत्रोत्पत्तिके लिये और अनेक भयङ्कर उपद्रवोंके विनाशके लिये शतचण्डीयज्ञसे पचीस योजनतक सुख-शान्तिकी स्थापना होती है।'

शतचण्डीविधानं तु प्रवक्ष्ये प्रीतये नृणाम्।
नृपोपद्रव आपन्ने दुर्भिक्षे भूमिकम्पने॥
अतिवृष्ट्यामनावृष्टौ परचक्रभये क्षये।
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति शतचण्डीविधौ कृते॥
रोगाणां वैरिणां नाशो धन—पुत्रसमृद्धयः।

(मन्त्रमहोदधि)

'मैं मनुष्योंकी प्रसन्नता (सुख) के लिये शतचण्डीकी विधि कहता हूँ। राजभय उपस्थित होनेपर, दुर्भिक्ष होनेपर, भूकम्प होनेपर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि होनेपर, परराष्ट्रका भय उपस्थित होनेपर तथा क्षय होनेपर यदि शतचण्डीका विधान किया जाय, तो ऊपर कहे गये सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। रोगोंका तथा शत्रुओंका नाश हो जाता है और धन एवं पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि होती है।'

सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे।
परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते।
राज्यावाप्त्यादिकार्येषु स्वायुष्यसुतजन्मनि॥
महोपघातनाशाय पञ्चविंशतियोजने।
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमखं चरेत्॥

शतचण्डीविधानेन कृतेन सुकृतेन हि।
महालक्ष्मीर्ददात्यस्मै त्रैलोक्यसुखमुत्तमम् ॥
यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते शतचण्डिका।
तत्तस्य च महालक्ष्मीः स्वयमाशु प्रयच्छति ॥

(खिलमार्कण्डेय)

'घोर अनावृष्टिके समय, कठिन भूकम्पके समय, दूसरे राजाओंके भय उपस्थित होनेके समय, क्षयरोग उपस्थित होनेके समय, राज्य आदि प्राप्त करनेके समय, अपनी आयुकी वृद्धिके लिये, पुत्रोत्पत्तिके लिये और अनेक भयङ्कर उपद्रवोंके विनाशके लिये शतचण्डीयज्ञ करना चाहिये। शतचण्डीयज्ञ करनेसे पचीस योजनतक देशमें सर्वत्र सुख-शान्तिकी स्थापना होती है। शतचण्डीके द्वारा किये गये सुकृत (पुण्य) से प्रसन्न होकर महालक्ष्मी तीनों लोकोंमें उत्तम सुख प्रदान करती हैं। जो पुरुष जिस कार्यके उद्देश्यसे शतचण्डीको करता है वह महालक्ष्मी उसके अभीष्ट फलको बहुत शीघ्र देती हैं।'

सहस्रचण्डीका महत्त्व

राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये।
गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा।
इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥
सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत वा।
तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥

(रुद्रयामल)

'यदि राज्यभ्रंश हो जाय, महान् उत्पात हो जाय, हैजा आदि जननाशक बीमारी फैल जाय, महान् भय उपस्थित हो जाय, हाथी और घोड़ोंका विनाश करनेवाला रोग फैल जाय तथा

करनेवाला, निर्धन पुरुषोंको धनप्रदान करनेवाला, अकाल पड़नेपर वृष्टि करानेवाला, बड़े-बड़े उत्पातोंका निवारण करनेवाला, मुमुक्षु पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला एवं अगतिक (गतिविहीन) पुरुषोंको गति देनेवाला है। यह बड़े-बड़े संकट आनेसे अति संतप्त चित्तवाले पुरुषोंको सुखी बनाता है। और भी जो बहुतसे कार्य तथा साधन हैं वे सब रामयज्ञके प्रभावसे सिद्ध हो जाते हैं। शास्त्रोंमें जो अन्यान्य बहुतसे यज्ञ—याग विधि-विधानसे कहे गये हैं उनका अनुष्ठान न करके भी मनुष्य एकमात्र रामयज्ञके द्वारा मुक्ति पा जाता है। तीनों लोकोंमें रामयज्ञके समान कर्म, रामयज्ञके समान गति एवं रामयज्ञके समान पुण्य कुछ नहीं है। संसाररूपी व्याधिसे दुःखित तुम सब तीर्थोंमें यात्रा किये बिना, प्रयत्नपूर्वक सब कृच्छ्रव्रतोंके क्लेशको सहे बिना, वेदोंका अध्ययन किये बिना भी यदि मनचाही सिद्धि चाहते हो और यदि शत्रुओंका विनाश चाहते हो तो रामयज्ञका आश्रय लेकर निस्सन्देह अपनी कार्यसिद्धि करो। सब कर्मोंमें यज्ञकर्म उत्तम है। यज्ञोंमें भी रामयज्ञका फल सर्वाधिक माना गया है।'

'न हि रामात्परो मखः।' (पद्मपुराण, पातालखण्ड ३५।४६)

'रामयज्ञसे बढ़कर और कोई दूसरा यज्ञ नहीं है।'

प्रजापतियज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) का महत्त्व

दशावरान् दशापरान् तारयेद् ब्रह्मयागतः।
आधिर्व्याधिश्च सकलः सद्य एव विनश्यति॥
इष्टान् भोगान् स वै भुक्त्वा परं निर्वाणमाप्नुयात्।
अतः प्रजापतियागस्य महत्त्वमुच्यते बुधैः॥

'प्रजापति यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) करनेवाले मनुष्यकी दश पीढ़ी पूर्वकी और दश पीढ़ी आगेकी तर जाती है और उसकी समस्त आधि-व्याधियोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है। प्रजापतियज्ञके प्रभावसे

मनुष्य समस्त अभीष्ट भोगोंको भोगकर श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त करता है। अतः विद्वानोंने प्रजापतियागका विशेष महत्त्व कहा है।'

वेदोंमें कहा है कि—यज्ञ ही प्रजापति है और प्रजापति ही यज्ञ है—

यज्ञः प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ११। ६। ३। ९)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १। ३। १०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १। ३०। १०। ६५)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० ३। ३। ७। ४०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (शाङ्खायनब्रा० १०। १)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० १। १। १। १)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ५। ४। ५। १९)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ११। १। ८। ३)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (गोपथब्रा० पूर्व० २। १८)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (ऐतरेयब्रा०। १९। ५)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (शाङ्खायनब्रा० १३। १)
एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ४। ३। ४। ३)

*हरिहर-महायज्ञका महत्त्व

शृणु देवि महाभागे यागं हरिहरात्मकम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति पुत्र-पौत्रप्रदायकम्॥

'हे देवि, हे महाभागे, सुनो पुत्र-पौत्रप्रदायक हरिहरात्मक यागका अनुष्ठान करता हुआ पुरुष सिद्धिको प्राप्त होता है।'

---

* हरिहरमहायज्ञके विशेष परिज्ञानके लिये 'महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधर गौड स्मारकग्रन्थ' के द्वितीय खण्डमें महामहोपाध्यायजीके 'हरिहयाग-मीमांसा' लेखको पढ़ना चाहिये।

दूसरे राजाका भय उपस्थित हो जाय, इसी प्रकार अन्य विविध दुःखोंमें और क्षयरोग आदिसे उत्पन्न भयमें सहस्रचण्डिकापाठ स्वयं करे अथवा ब्राह्मणोंके द्वारा करावे। सहस्रचण्डीसे मनुष्यकी कार्य-सिद्धि अवश्यमेव होती है, इसमें विचार करनेकी गुंजायश नहीं है।'

पुत्रेष्टि-यज्ञका महत्त्व

(१) आश्वलायन श्रौतसूत्र, बाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड १५।२) और विद्यार्णवतन्त्रमें 'पुत्रेष्टि यज्ञ' का विधान लिखा है, जिसको सविधि करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। अथर्ववेदमें भी पुत्रोत्पादनार्थ कुछ मन्त्र मिलते हैं, जिन मन्त्रोंके द्वारा सविधि हवन (यज्ञ) करनेसे निश्चित ही पुत्रकी प्राप्ति होती है।

(२) महाराज दशरथके पुत्र नहीं था, उन्होंने पुत्रकी कामनासे 'पुत्रेष्टि यज्ञ' किया था, जिससे उन्हें भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये चार पुत्र हुए।

(३) पद्मपुराण (उत्तरखण्ड) में लिखा है कि पुत्रेष्टि-यज्ञमें अग्निकुण्डसे भगवान् विष्णु प्रकट हुए। भगवान् विष्णुसे महाराजा दशरथने याचना की—'भगवन्! आप मेरे पुत्रभावको प्राप्त हों।' दशरथके द्वारा किये गये पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप भगवान् विष्णु अपने अंशोंके सहित भगवान् रामके रूपमें लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ दशरथके यहाँ प्रकट हुए।

(४) भागवत (९।२०।३५) में 'मरुत्स्तोम' नामक यज्ञ पुत्रकी प्राप्तिके लिये कहा गया है। दुष्यन्तके पुत्र चक्रवर्ती राजा भरतने पुत्रप्राप्त्यर्थ 'मरुत्स्तोम यज्ञ' किया था, जिससे मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको 'भारद्वाज' नामक पुत्र दिया।

(५) भागवत (९।१।१३) में 'मित्रावरुण' नामक यज्ञका विधान है, जिसको करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है।

(६) भागवत (६ । २) में लिखा है कि मनुने पुत्रकी प्राप्तिके लिये भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया था, जिससे उन्हें १० पुत्र हुए।

(७) वैवस्वत मनु सन्तानहीन थे। उन्होंने सन्तानकी प्राप्तिके लिये महर्षि वशिष्ठके द्वारा 'मित्रावरुण यज्ञ' कराया, जिससे उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई।

(८) त्रिशङ्कुके पुत्र राजा सत्य हरिश्चन्द्र पुत्रहीन थे। वे नारद मुनिकी आज्ञानुसार 'वरुणदेव' की शरणमें गये और उनसे पुत्रकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की। वरुणदेवकी कृपासे उन्हें 'रोहित' नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई।

भागवत-सप्ताहका महत्त्व

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान्।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम्॥
अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः॥
एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत्।
अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा॥
(भागवत—माहात्म्य ६।५२–५४)

'दरिद्र, क्षयरोगाक्रान्त, अन्यान्य रोगोंसे अभिभूत, अभागा, पापकर्म करनेवाला, अपुत्र (निस्सन्तान) और मोक्ष चाहनेवाला पुरुष भागवतका सप्ताह सुने। जिस स्त्रीको मासिकधर्म नहीं होता, जिसको एक बालक होनेके बाद फिर बालक नहीं होता, जिसको बालक होनेकी संभावना न हो, जिसके बालक हो-होकर मर जाते हैं, जिसके बार-बार गर्भपात हो जाता है, ऐसी स्त्रीको भागवतकी कथा समादर और श्रद्धाके साथ सुननी चाहिये। इन

सभी अरिष्टोंमें जो विधि-विधानसे भागवत-कथा सुनता है उसका भी पुण्य कभी क्षय नहीं होता। वास्तवमें भागवतकी दिव्य कथा अति उत्तम है, यह सुननेसे कोटि यज्ञोंका फल प्रदान करती है।'

अग्निहोत्रका महत्त्व

'स यत्सायमस्तमिते द्वे ऽआहुती जुहोति। तदेताभ्यां पूर्वाभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठत्यथ यत्प्रातरनुदिते द्वे ऽआहुती जुहोति तदेताभ्यामपराभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठति स ऽएनमेष ऽउद्यन्नेवाऽऽदायोदेति तदेतं मृत्युमतिमुच्यते सैषाऽग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिरति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते य ऽएवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिं वेद।'

(शतपथब्राह्मण २। ३। ३। ६)

'वह (अग्निहोत्री) जो सायंकालमें सूर्यके अस्त होनेपर दो आहुतियाँ अग्निमें देता है—इन दो पूर्व पैरोंसे उस सूर्यात्मक मृत्युके विषयभूत होनेपर यजमान प्रतिष्ठित होता है, तदनन्तर प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व जो दो आहुतियाँ अग्निमें देता है उन दो आहुतिरूप अपर पदोंसे सूर्यात्मक मृत्युके विषयभूत होनेपर यजमान प्रतिष्ठित होता है अर्थात् सायंकालीन और प्रात:कालीन अग्निहोत्र-होममें दो-दो आहुतियाँ दी जाती हैं। अत: उन चार आहुतियोंसे, उस सूर्यात्मक मृत्युके विषयभूत होनेपर, यजमान निरापद स्थित रहता है। वह यह सूर्य उस यजमानको अपनी किरणोंसे लेकर ही उदित होता है और वह (यजमान) इस मृत्युका अतिक्रमणकर मृत्युसे मुक्ति पा जाता है। यह अग्निहोत्रमें मृत्युकी अतिमुक्ति है। वह पुरुष भी मृत्युका अतिक्रमण कर मृत्युसे मुक्ति पा जाता है, जो अग्निहोत्रमें इस मृत्युसे अतिमुक्ति जानता है।'

'वसुषु रुद्रेष्वादित्येषु विश्वेषु देवेषु इन्द्रे प्रजापतौ ब्रह्मन् अपरिवर्गमेवास्यैतासु हुतं भवति यस्यैवं विदुषोऽग्निहोत्रं जुह्वति।'

(तैत्तिरीयब्रा० २। १। १०। ३)

'जिसका ज्ञानपूर्वक होम होता है और जिसका ध्यान होता है उन दोनों देवताओंमेंसे किसीका परित्याग किये बिना आठ वसुओंमें, एकादश रुद्रोंमें, द्वादश आदित्योंमें, विश्वेदेवोंमें, इन्द्रमें, प्रजापतिमें और ब्रह्ममें—इन सब देवताओंमें इस यजमानका हवन अवश्य ही हो जाता है, जो अग्निहोत्रको इस प्रकार जानता है और अग्निहोत्रके माहात्म्यको इस प्रकार जानता है।'

'सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्यो जुहोति योऽग्निहोत्रं जुहोति इति। यथा खलु वै धेनुं तीर्थे तर्पयति एवमग्निहोत्री यजमानं तर्पयति तृप्यति प्रजया पशुभिः प्रसुवर्गं लोकं जानाति पश्यति पुत्रं पश्यति पौत्रं प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते यस्यैवं विदुषोऽग्निहोत्रं जुह्वति। य उ चैनदेवं वेद।'

(तैत्तिरीयब्रा० २।१।८।३)

'जो अग्निहोत्र-हवन करता है वह सब देवताओंके लिये हवन करता है, जैसे गौको दुहनेवाला तीर्थमें गोतृप्तिके समय गौको खुजलाना, घास देना, जल पिलाना, निकट रखना आदि द्वारा गौको तृप्त करता है, वैसे ही अग्निहोत्रीरूप धेनु (गौ) भी यजमानकी मनोकामनाके सम्पादनद्वारा यजमानको तृप्त करती है और स्वयं भी यजमान प्रजा (सन्तति) से और पशुओंसे तृप्त होता है, स्वर्गलोकका ज्ञान प्राप्त करता है, पुत्रको देखता है, पौत्रको देखता है और दीर्घ आयुष्य, स्वर्गलोकज्ञान, पुत्रदर्शन, पौत्रदर्शनरूप प्रजासे और पशु मिथुनोंसे उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार जाननेवाले जिस यजमानका अग्निहोत्री हवन करता है और इस प्रकारकी अग्निहोत्रकी महिमाको जानता है वह पुत्र-पौत्र, सन्तति और पशु आदिसे सम्पन्न होता है।'

'अग्निहोत्रं सायं प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टꣳ सुहुतं यज्ञक्रतूनां प्रायणꣳ सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्निहोत्रं परमं वदन्ति।'

(नारायणोपनिषद् ६९।२)

'सायं और प्रातः सुन्दर रीति—विधिसे किया गया अग्निहोत्र भलीभाँति इष्ट (पूजित) किया गया घरोंका (सद्गृहोंका) प्रायश्चित्त है, गृहप्रयुक्त (गृहमें होनेवाले) पापके निस्तारका उपाय है। और सोमरहित यज्ञोंका तथा सोमयुक्त क्रतुओंका प्रायण (प्रकृष्ट अयन अर्थात् उपाय) है। क्योंकि अग्निहोत्रके बिना सोमरहित यज्ञों और सोमसहित क्रतुओंमें अधिकार ही नहीं होता। यह अग्निहोत्र सुवर्ग अर्थात् स्वर्गलोकका ज्योति अर्थात् मार्गप्रदर्शक है।'

'योऽग्निहोत्रं जुहोति देवाः प्रिये धामनि मदन्ति।'

(गोपथब्राह्मण २ । २२)

'जो पुरुष अग्निहोत्र याग करता है देवगण प्रिय (अर्थात् देवताओंके प्रिय) धाम (अग्निहोत्रीके घर) में हर्षित होते हैं।'

दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति द्विजातयः।
न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन॥

(वायुपुराण)

'जो द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) दर्श और पौर्णमास याग करते हैं वे ब्रह्मलोकगामी होते हैं। ब्रह्मलोकसे कभी भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती अर्थात् वे सदा ब्रह्मलोकमें रहते हैं।'

यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं पृथिवीं च ससागराम्।
तत् सायं प्रातर्होमस्य तुल्यं भवति वा नवा॥
जीवतोऽपि शिलोञ्छाभ्यामहन्यहनि यत्फलम्।
तद्दर्शपौर्णमासाभ्यां सम्यगाप्नोति वै द्विजः॥

(अङ्गिराः)

'जो पुरुष सुवर्णका मेरूपर्वत प्रदान करता है और सागरसहित पृथिवीका दान करता है, वह महान् दान सायंकाल और प्रातःकाल-के होमके तुल्य होता है या नहीं, यह सन्देहास्पद है।

प्रतिदिन शिल और उञ्छवृत्तिसे [किसानके खेत काटकर बसे जानेपर उस खेतपर गिरे हुए बीजोंको बीनकर जो जीवन-निर्वाह किया जाता है वह 'उञ्छवृत्ति' है और जो बालियोंको बीनकर जीवननिर्वाह किया जाता है वह 'शिलवृत्ति' है] जीवन निर्वाह कर रहे पुरुषको जो पुण्यफल प्राप्त होता है उस फलको द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) दर्श-पौर्णमासयागसे निश्चय पूर्णतया प्राप्त करता है।'

'अग्निहोत्रं कृतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा।'

(पद्मपुराण, स्वर्ग० ३१ । १२६)

'जिसने अग्निहोत्र किया, उसने सागरसहित सारी पृथ्वीका दान किया। अर्थात् सागरसहित सारी पृथ्वीके दानका जो पुण्यफल है वह अग्निहोत्रके अनुष्ठानसे प्राप्त हो जाता है।'

नाग्निहोत्रात्परो धर्मो नाग्निहोत्रात्परं तपः।
नाग्निहोत्रात्परं श्रेयो नाग्निहोत्रात्परं यशः॥
नाग्निहोत्रात्परा सिद्धिर्नाग्निहोत्रात्परा गतिः।
नाग्निहोत्रात्परं स्नानं नाग्निहोत्रात्परो जपः॥
आद्या व्याहृतयस्तिस्रः स्वधा स्वाहा नमो वषट्।
यस्यैते वेश्मनि सदा ब्रह्मलोकः स एव तु॥

(हारीतः)

'अग्निहोत्रसे श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है, अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई तप नहीं है, अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई श्रेय नहीं है, अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई यश नहीं है। अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई सिद्धि नहीं है, अग्नि-

होत्रसे बढ़कर कोई गति नहीं है। अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई स्नान नहीं है और अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई जप नहीं है। आद्य तीन व्याहृतियाँ भूः, भुवः, स्वः और स्वधा, स्वाहा, नमः तथा वषट्—ये जिसके घरमें सदा होते हैं, वह ब्रह्मलोकस्थ ही है।'

अग्निहोत्रात्परं नान्यत्पवित्रमिह विद्यते।
सुकृतेनाग्निहोत्रेण प्रशुद्ध्यन्ति भुवि द्विजाः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १४।८३)

'इस संसारमें अग्निहोत्रसे बढ़कर कोई पवित्र कर्म नहीं है। अतः विधिपूर्वक अग्निहोत्र करनेसे द्विज पवित्र हो जाते हैं।'

अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥
(कूर्मपुराण, उत्तरार्ध २४।६)

'इस संसारमें द्विजोंके लिये अग्निहोत्रसे बढ़कर और कोई विशेष धर्म नहीं है। अतः नित्य ही अग्निहोत्रकी आराधना करनी चाहिये।'

अग्निहोत्रफला वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः।
अग्निहोत्रसमो धर्मो न भूतो न भविष्यति॥
(प्रजापतिः)

'शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष—इन छह अङ्गों तथा पद और क्रमसे सहित वेदोंका फल (प्रयोजन) अग्निहोत्र है। अग्निहोत्रके तुल्य धर्म न कोई हुआ और न कोई होगा अर्थात् अग्निहोत्र सर्वोत्तम धर्म है।'

अग्निहोत्रार्थमुत्पन्ना वेदा ओषधयस्तथा।
ये चान्ये पशवो भूमौ सर्वे ते यज्ञकारणात्।
सृष्टा भगवतानेन इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० १६।८)

'अग्निहोत्रके लिये ही वेद और विविध ओषधियोंका आविर्भाव हुआ है। और भी जो पशु भूमिमें हैं वे सब यज्ञके लिये ही इन भगवान्‌के द्वारा रचे गये हैं, ऐसी वैदिकी श्रुति है।'

'नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्।'

(शतपथब्रा० २।३।३।१५)

'यह अग्निहोत्र निश्चित ही स्वर्गके सुखको प्राप्त करानेवाली नौका है।'

अग्निहोत्रीका महत्त्व

आहिताग्निः सुधर्मात्मा यः स पुण्यकृदुत्तमः।
वेदा हि सर्वे राजेन्द्र स्थितास्त्रिष्वग्निषु प्रभो॥
स चाप्यग्न्याहितो विप्रः क्रिया यस्य न हीयते।
श्रेयो ह्यनाहिताग्नित्वमग्निहोत्रं न निष्क्रियम्॥
अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २६२।२०-२२)

'हे राजेन्द्र, समस्त वेद तीन (दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय) अग्नियोंमें निवास करते हैं। अतः अग्निहोत्रीको धर्मात्मा और श्रेष्ठ कर्म करनेवाला समझना चाहिये। जिसकी क्रियाएँ कभी नष्ट नहीं होतीं, वह अग्निहोत्री कहलाता है। अग्निहोत्री बनकर धर्मक्रियाएँ न करनेसे अग्निहोत्र न करना ही श्रेष्ठ है। हे नरश्रेष्ठ अग्निहोत्रीको अग्निहोत्रके अग्निकी, माताकी, उत्पन्न करनेवाले पिताकी और गुरुकी सेवा नम्रतापूर्वक करनी चाहिये।'

अग्निहोत्रीके गृहका महत्त्व

ब्रह्मा विष्णुः शिवः सूर्यो गो-विप्र-पितृदेवताः ।
अग्निहोत्रिगृहे सन्ति व्रत तीर्थ-तपांसि च ॥

'ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, अग्निष्वात्त आदि पितृदेव, व्रत, तीर्थ और तप—ये सब अग्निहोत्रीके घरमें रहते हैं ।'

रुद्रके भेद

शास्त्रोंमें 'रुद्र' के पाँच भेद कहे गये हैं—रूपक, रुद्र, रुद्री, महारुद्र और अतिरुद्र । यथा—

रुद्राः पञ्चविधाः प्रोक्ता देशिकैरुत्तरोत्तरम् ।
साङ्गस्त्वाद्यो रूपकाख्यः सशीर्षो रुद्र उच्यते ॥
एकादशगुणैस्तद्वत् रुद्रीसंज्ञो द्वितीयकः ।
एकादशभिरेताभिस्तृतीयो लघुरुद्रकः ॥
लघ्वेकादशभिः प्रोक्तो महारुद्रश्चतुर्थकः ।
पञ्चमः स्यान्महारुद्रैरेकादशभिरन्तिमः ॥
अतिरुद्रः समाख्यातः सर्वेभ्यो ह्युत्तमोत्तमः ॥

(रुद्रकल्पद्रुम)

'आचार्योंके द्वारा रुद्रयाग उत्तरोत्तर एकसे एक श्रेष्ठ पांच प्रकारके कहे गये हैं । अङ्गसहित शीर्षयुक्त 'रूपक' नामका पहला रुद्र कहा जाता है । वैसे ही ग्यारह आवृत्तियोंवाला 'रुद्री' नामका दूसरा रुद्र कहा जाता है । एकादश (ग्यारह) रुद्रियोंसे 'लघुरुद्र' नामका तीसरा रुद्र कहा जाता है । ग्यारह लघुरुद्रोंसे 'महारुद्र' नामका चौथा रुद्र कहा जाता है । ग्यारह महारुद्रोंसे 'अतिरुद्र' नामका पांचवाँ रुद्र अन्तिम कहा जाता है । अतिरुद्र सब रुद्रोंसे उत्तमोत्तम है ।

(१) छः अङ्गके सहित रुद्राध्यायको [1]'रूपक' कहते हैं।

(२) रूपकमें 'वयर्ठं० सोम' (शीर्षसंज्ञक) यह आठ मन्त्र मिला दिये जायँ, तो वह 'रुद्र' (रुद्री) हो जाता है।

(३) सब अङ्गके सहित ११ 'नमस्ते' पढ़ी जाय और 'वयर्ठं०, उग्रश्च, वाजश्च, ऋतं वाचम्' भी पढ़ा जाय, तो वह 'रुद्री' हो जाती है।

(४) रुद्रीको ११ गुना करनेसे वह [2]'लघुरुद्र' हो जाता है,। इसमें १२१ नमस्ते का पाठ होता है।

(५) लघुरुद्रको ११ गुना करनेसे [3]'महारुद्र' हो जाता है। इसमें १३३१ 'नमस्ते'का पाठ होता है।

(६) महारुद्रको ११ गुना करनेसे [4] 'अतिरुद्र' हो जाता है।

(७) ‡'शतरुद्रिय' नाम वस्तुतः 'नमस्ते' अध्यायका है।

रुद्रयागकी आहुतिका विचार

(रुद्र, लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्रकी आहुतिका विचार)

नमस्तेकी आहुतिमें कई पक्ष हैं। यथा—

सम्पूर्ण नमस्ते	१	आहुति
,,	३	,,
,,	६	,,
,,	१६	,,
,,	४४	,,
,,	४८	,,

१—षड़ङ्ग पाठको 'रूपक' कहते हैं।

२—ग्यारह ब्राह्मण रुद्राभिषेक करें तो 'लघुरुद्र' होता है।

३—ग्यारह लघुरुद्र करनेसे 'महारुद्र' होता है।

४—ग्यारह महारुद्र करनेसे 'अतिरुद्र' होता है।

‡ मिथिलामें १०० मन्त्रको 'शतरुद्रिय' कहते हैं।

सम्पूर्ण नमस्ते १६१ आहुति (आजकल यह पक्ष अधिक प्रचलित है)

" ४२५ "

रुद्रयज्ञमें—१८११ आहुति होती हैं।

लघुरुद्रमें—१९९२१ आहुति होती हैं।

महारुद्रमें—२१९१३१ आहुति होती हैं।

अतिरुद्रमें—२४१०४४१ आहुति होती हैं।

रुद्रयागकी आहुतिका चक्र

एक नमस्तेकी १६१ आहुति होती है, इस क्रमसे अङ्गसहित रुद्रादि यज्ञकी आहुतियोंका स्पष्टीकरण नीचे लिखे चक्रमें देखिए—

नाम मन्त्र	रुद्र	लघुरुद्र	महारुद्र	अतिरुद्र
यज्जाग्रतः०	१	११	१२१	१३३१
सहस्रशीर्षा०	१	११	१२१	१३३१
अद्भ्यः०	१	११	१२१	१३३१
आशुः शिशा०	१	११	१२१	१३३१
विभ्राट्०	१	११	१२१	१३३१
नमस्ते०	१७७१	१९४८१	२१४२९१	२३५७२०१
वाजश्च०	११	१२१	१३३१	१४६४१
ऋचं वाचम्०	२४	२६४	२९०४	३१९४४
योग	१८११	१९९२१	२१९१३१	२४१०४४१

विष्णुयागकी आहुतिका विचार

(विष्णु, महाविष्णु और अतिविष्णुयज्ञकी आहुतिका विचार)

यत्र होमात्मको यागो वैष्णवः पापनाशनः ।
तत्र लक्षं सहस्राणि षष्टिश्चाहुतयो मताः ॥
लक्षत्रयं सहस्राणां विंशतिं जुहुयाद्यदा ।
तं महाविष्णुयागं वै प्रवदन्ति विपश्चितः ॥
यत्राशीतिसहस्राणि तथा लक्षचतुष्टयम् ।
आहुतीनां मताः सङ्ख्या अतिविष्णुं ब्रुवन्ति तम् ॥
(नागरकृतविष्णुयागपद्धतौ)

'जहाँपर पापपुञ्जसंहारी होमात्मक 'विष्णुयाग' होता है वहाँ एक लाख साठ हजार आहुतियाँ दी जाती हैं। जहाँ तीन लाख बीस हजार आहुतियाँ पड़ें, उस यागको विद्वान् लोग 'महाविष्णु-याग' कहते हैं। जहाँ पर आहुतियोंकी संख्या चार लाख अस्सी हजार होती हैं, उसे विद्वान् जन 'अतिविष्णुयाग' कहते हैं।'

एकलक्षं द्विलक्षं च त्रिलक्षं च ततः परम् ।
मोक्षार्थी क्रमतो जप्त्वा द्वादशाक्षरसंयुतम् ॥
अर्काक्षरयुक्तेन पुरुषसूक्तं समाचरेत् ।
तथैव चाहुतिर्देया ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥
(नागरकृतविष्णुयागपद्धतौ)

'मोक्ष चाहनेवाला पुरुष क्रमशः एक लाख, दो लाख, तदनन्तर तीन लाख द्वादशाक्षरसहित पुरुषसूक्तका जप करे। उसी प्रकार द्वादशाक्षरयुक्त पुरुषसूक्तसे ग्रहयज्ञपुरस्सर हवन करे।'

विविध यज्ञोंकी आहुतिका निर्णय

१—रुद्रयागमें १८११ (एक हजार आठसो ग्यारह) आहुति होती हैं।

महारुद्रयागमें २१९१३१ (दो लाख उन्नीस हजार एकसो इकतीस) आहुति होती हैं।

अतिरुद्रयागमें २४१०४४१ (चौबीस लाख दस हजार चार सौ इकतालीस) आहुति होती हैं।

२—विष्णुयागमें १६०००० (एक लाख साठ हजार) आहुति होती हैं।

महाविष्णुयागमें ३२०००० (तीन लाख बीस हजार) आहुति होती हैं।

अतिविष्णुयागमें ४८०००० (चार लाख अस्सी हजार) आहुति होती हैं।

(नागरकृतविष्णुयागपद्धतौ)

३—विष्णुयागमें १६००० (सोलह हजार) आहुति होती हैं।
महाविष्णुयागमें १६०००० (एक लाख साठ हजार) आहुति होती हैं।

अतिविष्णुयागमें ३२०००० (तीन लाख बीस हजार) आहुति होती हैं।

(अनन्तदेवकृतविष्णुयागपद्धतौ)

४—अन्य विद्वानोंकी मुद्रित विष्णुयागपद्धतिके अनुसार विष्णुयागमें १६००० (सोलह हजार) आहुति होती हैं।
महाविष्णुयागमें १६०००० (एक लाख साठ हजार) आहुति होती हैं।

अतिविष्णुयागमें ३२०००० (तीन लाख बीस हजार) आहुति होती हैं।

५—रामयज्ञमें विष्णुयागकी तरह आहुति होती हैं।

६—गणेशयागमें १००००० (एक लाख) आहुति होती हैं।
(पुराणसमुच्चय)

७—सूर्ययागमें एक कोटि (१०००००००) आहुति अथवा एक लक्ष (१०००००) आहुति अथवा अयुत (१००००) आहुति होती हैं।

८—प्रजापतियागमें एक लक्ष (१०००००) आहुति अथवा अयुत (१००००) आहुति होती हैं।

विविध यज्ञोंके स्वाहाकारके मन्त्रोंका परिचय

१—विष्णुयागमें शुक्ल यजुर्वेदके ३१वें अध्यायके प्रारम्भके १६ मन्त्रोंसे आहुति होती है। इन सोलह मन्त्रोंको 'पुरुषसूक्त' कहा जाता है।

२—रुद्रयागमें शुक्ल यजुर्वेदके १६वें अध्यायके समस्त मन्त्रोंसे आहुति होती है।

३—सूर्ययागमें शुक्ल यजुर्वेदके ३३वें अध्यायके ३०वें मन्त्रसे ४३ मन्त्र तक तथा शुक्ल यजुर्वेदके ७वें अध्यायके १२वें मन्त्रसे और ७वें अध्यायके १६वें मन्त्रसे एवं १३वें अध्यायके ४६वें मन्त्रसे आहुति होती है।

४—गणेशयागमें शुक्ल यजुर्वेदके ३३वें अध्यायके ६५वें मन्त्रसे ७२ मन्त्र तक आठ मन्त्रोंसे आहुति होती है।

५—विश्वशान्तियागमें शुक्ल यजुर्वेदके ३६वें अध्यायके सम्पूर्ण मन्त्रोंसे आहुति होती है।

६—लक्ष्मीयागमें श्रीसूक्त (ऋग्वेदोक्त)से आहुति होती है।

७—रामयज्ञमें पुरुषसूक्त (शुक्ल यजुर्वेदके ३१वें अध्यायके प्रारम्भके १६ मन्त्र) से आहुति होती है।

८—प्रजापतियाग (ब्रह्मयाग) में शुक्ल यजुर्वेदके ७वें अध्यायके ४६वें मन्त्रसे, १२वें अध्यायके ६१वें मन्त्रसे, १३वें अध्यायके ३रे मन्त्रसे, १६वें अध्यायके ५वें मन्त्रसे, २२वें अध्यायके २२वें मन्त्रसे, २३वें अध्यायके ४८वें मन्त्रसे, २३वें अध्यायके ६५वें मन्त्रसे, २६वें अध्यायके ४७वें मन्त्रसे, ३०वें अध्यायके ५वें मन्त्रसे, ३३वें अध्यायके ७८वें मन्त्रसे और ३४वें अध्यायके ५८वें मन्त्रसे आहुति होती है।

कुण्ड—मण्डपके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक बातें

कुण्डोंके भेद

चतुरस्र कुण्ड, योनिकुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड, त्रिकोण कुण्ड, वृत्त कुण्ड, (वर्त्तुल कुण्ड), षडस्र कुण्ड, पद्म कुण्ड और अष्टास्र कुण्ड—ये आठ प्रकारके कुण्ड होते हैं।

एक कुण्ड

एक कुण्डके यज्ञमें मण्डपके मध्यमें ही कुण्ड होता है। एक कुण्डके यज्ञमें चतुरस्र अथवा पद्म कुण्डका निर्माण होता है, किन्तु कामना-भेदसे अन्य कुण्डका भी निर्माण किया जा सकता है।

पाँच कुण्ड

पाँच कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्र, दक्षिणमें वृत्तार्ध (अर्धचन्द्र), पश्चिममें वृत्त (वर्त्तुल), उत्तरमें पद्म और मध्यमें चतुरस्र कुण्ड (आचार्यकुण्ड) होता है।

नव कुण्ड

नव कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्र, अग्निकोणमें योनिकुण्ड, दक्षिणमें अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध), नैर्ऋत्यकोणमें त्रिकोण, पश्चिममें वृत्त (वर्त्तुल), वायव्यकोणमें षडस्र, उत्तरमें पद्मकुण्ड, ईशान कोणमें अष्टास्र (अष्टकोण) और मध्यमें चतुरस्र कुण्ड (आचार्यकुण्ड) होता है।

*चार कुण्ड

चार कुण्डके यज्ञमें बीचमें प्रधानवेदी होती है। पूर्वमें चतुरस्र, दक्षिणमें अर्धचन्द्र, पश्चिममें वृत्त और उत्तरमें पद्मकुण्ड होता है।

नव कुण्डोंकी योनिका विचार

नव कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

अग्निकोणमें योनिकुण्ड होता है। इसमें योनि नहीं होती।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

नैर्ऋत्य कोणमें त्रिकोण कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

वायव्य कोणमें षडस्र कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

---

* चार कुण्डोंका विधानॅ प्रतिष्ठा एवं तुलादानादिके लिये 'नारद पञ्चरात्र' और '[illegible]मयूख' आदि ग्रन्थोंमें लिखा है।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

ईशानकोणमें अष्टास्त्र कुण्ड (अष्टकोण) की योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

मध्यमें चतुरस्त्र कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

पाँच कुण्डोंकी योनिका विचार

पांच कुण्डके यज्ञमें मध्यके कुण्डकी (चतुरस्त्र कुण्डकी) योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

पूर्वमें चतुरस्त्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

चार कुण्डोंकी योनिका विचार

पूर्वमें चतुरस्त्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

कुण्डमें मेखला और रंगका विचार

प्रत्येक कुण्डमें तीन-तीन मेखला होती हैं। ऊपरकी मेखलाका सफेद रंग, मध्यकी मेखलाका लाल रंग और नीचेकी मेखलाका काला रंग होता है।

कुण्डोंका अलग-अलग फल

चतुरस्त्र कुण्ड समस्त प्रकारकी सिद्धिको देनेवाला है। योनिकुण्ड पुत्रको देनेवाला है। अर्धचन्द्र कुण्ड (वृत्तार्ध कुण्ड) शुभ फलको

देनेवाला है। त्रिकोण कुण्ड शत्रुका नाश करनेवाला है। वृत्तकुण्ड (वर्तुलकुण्ड) शान्ति-स्थापन करनेवाला है। षडस्र कुण्ड मृत्युच्छेदन करनेवाला (मृत्युको दूर करनेवाला) है। पद्मकुण्ड वृष्टिको देनेवाला है। अष्टास्र कुण्ड रोगको हटानेवाला है।

वर्णभेदसे कुण्डनिर्माणकी व्यवस्था

एक कुण्डके यज्ञमें वर्णभेदसे ही कुण्ड बनाना चाहिये। जैसे— ब्राह्मणके लिये चतुरस्र, क्षत्रियके लिये वृत्त (वर्तुल), वैश्यके लिये अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध) और शूद्रके लिये त्रिकोण कुण्ड कहा गया है। अथवा वर्णचतुष्टयके लिये चतुरस्र या वृत्त कुण्ड कहा गया है।

❀स्त्री यदि यज्ञ करे, तो उसके लिये योनिकुण्ड अथवा चतुरस्र कुण्ड कहा गया है।

विविध यज्ञोंके कुण्डादिका विचार

१—विष्णुयागमें १, ५ और ९ कुण्डोंके निर्माणका विधान कुण्ड-मण्डपके ग्रन्थोंमें मिलता है।

२—प्रतिष्ठा और तुलादानादिके लिये ७ कुण्डका विधान 'नारद-पञ्चरात्र' में और †चार कुण्डका विधान 'दानमयूख' में मिलता है।

३—एक कुण्डके विष्णुयागमें, एक कुण्डके महाविष्णुयागमें और एक कुण्डके अतिविष्णुयागमें ६ हाथ (५८ अङ्गुल और ६ यव)का कुण्ड होता है।

४—विष्णुयागमें ५ कुण्ड एक-एक हाथ (चौबीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते हैं।

❀ 'स्त्रीणां कुण्डानि राजेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्।' (सनत्कुमारः)

† चतुष्कुण्डीपक्षे चत्वारि कुण्डान्यखातानि भवन्तीति दानमयूखे लिखितम्।

५—महाविष्णुयागमें ५ कुण्ड दो-दो हाथ (चौंतीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते हैं ।

६—अतिविष्णुयागमें ५ कुण्ड चार-चार हाथ (अड़तालीस अङ्गुल) के लंबे और चौड़े होते हैं ।

७—रुद्रयागमें भी विष्णुयागकी तरह १, ५ और ९ कुण्ड होते हैं । कुछ लोग रुद्रयागमें रुद्रपदेन ११ कुण्ड बनाते हैं ।

८—नवग्रहयागमें सूर्यकी प्रधानता होनेके कारण मध्यका कुण्ड ही प्रधानकुण्ड (आचार्यकुण्ड) होना चाहिये, यह 'शान्तिमयूख' का मत है ।

९—‡कोटिहोममें १००, १०, २ अथवा १ कुण्ड होता है ।

१०—सौ कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं । दस कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं ।

दो कुण्डोंके यज्ञमें दोनों कुण्ड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं । एक कुण्डके यज्ञमें वत्त, चतुरस्र अथवा पद्मकुण्ड होता है ।

११—कोटिहोममें प्रधानकुण्ड नैर्ऋत्यकोणमें होना चाहिये, यह 'शान्तिमयूख' आदिका मत है ।

१२—कोटिहोममें प्रधानवेदी पूर्व दिशामें होती है ।

१३—कोटिहोममें अग्निस्थापन प्रधानकुण्डमें ही करना चाहिये और

---

‡ शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा ।
चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते ॥
(भविष्यपुराण)

'हे महाराज, शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख-भेदसे कोटिहोम चार प्रकारका होता है ।'

प्रधानकुण्डसे ही अग्नि ले जाकर अन्य कुण्डोंमें अग्निस्थापन करना चाहिये।

१४—कोटिहोममें १०० कुण्ड हों, तो प्रत्येक कुण्ड एक-एक हाथ लंबा और चौड़ा होता है।

कोटिहोममें दस कुण्ड हों, तो प्रत्येक कुण्ड छः-छः हाथ लंबा और चौड़ा होता है।

कोटिहोममें दो कुण्ड हों, तो दोनों कुण्ड छः-छः हाथ लंबे और चौड़े होते हैं।

कोटिहोममें एक कुण्ड हो, तो आठ हाथका अथवा दस हाथका अथवा सोलह हाथका होता है।

आहुतियोंके हिसाबसे कुण्डका प्रमाण

५० से कम आहुतिमें कुण्ड नहीं होता, किन्तु स्थण्डिल होता है। ५० से ९९ तक आहुतिमें २१ अङ्गुलका (बँधी हुई मुट्ठी भर हाथका) कुण्ड होता है।

१०० से ९९९ तक आहुतिमें २२½ अङ्गुल (अरत्निमात्र) का कुण्ड होता है।

१००० (एक हजार) आहुतिमें १ हाथका कुण्ड होता है।
१०००० (दस हजार) आहुतिमें २ हाथका कुण्ड होता है।
१००००० (एक लाख) आहुतिमें ४ हाथका कुण्ड होता है।
१०००००० (दस लाख) आहुतिमें ६ हाथका कुण्ड होता है।
१००००००० (एक करोड़) आहुतिमें ८ हाथका कुण्ड होता है।

शारदातिलकका कहना है कि कोटिहोममें १० हाथका कुण्ड होना चाहिए—'दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि दृश्यते।'

किसी आचार्यका मत है कि कोटिहोममें १६ हाथका कुण्ड होना चाहिये।

यज्ञमण्डपसम्बन्धी विविध विषयोंका विचार

१—उत्तम यज्ञमण्डप ३२, २४, २०, १८ तथा १६ हाथका लंबा और चौड़ा कहा जाता है।

मध्यम यज्ञमण्डप १४ तथा १२ हाथका लंबा और चौड़ा कहा जाता है।

अधम यज्ञमण्डप १० हाथका लंबा और चौड़ा कहा जाता है। कुछ लोग ८ हाथके मण्डपको भी अधम कहते हैं।

२—मण्डपकी ऊँचाई एक हाथ अथवा आधा हाथ होती है।

३—मण्डपके भीतर चारों दिशाओंमें चार वेदी बनती हैं। जैसे—ईशानकोणमें ग्रहवेदी, अग्निकोणमें योगिनीवेदी, नैर्ऋत्य-कोणमें वास्तुवेदी और वायव्यकोणमें क्षेत्रपालवेदी।

४—विष्णुयागमें प्रधानवेदी पूर्व और दक्षिण दिशाके मध्यमें होती है। आजकल पूर्व दिशामें ही प्रधानवेदी प्रचलित है।

५—रुद्रयागमें प्रधानवेदी ईशानकोणमें होती है।

६—रुद्रयागमें प्रधानवेदीके दक्षिणमें 'ग्रहवेदी' होती है।

७—प्रधानवेदी एक हाथ ऊँची और दो हाथ चौड़ी होती है। अन्य क्षेत्रपाल आदिकी चारों वेदियाँ एक-एक हाथ ऊँची और एक-एक हाथ चौड़ी होती हैं।

८—ग्रहवेदीमें तीन सीढ़ी (वप्र) होती हैं। ग्रहवेदीकी तरह वास्तु, क्षेत्रपाल और योगिनी वेदीमें भी तीन-तीन सीढ़ी (वप्र) होनी चाहिये।

९—प्रधानवेदीमें दो सीढ़ी (वप्र) होती हैं।

१०—ग्रहवेदी आदि सभी वेदियोंकी ऊपरकी और मध्यकी सीढ़ी तीन-तीन अङ्गुल ऊँची और दो-दो अङ्गुल चौड़ी होती हैं। नीचेवाली तीसरी सीढ़ी दो अङ्गुल ऊँची और दो अङ्गुल चौड़ी होती है।

११—ग्रहवेदी आदि सभी वेदियोंकी तीनों सीढ़ियोंमें ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी, मध्यवाली लाल रंगकी और नीचेवाली काले रंगकी होती है।

१२—प्रधानवेदीकी ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी और नीचेवाली लाल रंगकी होती है।

१३—यज्ञ-मण्डपमें १६ स्तम्भ होते हैं। बड़े यज्ञ-मण्डपमें अर्थात् १०० हाथके मण्डपमें, ५० हाथके मण्डपमें और ३२ हाथके मण्डपमें यज्ञमण्डपकी मजबूतीके लिये सोलह स्तम्भसे अधिक स्तम्भ भी लगाये जा सकते हैं।

१४—१६ हाथके यज्ञमण्डपमें भीतरवाले ४ स्तम्भ ६ हाथके और बाहरवाले १२ स्तम्भ ५ हाथके होते हैं।

१५—मण्डपस्थ स्तम्भोंके पाँचवें हिस्सेको भूमिमें गाड़ देना चाहिये।

१६—यज्ञ-मण्डपमें स्तम्भोंके लगानेका क्रम यह है कि यज्ञ-मण्डप जितना बड़ा हो, उससे आधे प्रमाणके भीतरी ४ स्तम्भ और बाहरी १२ स्तम्भ ७ हाथके लगाने चाहिये।

१७—यज्ञमण्डपके स्तम्भ यज्ञिय वृक्षके अथवा बाँसके अथवा अन्य पवित्र वृक्षके लगाने चाहिये।

१८—यज्ञ-मण्डपके स्तम्भोंकी स्थूलता (मोटाई) १६ अंगुल, १० अंगुल अथवा यथेच्छ कही गई है।

१९—यज्ञमण्डपके सोलह स्तम्भोंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द (कार्तिकेय), वायु, सोम, वरुण, अष्टवसु, धनद (कुवेर), बृहस्पति और विश्वकर्मा—इन सोलह देवताओंका स्थापन होता है।

२०—यज्ञ-मण्डपके १६ स्तम्भोंमें इस प्रकार रंगीन वस्त्र लगाना चाहिये—मण्डपके भीतरवाले चार स्तम्भोंमें क्रमशः १—ईशानकोणके स्तम्भमें लाल वस्त्र, २—अग्निकोणके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ३—नैर्ऋत्यकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र और ४—वायव्यकोणके स्तम्भमें पीला वस्त्र होना चाहिये।

मण्डपके बाहरवाले बारह स्तम्भोंमें क्रमशः १—ईशानकोणके स्तम्भमें लाल वस्त्र, २—ईशान और पूर्वके स्तम्भके मध्यमें सफेद वस्त्र, ३-पूर्व और अग्निकोणके स्तम्भके मध्यमें काला वस्त्र, ४—अग्निकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र, ५-अग्निकोण और दक्षिणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ६-दक्षिण और नैर्ऋत्यकोणके मध्यके स्तम्भमें धूम्र वस्त्र, ७-नैर्ऋत्यकोणमें पीला वस्त्र, ८—नैर्ऋत्य और पश्चिमके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ९—पश्चिम और वायव्यकोणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, १०—वायव्यकोणमें पीला वस्त्र, ११-उत्तर और वायव्यकोणके मध्यमें पीला वस्त्र और १२-उत्तर और ईशानकोणके मध्यमें लाल वस्त्र होना चाहिये।

२१—दश दिक्पालकी १० ध्वजा होती हैं। ये ध्वजा त्रिकोण होती हैं।

२२—ध्वजा २ हाथ चौड़ी और ५ हाथ लंबी होती है। किसी आचार्यका मत है कि ध्वजा १ हाथ चौड़ी और १ हाथ लंबी होती है।

२३—पूर्व दिशामें पीले रंगकी ध्वजा इन्द्रकी होती है और इसका वाहन सफेद रंगका हाथी होता है। अग्निकोणमें लाल रंगकी ध्वजा अग्निकी होती है और इसका वाहन सफेद रंगका मेष (मेढ़ा) होता है।

दक्षिण दिशामें काले रंगकी ध्वजा यमकी होती है और

इसका वाहन लाल रंगका महिष (भैंसा) होता है। नैऋर्त्यकोणमें नील रंगकी ध्वजा निऋर्तिकी होती है और इसका वाहन सफेद रंगका सिंह होता है।

पश्चिम दिशामें सफेद रंगकी ध्वजा वरुणकी होती है और इसका वाहन धूम्र वर्णकी मछली होती है। वायव्यकोणमें धूम्र अथवा हरे रंगकी ध्वजा वायुकी होती है और इसका वाहन काले रंगका हरिण (मृग) होता है।

उत्तर दिशामें सफेद अथवा हरे रंगकी ध्वजा सोमकी होती है और इसका वाहन सुवर्णके सदृश अश्व (घोड़ा) होता है। ईशानकोणमें सफेद रंगकी ध्वजा ईशानकी होती है और इसका वाहन लाल रगका बैल होता है।

२४—ब्रह्माकी ध्वजा ईशानकोण और पूर्वके मध्यमें सफेद अथवा लाल रंगकी होती है और इसका वाहन सफेद रंगका हंस होता है।

२५—अनन्तकी ध्वजा नैऋर्त्यकोण और पश्चिमके मध्यमें सफेद रंगकी अथवा काले रंगकी होती है और इसका वाहन गरुड़ होता है।

२६—ध्वजाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये।

२७—हाथी, मेढ़ा, भैंस, सिंह, मछली, मृग, घोड़ा, बैल, हंस और गरुड़—ये ध्वजाओंके वाहन हैं।

२८—दश दिक्पालकी १० पताका होती हैं। ये चतुष्कोण (चौकोर) होती हैं।

२९—ध्वजाओंकी तरह पताकाओंका भी रंग होता है।

३०—पताका ७ हाथ लंबी और १ हाथ चौड़ी होती है।

३१—पूर्व दिशाकी पताकामें आयुध वज्र होता है। अग्निकोणकी पताकामें आयुध शक्ति (तलवार) होती है। दक्षिण दिशाकी पताकामे आयुध दण्ड होता है। नैऋर्त्यकोणकी पताकामें

आयुध खड्ग होता है। पश्चिम दिशाकी पताकामें आयुध पाश होता है। वायव्यकोणकी पताकामें आयुध अङ्कुश होता है। उत्तर दिशाकी पताकामें आयुध गदा होती है। ईशानकोणकी पताकामें आयुध त्रिशूल होता है। पूर्व और ईशानकोणके मध्यकी पताकामें आयुध कमण्डलु होता है और पश्चिम और नैर्ऋत्यकोणकी पताकामें आयुध चक्र होता है।

३२—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा और त्रिशूल—ये पताकाओंके आयुध हैं।

३३—पताकाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये।

३४—महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है।

३५—महाध्वज दस हाथका अथवा सात हाथका अथवा पाँच हाथका लंबा होता है और पाँच हाथका अथवा साढ़े तीन हाथका अथवा ३ हाथका चौड़ा होता है।

३६—महाध्वज पचरंगा अथवा चित्र-विचित्र रंगका होता है।

३७—महाध्वजको दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ अथवा बत्तीस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये।

३८—महाध्वजको यज्ञमण्डपके मध्यमें अथवा यज्ञमण्डपके ईशान-कोणमें लगाना चाहिये।

३९—यज्ञमण्डपमें चार मण्डप-द्वार होते हैं। यह अढ़ाई हाथ चौड़े और तीन हाथ ऊँचे होते हैं।

४०—मण्डपके द्वार (दरवाजे) बल्ली आदिके बनते हैं।

४१—यज्ञमण्डपके चारों दिशाओंके चारों द्वारोंमें चार 'तोरणद्वार' होते हैं। ये चारों तोरणद्वार मण्डपद्वारसे एक-एक हाथ अथवा दो-दो हाथकी दूरीपर बनाने चाहिये।

४२—तोरणद्वारोंमें मण्डपके द्वारोंकी तरह नीचेकी ओर लकड़ी (देहली) नहीं होती।

४३—तोरणद्वार निर्माणके लिये पूर्वमें पीपल अथवा वट (वरगद) की, दक्षिणमें गूलरकी, पश्चिममें पीपलकी अथवा पाकरकी और उत्तरमें पाकर अथवा वट (वरगद) की लकड़ी होनी चाहिये। यदि चारों द्वारोंके लिये उपर्युक्त अलग-अलग लकड़ी प्राप्त न हो सके, तो निर्दिष्ट लकड़ियोंमेंसे किसी भी उपलब्ध एक लकड़ीसे भी तोरणद्वार बनाये जा सकते हैं।

४४—पूर्व द्वारके तोरणमें पीला वस्त्र, दक्षिण द्वारके तोरणमें काला वस्त्र, पश्चिम द्वारके तोरणमें सफेद वस्त्र और उत्तर द्वारके तोरणमें पीला वस्त्र लगाना चाहिये।

४५—विष्णुयागमें चारों तोरणद्वारोंके ऊपर क्रमशः पूर्वमें शंख, दक्षिणमें चक्र, पश्चिममें गदा और उत्तरमें पद्म लगाना चाहिये।

४६—विष्णुयागमें उत्तम मण्डपमें १४ अंगुल लंबा और ३॥ अङ्गुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डपमें १२ अङ्गुल लंबा और ३ अङ्गुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये। अधम मण्डपमें १० अङ्गुल लंबा और २॥ अङ्गुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये।

उपर्युक्त विष्णुयज्ञके उत्तमादि मण्डपके शंखादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाड़ देना चाहिये और द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डपसे एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

४७—रुद्रयागमें चारों दिशाओंमें लगे हुए चारों तोरणद्वारोंके ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिये।

४८—रुद्रयागमें उत्तम मण्डपमें १३ अङ्गुल लंबा और ३। अङ्गुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डपमें ११ अङ्गुल लंबा और २॥। अङ्गुल चौड़ा त्रिशूल

तोरणमें गाड़ना चाहिये। अघम मण्डपमें ६ अङ्गुल लंबा और २। अङ्गुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाड़ना चाहिये। अघम मण्डपमें २ अङ्गुल त्रिशूलको तोरणमें गाड़ना चाहिये।

उपर्युक्त रुद्रयज्ञके उत्तमादि मण्डपके त्रिशूलादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाड़ना चाहिये और द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डपसे एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

४६—यज्ञमण्डपके बाहर १८ कलश होते हैं। इनमें ४ कलश मण्डपके बाहर चारों दिशाओंके चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और ४ कलश चारों विदिशाओंके चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और १ कलश पूर्व और ईशानकोणके मध्यमें ब्रह्माका होता है और १ कलश पश्चिम और नैर्ऋत्यकोणके मध्यमें अनन्तका होता है। ये १० कलश दश दिक्पालके होते हैं।

मण्डपके चारों द्वारोंपर दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें 'द्वारकलश' कहते हैं। इस प्रकार यज्ञमण्डपके १८ कलश होते हैं।

बहुत लोग मण्डपके भीतर स्तम्भोंके पास भी कलश रखते हैं, किन्तु यह क्रम प्रचलित नहीं है।

५०—यज्ञमण्डपके शिखरका प्रमाण प्रायः किसी भी कुण्डमण्डप-ग्रन्थकर्ताने नहीं लिखा है। अतः महर्षि कात्यायनके 'अर्थात् परिमाणम्' इस प्रमाणके अनुसार मण्डपानुरूप यथेच्छ शिखरका निर्माण करना चाहिये।

५१—यज्ञमण्डपके समस्त स्तम्भोंमें भगवान्‌के चित्रों और शीशोंको लगाना चाहिये।

५२—यज्ञमण्डपके भीतर ऊपर छतकी ओर चारों तरफ सफेद वस्त्रका वितान (चँदवा) लगाना चाहिये ।

५३—यज्ञमण्डपमें समयके परिज्ञानार्थ घड़ी (घटीयन्त्र) लगाना चाहिये ।

देवताओंकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त

(मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र और योगादिका विचार)

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥
(मत्स्यपुराण)

'चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख और माघ मासमें समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभप्रद होती है ।'

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां वैशाखज्येष्ठफाल्गुने ।
चैत्रे तु स्याद्विकल्पेन माघे विष्ण्वन्यमूर्तिषु ॥
सौम्यायने शुभा प्रोक्ता निन्दिता दक्षिणायने ।
(धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद)

'वैशाख, ज्येष्ठ और फाल्गुनमें समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा करनेके लिये कहा गया है । चैत्र मासमें विकल्पसे अर्थात् एक पक्षमें हो सकती है और माघमें विष्णुके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हो सकती है । देवताओंकी प्रतिष्ठाके लिये उत्तरायण शुभ कहा है और दक्षिणायन निन्दित कहा है ।'

'माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् ।
लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे वरसंयुता ॥

१—माघमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताका विनाश होता है, यह शिव और विष्णुकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें लिखा है ।

आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा ॥
[1]श्रावणे धनहीना स्यात् [2]प्रोष्ठपादे विनश्यति ।
[3]आश्विने नाशमाप्नोति वर्धिता कार्तिके तथा ॥
[4]सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ।
दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च ॥
(हेमाद्रौ विष्णुधर्मे)

'माघमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताका विनाश, फाल्गुनमें करनेसे कल्याण, चैत्रमें करनेसे सांसारिक आनन्दप्रद सुख, वैशाखमें करनेसे वरकी प्राप्ति, ज्येष्ठमें करनेसे बड़ोंकी आज्ञामें तत्परता, आषाढ़में करनेसे धर्ममें वृद्धि, श्रावणमें करनेसे धनकी हानि, भाद्रपदमें करनेसे विनाश, आश्विनमें करनेसे सब प्रकारकी हानि, कार्तिकमें करनेसे सब प्रकारकी वृद्धि, मार्गशीर्षमें करनेसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति, पौषमें करनेसे उत्तम पुष्टि और मलमासमें करनेसे कर्ता और कारयिता दोनोंको दोषका भागी बनना पड़ता है।'

दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता ।
द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा ॥

१—श्रावणमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताके धनकी हानि होती है, यह शिव और विष्णुकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके विषयमें लिखा है।

२—भाद्रपदमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताका विनाश होता है, यह शिवकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके बारेमें कहा है।

३—आश्विनमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताका नाश होता है, यह विष्णुकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके लिये कहा है।

४—मार्गशीर्षमें प्रतिष्ठा करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है, यह विष्णुकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त अन्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें लिखा है।

चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा।
विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा॥
पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत्।
षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी॥
अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति।
भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये॥
धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ।
एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा॥
त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति।
कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत्॥
पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत्।

(मत्स्यपुराण)

'प्रतिष्ठाके लिये प्रतिपदा तिथि दृढ़ता देनेवाली (सर्वदा स्थिर रहनेवाली), धन देनेवाली और स्फीत अर्थात् अत्यन्त वृद्धि करनेवाली है। द्वितीया धनसे युक्त करती है, तृतीया धनको देनेवाली है, चतुर्थी नाश करनेवाली है, पंचमी लक्ष्मीसे युक्त करती है और वर देती है, षष्ठी सर्वदा लक्ष्मीसे युक्त करती है, सप्तमी रोगका नाश करती है, अष्टमी बहुत धान्यकी वृद्धि करती है और नवमी नाश करती है। नवमीको भद्रकालीकी प्रतिष्ठा करनेसे वह कर्ताको सन्तुष्टता देती है। दशमी धर्मकी वृद्धि करती है, एकादशी द्वादशी और त्रयोदशी—ये तीनों तिथियाँ समस्त कामनाओंको देती हैं, चतुर्दशी नाश करती है और कृष्ण पक्षकी अमावास्या नाश करती है। शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा समस्त कामनाओंको पूर्ण करती है।'

रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरा दित्याश्विनीवासवाऽ-
नूराधैन्दवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम्।

पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयो—
मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥
गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां
प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे।
श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां
निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥
(श्रीपतिः)

'रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, मृगशिरा और पुष्य नक्षत्रमें विष्णुकी प्रतिष्ठा, पुष्य, श्रवण और अभिजित्में इन्द्र, ब्रह्मा, कुबेर, स्वामिकार्तिककी प्रतिष्ठा, अनुराधामें सूर्यकी प्रतिष्ठा, हस्त और मूल नक्षत्रमें दुर्गा आदिकी प्रतिष्ठा :उत्तम कही गई है।

रेवतीमें गणेश, राक्षस, यक्ष, भूत, असुर, प्रमथ, फणी (शेष) और सरस्वती आदिकी प्रतिष्ठा, श्रवणमें सुगत देवताओंकी (जैनोंके जिन देवताओंकी) प्रतिष्ठा और धनिष्ठामें अन्य लोक-पालोंकी प्रतिष्ठा तथा स्थिर नक्षत्रोंमें समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ कही गई है।'

हस्तत्रये मित्रहरित्रये च
पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु।
तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु
सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥
(वशिष्ठः)

'हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा और श्रवणसे तीन, रेवती अश्विनी, पुनर्वसु पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रमें समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा उत्तम कही गई है।'

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा॥
हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते॥

(मत्स्यपुराण)

'पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वा भाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा और स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठामें विहित हैं।'

''अश्विनी रोहिण्युत्तरात्रयमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनुराधाश्रवणत्रयरेवतीषु शनिभौमान्यवासरे दर्शरिक्तान्यतिथौ सर्वदेवप्रतिष्ठा शुभा, श्रवणे कृत्तिकादिविशाखान्तेषु च द्वादश्यां च विष्णोः प्रशस्ता, चतुर्थी गणेशस्योक्ता, नवमी मूलभं च देव्याः, तथा स्व-स्वनक्षत्राणि सर्वेषाम्। यथा आर्द्रा शिवस्य, हस्तः सूर्यस्येत्यादि।''

'अश्विनी, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, तीनों श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा और रेवती नक्षत्रमें, शनि, मङ्गल आदि अशुभ वारमें और अमावास्या एवं 'रिक्ता' तिथिसे भिन्न तिथिमें समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभ कही गई है। श्रवणमें और कृत्तिका आदिसे विशाखाके अन्त तकके नक्षत्रोंमें तथा द्वादशी तिथिमें विष्णुकी प्रतिष्ठा प्रशस्त कही गई है। गणेशके लिये चतुर्थी तिथि कही गई है, देवीके लिये नवमी तिथि और मूल नक्षत्र कहा गया है। और समस्त देवताओंके लिये अपना-अपना नक्षत्र कहा गया है। जैसे—शिवके लिये आर्द्रा-नक्षत्र और सूर्यके लिये हस्त नक्षत्र कहा गया है।'

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां रोहिण्याश्विपुनर्वसु।
हस्ते पौष्णे धनिष्ठायां मृगे पुष्ये तथोत्तरे॥

सोमे बुधे गुरौ शुक्रे शुभयोगे शुभे तिथौ ।
मूले मैत्रे तथा स्वातौ कुर्यात्स्थापनमुत्तमम् ॥

'समस्त देवोंकी प्रतिष्ठा, रोहिणी, अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, पुष्य और उत्तरा नक्षत्रमें, सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवारके दिन शुभ योग, शुभ तिथिमें, मूल, अनुराधा और स्वातीमें देवस्थापना करना अति उत्तम है।'

सूर्य आदि सातों वारोंमें प्रतिष्ठा करनेका भिन्न-भिन्न फल

तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाह—
विधायिनी स्याद्धनदा दृढा च ।
आनन्दकृत् कल्पविनाशिनी च
सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा ॥
(श्रीपतिः)

'रविवारको की गई प्रतिष्ठा तेजस्विनी, सोमवारको कल्याणकारिणी, मंगलवारको अग्निदाहकारिणी, बुधवारको धनदायिनी, गुरुवारको बलप्रदायिनी, शुक्रवारको आनन्दकारिणी और शनिवारको सामर्थ्यविनाशिनी होती है।'

शिवकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु ।
मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥
(रत्नावली)

'माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़— इन पाँचों महीनोंके शुक्ल पक्षमें शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा उत्तम कही गई है।'

उत्तराशागते भानौ लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ।
दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षार्धे भयावहम् ॥

स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै [1]दक्षिणायने।
स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये॥
प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद् वरदयोगदम्।
हेमन्ते ज्ञानदं चैव लिङ्गस्यारोपणं मतम्॥

(हेमाद्रि, लक्षणसमुच्चय)

'उत्तरायण सूर्यमें शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा उत्तम कही गई है। दक्षिणायनमें पूज्य शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनेसे डेढ़ वर्ष (१।। वर्ष) तक भयको देती है, अतः दक्षिणायन सूर्यमें अपने घरमें शिव-लिङ्गकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये। इसलिये शिशिर आदि तीन ऋतुओंमें शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। वर्षा ऋतुमें शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनेसे वह वर प्रदान करते हैं और हेमन्तमें प्रतिष्ठा करनेसे ज्ञानको देते हैं।'

मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा।
मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च॥
वृषे वाप्याश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत्।

(वैखानसः)

'पहले ब्रह्माने मार्गशीर्ष और पौष इन दो महीनोंको (शिवकी प्रतिष्ठाके लिये) निन्दनीय कहा है। महीनोंमें फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आश्विन और श्रावण--ये महीने श्रेष्ठ कहे गये हैं।'

१—मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवालोंको दक्षिणायनमें भी प्रतिष्ठा करनेका दोष नहीं है—

श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम्।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः॥

विष्णु, शिव और देवीकी प्रतिष्ठाके लिये विहित मास

विष्णोः शस्ताश्चैत्रमासाश्विनश्रावणका अपि।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढसहःसु च ॥
श्रावणं च नभस्ये च लिङ्गस्थापनमुत्तमम्।
देव्या माघेऽऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा ॥

(धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद)

'विष्णुकी प्रतिष्ठाके लिये चैत्र, आश्विन, श्रावण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़—ये महीने प्रशस्त कहे गये हैं। शिवलिङ्ग-की प्रतिष्ठाके निमित्त श्रावण और भाद्रपद-ये दो महीने उत्तम कहे गये हैं। देवीकी प्रतिष्ठार्थ माघ और आश्विन—ये महीने उत्तम और समस्त कामनाओंको देनेवाले कहे गये हैं।'

देवीकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त

देव्या माघेऽऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा।
न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम् ॥
सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः।

(देवीपुराण)

'देवीकी प्रतिष्ठा माघ और आश्विन मासमें उत्तम और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। देवीकी प्रतिष्ठामें तिथि, नक्षत्र और उपवास आदिका विचार अनावश्यक है। अत: देवीकी प्रतिष्ठा सभा समयमें की जा सकती है, किन्तु विशेषत: कृष्ण पक्षमें करना उचित है।'

उत्तरायणमें ही देवताओंकी प्रतिष्ठा उचित है

देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ।
दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥

(सत्यव्रतः)

'देवता, बाग और बावड़ी आदिकी प्रतिष्ठा उत्तरायण सूर्यमें करनी चाहिये। इनकी दक्षिणायनमें प्रतिष्ठा करनेसे कर्ताको उसका फल प्राप्त नहीं होता।'

दक्षिणायनमें भी उग्र देवी-देवताओंकी प्रतिष्ठा हो सकती है

तथा महाश्विनो मास उत्तमः सर्वकामदः।
देवी तत्र सदा शक्र पांसुनाऽपि प्रतिष्ठिता॥
भवने फलदा पुंसां कर्कस्थे च वृषस्थिते।
न तिथिर्न नक्षत्रं नापि वारोऽत्र कारणम्॥
मातृ-भैरव-वाराह-नारसिंह-त्रिविक्रमाः।
महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥

(नरसिंहपुराण)

'उग्र देवताओंकी प्रतिष्ठाके लिये आश्विन मास उत्तम और समस्त कामनाओंको देनेवाला कहा गया है। हे इन्द्र! कर्क अथवा वृष राशिके सूर्य होनेपर घरमें भी बालुकाकी निर्मित देवीकी प्रतिष्ठा की जाय, तो वह मनुष्योंको फल देनेवाली होती है। इस प्रकारकी प्रतिष्ठामें तिथि, नक्षत्र और वारके विचारकी आवश्यकता नहीं है। देवी, भैरव, वाराह, नरसिंह, विष्णु और दुर्गाकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें भी की जा सकती है।'

‡दक्षिणायनमें एवं विभिन्न महीनोंमें विविध देवी-देवताओंकी प्रतिष्ठाका विचार

मातृ-भैरव-वाराह-हनुमन्तं महाबलम्।
विष्णुं स्कान्दं प्रतिष्ठाप्य शिवं वा दक्षिणायने॥

---

‡मुक्तिकी कामनाके लिये दक्षिणायनमें भी शिव आदि देवताओंकी प्रतिष्ठा की जा सकती है।

असिते कार्तिके मासि चतुर्दश्यां नराधिप।
स्थापनं विधिवत् कुर्यात् पूर्वाह्णे तु विचक्षणः॥
श्रावणे स्थापयेल्लिङ्गं आश्विने जगदम्बिकाम्।
मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्वान् पौषेऽपि केचन॥
श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने भुक्तिमिच्छताम्।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः॥
यतीनां सर्वकालेषु लिङ्गस्यारोपणं मतम्।

'हे राजन्! देवी, भैरव, वाराह, हनुमान्, विष्णु, स्कन्द, प्रजापति और शिवकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें भी की जा सकती है। बुद्धिमान् पुरुष कार्तिक मासकी कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथिको पूर्वाह्नमें विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कर दे। श्रावणमासमें शिवकी, आश्विनमासमें देवीकी और मार्गशीर्षमें हरि (विष्णु अथवा राम) की स्थापना होती है। किसी आचार्यका मत है कि पौष मास (खरवाँसको छोड़कर) में भी सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा हो सकती है। भोग चाहनेवालोंको उत्तरायणमें और मोक्ष चाहनेवालोंको दक्षिणायनमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये। किन्तु उन्हें मलमास (अधिकमास)में प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये। यतियों (संन्यासियों) के लिये सभी समयमें शिवलिङ्गकी स्थापना कही गई है।'

स्थान-विशेषमें देवप्रतिष्ठादिके लिये मुहूर्तका विचार अनावश्यक है

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवपीठचतुष्टये।
प्रयागे नैमिषे काश्यां कालाकालं न शोधयेत्॥

'पुण्यतीर्थमें, कुरुक्षेत्रमें, चारों देवपीठोंमें, प्रयागमें, नैमिषारण्यमें और काशीमें देवताओंकी प्रतिष्ठाके लिये समय और असमयका विचार नहीं करना चाहिये।'

देवमूर्तियोंकी प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक है

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु यत्।
अस्यै देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन्॥
अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठां तु प्रतिमापूजनाद् ऋते।
प्राणप्रतिष्ठां प्रथमं पूजाभागविशुद्धये॥
न कश्चिद् बुधः कुर्यात् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात्।

(कालिकापुराण)

'इस (प्रतिमा) के लिये प्राण प्रतिष्ठित हों और इसके लिये प्राणोंका संचार हो। इस देवत्व-ख्यातिके लिये 'स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए इसमें (देव-विग्रहमें) प्रतिमा पूजनके सिवा प्राणप्रतिष्ठा कोई (विद्वान्) जानकार न करे। पूजा न कर केवल पूजाभागकी विशुद्धिके लिये पहले प्रतिष्ठा करनेसे मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है।'

अप्रतिष्ठित मूर्ति पूजाके योग्य नहीं है

सुरार्चां ‡लक्षणैर्हीनां यस्तु पूजयते नरः।
तस्यान्नं नाभिवाञ्छन्ति तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥

'जो मनुष्य अप्रतिष्ठित देवप्रतिमाका पूजन करता है, उसके अन्नको देवता ग्रहण नहीं करते। अतः ऐसी मूर्तिका परित्याग कर देना चाहिये।'

---

‡ लक्षणैर्हीनाम्—प्रतिष्ठाहीनाम्।

*शालग्राम, नर्मदेश्वर आदि मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा, आवाहन और विसर्जन नहीं होता

'शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ।'

(स्कन्दपुराण)

'शालग्राम शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं होती है ।'

शालग्रामे स्थावरे वाहनं न विसर्जनम् ।
शालग्रामशिलादौ यन्नित्यं सन्निहितो हरिः ॥

'स्थिर शालग्राम मूर्तिपर आवाहन तथा विसर्जन नहीं करना चाहिये । क्योंकि शालग्राम शिलामें सर्वदा भगवान् स्थिर रहते हैं ।'

कम्बुश्चक्रं शैलभवा नर्मदेयाऽब्जिनीपती ।
बाणो विष्णुशिला चैषां प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ॥

(मार्कण्डेयः)

'शंख, चक्र (गोमतीचक्र), सुदर्शनचक्र, नर्मदेश्वर, सूर्ययन्त्र, वाणलिङ्ग और विष्णुशिला (शालग्राम) इनकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये ।'

वाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये ।
न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा ॥

(भविष्यपुराण)

---

*मूर्तिकी प्रतिष्ठा चल और अचल दो प्रकारकी कही गई है । अचल मूर्ति और शालग्राममें आवाहन और विसर्जन नहीं होता है । चल मूर्तिमें विकल्प है । सैकती (मिट्टी या वालुकामयी) मूर्तिमें [illegible]

'हे राजेन्द्र, तीनों भुवनोंमें बाणलिङ्ग प्रसिद्ध हैं, अतः इनकी न प्रतिष्ठा होती है, न संस्कार होता है और न आवाहन होता है।'

बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये।
न प्रतिष्ठा न संस्कारो न च निर्माल्यकल्पना॥
(निर्णयसिन्धु)

'हे राजेन्द्र तीनों भुवनोंमें बाणलिङ्ग प्रसिद्ध है, अतः इनकी न तो प्रतिष्ठा होती है, न इनका संस्कार होता है और न इनके निर्माल्य-भक्षणमें दोष ही होता है।'

पुनः प्रतिष्ठाके योग्य मूर्ति

चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाऽथवा।
अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षत्रजदूषिता॥
(हयशीर्षपञ्चरात्र)

'चाण्डालके स्पर्शसे, मद्यके स्पर्शसे, दूषित अग्निके स्पर्शसे और पापी मनुष्यके स्पर्शसे प्रतिमा दूषित हो जाती है। दूषित ब्राह्मण और क्षत्रियसे स्पर्श होनेपर भी प्रतिमा पुनः संस्कारके योग्य हो जाती है।'

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते।
यागहीनेः पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु॥
(ब्रह्मपुराण)

'खण्डित, स्फुटित (टूटी हुई), दग्ध (जली हुई), भ्रष्ट, मानहीन (प्रमाणसे हीन), यागहीन (पूजासे हीन) कुत्ता, गर्दभ आदि अस्पृश्य पशुओंसे स्पर्श की गई, अपवित्र भूमिमें गिरी हुई दूसरे मन्त्रोंसे (विधिहीन मन्त्रोंसे) पूजित और पतितसे स्पर्श की हुई प्रतिमाओंमें देवताओंका अस्तित्व नहीं रहता। अतः इनकी पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिये।'

खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा।
तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः॥

(पञ्चरात्र)

'खण्डित, स्फुटित और दग्ध मूर्तिकी पूजा भयको देनेवाली है, अतः मनुष्य इस प्रकारकी मूर्तियोंका पुनः उद्धार (प्रतिष्ठा) करे।'

चौर-चाण्डाल-पतित-श्वोदक्याः स्पर्शने सति।
शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत्॥

(सिद्धान्तशेखर)

'चोर, चाण्डाल, पतित, कुत्ता और रजस्वला स्त्रीके स्पर्श करनेसे तथा शव (मुर्दा) आदिके उपहत (स्पर्श) होनेसे मूर्तिकी पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिये।'

अङ्गादङ्गादिसन्धाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत्।
जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम्॥

(पञ्चरात्र)

'देवमूर्तिके अङ्गमें यदि दूसरा अङ्ग अर्थात् दूसरे नेत्र चढ़ाने (लगाने) हों, तो पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिये, किन्तु जलाधिवासमें नेत्रोन्मीलन (नेत्रोंके मीचने) को त्याग देना चाहिये। अर्थात् पुनः प्रतिष्ठामें जलाधिवास और नेत्रोन्मीलन-संस्कार नहीं करना चाहिये।'

खण्डित मूर्तिके ग्राह्य और अग्राह्यताका विचार

अङ्गप्रत्यङ्गभग्नां तु मूर्त्तिं धीमान् विसर्जयेत्।
नखाभरणमालास्त्रभग्नां तां न विसर्जयेत्॥

(रूपमण्डनः)

'जिस मूर्तिका अङ्ग और प्रत्यङ्ग खण्डित हो जाय, उस मूर्तिका बुद्धिमान् पुरुष विसर्जन कर दे, किन्तु जिस मूर्तिका केवल नख, आभूषण, माला और अस्त्र खण्डित हो जाय, उस मूर्तिका विसर्जन न करे।'

'देवालये मानहीनां मूर्तिं भग्नां न धारयेत्।'

(शुक्रनीतिसार)

'देवालयमें प्रमाणहीन और खण्डित मूर्तिको स्थापित नहीं करना चाहिये।'

दोषे लघुतरे बिम्बं नैव त्याज्यं कदाचन।
बाहुच्छेदे करच्छेदे पादच्छेदे तथैव च॥
तथैव स्फुटिते भिन्ने यस्मिन्नवयवे गते।
वैरूप्यं जायते यस्य तत्याज्यं प्रायशो भवेत्॥
अङ्गुल्यादिपरिच्छेदे बन्धनं शस्यते बुधैः।
महादोषसमायुक्ते सान्निध्यं लक्ष्यते यदि॥
तथैव बद्ध्वा संशोध्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्।

(शिल्परत्न)

'जिस मूर्तिमें थोड़ा-सा दोष हो, उसका त्याग नहीं करना चाहिये। जिस मूर्तिकी बाहू (भुजा), हाथ और पैर टूट जाय अथवा कोई अवयव टूट-फूट जाय अथवा जिसके टूटनेसे मूर्ति विकृत हो जाय, तो वह प्रायः त्यागके योग्य है। किसी मूर्तिकी अङ्गुली आदि खण्डित हो जाय, तो उसको किसी वस्तुसे बांधकर पूजादि करना विद्वानोंने प्रशस्त कहा है। यदि मूर्तिमें देवी-देवताका सान्निध्य प्रतीत होता हो, तो विशाल दोषयुक्त मूर्तिमें बन्धन करके संशोधन-पूर्वक उसका विधिवत् प्रायश्चित्त करे।'

जीर्णोद्धारका विचार

शिवलिङ्ग आदि मूर्तियोंके जलने, टूटने और चलनेपर (स्थान-भ्रष्ट होनेपर) जीर्णोद्धार करना चाहिये, किन्तु अनादिसिद्ध लिङ्ग आदि मूर्तियोंके खण्डित होनेपर उनका जीर्णोद्धार करना उचित नहीं है। ऐसी मूर्तियोंके लिये 'महाभिषेक' करना चाहिये। (निर्णयसिन्धु, तृतीय परिच्छेद)

देवमूर्तिके जीर्णोद्धारकी विधि

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद् गुरुः।
अचलां विन्यसेद् गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥
व्यङ्गां भग्नाञ्च शैलाढ्यां न्यसेदन्याञ्च पूर्ववत्।
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः ॥
दारवीं दाहयेद् वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले।
धातुजां रत्नजां वापि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ ॥
यानमारोप्य जीर्णाङ्गां छाद्य वस्त्रादिना नयेत्।
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥
यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने।
कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥

(अग्निपुराण ६७। १–५)

'जीर्णोद्धारकी विधिको कहता हूँ। आचार्य अलंकृत अचल मूर्ति (स्थिरमूर्ति) को घरमें (मन्दिरमें) स्नानादि कराकर स्थापित करे। अत्यन्त जीर्ण मूर्तिको और जिस मूर्तिका अङ्ग टूटा-फूटा एवं विदीर्ण हो, उस मूर्तिका त्याग कर दे।

शिलाकी सुदृढ़ मूर्तिको स्थापित करे और जो मूर्ति दृढ़ न हो उसका पूर्ववत् त्याग कर दे। आचार्य नरसिंहके मन्त्रसे एक हजार

आहुति देकर उस प्राचीन खण्डित मूर्तिको वहाँसे उठावे। यदि वह मूर्ति लकड़ीकी हो तो उसे अग्निमें जला दे, पत्थरकी हो तो उसको अगाध जलमें (नदीमें) विसर्जित कर दे और अन्य धातुकी मूर्ति हो अथवा रत्नमयी मूर्ति हो तो उसे अगाध जलमें अथवा समुद्रमें डाल दे और आचार्यको दक्षिणा दे।

विसर्जनार्थ मूर्तिको ले जाते समय उस मूर्तिको वस्त्रादिसे ढककर यान (वाहन) पर चढ़ा दे और वाद्यके साथ ले जावे और उसे जलमें छोड़ दे।

प्रतिष्ठाके लिये जो नवीन मूर्ति लाई जाय वह प्राचीन मूर्तिकी तरह लंबी-चौड़ी और उसी द्रव्यकी हो। अर्थात् वह मूर्ति शिलाकी हो तो शिलाकी, धातुकी हो तो धातुकी एवं रत्नकी हो तो रत्नकी मूर्ति स्थापित करना चाहिये।

मूर्तिके जीर्णोद्धारकी तरह कूप, बावड़ी और तालाबके जीर्णोद्धार करनेमें महान् फल होता है।'

देवमन्दिरके जीर्णोद्धार एवं नूतन मन्दिर निर्माण करनेका महत्त्व

पतितं पतमानं च तथार्धपतितं नरः।
समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम्॥
पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता॥
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुलोकभाक्।
इष्टकानि च यस्तिष्ठेद् यावदायतने हरेः॥
सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते।
स एव पुण्यवान् पूज्य इहलोके परत्र च॥
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्।
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम्॥

विष्णु-रुद्रार्क-देव्यादेर्गृहकर्त्ता स कीर्तिभाक्।
किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः॥
दुःखार्जितैर्यः कृष्णस्य न कारयति केतनम्।
(अग्निपुराण ३८। १७—२२)

'गिर चुके, गिर रहे अथवा आधा गिरे हुए हरि भगवान्‌के मन्दिरका जीर्णोद्धार करके मनुष्य मन्दिर-निर्माणसे दूना पुण्यफल प्राप्त करता है। जो पुरुष इस लोकसे गिरे हुए (ध्वस्त हुए) विष्णुके मन्दिरका निर्माण करता है और गिरे हुए मन्दिरकी रक्षा करता है, वह विष्णुलोकमें निवास करता है। जबतक विष्णुके मन्दिरमें ईंटोंकी राशि रहेगी, तबतक उसका निर्माता (जीर्णोद्धारक) अपने कुलके साथ विष्णुलोकमें पूजित होता है। इस लोकमें और परलोकमें वही पूज्य है और वही पुण्यवान् है जो वासुदेव भगवान् कृष्णका मन्दिर बनवाता है। उसी पुरुषका जन्म सफल है, वही पुण्यात्मा है और उसीने अपने कुलको पवित्र किया। विष्णु, रुद्र, सूर्य, देवी आदिका मन्दिर बनवानेवाला वह कीर्तिमान् (यशस्वी) है। धनकी रखवाली करनेवाले उस मूर्खकी धनराशि अथवा धन-सञ्चयसे क्या फल ? जो दुःखपूर्वक उपार्जित धनसे भगवान् कृष्णका मन्दिर नहीं बनवाता।'

शिव-ब्रह्मार्क-विघ्नेश-चण्डी-लक्ष्म्यादिकात्मनाम्।
देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम्॥
प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते।
देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं न स गच्छति।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः॥
(अग्निपुराण ३८। ३१, ३२, ३४)

'शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, चण्डी, लक्ष्मी आदिके देवालय बनानेकी अपेक्षा प्रतिमा (मूर्ति) बनानेका फल अधिक है। प्रतिमा-

स्थापनरूप याग करनेपर फलकी सीमा नहीं रहती अर्थात् असीम पुण्य होता है। देवालयका निर्माता स्वर्गगामी होता है, वह नरकमें नहीं जाता। वह मनुष्य अपने एक सौ पुरखोंका उद्धार कर उन्हें विष्णुलोकमें ले जाता है।'

प्रतिमाके स्थापनमें दिशाका निर्णय

पूर्वापरास्यं देवानां मुखं नो दक्षिणोत्तरम्।
ब्रह्मा विष्णुः शिवार्केन्द्रा गुहः पूर्वपराङ्मुखः॥
शिवब्रह्मजिना विष्णुः सर्वाशाभिमुखाः शुभाः॥
गणेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशो ग्रहास्तथा।
भूताद्या धनदाश्चैव दक्षिणास्याः शुभाः स्मृताः॥
मातॄणां सदनं कार्यं दक्षिणोत्तरदिङ्मुखम्।
हनुमान् वानरश्रेष्ठो नैर्ऋतास्यो विदिङ्मुखः॥
(देवतामूर्तिप्रकरण ३।२४—२७)

'देवताओंका मुख पूर्व और पश्चिममें उत्तम कहा गया है, दक्षिण और उत्तरमें श्रेष्ठ नहीं कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, स्वामी कार्तिकेयका मुख पूर्व और पश्चिममें कहा गया है। शिव, ब्रह्मा, जिन-देवता और विष्णु इन देवताओंका सभी दिशाओंमें मुख शुभ है। गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, ग्रह, भूत आदि और कुवेर इनका मुख दक्षिणमें शुभ कहा गया है। माताओंके (देवियोंके) मन्दिरका मुख दक्षिण और उत्तर दिशामें कहा गया है। हनुमानजीकी मूर्तिका मुख नैर्ऋत्यकोणमें कहा गया है।'

पञ्चायतनके स्थापनका क्रम

शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करे
भास्ये नागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः।

देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे
नार्याः शङ्करभागतोऽति सुखदाः व्यस्तास्तु ते हानिदाः ॥

(वोपदेवः)

'जहाँ शिव मध्यमें हों, वहाँ विष्णु, सूर्य, गणेश और दुर्गाको क्रमशः ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण और वायव्यकोणमें स्थापित करना चाहिये। जहाँ विष्णु मध्यमें हों, वहाँ शिव, गणेश, सूर्य और दुर्गाको क्रमशः ईशानकोण, अग्निकोण नैर्ऋत्यकोण और वायव्यकोणमें स्थापित करना चाहिये। जहाँ सूर्य मध्यमें हों, वहाँ शिव, गणेश, दुर्गा और विष्णुको क्रमशः ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण और वायव्यकोणमें स्थापित करना चाहिये। जहाँ दुर्गा मध्यमें हों, वहाँ विष्णु, शिव, गणेश और सूर्यको क्रमशः ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण और वायव्यकोणमें स्थापित करना चाहिये। जहाँ गणेश मध्यमें हों, वहाँ विष्णु, शिव, सूर्य और देवीको क्रमशः ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण और वायव्यकोणमें स्थापित करना चाहिये। इन देवताओंको प्रदक्षिणक्रमसे अर्थात् ईशानकोणसे स्थापित करनेसे ये सुख देते हैं और इन्हें विपरीत क्रमसे स्थापित करनेसे ये हानि करते हैं।'

पञ्चायतन (पञ्चदेव)के पूजन और स्थापनका क्रम यामलमें इस प्रकार लिखा है—

भवानीं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं च नैर्ऋत्यां गणनायकम् ॥
वायव्यां तपनं चैव पूजाक्रम उदाहृतः ॥ १ ॥
मध्ये यदा तु गोविन्दमैशान्यां शङ्करं यजेत्।
आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां तपनं तथा ॥
वायव्यामम्बिकां चैव भोगमोक्षप्रदायिकाम् ॥ २ ॥

शङ्करं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां तपनं चैव नैर्ऋत्यां गणनायकम्॥
वायव्यामम्बिकां चैव स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम्॥ ३॥

आदित्यं तु यदा मध्ये ऐशान्यां शङ्करं यजेत्।
आग्नेय्यामेकदन्तञ्च नैर्ऋत्यामच्युतं तथा॥
वायव्यामम्बिकां देवीं स्वर्गसाधनभूमिकाम्॥ ४॥

गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत्।
आग्नेय्यामीश्वरं चैव नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥
वायव्यां पार्वतीञ्चैव पूजयेन्मोक्षसाधिनीम्॥ ५॥

जब मध्यभागमें भवानीकी पूजा करे, तो ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायव्यकोणमें सूर्यकी पूजा करनी चाहिये॥ १॥

यदि मध्यभागमें विष्णुकी पूजा करे, तो ईशानकोणमें शङ्कर, अग्निकोणमें गणेश, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्य और वायव्यकोणमें अम्बिकाकी पूजा करनी चाहिये॥ २॥

यदि मध्यभागमें शङ्करकी पूजा करे, तो ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें सूर्य, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायव्यकोणमें पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ३॥

यदि मध्यभागमें सूर्यकी पूजा करे, तो ईशानकोणमें शङ्कर, अग्निकोणमें गणेश, नैर्ऋत्यकोणमें विष्णु और वायव्यकोणमें अम्बिकाकी पूजा करनी चाहिये॥ ४॥

यदि मध्यभागमें गणेशकी पूजा करे, तो ईशानकोणमें केशव, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्य और वायव्यकोणमें पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ५॥

पञ्चायतन-स्थापनका चक्र

१—शक्तिपञ्चायतन

पूर्व

२ विष्णु		३ शिव
उत्तर	१ शक्ति	दक्षिण
५ सूर्य		४ गणेश

पश्चिम

२—विष्णुपञ्चायतन

पूर्व

२ शिव		३ गणेश
उत्तर	१ विष्णु	दक्षिण
५ शक्ति		४ सूर्य

पश्चिम

३—शिवपञ्चायतन

पूर्व

२ विष्णु		३ सूर्य
उत्तर	१ शिव	दक्षिण
५ शक्ति		४ गणेश

पश्चिम
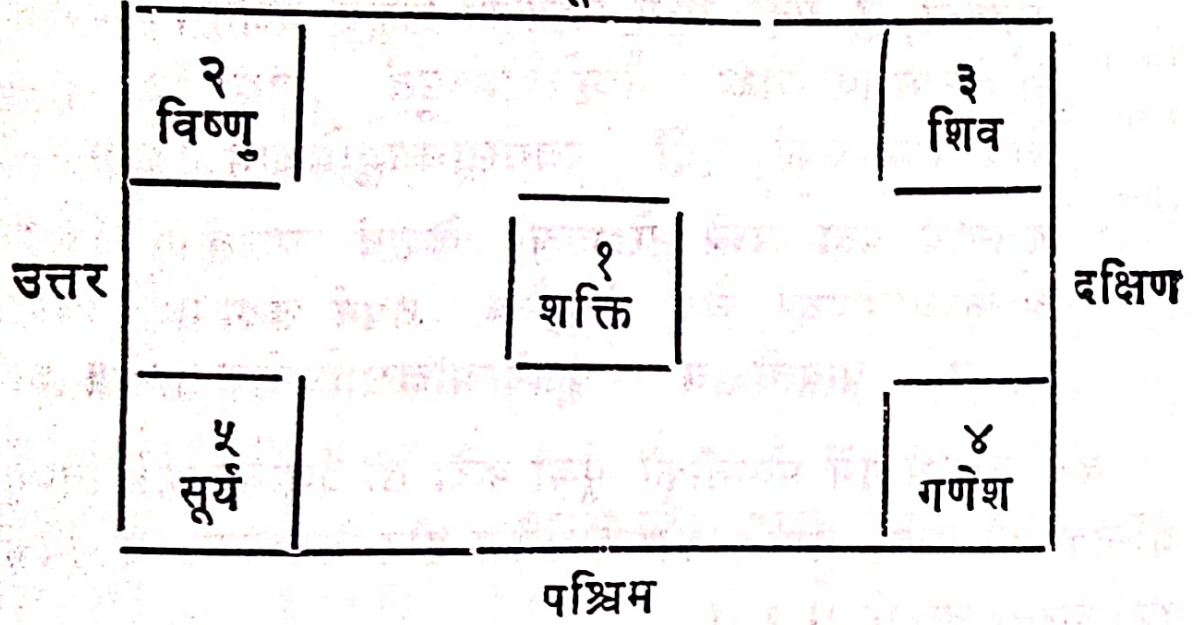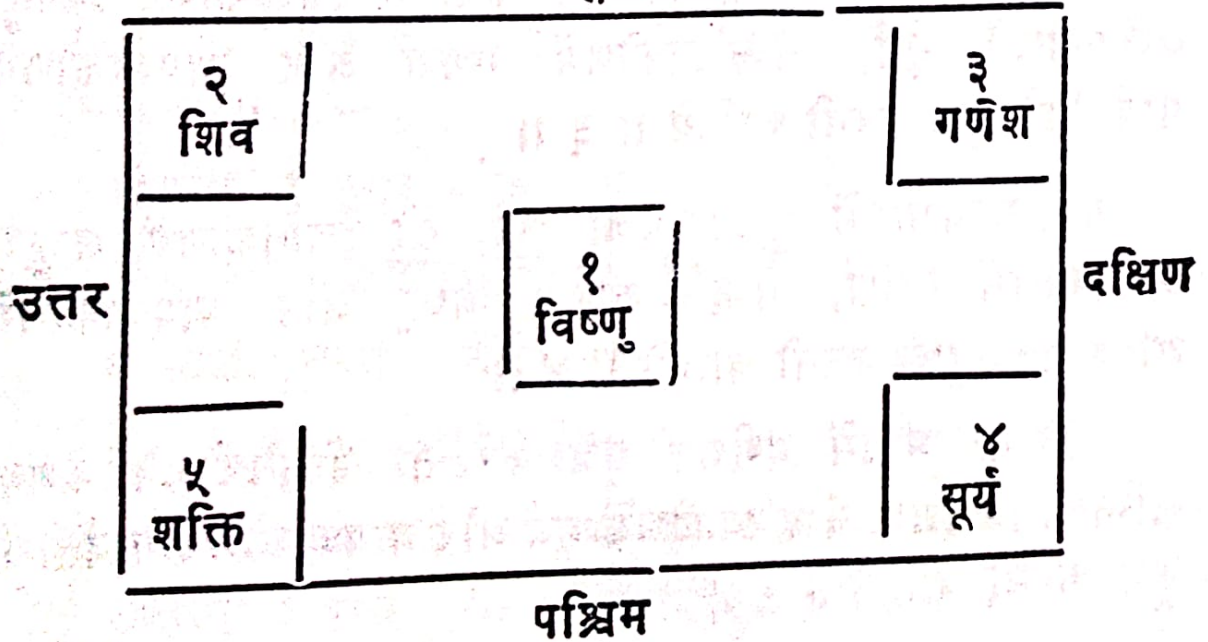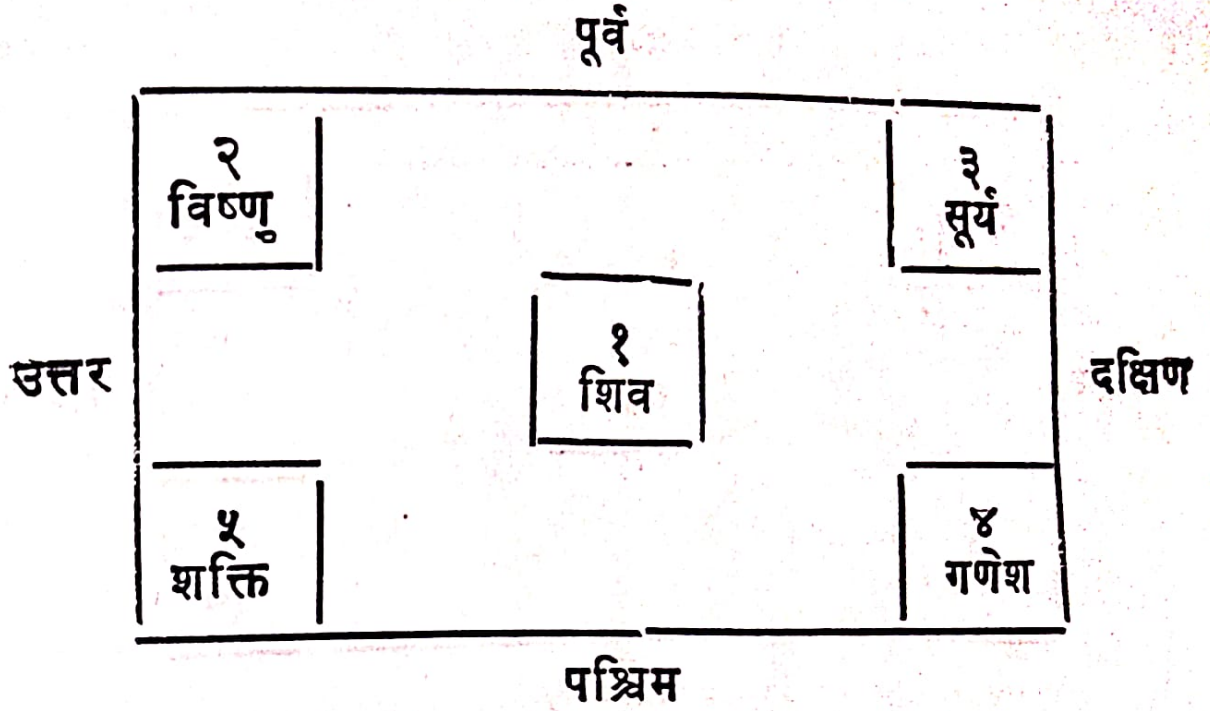
४—सूर्यपञ्चायतन

५—गणेशपञ्चायतन

पूर्व

उत्तर	२ विष्णु		३ शिव	दक्षिण
		१ गणेश		
	५ शक्ति		४ सूर्य	

पश्चिम
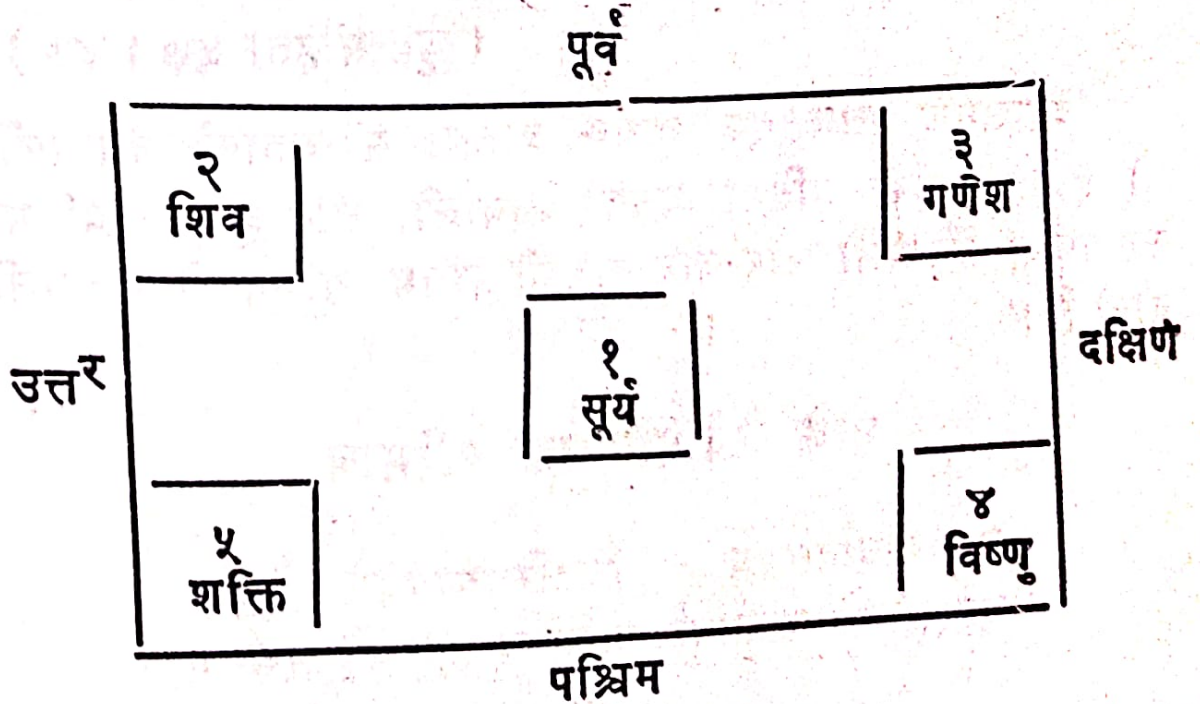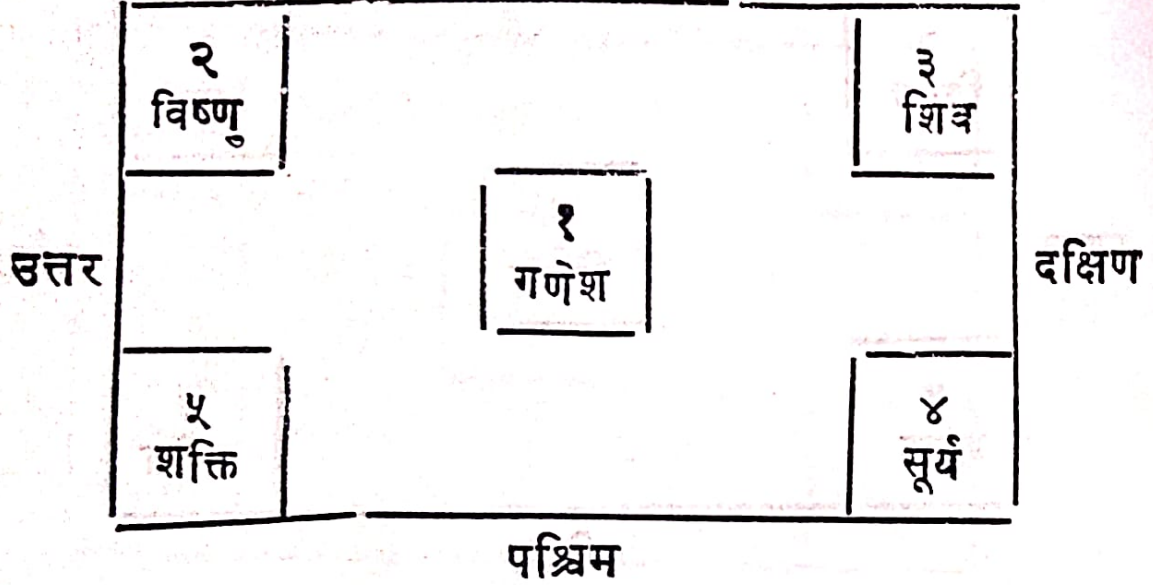
देवालयके लिये प्रतिमाका परिमाण

सौम्या तु हस्तमात्रा वसुदा हस्तद्वयोच्छ्रिता प्रतिमा ।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रि-चतुर्हस्तप्रमाणा वा ॥
(बृहत्संहिता ५७ । ४७)

'देवालयके लिये एक हाथकी प्रतिमा सौम्यताको देनेवाली, दो हाथकी ऊँची प्रतिमा धनको देनेवाली, तीन हाथकी प्रतिमा कल्याणको देनेवाली और चार हाथकी प्रतिमा सुभिक्षको देनेवाली होती है ।'

घरके लिये प्रतिमाका परिमाण

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥
(भविष्यपुराण)

'अङ्गुष्ठ पर्वसे लेकर वितस्ति (बित्ता) परिमाणतककी प्रतिमा घरोंमें रखनी चाहिये, इससे अधिक प्रमाणकी प्रतिमा विद्वानोंने अप्रशस्त कही है।'

सप्ताङ्गुलं समारभ्य यावच्च द्वादशाङ्गुलम्।
गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादे वाऽधिका शुभा॥

'सात अङ्गुलसे लेकर बारह अङ्गुल तककी प्रतिमा घरोंमें प्रशस्त कही गई है और मन्दिरमें इससे अधिक प्रमाणकी मूर्ति भी शुभ कही गई है।'

घरमें प्रतिमा रखनेका विचार

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा॥
शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च।
द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा॥
नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा।
गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुन्धरे॥
एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही।
शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि॥
विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि।
शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका॥
खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा।
(पद्मपुराण)

'हे वसुन्धरे ! घरमें दो लिङ्ग, दो शालग्राम, दो द्वारिकाचक्र, दो सूर्य, तीन शक्ति, तीन गणेश, दो शङ्ख, खण्डित प्रतिमा (टूटी हुई प्रतिमा) और मत्स्य, कूर्म आदि दशों अवतारोंकी प्रतिमाओंका तथा अग्निसे दग्ध (जली) एवं भग्न (खण्डित) मूर्तिका पूजन

नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी मूर्तियोंके पूजन करनेसे गृहस्थ नित्य ही उद्वेग (संकट)को प्राप्त होता है।

शालग्रामका सम (चार, छः आदि) रूपसे पूजन करना चाहिये। समरूपमें भी दो शालग्रामकी पूजा नहीं करनी चाहिये। विषमरूपमें शालग्रामकी पूजा नहीं करनी चाहिये। विषम मूर्तियोंमें भी एक शालग्रामका ही पूजन करना चाहिये (तीन शालग्राम आदिका पूजन नहीं करना चाहिये)।

द्वारिकाके चक्रके सहित शालग्राम खण्डित भी हो, तो उनकी पूजा करनी चाहिये। क्योंकि शालग्रामकी शिला खण्डित अथवा टूटी हुई भी शुभ कही गई है।'

लिङ्गपूजनकी संख्याका विचार

चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः।
वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः॥
(स्कन्दपुराण)

'चार लिङ्गोंका पूजन ब्राह्मणोंको, तीन लिङ्गोंका पूजन क्षत्रियोंको, दो लिङ्गोंका पूजन वैश्योंको और एक लिङ्गका पूजन शूद्रोंको करना चाहिये।'

शालग्राम और द्वारिकाचक्रके पूजनका अधिकारी

शालग्रामशिलां वापि चक्राङ्कितशिलां तथा।
ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत्॥
(प्रयोगपारिजात)

'शालग्रामकी शिला और द्वारिकाके चक्रकी शिलाका पूजन प्रतिदिन ब्राह्मणको ही करना चाहिये, क्षत्रिय आदिको नहीं।'

शालग्रामकी मूर्ति दान करनेका महत्त्व

दद्याद् भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः।
सुवर्णसहितां दिव्यां पृथिवीदानफलं लभेत् ॥
(वाराहपुराण)

'हे देवि ! जो भक्तके लिये सुवर्णके सहित शालग्रामको देता है, उसको समस्त पृथ्वीके दान करनेका फल प्राप्त होता है।'

प्रतिष्ठाके अधिकारी

चातुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः।
भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥
मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः।
लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ॥
(देवीपुराण)

'सुखकी अभिलाषा चाहनेवाले चारों वर्णोंको विष्णुकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। चारों वर्णोंको तथा अतिशूद्रोंको भैरवकी स्थापना करनी चाहिये। समस्त लोकोंमें और समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ मातृकाओंका स्थापन (प्रतिष्ठापन) तथा पूजन सबको करना चाहिये। गृहस्थ अथवा यतिको लिङ्गका स्थापन करके पूजन करना चाहिये।'

स्त्री और शूद्रको मन्त्ररहित प्रतिष्ठा करनेका अधिकार है

देव-मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाका अधिकार जिस प्रकार द्विजको है, उसी प्रकार शूद्र और स्त्रीको भी है। द्विज वेदोक्त प्रक्रियासे अर्थात् वेदमन्त्रोंके द्वारा प्रतिष्ठा करनेका अधिकारी है और शूद्र एवं स्त्री वेदमन्त्रोंके रहित प्रतिष्ठा करनेके अधिकारी हैं।

जिस प्रकार द्विजको सभी प्रकारकी देवमूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकार है उसी प्रकार शूद्र और स्त्रीको समस्त देवताओंकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकार नहीं है। शूद्र और स्त्री अधिकारकी दृष्टिसे देव–विशेषकी ही प्रतिष्ठा कर सकते हैं, समस्त देवताओंकी नहीं कर सकते।

शूद्रको कर्मकाण्डके समय वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेका अधिकार नहीं है। शूद्रके कर्ममें सर्वत्र ब्राह्मणको ही मन्त्र पढ़ना चाहिये। ब्राह्मण भी नाममन्त्र ही पढ़ सकता है, वेदमन्त्र नहीं पढ़ सकता।

'नाममन्त्रेण शूद्रस्य कुर्याद्धोमादिकं बुधः।'

'विद्वान् नाममन्त्रसे शूद्रके हवनादि कर्मको करे।'

जिस प्रकार शूद्रको मन्त्ररहित मूर्ति–विशेषकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकार है, उस प्रकार स्त्रीको भी मन्त्ररहित प्रतिष्ठा करनेका अधिकार है।

शिव और विष्णुकी प्रतिष्ठाके अनधिकारी

शिव और विष्णु आदिकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकार स्त्री, शूद्र और अनुपनीत द्विजको नहीं है—

स्त्रीणाञ्चानुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर।
स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य वा॥

(त्रिस्थलीसेतु)

'हे नृप ! स्त्रियोंको, अनुपनीत द्विजातियोंको और शूद्रोंको विष्णु तथा शङ्करकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकार नहीं है।'

शूद्र और स्त्रीके द्वारा स्थापित मूर्तियोंको प्रणाम करनेसे हानि

यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः ।
इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु ॥

(बृहन्नारदपुराण)

'जो मनुष्य शूद्रके द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग अथवा विष्णुको प्रणाम करता है, वह इस लोकमें ही अत्यन्त दुःखोंको प्राप्त करता है, अन्य लोकका तो कहना ही क्या है ?।'

यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥
नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा ।
स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥
पाखण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् ।
आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥
योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः ।
स कोटिकुलसंयुक्तमाकल्पं रौरवं वसेत् ॥

(नारदपुराण)

'जो मनुष्य शूद्रसे पूजित शिवलिङ्ग और विष्णुको अभिवादन करता है, उसके पापकी निवृत्ति दस हजार बार प्रायश्चित्त करनेसे भी नहीं होती। जो शूद्रसे स्पर्श किये हुए लिङ्ग और हरि (विष्णु) की मूर्तिको अभिवादन करता है वह समस्त प्रकारकी यातनाओंको तबतक भोगता है, जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति रहती है। जो पाखण्डीसे पूजित लिङ्गको प्रणाम करता है, वह पाखण्डताको प्राप्त करता है। जो आभीरसे (ग्वालासे) पूजित लिङ्गको प्रणाम करता है, वह नरकको प्राप्त करता है। जो स्त्रियोंसे

पूजित लिङ्ग और विष्णुको प्रणाम करता है, वह करोड़ों कुलोंके सहित कल्पपर्यन्त रौरव नामके नरकमें निवास करता है।'

विष्णु और शिवकी मूर्तिके स्पर्श करनेसे शूद्रादिकी हानि

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा।
केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते॥
(त्रिस्थलीसेतु)

'शूद्र, अनुपनीत (यज्ञोपवीत-संस्कारसे रहित), स्त्री और पतित—ये विष्णु और शिवकी मूर्तिको स्पर्श करके नरकको प्राप्त करते हैं।'

व्यक्तिविशेषद्वारा स्थापित ‡मूर्तियोंका त्याग उचित नहीं है

असुरैर्मुनिभिर्गोत्रैस्तन्त्रविद्भिः प्रतिष्ठितम्।
जीर्णं वाऽप्यथवा भग्नं विधिनापि न चालयेत्॥
(अग्निपुराण १७३।१६)

'राक्षसोंके द्वारा, मुनियोंके द्वारा, मुनियोंके गोत्रजोंके द्वारा और तन्त्रवेत्ताओंके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति यदि जीर्ण हो जाय अथवा खण्डित हो जाय, तो उस मूर्तिको किसी भी रूपसे हटाना उचित नहीं है।'

*श्रौत यज्ञोंका संक्षिप्त परिचय

यज्ञ दो प्रकारके होते हैं—श्रौत और स्मार्त। श्रुतिप्रतिपादित यज्ञोंको 'श्रौतयज्ञ' और स्मृतिप्रतिपादित यज्ञोंको 'स्मार्तयज्ञ' कहते

---

‡ यह नियम विशेषतः शिवलिङ्गके लिये है।

* श्रौतयज्ञोंका विशदरूपमें परिचय प्राप्त करनेके लिये देखिये—स्व० महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधरजी गौडका रचित 'श्रौतयज्ञ-परिचय'।

हैं। श्रौतयज्ञमें केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग होता है और स्मार्तयज्ञमें वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्र भी प्रयुक्त हुआ करते हैं।

वेदोंमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन मिलता है, किन्तु उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकारके यज्ञ ही प्रधान माने गये हैं—

'स एष यज्ञः पञ्चविधः—अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः।' (ऐतरेयब्राह्मण)

अर्थात् अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। इन्हीं पाँच प्रकारके यज्ञोंमें श्रुतिप्रतिपादित वैदिक यज्ञोंकी परिसमाप्ति हो जाती है। वेदोंमें श्रौतयज्ञोंकी अत्यन्त महिमा वर्णित है। शतपथब्राह्मण (१।७।१।५) में श्रौतयज्ञोंको श्रेष्ठतम कर्म कहा है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।' कुल श्रौतयज्ञोंको १९ प्रकारोंमें विभक्त कर यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय देनेका यत्न किया जा रहा है।

(१) **स्मार्त-कर्म**—विवाहके अनन्तर विधिपूर्वक अग्निका स्थापन करके जिस अग्निमें सायं और प्रातः नित्य हवनादि कृत्य किये जाते हैं, उसे 'स्मार्ताग्नि' (आवसथ्याग्नि, औपवसथ्याग्नि) कहते हैं। इस स्मार्त अग्निमें किये जानेवाले कर्मोंको 'स्मार्त-कर्म' कहते हैं। गृहस्थको स्मार्ताग्निमें पका भोजन ही प्रतिदिन करना चाहिये।

(२) **श्रौताधान**—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निके विधिपूर्वक स्थापनको 'श्रौताधान' कहते हैं। इन अग्नियोंमें हवि आदिका संस्कार आहवनीयमें हवन और दक्षिणाग्निमें पितृ-सम्बन्धी कार्य होते हैं।

(३) **दर्शपूर्णमास**—अमावास्या और पूर्णिमाको होनेवाले यज्ञको क्रमशः 'दर्श' और 'पौर्णमास' कहते हैं। इस यज्ञका अधिकारी

सपत्नीक होता है। इसमें अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और आग्नीध्र—ये चार प्रकारके ऋत्विक् होते हैं। इस यज्ञका अनुष्ठान यावज्जीवन करना चाहिये। यदि कोई जीवनभर करनेमें असमर्थ हो, तो ३० वर्ष तक तो करना ही चाहिये।

(४) **चातुर्मास्य**—चार-चार महीनेपर किये जानेवाले यज्ञको 'चातुर्मास्य यज्ञ' कहते हैं। इस यज्ञमें चार पर्व होते हैं—वैश्वदेव[१], वरुणप्रघास[२], साकमेध[३] और शुनासीरीय[४]। प्रथम वैश्वदेव पर्वका अनुष्ठान फाल्गुनी पूर्णिमाको, द्वितीय वरुणप्रघास पर्वका अनुष्ठान आषाढ़ी पूर्णिमाको, तृतीय साकमेध पर्वका अनुष्ठान कार्तिकी पूर्णिमाको और चतुर्थ शुनासीरीय पर्वका अनुष्ठान फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदाको करना चाहिये। इन चारों पर्वोंको मिलाकर 'चातुर्मास्य यज्ञ' होता है।

चातुर्मास्य यज्ञ करनेके लिये दो पक्ष हैं। इस यज्ञको यावज्जीवन करना यह प्रथम पक्ष है और इस यज्ञको केवल एक ही बार कर पश्चात् पशुयाग और सोमयाग करना यह द्वितीय पक्ष है।

(५) **निरूढ़पशुबन्ध**—प्रतिवर्ष वर्षा ऋतुमें या दक्षिणायन या उत्तरायणमें संक्रान्तिके दिन एक बार जो पशुयाग किया जाता है, उसे 'निरूढपशु' कहते हैं।

---

१. जिस पर्वके 'विश्वेदेवा' देवता हों, उसे 'वैश्वदेव पर्व' कहते हैं।

२. जिस पर्वमें वरुणके लिये प्रघास अर्थात् हवि दी जाती है, उसे 'वरुणप्रघास पर्व' कहते हैं।

३. जिस पर्वमें हवि प्राप्त करनेसे देवगण वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसे 'साकमेध पर्व' कहते हैं।

४. जिस पर्वके देवता वायु और आदित्य हों, उसे 'शुनासीरीय पर्व' कहते हैं।

(६) **आग्रयणेष्टि**—प्रतिवर्ष वसन्त और शरद् ऋतुमें नवीन यव और चावलसे जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'आग्रयण' अथवा 'नवान्न' कहते हैं। इस यज्ञको करनेके बाद ही नवीन अन्न खाना चाहिये।

(७) **सौत्रामणी**—इन्द्रके निमित्त जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'सौत्रामणी यज्ञ' कहते हैं। यह सौत्रामणी यज्ञ इन्द्र-सम्बन्धी पशुयाग है। यह यज्ञ दो प्रकारका है—स्वतन्त्र और दूसरे यज्ञोंका अङ्गभूत।

चयनके बाद जो सौत्रामणी यज्ञ किया जाता है, वह अङ्गभूत सौत्रामणी है, जिसे 'चरक सौत्रामणी' भी कहते हैं। दूसरा स्वतन्त्र 'सौत्रामणी' नामक जो यज्ञ है, वह पाँच दिनमें सुसम्पन्न होता है। सौत्रामणी यज्ञमें गोदुग्धके साथ 'सुरा' (मद्य) का भी विधान है, किन्तु कलियुगमें वह वर्ज्य है। अतः उसके स्थानमें 'पयोग्रह' लिया जाता है।

सौत्रामणी 'पशुयाग' कहा जाता है, क्योंकि इसमें पाँच अथवा तीन पशुओंकी बलि दी जाती है।

स्वतन्त्र सौत्रामणी यज्ञमें केवल ब्राह्मणका अधिकार है और अङ्गभूत सौत्रामणीमें क्षत्रिय तथा वैश्यका अधिकार है।

(८) **सोमयाग**—सोमलताद्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'सोमयाग' कहते हैं। वह वसन्त ऋतुमें होता है। यद्यपि यह यज्ञ एक ही दिनमें पूर्ण होता है, तथापि अपने अङ्गके साथ पाँच दिनोंमें सुसम्पन्न होता है। इस यज्ञमें सोलह ऋत्विक् (देखिये, कात्यायनश्रौतसूत्र ७।१।७) होते हैं, जो कि चार गणोंमें विभक्त हैं। जैसे—अध्वर्युगण, ब्रह्मगण, होतृगण और उद्गातृगण। प्रत्येक गणमें चार-चार ऋत्विक् होते हैं। ये सब मिलकर सोलह ऋत्विक् होते हैं।

सोमयागके सात भेद होते हैं अर्थात् सोमयाग सात प्रकारका होता है—अग्निष्टोम (ज्योतिष्टोम), अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम।

अग्निष्टोम सामसे जिस यज्ञकी समाप्ति हो और उसके बाद अन्य साम न पढ़ा जाय, उसे 'अग्निष्टोम' कहते हैं। इसी प्रकार उक्थ्य साम, षोडशी साम, वाजपेय साम, अतिरात्र साम और अप्तोर्याम नामक साम पढ़कर जिन यज्ञोंकी समाप्ति होती है, वे यज्ञ क्रमसे उक्थ्य आदि नामोंसे कहे जाते हैं। अग्निष्टोम सामके अनन्तर षोडशी साम जिस यज्ञमें पढ़ा जाता है, वह 'अत्यग्निष्टोम' कहा जाता है।

(९) **द्वादशाह यज्ञ**—यह 'सत्र' और 'अहीन' भेदसे दो प्रकारका होता है। जिसमें सोमयागके सोलहों ऋत्विक्, आहिताग्नि और बिना दक्षिणावाले ब्राह्मण हों, ऐसे सोमयागको 'सत्र' कहते हैं। सत्रमें १२ से लेकर १००० तक सुत्याएँ होती हैं। सोमलताके रसको विधिपूर्वक निकालकर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायङ्काल इन तीनों समयोंमें हवन करनेको 'एकसुत्या' कहते हैं।

जिस यज्ञमें दो सुत्यासे लेकर ग्यारह सुत्याएँ हों और जिसके आदि और अन्तमें 'अतिरात्र' नामक यज्ञ हो और जिसमें एक तथा अनेक यजमान कर्ता हों, ऐसे सोमयागको 'अहीन' कहते हैं। द्वादशाह यज्ञ छत्तीस दिनोंमें पूर्ण होता है। इस यज्ञके त्रैवर्णिक अधिकारी हैं।

(१०) **गवामयन सत्र**—यह सत्र तीन सौ पचासी दिनोंमें पूर्ण होता है। गौओंद्वारा अनुष्ठित होनेसे यह 'गवामयन' कहलाता है। इसका प्रारम्भ माघ कृष्ण अष्टमी, माघ शुक्ल

एकादशी, फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा अथवा चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको होता है। इसमें प्रारम्भसे लेकर बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और तीन सौ इकसठ सुत्याएँ होती हैं।

(११) वाजपेय यज्ञ—इस यज्ञके आदि और अन्तमें 'बृहस्पति सव' नामक सोमयाग अथवा 'अग्निष्टोम यज्ञ' होता है। अथवा वाजपेय यज्ञके प्रथम और पश्चात् बारह-बारह शुक्ल पक्षोंमें बारह-बारह अग्निष्टोमादि यज्ञ होते हैं। इसमें सतरह-सतरह हाथके सतरह यूप होते हैं। यह यज्ञ शरद् ऋतुमें होता है और चालीस दिनोंमें पूर्ण होता है। इस यज्ञका अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षत्रियको ही है, किन्तु सप्तसंस्थान्तर्गत वाजपेय यज्ञका अधिकार वैश्यको भी है।

(१२) राजसूय यज्ञ—इस यज्ञमें अनुमती आदि बहुत-सी इष्टियाँ मल्हादि पशुयाग और पवित्र आदि बहुतसे सोमयाग होते हैं। इस यज्ञका अधिकार राज्यसिंहासनारूढ़ अभिषिक्त क्षत्रिय राजाको ही है। यज्ञका प्रारम्भ फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदाको होता है। यह तैंतीस महीनेमें पूर्ण होता है। राजसूय यज्ञ करनेके बाद क्षत्रिय राजा 'सम्राट्' (चक्रवर्त्ती) उपाधिको धारण करता है।

(१३) अग्निचयन—जिस यज्ञमें ईंटोंके द्वारा वेदीका निर्माण हो, उसे 'चयन' अथवा 'अग्निचयन' कहते हैं। वह वेदी दस हाथ लम्बी और चौड़ी होती है, जिसको 'आत्मा' कहते हैं। इसके दक्षिण और उत्तरकी ओर छः-छः हाथका चबूतरा बनता है, जिसे 'दक्षिणपक्ष' और 'उत्तरपक्ष' कहते हैं। पश्चिमकी तरफ साढ़े पाँच हाथका चबूतरा बनता है, जिसे 'पुच्छ' कहते हैं। इसकी ऊँचाई पाँच हाथकी होती है। अतः इसको 'पञ्चचितिक स्थण्डिल' कहते हैं। इसमें चौदह तरहकी ईंटें लगती हैं। (इन ईंटोंके नाम और माप स्वर्गीय म० म० पं० श्रीविद्याधरजी गौडके रचित

'श्रौतयज्ञ-परिचय' (पृष्ठ ७६) नामक ग्रन्थमें देखिये)। चयनयज्ञके चबूतरेमें समस्त इष्टिकाएँ ग्यारह हजार एकसौ सत्तर (११७०) होती हैं।

(१४) **अश्वमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें दिग्विजयके लिये अश्व (घोड़ा) छोड़ा जाता है। इसमें इक्कीस हाथके यूप होते हैं। इस यज्ञका प्रारम्भ फाल्गुन मासकी शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको होता है। अथवा ग्रीष्म ऋतुमें अष्टमी या नवमी तिथिको प्रारम्भ होता है। यह यज्ञ दो वर्षसे भी अधिक समयमें समाप्त होता है इस यज्ञका अधिकार अभिषिक्त सार्वभौम चक्रवर्ती राजाको ही बताया गया है।

(१५) **पुरुषमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें पुरुष आदि यूपमें बांधकर छोड़ दिये जाते हैं। इसमें तेईस दीक्षाएँ, बारह उपसद और पाँच सुत्याएँ होती हैं। इसमें ग्यारह यूप होते हैं। यह यज्ञ चैत्र शुक्ल दशमीसे प्रारम्भ होता है। इस यज्ञकी समाप्ति चालीस दिनोंमें होती है। इस यज्ञका अधिकार ब्राह्मण और क्षत्रियको ही है। इस यज्ञको करनेके बाद यज्ञकर्त्ता गृहत्यागपूर्वक वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश कर सकता है।

(१६) **सर्वमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें सभी प्रकारके अन्नों और वनस्पतियोंका हवन होता है। इस यज्ञमें बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और बारह सुत्याएँ होती हैं। यह यज्ञ चौंतीस दिनोंमें समाप्त होता है।

(१७) **पितृमेध यज्ञ**—इस यज्ञमें मृत पिता आदिका अस्थिदाह होता है। अर्थात् मरे हुए पिता आदिकी अस्थियोंको जंगलमें ले जाकर उन अस्थियोंको यथास्थान तत्तत् अङ्गोंकी कल्पनाकर पुरुषाकृति (मानवाकृति) बना लें। पश्चात् सेवार, कुश आदिसे

उन्हें ढंककर ग्राममें वापस आकर स्नान करें। पश्चात् घरमें प्रवेश करें। इस यज्ञमें केवल एक ही अध्वर्यु ऋत्विक् होता है। इस यज्ञके अधिकारी त्रैवर्णिक हैं।

(१८) **एकाह यज्ञ**—एक दिनमें होनेवाले यज्ञको 'एकाह यज्ञ' कहते हैं। जिन यज्ञोंमें एक सुत्या होती है, ऐसे सोमयाग, विश्वजित्, सर्वजित्, भूष्टोम आदि शताधिक यज्ञ तत्तत्सूत्रोंमें विहित हैं। इस यज्ञमें एक यजमान और सोलह ऋत्विक् होते हैं।

(१९) **अहीन यज्ञ**—दो सुत्यासे लेकर ग्यारह सुत्याओं तकको 'अहीन यज्ञ' कहते हैं। ये भी विभिन्न नामोंसे शताधिक तत्तत्सूत्रोंमें विहित हैं। यह अहीन यज्ञ अनेक दिनोंमें पूर्ण होनेवाले ऋतुओंका वाचक है।

(२०) **सत्र**—बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस तेईस, चौबीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उन्तीस, तीस, इकतीस, बत्तीस, तेंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनतालीस, चालीस, उनचास, सौ, तीनसौ साठ और एक हजार सुत्यावाले जो अनेक सोमयाग हैं, उन्हें 'सत्र' कहते हैं।

यह विशेष स्मरण रखना चाहिये कि एक दिनमें एक ही सुत्या होती है।

स्मार्त यज्ञोंका संक्षिप्त परिचय

रुद्रयाग

रुद्रयागको साङ्गोपाङ्ग सम्पादन करनेके लिये यजमान सर्वप्रथम उपवास और सर्वप्रायश्चित्त करे। पश्चात् पञ्चाङ्ग और आचार्यादि वरणके बाद यजमान अपने परिवारके सहित बाजे-गाजेके साथ

यज्ञमण्डपमें पश्चिम द्वारसे प्रवेश करे। अनन्तर यज्ञाचार्यद्वारा दिग्रक्षण, मण्डपप्रोक्षण, वास्तुपूजन, मण्डपपूजन, न्यासपूर्वक प्रधानपूजन, योगिनीपूजन, क्षेत्रपालपूजन, अरणिपूजन, अरणि-मन्थन, पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन, कुशकण्डिका, ग्रहपूजन, आघार-आज्यभागत्याग, ग्रहहवन, महान्यास और प्रधानका 'रुद्रसूक्त' से हवन करे। मण्डपपूजन और प्रधानकी आहुति पूर्णाहुति-पर्यन्त प्रतिदिन करे। प्रधानाहुति पूर्ण होनेके बाद 'शिवसहस्र-नामावली'से हवन करे। पश्चात् आवाहित देवताओंका वैदिकमन्त्रसे अथवा नाममन्त्रसे हवन करे। अनन्तर अग्निपूजन, स्विष्टकृत्, नवाहुति, दश दिक्पालादि बलि, पूर्णाहुति और वसोर्धारानिपातन करे। पश्चात् त्र्यायुष और पूर्णपात्रदान करे। अनन्तर शय्यादान, प्रधानपीठ और मण्डपसङ्कल्प करे। पश्चात् भूयसी और कर्माङ्ग गोदानादि करे। फिर अभिषेक, अवभृथस्नान और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। पीछे देवविसर्जन और ब्राह्मणभोजन करावे।

रुद्रयाग तीन प्रकारका होता है—रुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र। रुद्रयाग ५, ७ अथवा ९ दिनमें होता है। महारुद्रयाग ९ दिनमें अथवा ११ दिनमें होता है। अतिरुद्रयाग ९ दिनमें अथवा ११ दिनमें होता है। रुद्रयागमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। महारुद्रयागमें ३१ अथवा ४१ विद्वान् होते हैं। अतिरुद्र यागमें ६१ अथवा ७१ विद्वान् होते हैं।

रुद्रयागमें उन्नीस हजार नवसौ इक्कीस (१९९२१) आहुति होती है। महारुद्रयागमें दो लाख उन्नीस हजार एकसौ इकतीस (२१९१३१) आहुति होती है। अतिरुद्रयागमें चौबीस लाख दस हजार चार सौ इकतालीस (२४१०४४१) आहुति होती है।

लघु रुद्रयागमें हवनसामग्री ११ मन, महारुद्रयागमें २१ मन और अतिरुद्रयागमें ७० मन लगती है।

विष्णुयाग

विष्णुयागको साङ्गोपाङ्ग सुसम्पन्न करनेके लिये यजमान सर्वप्रथम उपवास और सर्वप्रायश्चित्त करे। पश्चात् पञ्चाङ्ग और आचार्यादि वरणके बाद यजमान अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ बाजे-गाजेके साथ यज्ञमण्डपमें पश्चिम द्वारसे प्रवेश करे। अनन्तर आचार्यद्वारा दिग्रक्षण, मण्डपप्रोक्षण, वास्तुपूजन, मण्डपपूजन, न्यासपूर्वक प्रधानपूजन, योगिनीपूजन, क्षेत्रपालपूजन, अरणिपूजन, अरणिमन्थन, पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन, कुशकण्डिका, ग्रहपूजन, आघार-आज्यभागत्याग, ग्रहहवन, न्यास और प्रधानका 'पुरुषसूक्त' से हवन करे। मण्डपपूजन और प्रधानकी आहुति पूर्णाहुतिपर्यन्त प्रतिदिन करे। प्रधानाहुति पूर्ण होनेके बाद 'विष्णु-सहस्रनामावली' से हवन करे। पश्चात् आवाहित देवताओंका वैदिकमन्त्रसे अथवा नाममन्त्रसे हवन करे। अनन्तर अग्निपूजन, स्विष्टकृत्, नवाहुति, दशदिक्पालादि बलि, पूर्णाहुति और वसोर्धारानिपातन करे। पश्चात् त्र्यायुष और पूर्णपात्रदान करे। अनन्तर शय्यादान, प्रधानपीठ और मण्डपका सङ्कल्प करे। पश्चात् भूयसी और कर्माङ्ग गोदानादि करे। फिर अभिषेक, अवभृथस्नान और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। पीछे देवविसर्जन और ब्राह्मणभोजन करावे।

विष्णुयाग तीन प्रकारका होता है—विष्णु, महाविष्णु और अतिविष्णु। विष्णुयाग ५, ७, ८ अथवा ९ दिनमें होता है। महाविष्णुयाग ९ दिनमें होता है। अतिविष्णुयाग ९ दिनमें अथवा ११ दिनमें होता है। विष्णुयागमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। महाविष्णुयागमें ३१ अथवा ४१ विद्वान् होते हैं। अति-विष्णुयागमें ६१ अथवा ७१ विद्वान् होते हैं।

विष्णुयागमें हवनसामग्री ११ मन, महाविष्णुयागमें २१ मन और अतिविष्णुयागमें ५५ मन लगती है।

अनन्तदेवकृत विष्णुयागपद्धतिके अनुसार विष्णुयागमें सोलह हजार (१६०००) आहुति होती है। महाविष्णुयागमें एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है। अतिविष्णयागमें तीन लाख बीस हजार (३२००००) आहुति होती है।

नागरकृत विष्णुयागपद्धतिके अनुसार विष्णुयागमें एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है। महाविष्णुयागमें तीन लाख बीस हजार (३२००००)आहुति होती है। अतिविष्णु-यागमें चार लाख अस्सी हजार (४८००००) आहुति होती है।

आधुनिक विद्वानोंकी मुद्रित विष्णुयागपद्धतिके अनुसार विष्णु-यागमें सोलह हजार (१६०००) आहुति होती है। महाविष्णु-यागमें एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है। अतिविष्णुयागमें तीन लाख बीस हजार (३२००००) आहुति होती है।

विष्णुयागमें पुरुषसूक्त (शुक्ल यजुर्वेदके ३१वें अध्यायके प्रारम्भके १६ मन्त्र)से हवन होता है।

हरिहर महायज्ञ

हरिहर महायज्ञमें हरि (विष्णु) और हर (शिव) इन दोनोंका यज्ञ होता है। प्रातःकाल विष्णुयज्ञ और मध्याह्नमें रुद्रयज्ञ होता है। विष्णुयज्ञमें 'पुरुषसूक्त' से आहुति होती है और रुद्रयज्ञमें 'रुद्रसूक्त' से आहुति होती है। हरिहर महायज्ञमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। हरिहर महायज्ञमें विष्णुयज्ञ और रुद्रयज्ञकी तरह आहुतिकी संख्या कही गयी है। हरिहरयागमें हवनसामग्री २५ मन लगती है। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिनमें होता है।

शिवशक्ति महायज्ञ

शिवशक्ति महायज्ञमें शिव (रुद्रयज्ञ) और शक्ति (दुर्गा) इन दोनोंका यज्ञ होता है। शिवयज्ञ प्रातःकाल और शक्तियज्ञ (दुर्गायज्ञ) मध्याह्नमें होता है। शिवयज्ञ (रुद्रयज्ञ) में शुक्ल यजुर्वेदके पाँचवें सम्पूर्ण अध्यायसे हवन होता है और शक्तियज्ञ (दुर्गायज्ञ) में सम्पूर्ण दुर्गासे हवन होता है।

शिवयज्ञ और शक्तियज्ञ इन दोनों यज्ञोंकी आहुतिकी संख्या एक लाख पचीस हजार (१२५०००) कही गई है। इसमें हवनसामग्री १५ मन लगती है। शिवशक्ति महायज्ञमें २१ हवन करनेवाले विद्वान् होते हैं। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिनमें सुसम्पन्न होता है।

रामयज्ञ

रामयज्ञ विष्णुयागकी तरह होता है। इसमें पुरुषसूक्तसे अथवा 'ॐ रां रामाय नमः' इस षडक्षर मन्त्रसे आहुति होती है। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुतिके दिन 'रामसहस्रनामावली' से हवन करना चाहिये। रामयज्ञमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। इसमें हवनसामग्री १५ मन लगती है। यह यज्ञ ८ दिनमें होता है। रामयज्ञमें एक लाख (१०००००) अथवा एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है।

गणेशयज्ञ

गणेशयज्ञमें शुक्ल यजुर्वेदके ३३ वें अध्यायके ६५ वें मन्त्रसे ७२ मन्त्र तक आठ मन्त्रोंसे आहुति होती है। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुतिके दिन 'गणेशसहस्रनाम' से हवन करना चाहिये। गणेशयज्ञमें एक लाख (१०००००) आहुति होती है। इसमें

१६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। गणेशयज्ञमें हवनसामग्री १२ मन लगती है। यह यज्ञ ८ दिनमें होता है।

प्रजापतियज्ञ (ब्रह्मयज्ञ)

प्रजापतियज्ञमें शुक्ल यजुर्वेदके ७ वें अध्यायके ४६ वें मन्त्रसे, १२ वें अध्यायके ६१ वें मन्त्रसे, १३ वें अध्यायके ३ रे मन्त्रसे, १९ वें अध्यायके ५ वें मन्त्रसे, २२ वें अध्यायके २२ वें मन्त्रसे, २३ वें अध्यायके ४८ वें मन्त्रसे, २३ वें अध्यायके ६५ वें मन्त्रसे, २९ वें अध्यायके ४७ वें मन्त्रसे, ३० वें अध्यायके ५ वें मन्त्रसे, ३३ वें अध्यायके ७८ वें मन्त्रसे और ३४ वें अध्यायके ५८ वें मन्त्रसे आहुति होती है।

प्रजापतियज्ञमें एक लाख (१०००००) आहुति अथवा दस हजार (१००००) आहुति होती है। इसमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। प्रजापतियज्ञमें हवनसामग्री १२ मन लगती है। यह यज्ञ ८ दिनमें होता है।

सूर्ययाग

सूर्ययागमें शुक्ल यजुर्वेदके ३३ वें अध्यायके ३० वें मन्त्रसे ४३ मन्त्र तक तथा शुक्ल यजुर्वेदके ७ वें अध्याके १२ वें मन्त्रसे और ७ वें अध्यायके १६ वें मन्त्रसे एवं १३ वें अध्यायके ४६ वें मन्त्रसे आहुति होती है। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुतिके दिन 'सूर्यसहस्रनामा-वली' से हवन करना चाहिये। सूर्ययागमें एक करोड़ (१०००००००) आहुति अथवा दस हजार (१००००) आहुति होती है। इसमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। यह यज्ञ ८ दिन अथवा १२ दिनमें होता है। सूर्ययागमें हवनसामग्री १२ मन लगती है।

दुर्गायज्ञ

दुर्गायज्ञमें 'दुर्गासप्तशती' के द्वारा हवन होता है। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुतिके दिन 'दुर्गासहस्रनामावली' (देवीसहस्रनामावली) से हवन करना चाहिये। दुर्गायज्ञमें हवन करनेवाले ९ विद्वान् होते हैं। आचार्य, ब्रह्मा और द्वारपालादि सब मिलाकर १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। यह यज्ञ ९ दिनमें होता है। दुर्गायज्ञमें हवनसामग्री २० मन अथवा १५ मन लगती है।

लक्ष्मीयज्ञ

लक्ष्मीयज्ञमें ऋक्परिशिष्टोक्त 'श्रीसूक्त' से हवन होता है। प्रतिदिन अथवा यज्ञकी पूर्णाहुतिके दिन 'लक्ष्मीसहस्रनामावली'से हवन करना चाहिये। लक्ष्मीयज्ञमें एक लक्ष (१०००००) आहुति होती है। इसमें हवन करनेवाले ११ अथवा १६ विद्वान् होते हैं। आचार्य और ब्रह्मा आदि मिलाकर २१ विद्वान् होने चाहिये। यह यज्ञ ८ दिनमें होता है। लक्ष्मीयज्ञमें हवनसामग्री १५ मन लगती है।

लक्ष्मीनारायण महायज्ञ

लक्ष्मीनारायण महायज्ञमें लक्ष्मी और नारायण (विष्णु) इन दोनोंका यज्ञ होता है। प्रातःकाल लक्ष्मीका यज्ञ और मध्याह्नमें नारायण (विष्णु)का यज्ञ होता है। लक्ष्मीयज्ञमें ऋग्वेदपरिशिष्टोक्त 'श्रीसूक्त' से हवन होता है और नारायणयज्ञमें पुरुषसूक्त (शुक्ल यजुर्वेदके ३१ वें अध्यायके प्रारम्भके १६ मन्त्र) से हवन होता है। लक्ष्मीयज्ञ और नारायणयज्ञ इन दोनोंकी आहुति संख्या एक लाख साठ हजार (१६००००) अथवा सवा लाख (१२५०००)

कही गई है। इसमें ३० मन हवनसामग्री लगती है। लक्ष्मीनारायण महायज्ञमें हवन करनेवाले ३१ विद्वान् होते हैं। यह महायज्ञ ८ दिनमें अथवा ९ दिनमें अथवा ११ दिनमें सुसम्पन्न होता है।

नवग्रह महायज्ञ

नवग्रह महायज्ञमें नवग्रह और नवग्रहके अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवताके सहित देवताओंके लिये शुक्ल यजुर्वेदोक्त 'आकृष्णेन रजसा' इत्यादि २७ मन्त्रोंसे आहुति होती है। नवग्रह महायज्ञमें एक करोड़ (१०००००००) आहुति अथवा एक लक्ष (१०००००) आहुति अथवा दस हजार (१००००) आहुति होती है। इसमें कमसे कम ३१ अथवा ४१ विद्वान् होते हैं। नवग्रहमहायज्ञमें हवनसामग्री ११ मन लगती है। कोटिहोमात्मक नवग्रह महायज्ञमें हवनसामग्री विशेष लगती है। नवग्रह महायज्ञ ९ दिनमें होता है। इसमें १, ५, ९ और १०० कुण्ड होते हैं। नवग्रह महायज्ञमें नवग्रहके आकारके ९ कुण्डोंके बनानेका भी विधान है।

विश्वशान्ति महायज्ञ

विश्वशान्ति महायज्ञमें शुक्ल यजुर्वेदके ३६ वें अध्यायके सम्पूर्ण मन्त्रोंसे आहुति होती है। विश्वशान्ति महायज्ञमें सवा लक्ष (१२५०००) आहुति होती है। इसमें २१ अथवा ३१ विद्वान् होते हैं। इसमें हवनसामग्री १५ मन लगती है। यह महायज्ञ ९ दिनमें अथवा ११ दिनमें सुसम्पन्न होता है।

पर्जन्य-याग (इन्द्रयाग)

पर्जन्य-याग वर्षाके लिये किया जाता है। पर्जन्ययागमें ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलके ८३ वें सूक्तसे, ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलके

८४ व सूक्तसे, ऋग्वेदके सप्तम मण्डलके १०१ वें सूक्तसे, ऋग्वेदके सप्तम मण्डलके १०२ वें सूक्तसे, ऋग्वेदके सप्तम मण्डलके १०३ वें सूक्तसे और ऋग्वेदके दशम मण्डलके ३० वें सूक्तसे आहुति होती है।

पर्जन्ययागमें तीन लाख बीस हजार (३२००००) आहुति होती है अथवा एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है। पर्जन्ययागमें ३१ मन हवनसामग्री लगती है। इसमें ३१ विद्वान् हवन करनेवाले होते हैं। पर्जन्ययाग ११ दिनमें सुसम्पन्न होता है।

पर्जन्ययागमें यथाशक्ति निम्नलिखित कार्य भी किये जा सकते हैं—

१–ॐ 'ध्रुवासु त्वासु०' (ऋग्वेद ७।८८।७)इस मन्त्रका गङ्गा आदि नदीमें अथवा किसी तालावमें नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर इक्कीस हजार अथवा ग्यारह हजार जप करना चाहिये। जपके बाद उक्त मन्त्रसे दुग्ध और घृतमें बेंतकी समिधा (लकड़ी) को डुबोकर दस हजार (१००००) बार आहुति देनी चाहिये।

२— ॐ महाँ२ऽ इन्द्रो यऽ ओजसा०' (शु० य० ७।४०)इस मन्त्रसे ग्यारह सौ बार हवन करना चाहिये।

३—'ॐ व्वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा०' (शु० य० २।१६) इस मन्त्रसे ग्यारह हजार अथवा ग्यारह सौ बार हवन करना चाहिये।

४—'ॐ नमो भगवते इन्द्रवज्राय मुद्गरं धारय धारय अस्मिन् देशे नगरे ग्रामे च मेघवृष्टिं कुरु कुरु स्वाहा।'

—इस मन्त्रसे ग्यारह हजार अथवा ग्यारह सौ बार हवन करना चाहिये।

६—(क)ॐ ह्रीं मेघद्वितीयाय नमः सबलये स्वाहा।

(ख) ॐ ह्रीं मेघद्वितीयं कमलोद्भवनाय स्वाहा।

(ग)ॐ ह्रीं नन्दिकेशराजाय मेघराजाय अघर-विनाशनाय मेघराजाय स्वाहा।

(घ)ॐ ह्रीं सिंहराजाय कैलाशवासिने मेघराजाय स्वाहा।

(ङ) ॐ ह्रीं कुम्भराजाय शृङ्गनिवासिने मेघराजाय स्वाहा।

उपर्युक्त पाँच मन्त्रोंका क्रमशः १०८ बार जप करना चाहिये।

७—'ॐ त्रातारमिन्द्रम्०' (शुक्ल यजुर्वेद २०। ५०)इस मन्त्रसे इन्द्रका १०८ बार जप करना चाहिये और 'ॐ होता यक्षत्तिस्रो देवी:०' (शु० य० २८।८) तथा 'ॐ अदित्यै रास्नासि०' (शु० य० ३८। ३) इन दोनों मन्त्रोंसे क्रमशः इन्द्राणी (इन्द्रपत्नी) का १०८ बार जप करना चाहिये।

८—पर्जन्ययागको 'इन्द्रयाग' भी कहा जाता है।

९—पर्जन्ययागमें इन्द्र और इन्द्राणीका आवाहन, स्थापन और पूजन होता है।

१०—पर्जन्ययागमें 'अप्रतिरथसूक्त' से अर्थात् शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीके चतुर्थाध्यायके समस्त मन्त्रोंका पाठ हवनके प्रारम्भमें और अन्तमें करना चाहिये।

११—पर्जन्ययागमें नदी अथवा तालावके किनारे वरुणका पूजन करना चाहिये। वरुणदेवताके निमित्त कलशस्थापन करके 'ॐ वरुणस्योत्तम्भनम्०' (शु० य० ४।३६) और 'ॐ वरुणः प्राविता०' (शु० य० ३३। ४६) इन दोनों मन्त्रोंका पृथक्-पृथक् १०८ बार जप करना चाहिये।

१२—पर्जन्ययागमें 'ऋष्यशृङ्ग'का पूजन करना चाहिये।

१३—हवनात्मक महारुद्र और अभिषेकात्मक महारुद्र करनेसे वर्षा होती है। इन दोनों अनुष्ठानोंको एक साथ करना चाहिये।

१४—एक सौ आठ (१०८) ब्राह्मणोंको अथवा चौबीस (२४) ब्राह्मणोंको नदीमें अथवा तालावमें नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर ग्यारह सौ (११००) बार गायत्रीमन्त्रका पृथक्-पृथक् जप करना चाहिये।

१५—गायत्रीमन्त्रसे १०८ बार खीरसे संयुक्त वेंतके पत्रोंसे अथवा केवल खीरसे हवन करनेसे एक सप्ताहमें वर्षा होती है।

(देवीभागवत, स्कन्ध ११, अध्याय २४)

१६—किसी नदी अथवा तालावमें नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर एक सप्ताहतक गायत्री-मन्त्रका १०८ बार जप करनेसे वर्षा होती है।

(देवीभागवत, स्कन्ध ११, अध्याय २४)

अतिवृष्टि रोकनेकी विधि

१—गायत्रीमन्त्रसे १०८ बार जलमें भस्मकी आहुति देनेसे घोर वृष्टि बन्द हो जाती है।

(देवीभागवत, स्कन्ध ११, अध्याय २४)

२—सुक्तान्तेऽस्येत्तृणान्यग्नाविरिणे वोदकेऽपि वा।
यदस्तृणैरधीतं तत् तृणानि भवति ध्रुवम्॥ १॥
वापीकूपतडागानां समुद्रं गच्छ स्वाहा॥ २॥

(ऋग्वेद परिशिष्टभाग)

—इन दो मन्त्रोंसे १००८ बार जलमें घृतकी आहुति देनेसे वर्षा बन्द हो जाती है।

गोयज्ञ

वेदादि शास्त्रोंमें 'गोयज्ञ' लिखे हैं। वैदिककालमें बड़े-बड़े 'गोयज्ञ' हुआ करते थे। भगवान् श्रीकृष्णने भी गोवर्धन–पूजनके समय 'गोयज्ञ' कराया था। गोयज्ञमें वेदोक्त गोसूक्तोंसे गोरक्षार्थ हवन, गोपूजन, वृषभपूजन आदि कार्य किये जाते हैं, जिनसे गोसंरक्षण, गोसंवर्धन, गोवंशरक्षण, गोवंशवर्धन, गोमहत्त्व-प्रख्यापन और गोसङ्गतिकरण आदिमें विशेष लाभ होता है।

गोयज्ञमें ऋग्वेदके छठें मण्डलके २८ वें सूक्तके मन्त्र १ से ८ तक आहुति होती है। इसमें सवा लक्ष (१२५०००) आहुति होती है। गोयज्ञमें हवन करनेवाले २१ विद्वान् होते हैं। यह यज्ञ ८ अथवा ९ दिनमें सुसम्पन्न होता है।

गायत्री महायज्ञ

गायत्री महायज्ञमें गायत्रीमन्त्रसे आहुति होती है। प्रतिदिन अथवा गायत्रीयज्ञकी पूर्णाहुतिके दिन 'गायत्रीसहस्रनामावली'से हवन करना चाहिये। गायत्री महायज्ञमें चौबीस लाख (२४०००००) आहुति होती है। चौबीस लाख आहुतियोंके गायत्री महायज्ञमें ५५ मन अथवा ६० मन हवनसामग्री लगती है। गायत्री महायज्ञमें ६१ अथवा ७१ विद्वान् होते हैं। यह महायज्ञ ९ अथवा ११ दिनमें होता है। गायत्री महायज्ञमें १, ५, ९ अथवा २४ कुण्ड होते हैं।

गायत्री-पुरश्चरण

गायत्री-पुरश्चरणमें २४ दिन गायत्रीका जप होता है। इसमें

प्रत्येक विद्वान्को प्रतिदिन तीन हज़ार गायत्रीका जप करना चाहिये। शास्त्रोंमें प्रत्येक व्यक्तिके लिये तीन हज़ार गायत्रीका जप प्रतिदिन करनेके लिये लिखा है। अतः गायत्रीजापकको इससे कम अथवा इससे अधिक जप नहीं करना चाहिये। ३३ ब्राह्मणोंके द्वारा गायत्रीका जप करनेसे प्रतिदिन निन्यानवे हजार (९९०००) जप होता है।

गायत्रीपुरश्चरणमें ३३ ब्राह्मण गायत्रीजप करनेवाले, १ आचार्य, १ ब्रह्मा, ४ द्वारपाल, १ देवीभागवतपाठकर्ता, १ श्रीसूक्तपाठकर्ता, १ गणेशजापक, १ ग्रहजापक और २ परिचारक—इस प्रकार ४५ ब्राह्मण होते हैं।

गायत्रीपुरश्चरणमें चौबीस लक्ष जपकी समाप्तिमें उसका दशांश हवन करना चाहिये अथवा जपका दशांश हवन प्रतिदिन करना चाहिये। चौबीस लाख गायत्रीजपका दशांश हवन प्रायः अढ़ाई लाख होता है।

चौबीस लाख जपके दशांश हवन करनेके बाद हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।

गायत्रीपुरश्चरणमें प्रारम्भ और पूर्णाहुतिके पूजन एवं हवनादि कृत्यको मिलाकर प्रायः एक महीना लगता है।

गायत्रीपुरश्चरणमें १८ अथवा २० मन हवनसामग्री लगती है।

शतचण्डी

शतचण्डी ५ दिनमें अथवा ९ दिनमें होती है। ५ दिनमें होनेवाली शतचण्डीमें वृद्धिक्रमसे दुर्गाका पाठ होता है। इसमें प्रथम दिन एक पाठ, द्वितीय दिन दो पाठ, तृतीय दिन तीन पाठ और चतुर्थ दिन चार पाठ करना चाहिये। पाँचवें दिन हवन

करके शतचण्डी समाप्त करना चाहिये। 'पञ्चमेऽह्नि समाप्तिः स्यात्' ऐसा लिखा भी है।

पाँच दिनकी शतचण्डीमें वृद्धिक्रमसे दुर्गापाठ करानेके लिये १० ब्राह्मण होने चाहिये। नव दिनकी शतचण्डीमें दुर्गापाठ करनेवाले १० ब्राह्मण होने चाहिये। आचार्य, ब्रह्मा आदि अलग होते हैं। शतचण्डीमें हवनसामग्री सवा मन लगती है। शतचण्डी सर्वदा की जा सकती है। इसके लिये उत्तरायण और दक्षिणायनका विचार नहीं है।

कोटिहोम

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा।
चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते॥

(भविष्यपुराण)

'हे महाराज! शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख-भेदसे चार प्रकारका कोटिहोम होता है।'

शतमुखमें अर्थात् १०० कुण्डोंके यज्ञमें प्रत्येक कुण्ड एक-एक हाथ लंबा और चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्डमें १०-१० होता (हवनकर्ता) बैठने चाहिये। इस प्रकार १०० कुण्डोंके यज्ञमें एक हजार (१०००) होता होने चाहिये।

दश मुखमें अर्थात् १० कुण्डोंके यज्ञमें प्रत्येक कुण्ड ६-६ हाथ लंबा और चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्डमें २०-२० होता बैठने चाहिये। इस प्रकार १० कुण्डोंके यज्ञमें दो सौ (२००) होता होने चाहिये।

द्विमुखमें अर्थात् दो कुण्डोंके यज्ञमें प्रत्येक कुण्ड ६-६ हाथ लम्बा और चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्डमें ५०-५० होता बैठने

चाहिये। इस प्रकार दो कुण्डोंके यज्ञमें सौ (१००) होता होने चाहिये।

एक मुखमें अर्थात् एक कुण्डके यज्ञमें आठ हाथका, दस हाथका अथवा सोलह हाथका लंबा और चौड़ा कुण्ड होता है। एक कुण्डके यज्ञमें होताओंकी संख्याका कोई खास नियम नहीं है। यजमान अपनी शक्ति–सामर्थ्यके अनुसार जितने भी होताओंको हवनार्थ बैठाना चाहे, बैठा सकता है।

कोटिहोममें उत्तम, मध्यम और अधम—इस प्रकार तीन प्रकारका मण्डपका परिमाण कहा है। १०० हाथका उत्तम मण्डप, ५० हाथका मध्यम मण्डप और इससे कम परिमाणका अधम मण्डप कहा है।

सौ हाथका मण्डप निर्माण करके उसमें कुण्डके निर्माणार्थ पूर्व और उत्तरकी तरफ डोरी (रस्सी) से दस–दस विभाग करे और दस-दस सूत्रको पूर्व और अपर (पश्चिम) में सूत्र दे। ऐसा करनेसे दस-दस हाथके १०० कोष्ठ बन जाते हैं। १०० कोष्ठके मध्यमें दो-दो हाथका कुण्ड बनाना चाहिये।

सौ कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं।

दस कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं।

दो कुण्डोंके यज्ञमें दोनों कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं।

एक कुण्डके यज्ञमें वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र कुण्ड होता है।

सौ कुण्डोंके यज्ञमें प्रथम पङ्क्तिमें निर्मित दस कुण्डोंमेंसे नैर्ऋत्यकोणके कुण्ड (प्रधानकुण्ड) में पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन करना चाहिये। पश्चात् उसी कुण्डसे अन्य कुण्डोंमें अग्निप्रणयन

करना (अग्निको लेजाना) चाहिये। अग्निस्थापनानन्तर प्रत्येक कुण्डमें आघारावाज्यभागान्त कर्म करना चाहिये। स्विष्टकृत्, पूर्णाहुति और वसोर्धारादि कर्म प्रत्येक कुण्डमें पृथक्-पृथक् करना चाहिये।

कोटिहोममें 'प्रधानवेदी' पूर्व दिशामें होती है और प्रधानकुण्ड नैर्ऋत्यकोणमें होता है।

सौ कुण्डोंके कोटिहोममें एक हजार ब्राह्मण हवन करनेवाले होते हैं। इनके अतिरिक्त १ प्रधानाचार्य, १ प्रधान ब्रह्मा, १० सदस्य, १० उपद्रष्टा, १० गाणपत्य, ९९ कुण्डाचार्य, ९९ ब्रह्मा, १६ द्वारपाल, १६ चारों वेदोंके पाठकर्ता, १८ अष्टादश पुराणोंके पाठकर्ता, ४ अन्नपूर्णास्तोत्रके पाठकर्ता, ४ श्रीसूक्तके पाठकर्ता, ४ ग्रहजापक और ८ परिचारक—इस प्रकार सब मिलाकर १३१८ (तेरह सौ अठारह) विद्वान् होने चाहिये।

कोटिहोममें ब्राह्मणोंको यथाशक्ति सुवर्णकी दक्षिणा और १०० गौ तथा १०० घोड़े देने चाहिये। प्रधानाचार्यको भूमि, गृह, हाथी, घोड़ा, रथ और गौ देनी चाहिये।

सौ कुण्डोंका कोटिहोम बहुत बड़ा महायज्ञ कहा गया है। इसमें हजारों ब्राह्मण यज्ञमें भाग लेते हैं। अतः बड़े कार्योंमें अनेक प्रकारके विघ्नोंके होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये बड़े-बड़े यज्ञादि शुभ कार्योंको स्वल्प दिनोंमें ही करना चाहिये। 'शुभस्य शीघ्रम्।'

दो कुण्डोंका कोटिहोम एक महीनेमें अथवा १५ दिनमें किया जा सकता है।

एक कुण्डके कोटिहोममें समयकी गणनाका नियम नहीं है। जितने दिनोंमें यज्ञ पूर्ण हो सके, उतने दिनोंमें यज्ञ पूर्ण करना चाहिये।

एक कुण्डके कोटिहोममें मुहूर्तका विचार अनावश्यक है। यजमान अपनी अनुकूलताके अनुसार जब चाहे तब यज्ञ कर सकता है।

कोटिहोममें हवनसामग्री २०० मन लगती है।

यज्ञमण्डपका संक्षिप्त स्वरूप

निर्दोष पवित्र यज्ञिय भूमिमें शुभ मुहूर्तमें शिल्पी (कारीगर) के द्वारा जानुमात्र भूमिको खुदाकर उसे पवित्र जल, गोमूत्र, गोबर आदि से शुद्ध करे। पश्चात् **'पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्'** इस वचनके अनुसार गणपत्यादिपूजनपूर्वक पुण्याहवाचनादि करके सविधि भूमिपूजन करे। अनन्तर चतुरस्र मण्डप कमसे कम सोलह हाथका लंबा और चौड़ा तथा एक हाथ अथवा आधा हाथ ऊँचा बनवावे। उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारका मण्डप होता है। १६ हाथका मण्डप उत्तम, १४ अथवा १२ हाथका मध्यम और १० हाथका अधम होता है।

मण्डपके चारों ओर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें मध्यमें चार द्वार दो हाथ चौड़ा अथवा दो हाथ चार अङ्गुल चौड़ा अथवा दो हाथ आठ अङ्गुल चौड़ा बनावे। ये चारों द्वार मण्डपके बराबर ऊँचे होने चाहिये। मण्डपके चारों ओर बाहरकी तरफ १२ स्तम्भ ७ अथवा ५ हाथके लगावे। मण्डपके भीतर ४ स्तम्भ ८ हाथके लगावे अथवा मण्डपार्ध लगावे। इन सभी स्तम्भोंका पञ्च-मांश भूमिमें गाड़ दे। स्तम्भकी मोटाई कमसे कम १० अङ्गुल होनी चाहिये। स्तम्भोंकी लकड़ी नूतन, सुदृढ़ और सीधी होनी चाहिये। मण्डपस्थित १६ स्तम्भोंके ऊपर १६ लकड़ी छेद करके पहना दे। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरकी ओर दो-दो लकड़ी तथा चारों कोनोंमें चार लकड़ी पहना दे। मण्डपके मध्य भागमें ऊपर शिखर

लगाना चाहिये। **'अर्थात् परिमाणम्'** इस कात्यायनश्रौतसूत्रके अनुसार शिखर यथारुचि छोटा-बड़ा बनाया जा सकता है। मण्डपको सुदृढ़ करनेके लिये विशेष लकड़ीका उपयोग किया जा सकता है। मण्डपमें छाया और जलरक्षार्थ मण्डपके ऊपर टीन, चटाई, फूँस आदिका उपयोग करना चाहिये। मण्डपके भीतर अग्निरक्षार्थ कुण्डोंके ऊपर टीन लगाना उचित है। मण्डपाङ्ग दरवाजोंको छोड़कर मण्डपस्थ समस्त स्तम्भोंको लाल, पीले आदि शुभ रंगके रेशमी या सूती वस्त्रोंसे लपेट देना चाहिये। पश्चात् गोटा, शीशा, देवताओंकी तस्वीर और केलेके स्तम्भोंको लगाकर सुशोभित करना चाहिये। सोलह स्तम्भोंपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यमराज, नागराज, स्कन्द (स्वामिकार्तिकेय) वायु, सोम, वरुण, अष्टवसु, धनद (कुबेर), बृहस्पति और विश्वकर्मा- इन सोलह देवताओंकी फोटो यथाक्रम लगाना चाहिये।

विष्णुयागमें मण्डपके मध्यमें कुण्ड होता है और वेदी मण्डपके चारों कोनोंमें होती है। अग्निकोणमें मातृका और योगिनी, ईशान-कोणमें ग्रहवेदी, वायव्यकोणमें क्षेत्रपाल नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुवेदी और पूर्व दिशामें प्रधानवेदी होती है। प्रधानवेदी १ हाथ ऊँची और २ हाथ चौड़ी होती है और अन्य चार वेदी १ हाथ ऊंची और १ हाथ चौड़ी होती है। **रुद्रयज्ञमें प्रधानवेदी ईशान-कोणमें होती है** और उसके दाहिने ग्रहवेदी होती है।

मण्डपके एक अथवा दो हाथ बाहर द्वार पर पूर्वादि क्रमसे तोरणद्वार होते हैं। इनमें पूर्व दिशामें वट या पीपल, दक्षिण दिशामें गूलर, पश्चिम दिशामें पीपल या पाकर और उत्तर दिशामें पाकर या वटकी लकड़ीके तोरणद्वार होते हैं। उपर्युक्त समस्त प्रकारकी लकड़ी अप्राप्य हों, तो इनमें जो भी लकड़ी प्राप्त हो, उसीसे तोरणद्वार निर्माण किये जा सकते हैं। चारों

तोरणद्वारोंमें पूर्वादि क्रमसे लाल, काला, सफेद और पीला वस्त्र लगाना चाहिये। विष्णुयागमें इन चारों तोरणद्वारोंके ऊपर मध्यमें पूर्वादि क्रमसे शंख, चक्र, गदा और पद्म लगाना चाहिये और रुद्रयागमें चारों तोरणद्वारोंके ऊपर मध्यमें त्रिशूल लगाना चाहिये। तोरणद्वारमें कथित काष्ठसे ही शंख, चक्र, पद्म और त्रिशूल बनवाना चाहिये। तोरणद्वारोंमें मण्डपद्वारोंकी तरह नीचे लकड़ी अर्थात् देहली नहीं होती है।

मण्डपके बाहर समस्त दिशाओं और विदिशाओंमें बाहनके सहित १० त्रिकोण ध्वजा और १० चतुष्कोण पताका लगानी चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ध्वजाओंमें आयुध और पताकाओंमें बाहन लगाना चाहिये। ध्वजा ५ हाथ लंबी और २ हाथ चौड़ी होती है और पताका ७ हाथ लंबी और १ हाथ चौड़ी होती है। ध्वजा और पताकाओंको १०-१० हाथके बांसमें लगाकर उसके पञ्चमांशको भूमिमें गाड़ देना चाहिये। १० हाथके बांसके अभावमें छोटे बांसको मण्डपके ऊपर लगाना चाहिये और वस्त्रके अभावमें छोटी-छोटी ध्वजा और पताका लगानी चाहिये।

महाध्वज १० हाथ लंबा और ३ हाथ चौड़ा होता है। महाध्वजको ईशानकोणके मध्य भागमें लगाना चाहिये।

—:o:—

यज्ञकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका

नित्यकर्म विधायैव प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
गणेशं पूजयेदादौ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥
मातृणां पूजनं कार्यं नान्दीश्राद्धमतः परम्।
आचार्यमथ वृत्वैव ब्रह्माणं गाणपत्यकम् ॥
सदस्यमुपद्रष्टारमृत्विजो वृणुयात्ततः।
प्रवेशनं मण्डपस्य तावद् दिग्रक्षणं पुनः ॥
ततो मण्डपपूजादि ग्रहादिस्थापनं ततः।
देवताग्रहहोमं च पूर्वाङ्गमिति कथ्यते ॥
पूजास्विष्टं नवाहुत्यो बलिः पूर्णाहुतिस्तथा।
संस्रवादिविमोकान्तं होमशेषं समापयेत् ॥
पूर्णपात्रादिदानं च गोदानं च ततः परम्।
श्रेयो मण्डपदानादि ह्यभिषेको विसर्जनम् ॥
विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्वा भोजयेद् विधिपूर्वकम्।
शुभाशीर्ग्रहणं कुर्यादुत्तराङ्गक्रमो ह्ययम् ॥

निर्मिता यज्ञमीमांसा श्रीवेणीरामशर्मणा।
तद्भागः प्रथमः पूर्णस्तेन यज्ञः प्रसीदतु ॥

*** प्रथम भाग समाप्त ***

द्वितीय भाग

के गृहसे लाई हुई अग्नि उत्तम और अपने घर आदिसे लाई हुई अग्नि मध्यम कही गई है।'

यज्ञादिमें त्याज्य अग्नि

चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित्।
पतिताग्निः चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः॥

(देवलः)

'चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, आशौचकी अग्नि, पतितकी अग्नि और चिताकी अग्निका व्यवहार करना शिष्ट लोगोंके लिये उचित नहीं है।'

विभिन्न अग्नियोंके धूएँका फल

यज्ञधूमोद्भवं त्वभ्रं द्विजानां च हितं सदा।
दावाग्निधूमसम्भूतमभ्रं वनहितं स्मृतम्॥
मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति।
अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः॥

'हे द्विजातिवृन्द ! यज्ञधूमसे उत्पन्न मेघ द्विजातियोंके लिये (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये) सदा हितावह है। वनाग्निसे उत्पन्न मेघ वनके लिये हितकारी कहा गया है। शवके (श्मशानकी अग्निके) धूएँसे उत्पन्न मेघ अमङ्गलकारी होता है तथा अभिचारकी (मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये अनुष्ठित यज्ञ की) अग्निके धूएँसे उत्पन्न मेघ प्राणिमात्रके विनाशके लिये होता है।'

अग्निका स्वरूप जानकर ही हवन करना चाहिये

अविदित्वा तु यो ह्यग्निं होमयेदविचक्षणः।
न हुतं न च संस्कारो न स कर्मफलं लभेत्॥

मनुष्य समस्त अभीष्ट भोगोंको भोगकर श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त करता है। अतः विद्वानोंने प्रजापतियागका विशेष महत्त्व कहा है।'

वेदोंमें कहा है कि—यज्ञ ही प्रजापति है और प्रजापति ही यज्ञ है—

यज्ञः प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ११।६।३।६)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३।१०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० १।३०।१०।६५)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (तैत्तिरीयब्रा० ३।३।७।४०)
यज्ञो वै प्रजापतिः। (शाङ्खायनब्रा० १०।१)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० १।१।१।१)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ५।४।५।१६)
प्रजापतिर्यज्ञः। (शतपथब्रा० ११।१।८।३)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (गोपथब्रा० पूर्व० २।१८)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (ऐतरेयब्रा०।१६।५)
प्रजापतिर्वै यज्ञः। (शाङ्खायनब्रा० १३।१)
एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः। (शतपथब्रा० ४।३।४।३)

*हरिहर-महायज्ञका महत्त्व

शृणु देवि महाभागे यागं हरिहरात्मकम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति पुत्र-पौत्रप्रदायकम्॥

'हे देवि, हे महाभागे, सुनो पुत्र—पौत्रप्रदायक हरिहरात्मक यागका अनुष्ठान करता हुआ पुरुष सिद्धिको प्राप्त होता है।'

---

* हरिहरमहायज्ञके विशेष परिज्ञानके लिये 'महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधर गौड स्मारकग्रन्थ' के द्वितीय खण्डमें महामहोपाध्यायजीके 'हरिहयाग-मीमांसा' लेखको पढ़ना चाहिये।

*शालग्राम, नर्मदेश्वर आदि मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा, आवाहन और विसर्जन नहीं होता

'शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते।'

(स्कन्दपुराण)

'शालग्राम शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं होती है।'

शालग्रामे स्थावरे वाहनं न विसर्जनम्।
शालग्रामशिलादौ यन्नित्यं सन्निहितो हरिः॥

'स्थिर शालग्राम मूर्तिपर आवाहन तथा विसर्जन नहीं करना चाहिये। क्योंकि शालग्राम शिलामें सर्वदा भगवान् स्थित रहते हैं।'

कम्बुश्चक्रं शैलभवा नर्मदेयाऽब्जिनोपतो।
वाणो विष्णुशिला चैषां प्रतिष्ठां नैव कारयेत्॥

(मार्कण्डेयः)

'शंख, चक्र (गोमतीचक्र), सुदर्शनचक्र, नर्मदेश्वर, सूर्ययन्त्र, वाणलिङ्ग और विष्णुशिला (शालग्राम) इनकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये।'

वाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये।
न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा॥

(भविष्यपुराण)

---

*मूर्तिकी प्रतिष्ठा चल और अचल दो प्रकारकी कही गई है। अचल मूर्ति और शालग्राममें आवाहन और विसर्जन नहीं होता है। चल मूर्तिमें विकल्प है। सैकती (मिट्टी या वालुकामयी) मूर्तिमें आवाहन और विसर्जन होता है। दारुमयी (काष्ठकी) और मणिमयी आदि मूर्तियोंमें आवाहन और विसर्जन करना ऐच्छिक है। मिट्टी, चन्दनादि-लेप और चित्रित मूर्तियोंको स्नान न कराकर, उनका केवल मार्जन करना उचित है।

'हे राजेन्द्र, तीनों भुवनोंमें बाणलिङ्ग प्रसिद्ध हैं, अतः इनकी न प्रतिष्ठा होती है, न संस्कार होता है और न आवाहन होता है।'

बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये।
न प्रतिष्ठा न संस्कारो न च निर्माल्यकल्पना॥

(निर्णयसिन्धु)

'हे राजेन्द्र तीनों भुवनोंमें बाणलिङ्ग प्रसिद्ध है, अतः इनकी न तो प्रतिष्ठा होती है, न इनका संस्कार होता है और न इनके निर्माल्य-भक्षणमें दोष ही होता है।'

पुनः प्रतिष्ठाके योग्य मूर्ति

चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाऽथवा।
अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षत्रजदूषिता॥

(हयशीर्षपञ्चरात्र)

'चाण्डालके स्पर्शसे, मद्यके स्पर्शसे, दूषित अग्निके स्पर्शसे और पापी मनुष्यके स्पर्शसे प्रतिमा दूषित हो जाती है। दूषित ब्राह्मण और क्षत्रियसे स्पर्श होनेपर भी प्रतिमा पुनः संस्कारके योग्य हो जाती है।'

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते।
यागहीनेः पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु॥

(ब्रह्मपुराण)

'खण्डित, स्फुटित (टूटी हुई), दग्ध (जली हुई), भ्रष्ट, मानहीन (प्रमाणसे हीन), यागहीन (पूजासे हीन) कुत्ता, गर्दभ आदि अस्पृश्य पशुओंसे स्पर्श की गई, अपवित्र भूमिमें गिरी हुई दूसरे मन्त्रोंसे (विधिहीन मन्त्रोंसे) पूजित और पतितसे स्पर्श की हुई प्रतिमाओंमें देवताओंका अस्तित्व नहीं रहता। अतः इनकी पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिये।'

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा।
नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत *द्विजवाचनिके जपे॥
(विष्णुपुराण ३।१२।२०)

'होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, पुण्याहवाचनमें और जपमें एक वस्त्र धारण करके कभी प्रवृत्त नहीं होना चाहिये (अर्थात् शुभ कार्योंमें उपवस्त्रके सहित प्रवृत्त होना चाहिये)।'

न दानजपहोमेषु श्रद्धाध्ययनकर्मसु।
एकवस्त्रः प्रवर्त्तेत द्विजवाचनिके तथा॥
(भविष्यपुराण)

'एक वस्त्र पहन कर दान, जप, होम, श्राद्ध, अध्ययन तथा अन्यान्य शुभ कर्मोंमें एवं ब्राह्मणवरणमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये अर्थात् एक वस्त्र पहन कर ये कार्य नहीं करने चाहिये।'

स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याच्छ्राद्धभोजनसत्क्रियाः॥
(योगियाज्ञवल्क्यः)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, श्राद्ध, भोजन और सत्कर्म एक वस्त्र पहन कर न करें।'

एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
न कुर्याद्देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा॥
(गौतमः)

'एक वस्त्र पहन कर भोजन न करे। श्रौत और स्मार्त कर्ममें देवकार्य (पूजन आदि), दान, होम और जप भी एक वस्त्र पहन कर न करे।'

---

*द्विजवाचनिके—द्विजस्वस्तिवाचने।

खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धलम्बितस्तथा ।
उत्तरीयव्यपेतश्च तत्कृतं निष्फलं भवेत् ॥
(मनुः)

'खण्डित वस्त्र पहन कर तथा आधा वस्त्र पहनकर आधा शरीर पर लटका कर उत्तरीय वस्त्र–रहित होकर जो कर्म किया जाता है वह निष्फल जाता है ।'

यज्ञादिमें काषाय वस्त्रके धारणका निषेध

काषायवासा यान् कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान् ।
न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः ॥

'कर्ता काषाय (गेरुवा) वस्त्र धारण कर जिन जप, होम और प्रतिग्रहोंको करता है तथा हव्य और कव्योंमें (दैव पित्र्य कर्मोंमें) जो हविष् या कव्य प्रदान करता है, वह देवताओंको प्राप्त नहीं होता है ।'

काषायवासाः कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान् ।
न तद्देवगमं कार्यं हव्यकव्येष्वथो विधिः ॥
(बौधायनः)

'जो काषाय वस्त्रधारी होकर जप, होम और प्रतिग्रह करता है, उसका वह कर्म देवताओं तक नहीं पहुँचता । अतः हव्य-कव्यमें अर्थात् दैव एवं पित्र्य कर्ममें काषाय वस्त्र पहनकर कर्म नहीं करना चाहिये, यह शास्त्रीय विधि है ।'

यज्ञादिमें आसुरी ढंगसे वस्त्र-धारणका निषेध

स्नाने दाने जपे होमे दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
बध्नीयान्नासुरीं कक्षां शेषकाले यथारुचि ॥
(दानहेमाद्रौ)